दक्षिण भारत

के

हिंदी-प्रचार-आंदोलन

का

समीक्षात्मक इतिहास

लेखक

श्री पी. के. केशवन् नायर

प्रकाशक

श्री तेजनारायण टंडन

व्यवस्थापक

हिंदी-साहित्य-भंडार

अमीनाबाद, लखनऊ

प्रकाशक —हिंदी-साहित्य-भंडार, अमीनाबाद, लखनऊ

काॅपीराइट—1963 लेखक

संस्करण —प्रथम, अगस्त 1963

मुद्रक —श्री बालकृष्णशास्त्री, ज्योतिष प्रकाश प्रेस, वाराणसी

मूल्य —दस रुपया

समर्पण

केरल के जन-हृदय में राष्ट्रभाषा हिन्दी का बीजारोपण कर, सहस्रों केरलीय तरुणों को हिन्दी की ही सेवा में आत्मोत्सर्ग करने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करनेवाले, केरल के सर्वप्रथम, सर्वाराध्य हिन्दी प्रचारक, हिन्दी, संस्कृत एवं मलयालम् के धुरन्धर विद्वान, सहृदय शिरोमणि, दिवंगत **श्री एम० के० दामोदरन् उण्णि** की पवित्र स्मृति में विनम्र शिष्य का श्रद्धोपहार

—लेखक

दक्षिण के हिन्दी आन्दोलन के आदि प्रवर्तक
श्री. पं० हरिहरशर्मा तथा श्री. पं० क० म० शिवरामशर्मा के
आशीर्वाद-वचन

बहुत दिनों से मैं स्वयं चाहता था और मेरे सहयोगी कार्यकर्ता-बन्धु भी आग्रह करते थे कि मैं हिन्दी प्रचार का इतिहास लिखूँ, पर यह नहीं हो सका। मुझ को इसका बड़ा दुःख रहा। अब मैंने श्री केशवन् नायर के लिखे हिन्दी प्रचार के इतिहास का थोड़ा हिस्सा सुना। इससे बड़ी ही खुशी हुई। स्वतंत्रता पाने के लिए जितने आन्दोलन थे, उनमें हिन्दी प्रचार एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस आन्दोलन के कारण ही दक्षिण में राष्ट्रीयता की नयी जागृति हुई, लोगों का अंग्रेज़ी के प्रति अनावश्यक मोह छूटने लगा व मातृभाषा के प्रति सच्चा प्रेम भी उत्पन्न हुआ।

श्री केशवन् नायर इसे लिखने की विशेष योग्यता इससे रखते हैं कि वे इस महान् कार्य के तत्वों को पूरी तरह से समझ कर, उसकी भावना में ओतप्रोत होकर बड़ी सफलता के साथ अपना कार्य करते रहे हैं। बहुत पुराने प्रचारकों में श्री केशवन् नायर एक आदर्श प्रचारक भी रहे हैं। इसलिए एक तरह से एक प्रामाणिक इतिहास लिखने के भार से मैं मुक्त भी होता हूँ। मैं हृदय से इनको बधाई देता हूँ व चाहता हूँ यह पुस्तक शीघ्र तैयार होकर प्रकाशित हो।

ट्रिवेंड्रम
२३-९-६२

—हरिहर शर्मा

दक्षिण के

हिन्दी प्रचार आन्दोलन के आदि प्रवर्तक लेखक के साथ
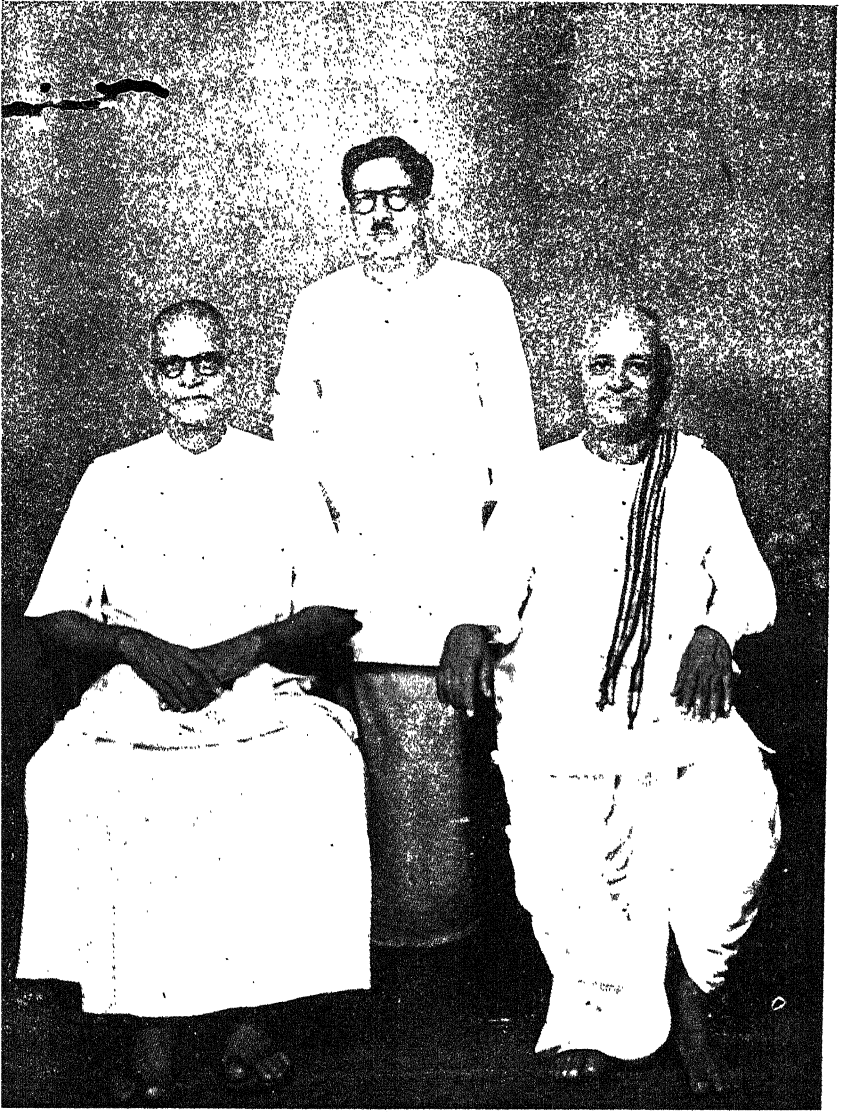
पं० हरिहर शर्मा पी. के. केशवन् नायर (लेखक) पं० क. म. शिवराम शर्मा

हरिहर शर्मा
कृष्णापुरम
कडयनल्लूर

ஹரிஹர சர்மா
கிருஷ்ணாபுரம்
கடையநல்லூர் போஸ்ட்.

23-9-62

बहुत दिनों से मैं इनसे चाहता था और मेरे सहयोगी कार्यकर्ता विष्णु भी आग्रह करते थे कि मैं हिन्दी प्रचार का इतिहास लिखूं पर यह नहीं हो सका। मुझको इस का बड़ा दुःख था। अब मैंने श्री वेलायुधन नायर के लिखे हिन्दी प्रचार के इतिहास का थोड़ा हिस्सा सुना। इससे बड़ी ही खुशी हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये जितने आन्दोलन थे उनमें हिन्दी प्रचार एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस आन्दोलन के कारण ही दक्षिण में राष्ट्रीयता की नयी जागृति हुई, लोगों का अंग्रेजी के प्रति अनादर मय मोह दूर होकर लोगों में मातृभाषाओं के प्रति सच्चा प्रेम भी उत्पन्न हुआ।

श्री वेलायुधन नायर इसे लिखने की विशेष योग्यता इससे रखते हैं कि वे इस महान कार्य के तत्वों को पूरी तरह से समझकर उसकी भावना में ओतप्रोत होकर बड़ी सफलता के साथ उसका कार्य करते रहे हैं। बहुत पुराने प्रचारकों में श्री वेलायुधन नायर एक आदर्श प्रचारक भी रहे हैं। इसलिये एक तरह से एक प्रामाणिक इतिहास लिखने के नाते मैं खुश भी होता हूं। मैं हृदय से इनको बधाई देता हूं व चाहता हूं यह पुस्तक शीघ्र तैयार होकर प्रकाशित हो।

तिरुवनन्तपुरम्.

हरिहर शर्मा
२३.९.६२

श्री पी. के. केशवन् नायर के "दक्षिण के हिन्दी आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास" की पाण्डुलिपि देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। हमारे देश में स्वतंत्रता पाने के लिए जो महान् प्रयत्न हुए उनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी के आन्दोलन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस आन्दोलन से मेरा आरंभ से ही निकट संबन्ध रहा और श्री केशवन् नायर का मुझ से दो-चार वर्ष कम का। यद्यपि उनका कार्य-क्षेत्र केरल प्रदेश रहा तो भी दक्षिण के अन्य सभी प्रान्तों के कार्य का उन्हें पूरा परिचय है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की शिक्षा-परिषद के सदस्य के नाते उन्हें सारे हिन्दी आन्दोलन पर प्रभाव डालने का अवसर प्राप्त हुआ है। इतिहास वही प्रामाणिक है जो न केवल घटनाओं का वर्णन करे, बल्कि घटनाओं को प्रेरित करने वाली भावनाओं को भी व्यक्त करे। इस दृष्टि से इस इतिहास की रचना का अधिकार श्री केशवन् नायर से बढ़ कर कम लोगों को ही हो सकता है। हिन्दी भाषा के इतिहास में दक्षिण के हिन्दी प्रचार का आन्दोलन एक मुख्य अध्याय है। यह पुस्तक सारे हिन्दी-संसार की एक अमूल्य रचना बनेगी। इस पुस्तक की सारी बातें प्रामाणिक हैं। मैं जानता हूँ कि इन बातों के संकलन में श्री केशवन् नायर को कितना परिश्रम करना पड़ा। उनका प्रयत्न स्तुत्य है।

ट्रिवेण्ड्रम
२३–९–६२

—क. म. शिवराम शर्मा

श्री पी के केशवन नायर के "दक्षिण के हिन्दी आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास" की पाण्डुलिपि देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। हमारे देश में स्वतंत्रता पाने के लिए जो महान प्रयत्न हुए उनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी के आन्दोलन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस आन्दोलन से मेरा आरम्भ से ही निकट सम्बंध रहा और श्री केशवन नायर का मुझसे दो चार वर्ष काम का। यद्यपि उनका कार्य-क्षेत्र केरल प्रदेश रहा तो भी दक्षिण के अन्य सभी प्रान्तों के कार्य का उन्हें पूरा परिचय है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की शिक्षा परिषद के सदस्य के नाते उन्हें सारे हिन्दी आन्दोलन पर प्रभाव डालने का अवसर प्राप्त हुआ है। इतिहास वही प्रामाणिक है जो न केवल घटनाओं का वर्णन करे बल्कि घटनाओं को प्रेरित करने वाली भावनाओं को भी व्यक्त करे। इस दृष्टि से इस इतिहास की रचना का अधिकार श्री केशवन नायर से बढ़कर कम लोगों को ही हो सकता है। हिन्दी भाषा के इतिहास में दक्षिण के हिन्दी प्रचार का आन्दोलन एक मुख्य अध्याय है। यह पुस्तक सारे हिन्दी संसार की एक अमूल्य रचना बनेगी। इस पुस्तक की सारी बातें प्रामाणिक हैं। मैं जानता हूँ कि इन बातों के संकलन में श्री केशवन नायर को कितना परिश्रम करना पड़ा। उनका प्रयत्न स्तुत्य है।

क. म. शिवराम शर्मा

ट्रिवेण्ड्रम
23.9.62

प्राक्कथन

दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का इतिहास वर्षों तक देश-सेवा का इतिहास रहा है। दक्षिण के अनेकों युवक देश-सेवा की भावना से प्रेरित होकर हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में उतरे थे। वे गाँधी जी की सभी कार्य-योजनाओं में सक्रिय भाग लेते थे। देश-सेवा उनका आदर्श था और देश-सेवक होने का गौरव उनका पुरस्कार था। उन्हें कितनी ही तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा था; तथापि वे जरा भी विचलित न होकर अपने कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ते ही गये। कुछ लोग तो अपनी अच्छी-अच्छी नौकरियाँ छोड़ कर ही इस सेवा-कार्य में लग गये थे। अनेकों भाइयों को इस सेवा के दौरान में जेल-यात्रा भी करनी पड़ी थी। केरल के ऐसे त्यागनिष्ठ सेवकों में थोड़े-से ही लोग अब बचे हैं। उनमें इस ग्रन्थ के लेखक श्री केशवन् नायर का भी नाम बड़े आदर के साथ लिया जा सकता है।

श्री नायर ने दक्षिण में हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को जन्म लेते देखा है, उसकी प्रगति देखी है और उसके मीठे व कडुए फल चखे हैं।

इन दिनों कई एक हिन्दी-प्रचारक अपना उत्साह खोकर केवल पांडित्य का भार उठाये कोरे 'हिन्दी-अध्यापक' ही बन गये हैं। लेकिन श्री नायर जी में उत्साह और पांडित्य का संतुलित संगम आज भी हम देख सकते हैं। वे अब भी पूर्ववत् हिन्दी-प्रचार के कार्य में संलग्न रहते हैं।

श्री नायर के जैसे उत्साही, अनुभवी तथा विद्वान प्रचारक के द्वारा ही इस ग्रन्थ की रचना हुई, यह बड़े ही हर्ष की बात है। अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर ही आपने इसकी रचना की है। मेरे ख्याल में, और किसी के द्वारा इस प्रकार के एक ग्रन्थ की रचना नहीं हो सकती थी। मेरा पूर्ण विश्वास है कि अहिन्दी प्रान्तों के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के इतिहास से परिचित होने की इच्छा रखने वालों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इस विश्वास के साथ मैं इसे हिन्दी-प्रेमी जनता के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

—ए० चन्द्रहासन

अपनी ओर से—

'दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास' हिन्दी प्रेमी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मैं अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। यह मानी हुई बात है कि स्वाधीनता-संग्राम से सम्बन्धित राष्ट्र-पुनर्निर्माण की आयोजनाओं में दक्षिण का हिन्दी प्रचार आन्दोलन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के पश्चात् विधान के अनुच्छेद ३५१ के अनुसार राजभाषा हिन्दी के देशव्यापक प्रचार-प्रसार की वृद्धि करना सरकार का कर्तव्य हो गया है। इसीलिए पञ्चवर्षीय योजनाओं में हिन्दी के प्रचार एवं विकास के लिए भी समुचित स्थान दिया गया है। लेकिन सन् १९१८ से लेकर स्वातन्त्र्य-प्राप्ति तक राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि में, खासकर दक्षिण के अहिन्दी प्रान्तों में, हिन्दी-प्रचार का जो जबरदस्त आन्दोलन हुआ, उसकी गति-विधि तथा विकास-क्रम का पूरा इतिहास किसी ने आज तक लिखने का कष्ट नहीं उठाया है। यह तो स्वाभाविक बात है कि दिन बीतते-बीतते बीती हुई बातें विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाया करती हैं।

हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के कार्यकर्ताओं की यह उत्कट अभिलाषा रही कि सभा की रजतजयन्ती के अवसर पर दक्षिण के हिन्दी आन्दोलन का एक इतिहास-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। परन्तु उनकी यह इच्छा अभी तक सफल नहीं हो सकी।

अब प्रश्न उठ सकता है कि इस ग्रन्थ की रचना में मेरा प्रेरणा स्रोत कौन-सा रहा है? इसके उत्तर में इतना ही मेरा निवेदन है कि मैं भी उन कार्यकर्ताओं में से हूँ जिसे पिछले ४० वर्षों से दक्षिण के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के क्रमिक विकास सम्बन्धी विविध कार्य-कलापों में लगातार अपनी तुच्छ सेवाएँ अर्पित करते रहने का सुयोग प्राप्त हुआ है। उन चालीस वर्षों का प्रत्यक्ष अनुभव ही इस गुरुतर कार्य में मेरा संबल रहा है।

सन् १९५७ में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी जी के निकट सम्पर्क में आने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय मैं केरल सरकार के शिक्षा-विभाग के अधीन हिन्दी विशेष अधिकारी (हिन्दी स्पेशल अफ़सर) के पद पर नियुक्त था। केन्द्रीय सरकार द्वारा केरल राज्य के कालेजों में हिन्दी-अभिभाषणार्थ नियुक्त होकर श्री बाजपेयीजी यहाँ आए हुए थे। उनके साथ भ्रमण करने के लिए केरल सरकार ने मुझी को नियुक्त किया था। एक दिन प्रसंगवश, मैंने दक्षिण के हिन्दी प्रचार

आन्दोलन सम्बन्धी कुछ पुरानी बातें उनको सुनायीं। वे उनसे बहुत ही प्रभावित हुए और मुझ से आग्रह किया कि मैं दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन तथा तत्सम्बन्धी भाषामूलक समस्याओं पर एक इतिहास ग्रन्थ लिखूँ। उन्होंने मुझे यह भी आशा दिलायी कि उसे शोध-ग्रन्थ के रूप में किसी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया जा सकता है। उनके आग्रह और प्रोत्साहन का यह फल हुआ कि मैंने अपनी वर्षों की कल्पना को कार्यरूप में परिणत करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। बस, यही इस प्रयास का मेरा प्रेरणा-स्रोत है।

मैं जानता हूँ कि इतिहास के तथ्यों व तत्वों के संकलन-निरूपण में सम्पूर्णता का दावा कोई भी नहीं कर सकता। तब मैं कैसे इसे सम्पूर्ण कहने का साहस कर सकता हूँ? परन्तु मैं तो इतना तो दावा अवश्य कर सकता हूँ कि हिन्दी की सेवा में पिछले चालीस वर्षों से निरन्तर संलग्न रहने वाले एक हिन्दी सेवक के रूप में जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर ही इस ग्रन्थ की रचना का मैंने प्रयास किया है।

सन् १९३० के बाद दक्षिण के हिन्दी प्रचार का क्षेत्र बहुत ही व्यापक रहा है। साथ ही साथ भाषामूलक समस्याएँ भी बढ़ती रही हैं। अतः प्रचार, संगठन, साहित्य-सृजन, शिक्षा-माध्यम, शिक्षण-पद्धति, परीक्षा-योजना आदि विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाले बिना हिन्दी-आन्दोलन का क्रमिक विकास दिखाना कठिन था। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि राष्ट्रीय-शिक्षा की आवश्यकता, राष्ट्र-भाषा की महत्ता, अंग्रेजी-शिक्षण प्रणाली की अनुपयोगिता आदि विषयों पर महात्मा गाँधी जी ने जितना गहरा चिन्तन और मनन किया उतना शायद ही अन्य किसी नेता ने किया हो। आज गाँधी के अनुयायी कहलाने वाले लोग, उनके सिद्धान्तों के अनु-सन्धान-अनुशीलन में दिल-दिमाग लड़ाते रहते हैं। लेकिन वे इस बात को भूले हुए दीखते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषाविषयक समस्याओं को हल करने में गाँधी जी से बढ़कर कोई नेता अब तक सफल नहीं हो सके हैं। अतः राजभाषा सम्बन्धी उनके सिद्धान्तों पर अमल करना हमारा परम धर्म है। वास्तव में उनके बताये रास्ते पर चलने का दम भरते हुए उनके सिद्धान्तों पर अमल न करना उनका अपमान करना है। उनके अनुयायी तो उन्हें युग-स्रष्टा मानते हैं। तब वे भविष्य द्रष्टा भी क्यों न माने जायँ और उनकी विचार-धारा को क्यों महत्व न दिया जाय? दुख की बात है कि गाँधी जी के सच्चे अनुयायी कहलाने वाले कई-एक काँग्रेसी नेता राजभाषा की अवज्ञा करते हुए गाँधी जी के राष्ट्रभाषा सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचारों की धज्जियाँ उड़ाते रहते हैं। उनका कथन है कि वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए गाँधी जी का राष्ट्रभाषा सिद्धान्त अव्यावहारिक है। यही कारण है कि

राजभाषा की समस्या को लेकर देश में फिर से तूफान उठाने की कोशिश की जा रही है। आज इसका नग्न दृश्य हम देखते हैं।

मैंने अपने इस ग्रन्थ में भाषामूलक समस्याओं पर गाँधी जी के कई भाषण के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। मेरा विश्वास है कि दक्षिण के हिन्दी अध्यापक और अध्येता उनकी विचार-धारा से अवश्य लाभान्वित हो सकेंगे।

इस ग्रन्थ-रचना के लिए मैंने दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित सभी पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलों की छान-बीन करके ही अधिकांश सामग्री जुटाई है, अन्यत्र इतनी सामग्री कहाँ मिल सकती है? 'श्री सत्यनारायण अभिनन्दन ग्रन्थ' में दक्षिण के चारों प्रान्तों के हिन्दी प्रचार-कार्य की झाँकी दिखाते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये गये हैं। उन लेखों से भी मैंने आवश्यक सहायता ली है। तदर्थ मैं उस ग्रंथ के विज्ञ लेखकों का बड़ा आभारी हूँ।

मेरे आदरणीय मित्र श्री एन. वेंकटेश्वरन्, (परीक्षा-मन्त्री दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास) तथा श्री सी. जी. गोपालकृष्णन् (संगठक, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरल शाखा) ने इस ग्रन्थ निर्माण की सामग्री जुटाने में मुझे काफी सहायता पहुँचाई है। श्री डॉ. भास्करन् नायर, (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय) की प्रेरणा और प्रोत्साहन इस कार्य को शीघ्र पूरा करने में अत्यन्त सहायक रहा है; अन्यथा इतनी जल्दी इसका पूरा होना असंभव होता। हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के संस्थापक तथा आदि प्रवर्तक पं० हरिहर शर्माजी तथा पं० शिवराम शर्माजी इस ग्रन्थ की पांडुलिपि का कुछ अंश पढ़ कर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने इस ग्रन्थ-रचना पर कुछ आशीर्वचन लिपिबद्ध कर के दिये हैं जो इसमें अन्यत्र प्रकाशित हैं। मेरे इस प्रयत्न में हार्दिक सहानुभूति दिखा कर मेरे उत्साह को बढ़ानेवाले उन सभी महान् व्यक्तियों का मैं चिर ऋणी हूँ।

दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः तमिलनाडु, आन्ध्र, कर्नाटक और केरल रहने से उन चारों प्रान्तों का अलग-अलग बृहत् इतिहास लिखा जा सकता है। पिछले ४५ वर्षों की लंबी अवधि में दक्षिण के कोने-कोने में हिन्दी प्रचार का प्रबल आन्दोलन चला। उसका क्रमबद्ध इतिहास लिखना अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी मैंने पाठकों को थोड़े में उसकी गति-विधि का परिचय कराने की भरसक चेष्टा की है।

केरल के सुप्रसिद्ध हिन्दी-सेवी तथा केरल विश्वविद्यालय के शोध-विभाग (हिन्दी) के अध्यक्ष श्री ए० चन्द्रहासन् ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। तदर्थ मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ।

दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के विविध कार्य-कलापों में वर्षों तक सक्रिय भाग लेते रहने वाले, दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों के पथ-प्रदर्शक तथा मेरे जैसे हज़ारों प्रचारकों के आराध्य गुरुदेव श्री पं० हृषीकेश शर्मा जी ने इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर मुझ अकिंचन को अनुगृहीत किया है; उसके लिए मैं उनका चिर कृतज्ञ हूँ।

मेरे मित्रवर श्री तेजनारायण टंडन जी, व्यवस्थापक, हिन्दी साहित्य-भंडार, लखनऊ ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का दायित्व-भार उठा कर इसे शीघ्रातिशीघ्र जनता के समक्ष लाने की कृपा की है। उसके लिए मैं उनका बड़ा आभार मानता हूँ।

इसकी छपाई सुप्रसिद्ध मुद्रक 'ज्योतिषप्रकाश प्रेस' वाराणसी में हुई है। बहुत ही थोड़े समय में छपाई का काम पूरा करने में प्रेस के व्यवस्थापक श्री बालकृष्ण शास्त्री ने कोई बात उठा नहीं रखी है। अतः उनका भी मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ।

खेद है कि जल्दी में शुद्ध पांडुलिपि तैयार करने एवं छपाई हो जाने के कारण इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र कुछ भूलें रह गयी हैं। अतएव अन्त में शुद्धि-पत्र देना पड़ा है। सहृदय पाठक उन भूलों के लिए मुझे क्षमा करेंगे, ऐसी आशा है। अगला संस्करण त्रुटि रहित निकाला जा सकेगा, यही विश्वास है।

इस इतिहास-ग्रन्थ की अपूर्णता का अनुभव करते हुए भी, हिन्दी-प्रेमी पाठकों को दक्षिण के राष्ट्रभाषा आन्दोलन की एक झाँकी-भर दिखाने में यदि यह उपयोगी सिद्ध हुआ तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा।

—लेखक

विषय प्रवेश—

यह निर्विवाद बात है कि किसी भी देश के राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक उत्कर्ष-अपकर्ष में उस देश की भाषा तथा साहित्य का बड़ा हाथ रहता है। भाषा और साहित्य का विकास उस देश की राष्ट्रीयता के विकास का परिचायक है। देश हमारा शरीर है तो साहित्य हमारी आत्मा है और भाषा हमारा प्राण है। मनुष्य के साथ भाषा की भी उत्पत्ति हुई और उसी के साथ उसका विकास भी हुआ। विभिन्न परिस्थितियों में, विविध दशाओं में मानव मन में उठनेवाली भावनाओं और विचारधाराओं का शब्दबद्ध रूप ही साहित्य कहलाता है। वह भाषा अथवा शब्द समूह पर अवलंबित रहता है। वस्तुतः सच्चा साहित्य ही समाज की आत्मा की चेतना है। यही कारण है कि विजेता लोग विजित देश की भाषा एवं साहित्य की प्रगति को रोकने की चेष्टा करते हैं। वे अपनी भाषा और साहित्य का आधिपत्य स्थापित करके वहाँ के सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा धार्मिक जीवन पर अपनी अमिट छाप डालते हैं। धीरे-धीरे वह देश विजेताओं की दासता की शृंखला में आबद्ध हो जाता है। यही देश का पतन कहलाता है।

भारतवर्ष का इतिहास उपर्युक्त कथन का साक्षी है। यहाँ जब हिन्दू साम्राज्य का पतन हुआ और मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित हुआ तो फारसी का प्रभाव रहा। फिर अंग्रेज़ों की हुकूमत कायम हुई तो हिन्दू, मुसलमान दोनों उनके गुलाम बने और अंग्रेजी का यहाँ बोलबाला हुआ। सब पर अंग्रेज़ी रंग चढ़ा। वेश-भूषा, आचार-विचार, संस्कृति, सभ्यता, कला-कौशल, उद्योग-धंधे सब पर अंग्रेज़ी का प्रभाव पड़ा। शिक्षा-दीक्षा भी अंग्रेज़ी ढाँचे में ढली। वर्षों तक हमारे देश की यह स्थिति रही। उस स्थिति को हमने पराधीनता कहा। उससे मुक्त होने के लिए हमने 'स्वराज्य-संग्राम' छेड़ा। महात्मा गाँधी ही उस स्वातंत्र्य-युद्ध के अगुआ बने। अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए, आत्मोत्सर्ग द्वारा हमने पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ीं। हमने गाँधीजी को राष्ट्रपिता माना।

गाँधीजी ने हमको बताया कि पराधीनता से मुक्त होने का अर्थ केवल अधिकार का हस्तान्तरित होना ही नहीं है, बल्कि भाषा, साहित्य, संस्कृति, धर्म, शिक्षा-दीक्षा आदि को भी अंग्रेज़ी के आधिपत्य से मुक्त करना है अर्थात् हमें अपना भौतिक स्तर उठाना है और जातिगत एवं धर्मगत भिन्नता मिटाना है; देशीय भाषा, साहित्य तथा संस्कृति का पुनरुद्धार करना है तथा देशीय शिक्षा-दीक्षा द्वारा देश की जनता में नयी चेतना भरनी है। आज भारत उनके बताए मार्ग पर उनके सिद्धांतों के अनुसार राष्ट्र के नवनिर्माण के कार्य में जी-जान से जुटा हुआ है।

आज भारत स्वतंत्र है। हमने भारत में गणतंत्रात्मक शासन कायम करना चाहा और तदनुसार विधान भी बनाया। देश में सबसे अधिक व्यापक तथा सरल भाषा हिन्दी को हमने एक स्वर में राजभाषा घोषित भी किया। देश के पुनर्गठन की बात तय हुई। तदनुसार भाषावार प्रांतों की पुनर्रचना भी की गयी। देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं जिनमें राजभाषा हिन्दी के प्रचार, प्रसार एवं वृद्धि का कार्य देश की भावनात्मक एकता के लिए अत्यंत आवश्यक समझा गया। अतः सन् १९६५ के बाद अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी का व्यवहार सार्वजनिक रूप में करने का भी हमने निश्चय किया।

लेकिन दुर्भाग्य की बात है, हमारे देश की गति-विधि में कुछ आकस्मिक परिवर्तन हुए। भाषावार प्रान्त के पुनर्गठन के बाद प्रादेशिक भाषाओं के समर्थन में हिन्दी के विरुद्ध कुछ दक्षिणी लोग आवाज़ उठाने लगे। उनमें संकीर्णता इतनी बढ़ गयी कि वे हिन्दी तथा हिन्दीवालों को शंका की दृष्टि से देखने लगे। वर्षों का पुराना हिन्दी विद्वेष फिर से जाग्रत हो उठा। विवश होकर केन्द्र सरकार को समझौते का रास्ता ग्रहण करना पड़ा। सन् १९६५ के बाद भी अनिश्चित काल के लिए अंग्रेज़ी को हिन्दी की सहयोगिनी भाषा के रूप में बनाये रखने के लिये आवश्यक विधेयक आगामी विधान सभा में पारित करने की बात सोची गयी। राष्ट्रपिता ने हमें इन शब्दों में सावधान किया था "अगर सरकारें और उनके दफ़्तर सावधानी नहीं लेंगे तो मुमकिन है कि अंग्रेज़ी ज़बान हिन्दुस्तानी की जगह को हड़प ले। इससे हिन्दुस्तान के उन करोड़ों लोगों को बेहद नुकसान होगा जो कभी भी अंग्रेज़ी समझ नहीं सकेंगे। मेरे ख्याल में, प्रान्तीय सरकारों के लिए यह बहुत आसान बात होनी चाहिए कि वे अपने यहाँ ऐसे कर्मचारी रखें जो सारा काम प्रांतीय भाषाओं और अन्तर्प्रान्तीय भाषा में कर सकें।" परंतु दुख की बात है कि भाषा की पराधीनता से हम अभी तक मुक्त नहीं हो सके! भावात्मक एकता की आधार-शिला ही हम पक्की न कर पाये।

दक्षिण भारत ने सन् १९१८ में ही हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में स्वागत किया था। राष्ट्रपिता के नेतृत्व और आशीर्वाद से हिन्दी का यहाँ जो प्रचार एवं प्रसार हुआ वह गौरव की वस्तु है। पिछले वर्षों में दक्षिण में हिन्दी प्रचार आन्दोलन का सफल नेतृत्व करने में दक्षिण तथा उत्तर के कितने ही उच्च श्रेणी के नेताओं, त्यागनिष्ठ हिन्दी प्रचारकों तथा सच्चे देश हितैषियों का हार्दिक योगदान रहा है।

इन दिनों भावात्मक एकता की आवाज़ क्यों बुलन्द है? इसलिये कि प्रान्तीयता, सांप्रदायिकता तथा दलबन्दी की विषैली वायु में हमारा दम घुटने लगा है। राष्ट्रभाषा के प्रचार के मूल में गाँधी जी भारत की भावात्मक एकता ही देखते थे।

कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक की जनता में राष्ट्रभाषा हिन्दी के द्वारा ही भावात्मक एकता की स्थापना हो सकती है, यह कल्पना उस समय गाँधी जी की तरह अन्य नेताओं तथा हिन्दी के प्रचारकों की भी रही है। लेकिन अब स्वभावतः ऐसे प्रश्न उठते हैं कि अंग्रेज़ी को हिन्दी की सहयोगिनी बनाये रखने तथा उसी में अन्तरप्रान्तीय प्रशासनिक कार्य चलाते रहने से राजभाषा हिन्दी कैसे विकसित होगी? कब तक वह उसके लिए योग्य बन सकेगी? और यदि अंग्रेज़ी रहे तो हिन्दी को राजभाषा के रूप में विकसित करने की आवश्यकता ही क्या है? अंग्रेज़ी के पक्षपाती इन प्रश्नों का एक ही उत्तर यों देते हैं कि हिन्दी जब लायक बनेगी तो अंग्रेज़ी को हटाने की बात सोची जायगी। इस उत्तर से यह शंका उठती है कि क्या अंग्रेज़ी के प्रति परंपरागत अन्धभक्ति जो है उसके आगे हिन्दी को लोग विकसित होने देंगे? अंग्रेज़ी का स्तर ऊँचा उठाने एवं अंग्रेज़ी माध्यम से फिर से शिक्षा-दीक्षा का क्रम जारी करने का प्रयत्न आज सब कहीं होने लगा है। विश्व-विद्यालयों में अंग्रेज़ी ही को पढ़ाई का माध्यम बनाये रखने की चेष्टा हो रही है। यदि वहाँ प्रादेशिक भाषाओं का माध्यम स्वीकृत हो जाय तब भी राजभाषा हिन्दी का स्थान कौन-सा रहेगा? हाल ही में शिक्षा मंत्री ने विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों के सम्मेलन में व्याख्यान देते हुए सूचित किया कि प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से जब विश्वविद्यालयों में पढ़ाई शुरू की जायगी तब हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जाएँगी। इससे हिन्दी का स्तर कहाँ तक ऊपर उठेगा और हिन्दी कब तक राष्ट्रभाषा के स्थान पर व्यवहृत होने लायक बनेगी, इत्यादि प्रश्न विचारणीय हैं। परन्तु इतना तो निश्चित है कि अंग्रेज़ी को राजभाषा हिन्दी की सहयोगिनी बनाये रखने की नीति हिन्दी के विकास में बाधक ही सिद्ध होगी। अंग्रेज़ी का पद चिरस्थायी बनाने की नीति की आलोचना करते हुए देश के सुप्रसिद्ध नेता, हिन्दी के धुरंधर विद्वान डॉ० सम्पूर्णानंद जी ने सितंबर १९६२ के 'धर्मयुग' में एक लेख लिखा था जिसका नीचे उद्धृत अंश विशेष ध्यान देने योग्य है।

"भारत जैसे बड़े देश में जहाँ कई प्रादेशिक भाषाएँ प्रचलित हों, राष्ट्रभाषा का प्रश्न स्वभावतः कठिन होगा। प्रादेशिक भाषाएँ सामान्य बोलियाँ नहीं हैं। इनमें कईयों का इतिहास शताब्दियों पीछे तक जाता है। उनके वाङ्मय-भण्डार में ऐसी रचनायें हैं जिनका विश्व-वाङ्मय-भंडार में ऊँचा स्थान है। देश के स्वतंत्र होने पर यह समस्या उठ खड़ी होती ही थी कि किस भाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाय।

बहुत से लोगों का ध्यान अंग्रेज़ी की ओर गया। परिस्थितियों को देखते हुए यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। जो लोग राष्ट्रीय आन्दोलन में अग्रगण्य थे, वह सब अंग्रेज़ी के ज्ञाता थे, आपस का व्यवहार अंग्रेज़ी में करते थे। सार्वजनिक प्रश्नों पर

विचार-विनिमय अंग्रेज़ी द्वारा होता था। यही ऐसी भाषा थी जो सर्व प्रांतीय थी। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भी उससे काम लिया जाय, यह सहज भाव था। उससे सुविधा प्रतीत होती थी। परंतु राष्ट्रीय सम्मान का तकाज़ा कुछ और ही था। देश की आत्मा की पुकार यह थी कि कोई भारतीय भाषा अपनाई जाय। महात्मा जी की वाणी उस पुकार का प्रतीक थी। दृष्टि हिन्दी पर गयी, इसलिए नहीं कि वह भारतीय भाषाओं में सबसे श्रेष्ठ थी-वरन् इसलिए कि उसको बोलने और समझने वालों की संख्या सबसे अधिक थी।

मुझ को ऐसा लगता है कि हिन्दी को चुनकर हमने भूल की। संस्कृत को चुनना था। दक्षिण के जो लोग आज हिन्दी का विरोध करते हैं वह संस्कृत का भी विरोध करते, परंतु दक्षिण में संस्कृत जाननेवाले विद्यमान हैं। बंगाली आदि भाषाओं के प्रेमियों को विरोध का अवकाश कम मिलता। हिन्दी के प्रति जो सपत्नी भाव है वह संस्कृत से न होता। दूसरी भूल यह हुई कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए लंबी अवधि दी। संविधान के स्वीकार होते ही पांच साल के भीतर यह काम हो जाना चाहिए था। वाङ्मय आदि के क्षेत्र में थोड़ी देर लगती तो कोई हर्ज नहीं होता, राजभाषा के रूप में व्यवहृत होने में कोई कठिनाई न थी। लंबी अवधि दी गयी और यह स्पष्ट हो गया कि दिल्ली के मस्तिष्क में त्वरा का भाव नहीं है।

अब यह तय होने जा रहा है कि अंग्रेजी का पद चिरस्थायी कर दिया जाय, वह सदा के लिए हिन्दी के साथ सहकारी भाषा के रूप में बनी रहे। मैं यही कहता हूँ कि यह देश के लिए लज्जा की बात है। हिन्दी से चिढ़ है तो कोई दूसरी भारतीय भाषा को उस का स्थान दे दिया जाय, परंतु अंग्रेज़ी को सर पर ढोना तो डूब मरने के बराबर है। हम को बाहरवाले क्या कहते होंगे? अंग्रेजी को इस प्रकार प्रतिष्ठित करने का अर्थ यह होगा कि हिन्दी कभी भी राष्ट्रभाषा न हो सकेगी, उसकी उन्नति रुक जायगी। अब भी प्रगति धीमी है; फिर भी यह आशा बंध रही है कि स्यात् अनतिदूर भविष्य में वह एक मात्र राष्ट्रभाषा बन ही जाय।"

'दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास' की प्रस्तावना

प्रस्तावना के कुछ शब्द

"दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास" नामक ग्रन्थ के छपे हुए सब फर्मे मेरे हाथ में हैं। कुल मिलाकर ४२५ पृष्ठ हैं। 'अथ से इति तक' मैं इस ग्रन्थ को मनोयोग पूर्वक पढ़ गया हूँ। इसके लेखक श्री पी. के. केशवन् नायर केरल के सुपुत्र हैं। मलयालम् उनकी मातृभाषा है। हिन्दी में उन्होंने एम. ए. किया है और हिन्दी पर उनका अच्छा अधिकार है। उनका लेखनकार्य और भाषण भी बहुत उत्तम। नायरजी की नागरी लिखावट बहुत ही साफ-सुथरी और सुडौल। सम्प्रति वह त्रावणकोर युनिवर्सिटी (तिरुवितांकूर विश्वविद्यालय) के महाविद्यालय में (ट्रिवेंड्रम-तिरुवनन्तपुरम् में) हिन्दी-अध्यापक हैं। जब सन् १९५७ में, केरल में, एम. एस. नंबूद्रीपाद का मंत्रीमंडल बना तब केशवन जी को वहाँ की सरकार ने शासकीय स्तर पर 'हिन्दी विशेषाधिकारी" के पद पर नियुक्त किया था। आपने उस पद पर रहकर बड़ी योग्यता, अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और धैर्य के साथ केरल राज्य में हिन्दी को अग्रसर किया।

केरल की सार्वजनिक हिन्दी संस्थाओं और निःस्वार्थ सेवाभावी त्यागवृत्ति तरुण प्रचारकों ने राष्ट्रपिता बापू की प्रेरणा और उनके आशीर्वादों को प्राप्त कर हिन्दी के भावात्मक राष्ट्रीय ऐक्य-संवर्धक सन्देश को केरल के शत-शत ग्रामों और बड़े-बड़े नगरों तक पहुँचाया और हिन्दी के लिए अच्छी तरह उर्वरा भूमि तैयार की। केरल में कहीं भी हिन्दी का विरोध आप न पाइयेगा। केरल के नेता, केरल के चोटी के साहित्यकार और कलाकार, सभी समाजसेवक, शिक्षित नागरिक, नर-नारी हिन्दी के समर्थक मिलेंगे आपको। वहाँ के विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी को स्नातकोत्तर कक्षाओं पर्यन्त अभ्यासक्रम में स्थान मिला हुआ है। वहाँ हिन्दी का उच्चस्तरीय अध्ययन होता है।

हमें दक्षिण के—आन्ध्र, तमिल, केरल कर्नाटक के—इस हिन्दी-प्रेम के रहस्य को गहरे पानी पैठकर खोजना होगा। हमें उनकी हिन्दी-सेवा की सराहना अभिनन्दन-वन्दन पूर्वक करनी होगी। दक्षिण भारत के हिन्दी-प्रचारकों द्वारा की गई राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के मर्म को राष्ट्रपिता बापू ने और राष्ट्रपुरुष राजर्षि टंडन जी ने, हिन्दी के सर्वतंत्र स्वतंत्र समर्थ समीक्षक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी,

डॉ० विनयमोहन शर्मा, भारतीय आत्मा माखनलालजी, आचार्य काका साहब कालेलकर, वियोगीहरि, डॉ० सेठ गोविन्ददास, राष्ट्रीय कवि दिनकर, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी आदि आदि महामनीषियों ने समझा है और गहराई के साथ कुछ उस पर सोचा है। हम-हिन्दीवालों को दक्षिण के आन्ध्र, तमिल, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, बंबई, विदर्भ, गुजरात, आसाम, मणिपुर आदि हिन्दीतर क्षेत्रों में सम्पन्न हुए हिन्दी-प्रचार कार्य के प्रति नाक-भौं नहीं सिकोड़नी होगी, उँहू, अंगूर खट्टे हैं नहीं कहना होगा। निश्चय मानिये, आगामी १०-१२ वर्षों के अन्दर दक्षिण के आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्नाटक तथा अन्य हिन्दीतर प्रांतों के अ–हिन्दीभाषी हिन्दी-सेवी तरुण हजारों की संख्या में हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य के मर्मज्ञ बनकर बहुत आगे बढ़ जायेंगे। पूज्य राजाजी (श्री राजगोपालाचारीजी) और 'द्रविड मुन्नेत्र कड़कगम' के आन्दोलनकारी नेताओं की बात छोड़ दीजिये और "होम मिनिस्टर" श्री लालबहादुर शास्त्रीजी की "किन्तु-परन्तु" को भी नजर-अन्दाज रखिये और साथ ही हम उनकी भी बात छोड़ दें जो नौकरी की तलाश में, केन्द्रीय सरकार के बृहत् विराट सचिवालय में पब्लिक सर्विस कमीशन की शरण में अंग्रेजी के बलबूते पर बात की बात में नौकरियों में प्रविष्ट हो जाना चाहते हैं और हिन्दी को वर्षों पीछे धकेल देना चाहते हैं।

मैं उन अत्यन्त भाग्यशाली हिन्दी प्रचारकों में से एक हूँ जिसने सन १९१८ से लेकर १९३४ तक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की और १९३६ के जुलाई से लेकर सन् १९६३ के अगस्त तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की, दोनों संस्थाओं के जन्मकाल से अपनी समग्र श्रद्धा और विश्वास के साथ बहुविध सेवा की है और मैं आज भी कर रहा हूँ। इन गत लगातार ४५ वर्षों में मैंने जिन संस्कार-सम्पन्न, सुशिक्षित तथा शील-चारित्र्य-समृद्धसेवाभावी लगभग ३०० अ-हिन्दी भाषी तरुणों को अत्यन्त स्नेह-सहानुभूति सहित हिन्दी-भाषा और साहित्य की अध्ययन दीक्षा दी, उनमें श्रीकेशवनायरजी भी हैं। दक्षिण के मेरे सभी प्रिय शिष्य आज हिन्दी की उस सुन्दर कहावत को अक्षरशः प्रमाणित कर रहे हैं कि गुरू तो गुड़ ही रहा और शिष्य शीरीं शक्कर बन गये। ऐसे ही लोगों के अथक-परिश्रम, स्वार्थ-त्याग, लगन और अडिग उत्साह से हिन्दी राष्ट्रभाषा के पदपर प्रतिष्ठित हुई है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के इस काल में जब कि मेरी आयु ७२ वें मील पत्थर को पार कर चुकी है, मेरे घर में भारत की पुण्यसलिला गंगा, यमुना, नर्मदा, कृष्णा, गोदावरी, तुंगभद्रा और कावेरी की शीतल-पावन धाराओं का संस्कृति-संगम हुआ। मेरे घर में हिन्दी के साथ तेलगु, तमिल, मराठी, गुजराती, बंगला,

संस्कृत आदि भाषाएँ पधारीं और उन्होंने हमारे अन्तरतम को विकसित, जाग्रत और निर्मल तथा नन्दित किया।

लेखक श्री केशवजी और प्रकाशक श्रीतेजनारायण टंडनजी हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, अमीनाबाद का स्नेह-सौजन्य पूर्ण अनुरोध है कि मैं इस ग्रन्थ की छोटी-सी प्रस्तावना लिखूँ। मेरी जानकारी की जहाँ तक पहुँच है मैं निस्संकोच—निस्संशय कह सकता हूँ कि "दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास" इस तरह का यह पहला ही ग्रन्थ है अपने ढंग का। इस ग्रन्थ में २२ अध्याय अथवा प्रकरण हैं। लेखनशैली सुन्दर और विषय का प्रतिपादन प्रामाणिक है। प्रूफ-संशोधन की खटकने वाली यत्र-तत्र कुछ भूलें रह गई हैं। यदि अन्त में, परिशिष्टरूप एक शुद्धिपत्र लगा दिया गया तो दोष-परिमार्जन हो जायगा। एक केरलवासी मलयालम्-भाषी तरुण ने अपने महानिबन्ध का जो विषय चुना और उसे सम्पूर्ण लिखा वह आँखों देखा प्रामाणिक इतिहास है। उसका हमें सराहना के साथ सुन्दर मूल्यांकन करना होगा। ऐसे ग्रन्थ की बहुत दिनों से आवश्यकता थी और केशवजी नायर ने उसकी सफलता पूर्वक पूर्ति की।

इस ग्रन्थ के २२ प्रकरणों में लेखक ने हिन्दी प्रचार आन्दोलन की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि से लेकर विस्तार पूर्वक जो सामग्री ऐतिहासिक विवेचन के साथ निष्पक्षपात होकर प्रस्तुत की है, उससे पाठक इस विषय का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

मैं बड़े हर्ष और अभिमान के साथ इस ग्रन्थ की प्रस्तावना के चन्द शब्द लेखक को वन्दन-अभिनन्दन पूर्वक शुभाशीर्वाद रूप में अर्पण करता हूँ।

मंत्री-संचालक,
विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
"राष्ट्रभाषा-भवन"
उत्तर अम्बाझरी मार्ग, नागपुर-१ (महाराष्ट्र)
दिनांक ३१ अगस्त, १९६३

—हृषीकेश शर्मा

अध्यायक्रम और विषय-सूची

प्रकरण २

प्रकरण ३

प्रकरण ४

प्रकरण ५

प्रकरण ६

प्रकरण ७

प्रकरण ८

प्रकरण ९

प्रकरण १०

प्रकरण ११

प्रकरण १२

प्रकरण १३

प्रकरण १४

प्रकरण १५

प्रकरण १६

प्रकरण १७

प्रकरण १८

प्रकरण १९

प्रकरण २०

प्रकरण २१

प्रकरण २२

प्रकरण १

दक्षिण में हिन्दी-प्रचार आन्दोलन की पृष्ठभूमि

सन्त समाज में हिन्दी—

इतिहास से पता चलता है कि दक्षिण भारत के सन्त-समाज और भक्त-मण्डलियों में विचार-विनिमय के लिए वर्षों पूर्व ही हिन्दी का व्यवहार होता था। हरि-भजन, कीर्तन, हरिकथा-कालक्षेप (हरिकथा का संगीतयुक्त प्रवचन) आदि में हिन्दी के कीर्तन और पद गाये जाते थे। आज भी दक्षिण की भजन-मण्डलियों में कबीर, मीरा, सूर, तुलसी, तुकाराम आदि के पद गाये जाते हैं। उपर्युक्त बातों से यह बात सिद्ध होती है कि दक्षिण-भारत के व्यापारी केन्द्रों, सन्त-समाजों, भक्त-मण्डलियों एवं तीर्थ-स्थानों में हिन्दी एक सामान्य भाषा के रूप में वर्षों पूर्व से ही व्यवहृत होती आ रही है।

दक्षिण में मुसलमानों के शासन-काल में उर्दू का प्रचार हुआ। अरबी-फारसी के शब्दों से भरी हुई उस हिन्दी का नाम "दक्खनी" पड़ा। यह "दक्खनी" आगे चलकर उर्दू या हिन्दुस्तानी कहलायी। दक्षिण में वह "तुर्क" भाषा भी कहलाती थी। उसी काल में दक्षिण में फारसी की पढ़ाई की व्यवस्था भी की गयी थी। इस सम्बन्ध में आन्ध्र के नेता स्व० देशभक्त कोंडा वेंकटप्पय्या जी ने अपने आत्मचरित में यों लिखा है :—

"उस ज़माने में (सन् १८६०–'८०) फारसी के नाम से बच्चों को उर्दू पढ़ाई जाती थी। इस कारण फारसी के विद्वान हमारे प्रान्त में हुआ करते थे।"[1]

अंग्रेज़ी का आधिपत्य—

अंग्रेज़ शासकों ने अपने शासन को सुस्थायी और सुदृढ़ बनाने के लिए भारत में अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार किया। यह मानी हुई बात है कि विजित देश पर विजेता लोगों का आधिपत्य सुस्थिर बनाने के लिए सबसे पहले वे अपनी भाषा और सभ्यता का प्रचार करना आवश्यक समझते हैं। अंग्रेज़ों ने भी वही किया। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के साथ-साथ अंग्रेज़ी वेश-भूषा, अंग्रेज़ी रंग-ढंग और अंग्रेज़ी विचार-धारा का प्रयोग किया। इसमें उनको सम्पूर्ण सफलता मिली। अंग्रेज़ी का प्रचार

---

१. 'सत्यनारायण अभिनन्दन ग्रन्थ' (हिन्दी प्रचार का इतिहास) (आन्ध्र)। पृष्ठ १

तेजी से बढ़ा। अंग्रेज़ी सभ्यता से लोग प्रभावित हुए। वे अपने ही देश के लोगों से अंग्रेज़ी में बातें करने में अभिमान का अनुभव करने लगे। आज भी वही 'आत्मा की पराधीनता', यानी परम्परागत दासत्व-मनोवृत्ति अंग्रेज़ी शिक्षित जन-समाज में देख सकते हैं।

लार्ड मेकाले का मधुर स्वप्न—

अंग्रेज़ों के मधुर स्वप्न को सफल बनाने का प्रयत्न भारतीयों ने उनसे भी बढ़ कर किया। क्योंकि अपने मालिक को खुश करने के लिए गुलामों के लिए यह आवश्यक ही था। अंग्रेज़ी के माध्यम से ही अंग्रेज़ों ने इस विशाल देश पर अपना सिक्का जमाया। सन् १८८३ में लिखे लार्ड मेकाले की रिपोर्ट से हमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार उन्होंने हमें गुलाम बनाये रखने के लिए ही किया था। उनकी सलाह यह थी—"हमें चाहिए कि एक ऐसी जाति का निर्माण करें, जो हमारी लाखों प्रजा के बीच दुभाषिये का काम करे अर्थात् अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों का एक ऐसा वर्ग बन जाय जो खून और रंग में भारतीय रहे, किन्तु रुचि, विचार, नैतिक दृष्टि और बुद्धि में पूरा अंग्रेज़ हो जाय।"

भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा के पीछे उनकी क्या कल्पना थी या उनका क्या स्वप्न था, इसका पता उपर्युक्त उद्धरण से हमें भली-भाँति लग सकता है। वास्तव में लार्ड मेकाले साहब का मनोरथ पूरा हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव भारतीय जन-जीवन के सभी पहलुओं पर पड़ा। आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में आज भी हम उसकी अमिट छाप देख सकते हैं।

राष्ट्रीय चेतना और स्वदेशी-भावना—

दक्षिण आफ्रिका से स्वदेश लौटने पर गाँधी जी ने भारत की स्थिति-गति का गहरा अध्ययन किया। वर्षों की दासता में पड़ी हुई छत्तीस करोड़ भारतीय जनता की दुर्दशा के मर्मभेदी दृश्य एक-एक कर के उनकी आँखों के सामने फिरे। इन पददलित पीड़ित तथा निस्तेज आत्माओं में उन्होंने अपनी ही आत्मा की पीड़ा का अनुभव किया। देश की रूढ़ि-ग्रस्त सामाजिक एवं आर्थिक रीति-नीति भी देश के उत्कर्ष में उन्हें बाधाजनक मालूम पड़ी। उनकी पैनी दृष्टि जहाँ अतीत और वर्तमान की गहराई तक जा कर देश की सर्वांगीण शिथिलता के मूल कारणों को ढूँढ़ निकालने में समर्थ थी, वहाँ अन्धकारपूर्ण भविष्य की अनन्तता को मापते हुए बहुत दूर तक जा कर भारत के लिए एक उज्ज्वल भविष्य की रूप-रेखा तैयार करने में भी समर्थ थी। उन्होंने देश का पुनरुत्थान करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। परन्तु यहाँ की सड़ी-गली सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को सुधारे बिना देश के नव-निर्माण का कार्य उन्हें अत्यन्त दुष्कर प्रतीत हुआ।

राजनीतिक पराधीनता—

राजनीतिक पराधीनता के कारण विदेशी सरकार की कठोर शोषण-नीति के शिकार बने हुए करोड़ों देशवासियों के नवोत्थान की बात उन्हें तभी संभव प्रतीत हुई जब कि भारत संपूर्णतः पराधीनता के अभिशाप से मुक्त हो जाय। उन्हें यह भी मालूम हुआ कि भारतवासी न केवल अपने भौतिक जीवन में ही पराधीन हैं, वरन् अपने आध्यात्मिक जीवन में भी सर्वथा परतंत्र हैं। भारत के शिक्षित वर्ग की वेश-भूषा, रहन-सहन और आचार-विचार में उन्होंने अंग्रेज़ी सभ्यता का रंग चढ़ा हुआ पाया।

आत्मा की पराधीनता—

गाँधी जी ने यह भी अनुभव किया कि भारतीय जनता के हृदय में आत्म-गौरव की भावना का स्रोत बिलकुल सूखा हुआ है। अतः वह अपने हृद्गत-भावों के आदान-प्रदान में भी अपने 'प्रभु' की भाषा का सहारा ले रही है। इससे उनको बड़ी व्यथा हुई। उनके विचार में आत्मा की यह पराधीनता अन्य सब पराधीनताओं की जड़ है। इसी विचार-धारा ने उनके हृदय में स्वदेशी भावना को जन्म दिया। भारत के स्वाधीनता-संग्राम के मूल में हम उनकी इसी स्वदेशी भावना की प्रेरक-शक्ति देख सकते हैं। उनकी रचनात्मक कार्य-प्रणाली इस स्वदेशी भावना की उपज है।

हिन्दी प्रचार-संस्था—

खादी-प्रचार, ग्राम-सुधार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, विदेशी-वस्तु-निषेध, मादक द्रव्यवर्जन, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रभाषा-प्रचार, हिन्दू-मुसलिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण आदि इस रचनात्मक कार्यपद्धति के प्रमुख अंग बने। इस पद्धति को सुगम, सुसंगठित तथा सुस्थायी रूप से कार्यान्वित करने के लिए गांधीजी ने कई संस्थाएँ खोलीं। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा भी उनमें से एक है।

स्वदेशी की व्याख्या—

गाँधी जी के विचार में स्वदेशी की भावना प्रतिशोध अथवा विरोध की परिचायक मनोवृत्ति नहीं है। उन्होंने स्वदेश की व्याख्या बहुत ही व्यापक ढंग से की है। उनके मत में स्वदेशी भावना वही है जिससे प्रेरित होकर जहाँ तक संभव हो, मनुष्य स्वावलम्बी बने। उनका कथन है कि मनुष्य में अपने धर्म, अपनी भाषा तथा अपनी वेश-भूषा में अटल रहने की आत्मचेतना इस स्वदेशी भावना से ही उत्पन्न हो सकती है। इसलिए वे बार-बार कहते थे कि जब तक भारत में स्वदेशी संस्कृति की आधार-शिला सुदृढ़ नहीं होगी तब तक सच्चे अर्थ में यहाँ न तो स्वदेशी का प्रचार होगा और न यहाँ के राष्ट्रीय जीवन के नव-निर्माण में सुगमता प्राप्त होगी।

यही कारण है कि उन्होंने स्वदेशी-आन्दोलन में देश-भाषा, स्वदेशीय शिक्षा आदि को सबसे अधिक महत्व दिया है। भारत की वर्तमान पंचवर्षीय योजना के मूल में गाँधी जी की इस रचनात्मक स्वदेशी भावना की प्रेरणा प्रकट हुई है।

राष्ट्रीय शिक्षा—

गाँधी जी ने राष्ट्र के नव-निर्माण के लिए स्वदेशीव्रत को जितना महत्व दिया, उतना ही राष्ट्रीय शिक्षा को भी दिया था। उनका दृढ़ विश्वास था कि अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली भारतवासियों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। उसमें अंग्रेज़ों की स्वार्थ-सिद्धि की गूढ़तम भावना छिपी हुई उन्हें देख पड़ी। अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा का उन्होंने यह भी बुरा प्रभाव देखा कि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे, उच्च शिक्षित कहलाने वाले लोग अपने देश के पूर्व गौरव, इतिहास आदि के सम्बन्ध में या तो बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं या जानते हुए भी उनके प्रति अवज्ञा का भाव रखते हैं। भारत के राजनीतिक क्षेत्र में गाँधी जी के पदार्पण करने से पूर्व देश के इने-गिने नेताओं ने भी अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली को देश के लिए अनुपयुक्त बताया था और उसके विरोध में आवाज भी उठायी थी। परन्तु तब 'नक्कारखाने में तूती की आवाज़' कौन सुनता ?

सन् १९२० में जब गाँधी जी ने असहयोग-आन्दोलन आरंभ किया तो काँग्रेस के कार्य-क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा को भी समुचित स्थान दिया गया। वे राष्ट्रीय शिक्षा को कोरे आन्दोलन का रूप नहीं देना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि राष्ट्रीय शिक्षा पाने वालों में आत्मगौरव और स्वावलंबन का भाव पैदा हो और वे राष्ट्र के कल्याण के लिए आत्मत्याग करने वाले आदर्श सेवक बनें। उन दिनों असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप, जो हजारों विद्यार्थी स्कूल-कालेज छोड़ कर बाहर आते थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था करना उन्हें अत्यन्त आवश्यक मालूम हुआ।

राष्ट्रीय विद्यालय—

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जगह-जगह पर विद्यालय खोले गये। ये संस्थाएँ सरकारी नियंत्रण से सर्वथा स्वतंत्र थीं। इनमें देशी भाषा के माध्यम से पढ़ाई की व्यवस्था की गयी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इतिहास, राजनीति आदि पढ़ाने पर जोर दिया गया। विद्यार्थियों की सादगी और सच्चरित्रता पर विशेष ध्यान रखा गया। काम पड़ने पर विद्यार्थियों को अपने अध्यापकों के साथ राजनीति के आन्दोलन में भाग लेने की आज़ादी दी गयी। इन संस्थाओं के अध्यापकों और विद्यार्थियों का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ बना। उनका अनुशासन भी बहुत ही संतोषजनक रहा। असहयोग आन्दोलन के बन्द हो जाने पर इन संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम हो गयी। अतः कुछ संस्थाएँ बन्द हो गयीं। और अपने आदर्श को सामने रखते हुए आगे भी वर्षों तक चलती रहीं। राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में

काँग्रेस के इतिहास में यों लिखा है :—"हाँ, राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अलबत्ता आशातीत सफलता दिखाई पड़ी। गाँधी जी ने देश के नौजवानों से अपील की थी और उसका जवाब उनकी ओर से उत्साह के साथ मिला, यह काम महज़ बहिष्कार तक ही सीमित न था। राष्ट्रीय विद्यापीठ, राष्ट्रीय कालेज और राष्ट्रीय विद्यालय जगह-जगह खोले गये।........इस तरह चार महीनों के भीतर राष्ट्रीय मुसलिम विद्यापीठ, अलीगढ़, गुजरात विद्यापीठ, बिहार-विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, और एक बड़ी तादाद में राष्ट्रीय स्कूल देश में चारों ओर खुल गये। हजारों विद्यार्थी उनमें आये। राष्ट्रीय शिक्षा को जो देश में प्रोत्साहन मिल रहा था, उसका यह फल था"—[1]

राष्ट्रीय शिक्षा में मातृ-भाषा और राष्ट्र-भाषा का स्थान—

राष्ट्रीय शिक्षा में मातृ-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के स्थान के संबंध में गाँधी जी के विचार बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक प्रादेशिक भाषा को यथोचित महत्व देते हुए समूचे देश के लिए एक राष्ट्र-भाषा या देश-भाषा की आवश्यकता पर उन्होंने ज़ोर दिया। लेकिन वे भली-भाँति जानते थे कि अंग्रेज़ सरकार न तो देश के लिए देश-भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में विकसित करना पसंद करेगी और न प्रादेशिक भाषाओं का विकास होने देगी। प्रान्तीय भाषाओं का गला घोंटनेवाली इस सरकारी नीति से गाँधी जी बहुत ही चिन्तित हुए।

भारत की राष्ट्रभाषा—

गाँधी जी की हार्दिक अभिलाषा थी कि समस्त देश के लिए भारत में सबसे अधिक प्रचलित भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो। लिपि की समस्या पर उन्होंने हठ-धर्मी नहीं दिखाई। उनका विचार था कि हिन्दू और मुसलमानों को किसी भी लिपि (नागरी या उर्दू) में लिखने की छूट दी जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में उन्होंने सन् १९०९ में ही अपने विचार अपनी हिन्द स्वराज्य नामक पुस्तक में यों प्रकट किये थे।

उर्दू या नागरी लिपि—

"सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू-मुसलमानों के विचारों को ठीक रखने के लिए बहुतेरे हिन्दुस्तानियों का दोनों लिपियाँ जानना जरूरी है।"[2]

हिन्दी-उर्दू-एक ही भाषा—

गाँधी जी के विचारों में उर्दू और हिन्दी एक ही भाषा के दो नाम हैं। हिन्दी

---

१. काँग्रेस का इतिहास भाग ३ पृष्ठ—१०२ (असहयोग पूरे ज़ोरों में १९२१)

२. हिन्द स्वराज १९०९ पृष्ठ १२४।

और उर्दू को अलग भाषाएँ माननेवालों की दलीलों को वे वास्तविक नहीं मानते थे, यदि मानते भी थे तो उस समस्या पर उन्होंने उन दिनों बड़ी गम्भीरता के साथ विचार करना आवश्यक नहीं समझा।

सन् १९१७ में भड़ौंच में हुई दूसरी 'गुजरात शिक्षा परिषद' की बैठक में सभापति पद से दिये गये भाषण का अंश जो यहाँ उद्धृत है, इसका स्पष्ट प्रमाण है।

"हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ, जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और जो देवनागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है"।[1]

गाँधी जी ने स्वयं यह बात स्वीकार भी की थी कि उनकी उपर्युक्त व्याख्या का कुछ विरोध हुआ है। नीचे के उद्धृत अंश से यह बात प्रकट हो सकती है।

"इस व्याख्या के खिलाफ थोड़ा विरोध पाया गया है।"[2]

फिर भी गाँधी जी ने उर्दू और हिन्दी को एक ही भाषा मान कर उसी को राष्ट्रभाषा बनाने पर जोर दिया। हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग माननेवालों की दलीलों का खंडन करते हुए उन्होंने उस भाषण में यों कहा था—

"दलील यह की जाती है कि हिन्दी और उर्दू दो अलग भाषाएँ हैं। यह दलील वास्तविक नहीं है। 'हिन्दुस्तान के उत्तरी हिस्से में मुसलमान और हिन्दू दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। भेद सिर्फ पढ़े-लिखों ने पैदा किया है। यानी पढ़े-लिखे हिन्दू हिन्दी को केवल संस्कृतमय बना डालते हैं। नतीजा यह होता है कि कई मुसलमान उसे समझ नहीं पाते। मुसलमान भाई फारसीमय उर्दू बोल कर उसे ऐसी शक्ल दे देते हैं कि हिन्दू समझ न सकें। ये दोनों पर-भाषा हैं और आम जनता के बीच इनको कोई जगह नहीं। मैं उत्तर में रहा हूँ, हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ खूब मिला हूँ, हिन्दी भाषा का मेरा अपना ज्ञान बहुत कम होने पर भी उनके साथ व्यवहार करने में मुझे जरा भी अड़चन नहीं हुई है। उत्तरी हिन्दुस्तान में जिस भाषा को वहाँ का जन-समाज बोलता है, उसे आप चाहे उर्दू कहें, चाहे हिन्दी, बात एक ही है। उर्दू लिपि में लिख कर उसे उर्दू के नाम से पहचानिये और उन्हीं वाक्यों को नागरी में लिख कर उसे हिन्दी ही लीजिये।"[3]

ऊपर के उद्धरण से हम समझ सकते हैं कि गाँधी जी हिन्दी की किसी भी शैली का समर्थन नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि देश की अधिकांश जनता जिस भाषा का व्यवहार करती है वही देश की राष्ट्र-भाषा बनने की योग्यता रखती है। उनको इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था कि उत्तर भारत की अधिकांश जनता हिन्दी

---

१. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी।

२. " " पृष्ठ ५—६०।

३. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृष्ठ ५—६।

बोलती और समझती है, अतएव हिन्दी एक प्रकार से राष्ट्र-भाषा के रूप में वहाँ की जनता में व्यवहृत हो चुकी है। लेकिन दक्षिण की समस्या ही उन्हें अधिक जटिल मालूम हुई। उनका विश्वास था कि जब तक दक्षिण के द्राविड़-भाषा भाषी हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेंगे तब तक देश की राष्ट्रभाषा की समस्या हल नहीं हो सकेगी। इसी विचार से प्रेरित हो कर उन्होंने दक्षिण में हिन्दी प्रचार का नेतृत्व ग्रहण किया था।

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा माननेवाले आदि मनीषी

राजा राममोहन राय—

राष्ट्रभाषा हिन्दी के द्वारा देश की जनता को एक सूत्र में बाँधने की कल्पना गाँधी जी के पहले इने-गिने भारतीय नेताओं और महान सुधारकों के मन में उठी थी। पहले पहल स्व० राजा राममोहन राय ने जिनकी मातृभाषा बंगला थी, यह आशा प्रकट की थी कि कोई एक भारतीय भाषा विकसित हो, जो आसेतु हिमाचल फैले हुए भारतीय राष्ट्र की उमंगों और अभिलाषाओं को व्यक्त करने का साधन बने। सन् १८२६ से वे अपने पत्र 'बंगदूत' में जो हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला और फारसी में छपता था स्वयं हिन्दी में भी लिखते थे और दूसरों को प्रोत्साहित भी करते थे।

महर्षि दयानंद सरस्वती—

आर्यसमाज के संस्थापक तथा देश के महान सुधारक महर्षि दयानंद सरस्वती ने भी जिनकी मातृभाषा गुजराती थी, भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव किया था। उन्होंने स्वयं हिन्दी पढ़ी और सबसे पहला व्याख्यान सन् १८७४ में काशी में दिया था। स्वामीजी ने स्वरचित अधिकांश ग्रन्थों में हिन्दी का ही उपयोग किया है। अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "सत्यार्थ प्रकाश" उन्होंने हिन्दी में ही लिखी।

'हिन्दी प्रचारक' १९३९ के अंक के राष्ट्रभाषा हिन्दी का दिव्य सन्देश शीर्षक में स्वामी सत्यदेव जी ने एक लेख लिखा था। स्वामी जी के इस लेख से स्पष्ट है कि आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ही महात्मा गाँधी जी के पूर्व आसेतु हिमाचल की भारतीय जनता को एक राष्ट्र-भाषा के सूत्र में बाँधने का स्वप्न देखा था और उसे सफल बनाने के लिए आर्य-भाषा हिन्दी का प्रचार भी आरम्भ कर दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती की मातृ-भाषा गुजराती थी। फिर भी उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के योग्य समझ कर अपने धार्मिक ग्रन्थों की रचना हिन्दी में ही की।

श्री सत्यदेव जी ने इस लेख में भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन, आर्थिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति पर प्रकाश डाला है और देश की जनता को

एक माध्यम में न पिरोये जाने पर भविष्य में होनेवाली स्थिति-गति का ही दिग्दर्शन कराया है। उनके विचार यों हैं :—

"सत्तर वर्ष हुए एक लंगोट-बंद गुजराती भाषा-भाषी संन्यासी ने स्वराज्य का स्वर्गीय स्वप्न देखा था। उस स्वप्न को देखकर वह विस्मित हो उठा। 'किस प्रकार मेरा स्वप्न पूरा होगा'—यह भावना उसके हृदय में उठी। हिमाचल से कन्याकुमारी तक और पेशावर से बर्मा तक फैला हुआ यह विशाल भूखंड एकता के सूत्र में बाँधे बिना क्या कभी स्वराज्य प्राप्त कर सकता है? कदापि नहीं। तो किस प्रकार इस एकता के प्रेम-बन्धन में बाँधना चाहिए? इसी प्रश्न को लेकर वह विरक्त श्रीभागीरथी के किनारे विचरने लगा। श्रीगंगा जी की लहरें उसे अपना सन्देश सुनाने लगीं और उस पवित्र नदी के किनारे पर रहनेवाले लोगों की भाषा उसके अन्तःकरण को मुदित करने लगी। उसे अपने प्रश्न का हल मिल गया और उसने जान लिया कि इसी भाषा के द्वारा उसका प्यारा देश दासता की जंजीरों से मुक्त हो सकता है।

वह गम्भीरता से विचार करने लगा और अपने भावी प्रोग्राम के प्रत्येक पहलू पर उसने गहरी दृष्टि डाली। इस हिन्दी के द्वारा सारा भारत एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। हिन्दू तो इसके झंडे के नीचे आ ही जायेंगे; मुसलमानों के लिए भी इसका अपनाना आसान होगा, क्योंकि उर्दू भाषा का सारा ढाँचा हिन्दी का रूप ही लिए हुए है।

"इस प्रकार उसने सबसे पहले अपनी मातृ-भाषा को एक तरफ रखकर देश की राष्ट्र-भाषा का आलिंगन किया और अपने धार्मिक ग्रन्थ राष्ट्र-भाषा हिन्दी में लिखे। यहीं से हिन्दी का दिव्य सन्देश प्रारम्भ हुआ।"[१]

गुरुकुलों में हिन्दी की शिक्षा—

स्वामी जी ने हिन्दी को आर्य-भाषा और हिन्दी की लिपि का नाम देवनागरी कहा है। गुरुकुलों में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था करने का श्रेय आपको दिया गया है। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानकर उसका प्रचार धार्मिक क्षेत्र में करनेवाले सर्वप्रथम महान धार्मिक सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती ही थे।

श्री केशवचन्द्र सेन—

बंगाल के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में श्री केशवचन्द्र सेन सुविख्यात हो गये हैं। उन्होंने सन् १८७५ में भारत की एकता के लिए एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता का अनुभव किया था और राष्ट्र-भाषा के पद के लिए हिन्दी को

---

१. हिन्दी प्रचारक १९३९।

ही उपयुक्त माना था। लगभग १० वर्ष पहले उन्होंने इस सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये थे वे उसके स्पष्ट प्रमाण हैं :—

"यदि एक भाषा के न होने के कारण भारत में एकता नहीं होती है तो और चारा ही क्या है ? तब सारे भारतवर्ष में एक ही भाषा का व्यवहार करना ही एकमात्र उपाय है। अभी कितनी ही भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी भाषा ही सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिन्दी को भारतवर्ष की एक मात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज ही में यह (एकता) संपन्न हो सकती है। किन्तु राज्य की सहायता के बिना यह कभी भी संभव नहीं है। अभी अंग्रेज़ हमारे राजा हैं, वे इस प्रस्ताव से सहमत होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। भारतवासियों के बीच फिर फूट नहीं रहेगी, वे परस्पर एक हृदय हो जाएँगे आदि सोचकर शायद अंग्रेज़ों के मन में भय होगा। उनका ख्याल है कि भारतीयों में फूट न होने पर ब्रिटिश साम्राज्य भी स्थिर नहीं रह सकेगा।"[1]

श्री भूदेव मुखर्जी—

करीब ७० वर्ष पूर्व बंगाल के सुप्रसिद्ध नेता स्व० श्री भूदेव मुखर्जी ने हिन्दी-हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा माना था और अपने तत्संबन्धी विचार उन्होंने यों प्रकट किये थे—"भारत की प्रचलित भाषाओं में हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही प्रधान है, एवं मुसलमानों की कृपा से वह सारे देश में व्याप्त है। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि इसी का (हिन्दी का) अवलंबन कर किसी सुदूर भविष्य में सारे भारतवर्ष की भाषा सम्मिलित रह सकेगी।"[2]

महात्मा हंसराज—

आर्यसमाज के प्रभावशाली नेताओं में महात्मा हंसराज का स्थान सबसे ऊँचा है। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएँ विशेष महत्व की रही हैं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में वे हमेशा दत्तचित्त रहे। उनके सम्बन्ध में डा० ज्ञानवती दरबार ने अपनी 'भारतीय नेताओं की हिन्दी-सेवा' नामक पुस्तक में यों लिखा है :—

"जीवन भर उनका कार्यक्षेत्र शिक्षा रहा और इस दीर्घ अवधि में उन्होंने सदा हिन्दी को अपने कार्यक्रम में उच्च स्थान दिया। जिन उद्देश्यों को सामने रख कर सन् १८८५ में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना हुई, उसमें हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन देना और हिन्दी-साहित्य को समृद्ध करने की प्रेरणा देना भी सम्मिलित थे। इन संस्थाओं के प्रमुख अधिकारी होने के नाते महात्मा हंसराज ने समाज के

---

१. हिन्दी ही क्यों—कमला देवी गर्ग, एम. ए. पृष्ठ—२।

२. हिन्दी ही क्यों—कमला देवी गर्ग एम. ए.—पृष्ठ—३।

इस नियम का अक्षरशः पालन किया। उन्होंने स्वयं हिन्दी सीखी और दूसरों को सिखाने की लगन सदा उनमें रही। उन्होंने डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए हिन्दी पढ़ना अनिवार्य कर दिया······।

"आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहित करने के सम्बन्ध में पंजाब विश्वविद्यालय ने जो नियम बनाये, जिनके अनुसार रत्न, भूषण, प्रभाकर इत्यादि परीक्षाओं की व्यवस्था की गयी, उस नियम को सेनेट द्वारा स्वीकृत कराने में महात्मा हंसराज तथा लाला लाजपतराय का बड़ा हाथ था। इन परीक्षाओं के कारण प्रतिवर्ष हजारों लोग हिन्दी पढ़ने लगे।"[1]

स्वामी श्रद्धानन्द—

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानकर उसके सर्वव्यापक प्रचार के लिए प्रयत्न करनेवाले महान तपस्वी थे, स्वामी श्रद्धानन्द। गाँधीजी के साथ उनकी अभिन्न मित्रता थी। भारत के राजनैतिक आन्दोलन में सन् १८८८ से पहले ही वे भाग लेने लगे थे। सन् १९१९ में अमृतसर-कांग्रेस के अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने हिन्दी में जो भाषण दिया था, वह महात्मा गाँधी जी के लिए भी स्फूर्तिदायक था। क्योंकि कांग्रेस के मंच से हिन्दी का यह सर्वप्रथम ऐतिहासिक भाषण था।

उनके उस भाषण पर प्रकाश डालते हुए डा० ज्ञानवती दरबार यों लिखती हैं:—

"तत्कालीन परिस्थितियों में, जिनका रूप अंग्रेजी भाषा की प्रधानता के कारण आज भी बहुत नहीं बदला है, हिन्दी का यह भाषण, भाषा की दृष्टि से तो नहीं, स्वामी जी के क्रान्तिकारी साहस की दृष्टि से युगांतरकारी महत्व रखता है।

इस प्रकार से उन्होंने गाँधी जी का भी ध्यान अपने हिन्दी-प्रेम तथा राष्ट्र-भाषा के महत्व की ओर दिलाया और गाँधी जी के अंग्रेज़ी पत्र का उत्तर हिन्दी में दिया, जिसके फलस्वरूप गाँधी जी ने उनके साथ के पत्र-व्यवहार, वार्तालाप इत्यादि में सदा हिन्दी का ही प्रयोग किया।"[2]

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक—

भारत के महान नेता लोक-मान्य तिलक ने सन् १९१७ के बाद महात्मा गाँधी जी की प्रेरणा से हिन्दी सीखी और उसके बाद अक्सर सार्वजनिक सम्मेलनों में हिन्दी में भाषण देते थे। वे पहिले ही से हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा बनने योग्य समझते थे, और अहिन्दी प्रान्तों में भी उसका शीघ्रातिशीघ्र प्रचार एवं प्रसार चाहते थे।

---

१. डा० ज्ञानवती दरबार—"भारतीय नेताओं की हिन्दी-सेवा" पृष्ठ १००।
२. डा० ज्ञानवती दरबार—"भारतीय नेताओं की हिन्दी सेवा" पृष्ठ ११३।

पं० मदनमोहन मालवीय—

भारत के राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में मालवीय जी की देन अमर है। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना (१९१७) के बाद उसके द्वारा हिन्दी के प्रसार एवं श्री वृद्धि में जो सहायता पहुँची, उसका मूल्य शब्दों में आंका नहीं जा सकता। उनकी हिन्दी सेवा के सम्बन्ध में डा० ज्ञानवती दरबार यों लिखती हैं :—

"हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाओं की स्थापना द्वारा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अन्य शिक्षण-केन्द्रों के निर्माण द्वारा और सार्वजनिक रूप से हिन्दी आन्दोलन का नेतृत्व कर उसे सरकारी दफ्तरों में स्वीकृत करा के मालवीय जी ने हिन्दी की सेवा की, उसे साधारण नहीं कहा जा सकता। उनके प्रयत्नों से हिन्दी को यश, विस्तार और उच्च पद मिला।"[१]

श्री कृष्ण स्वामि अय्यर—

सन् १९१० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की एक बैठक में भाषण देते हुए दक्षिण के सुप्रसिद्ध नेता स्व० वी० कृष्णस्वामी अय्यर (भूतपूर्व जज, मद्रास हाईकोर्ट) ने कहा था कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र-भाषा बनने की पर्याप्त योग्यता रखती है। ('दक्षिण में हिन्दी का प्रवेश' शीर्षक विवरण में श्री कृष्णस्वामि अय्यर का विशेष उल्लेख किया गया है)।

हिन्दी की सर्व व्यापकता—

यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि हिन्दी के आदि समर्थक राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, भूदेव मुखर्जी, महात्मा हंसराज, लोकमान्य तिलक, श्री कृष्णस्वामी अय्यर, महात्मा गाँधी आदि नेताओं में किसी की भी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं थी। तब वर्षों पूर्व इन्होंने हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा के पद के लिए सर्वथा क्यों योग्य समझा था? इसका उत्तर स्पष्ट है। हिन्दी की सर्व व्यापकता ही उसका मुख्य कारण था। उनकी दृष्टि में हिन्दी ही भारत के समस्त जनों को एक ही सूत्र में बाँधने वाली, उनकी एकता की प्रतीक स्वरूप थी।

दक्षिण में हिन्दी का प्रवेश—

दक्षिण में हिन्दी-प्रचार-सभा के स्थापित होने से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही दक्षिण की साधारण जनता में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का बीजारोपण हुआ था। 'हिन्दी प्रचार के कुछ संस्मरण' नामक लेख में हिन्दी-प्रचार-सभा के बुजुर्ग कार्यकर्ता पं. क. म. शिवराम शर्मा जी ने इसका स्पष्टीकरण किया है। इस लेख का नीचे उद्धृत अंश प्रामाणिक

१. डा० ज्ञानवती दरबार—"भारतीय नेताओं की हिन्दी-सेवा" पृष्ठ—१८२।

तथा मनोरंजक है, साथ ही इसमें सैकड़ों वर्ष पहले ही से चली आनेवाली वहाँ की हिन्दी शैली के विकृत रूप का भी थोड़ा आभास हमें मिलता है।

"लेकिन कहना चाहिए कि हिन्दी का प्रवेश दक्षिण भारत में मुसलमानों के साथ ही हुआ। आज भी अनेकों दक्षिण भारतीयों का ख्याल है कि 'हिन्दुस्तानी' एक मुसलमानी भाषा है जिस पर संस्कृत का रंग चढ़ा कर 'हिन्दी' नामक नयी भाषा बनायी जा रही है। सन् १९२६ या १९२४ की बात है। मैं तंजाउर गया था। वहाँ अपने एक पुराने मित्र से मिला। कुशल प्रश्न के बाद मैंने मित्र से पूछा कि क्यों भाई तुम्हें हिन्दी मालूम है? उसने जवाब दिया, "मुसलमान की बाषा मुषुदुम आता नै। बन्दतुकु बोले तो सोचतुकु अल्ला है।

मेरा मित्र काफी पढ़ा-लिखा था और 'कलचर्ड' भी था। उसका ख्याल था कि 'आता नै' जिस भाषा में है वह 'मुसलमान की 'बाषा' है और हिन्दी भी वही है। वह हमको 'मुषुदुम' (पूरा) मालूम नहीं था। 'बन्दतुकु बोले तो' (जितना उसको मालूम है उतना बोल दिया तो) 'सोचतुकु' (बाकी के लिए) अल्लाह था। कहने का मतलब यह कि जब उत्तर भारत से मुसलमान दक्षिण में आये तब उनके साथ-साथ उस समय की प्रचलित भाषा 'हिन्दुस्तानी' का भी यहाँ प्रवेश हुआ। चूँकि यह भाषा मुसलिम शासकों के साथ यहाँ आयी इसलिए लोगों ने सोचा कि यह मुसलमान की 'बाषा' है। अब भी 'आरकाट' की तरफ के बड़े-बड़े घराने के लोग अपनी बड़ाई करते हुए यह भी कहते हैं कि हमारे बाप-दादे हाथी-घोड़े पालते थे, और हिन्दुस्तानी सीखते थे। इससे साफ मालूम पड़ता है कि हाथी-घोड़े पालना जिस प्रकार बड़ाई की बात है वैसे ही हिन्दुस्तानी सीखना भी बड़ाई की बात है।"

दक्षिण में हिन्दुस्तानी का प्रवेश—

"मुसलमानों के अलावा महाराष्ट्रों का भी दक्षिण में आना हुआ। उनके साथ भी कई हिन्दी बोलनेवाले आये होंगे। महाराष्ट्रों ने भी दक्षिणवासियों से 'हिन्दी' भाषा के द्वारा ही व्यवहार किया होगा। इस तरह हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रवेश और प्रचार दक्षिण भारत में सैकड़ों वर्ष पहले हो चुका था।

देश में जब जागृति पैदा हुई तब लोगों में सारे हिन्दुस्तान के एकीकरण का विचार भी पैदा हुआ। लेकिन एक ही देश के रहनेवाले होकर भी उत्तर के रहने वाले दक्षिणवासियों के लिए 'विदेशी' से मालूम हुए, न उनकी भाषा ये जानें, न इनकी भाषा वे। इसलिए लोग महसूस करने लगे कि जब तक यह विभिन्नता दोनों के बीच में रहेगी, तब तक हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं हो सकता। अर्थात् राष्ट्र-भाषा के बिना राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता।"

राष्ट्र-भाषा की कल्पना का श्रेय—

"यह ख्याल, मुमकिन है, पहले ही नेताओं के मन में आया हो। मगर जहाँ तक मैं जानता हूँ ऐसा विचार पहले पहल स्व० श्री वी० कृष्णस्वामी अय्यर (भूतपूर्व जज, मद्रास हाईकोर्ट) ने काशी में प्रकट किया था। सन् १९११ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा का कोई जलसा था जिसमें उक्त कृष्णस्वामी अय्यर जी और रामनाथ पुरम् के राजा स्व० राजेश्वर सेतुपति हाज़िर थे। उस जलसे में श्री कृष्णस्वामी अय्यर[1] का इस आशय का भाषण हुआ। स्वर्गीय राजेश्वर राजा साहब मुझसे बार-बार कहा करते थे, 'अजी, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता समझने का श्रेय तुम लोगों को नहीं, मुझे और मेरे मित्र कृष्णस्वामी अय्यर को मिलना चाहिए।' मैं उनसे कहता कि श्रेय तो आपका अवश्य ही है, पर उस आवश्यकता की पूर्ति के लिये तो एक गाँधी जी की जरूरत हुई, आप लोगों ने तो कुछ किया नहीं।"[2]

राष्ट्र-भाषा हिन्दी की महत्ता

सुप्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् गार्सा द तासी के विचार—

सन् १७५० में सुप्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् गार्सा द तासी ने हिन्दी के अर्थ में 'हिन्दवी' तथा भाषा (भाखा) शब्द का प्रयोग किया था। उन्होंने उसे भारत की आम भाषा (सामान्य भाषा) माना था। स्व० पद्मसिंह शर्मा ने गार्सा द तासी के भाषण का उद्धरण देते हुए 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' नामक पुस्तक हिन्दुस्तानी एकेडेमी के लिए लिखी है। उसीका उद्धरण नीचे दिया जाता है। पाठक समझ सकते हैं कि फ्रेंच विद्वान् के विचार में देश भर की प्रचलित भाषा हिन्दी ही थी।

---

१. स्व० श्री वी० कृष्णस्वामी अय्यर ने १९१० में (मद्रास में हिन्दी प्रचार आन्दोलन का आरम्भ सन् १९१८ में होने से पूर्व—१० वर्ष पूर्व ही) हिन्दी पढ़ना शुरू किया था। ट्रिवेंड्रम (ट्रावनकोर) में हिन्दी प्रचार सभा की शाखा समिति के उद्घाटन के अवसर पर (ता० ४—६—१९३२) सभा के प्रधान मन्त्री पं० हरिहर शर्मा ने इस सम्बन्ध में यों कहा था—

"करीब २० वर्ष पहले (याने सन् १९१० के करीब) मद्रास हाई-कोर्ट के भूतपूर्व जज श्री वी० कृष्णस्वामी अय्यर ने मद्रास में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता का अनुभव किया और आपने कुछ मित्रों के साथ हिन्दी पढ़ना भी शुरू किया था। पर मद्रास में हिन्दी प्रचार (आन्दोलन) का आरम्भ सन् १९१८ में महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में सुसंगठित रूप में हुआ।"

२. हिन्दी प्रचारक—जून १९३२, पृ० १९२।

"मैंने तहरीर के लिए यह जबान अख्तियार की है, जो हिन्दुस्तान के तमाम सूबों की जबान है, यानी 'हिन्दवी' जिसे 'भाखा' कहते हैं। क्योंकि इसे आम लोग बखूबी समझते हैं और बड़े तबके के लोग (भद्र व्यक्ति) भी पसन्द करते हैं।"[१]

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचार—

विश्व कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी मातृभाषा बंगला के अनन्य प्रेमी होते हुए भी देश की शुभ कामना से प्रेरित होकर हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने योग्य समझते थे। वे अपने गुजरात-भ्रमण में हिन्दी में भाषण दिया करते थे। इसका उल्लेख डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के 'कराची-साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशन के भाषण में मिलता है।

"गुरुदेव (श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर) से एक बार पूछा गया कि राष्ट्रभाषा के विषय में उनकी क्या राय है? उन्होंने कहा कि बहुत वर्षों से तो अंग्रेजी ही हमारी राष्ट्रभाषा बनी हुई है, जो साधारण जनता की समझ के बिलकुल बाहर है। अगर हम भारतीयों के नैसर्गिक अधिकारों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो हमें उस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े हिस्सों में बोली जाती है और जिसके स्वीकार करने की सिफारिश महात्मा जी ने की है अर्थात हिन्दी।"[२]

श्री सुभाषचन्द्र बोस के विचार—

भारत के सच्चे सपूत, स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी नेता स्व० श्री सुभाषचन्द्र बोस ने हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा मान कर उसका ज़बरदस्त समर्थन किया था। उन्होंने हिन्दी ट्रेनिंग इनस्टिट्यूट, वर्धा के दूसरे वार्षिक सम्मेलन में हिन्दी का समर्थन करते हुए अंग्रेजी की लज्जास्पद आराधना छोड़ कर राष्ट्र-भाषा हिन्दी की सेवा करने के लिए लोगों को उद्बोधित किया था। प्रान्तीय भाषा के कट्टर पन्थी मद्रासी लोगों के इस भ्रम को कि राष्ट्र-भाषा के प्रचार से प्रान्तीय भाषाओं को धक्का पहुँचेगा, दूर करने का प्रयास किया है। उनके भाषण का सारांश यों है :—

"मैं हमेशा से यह महसूस करता रहा हूँ कि भारतवर्ष में एक राष्ट्र भाषा का होना आवश्यक है। जो इस बात को नहीं मानते हैं उन्हें एक बार विदेशों की यात्रा कर लेनी चाहिए। पिछले वर्ष जब मैं वियना के अपने यूरोपियन मित्र के यहाँ अन्य कई भारतीयों के साथ एक भोज में सम्मिलित हुआ तो वहाँ हम आपस में

---

१. हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी—स्व० पद्मसिंह शर्मा—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पृष्ठ १८।

२. हिन्दी ही क्यों? कमला देवी गर्ग एम. ए. पृष्ठ. २९।

अंग्रेज़ी में बातचीत करने लगे। यूरोपियन मित्र को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा कि आप लोग क्यों अंग्रेज़ी में बातचीत कर रहे हैं ? इस प्रश्न को सुन कर हम लोगों का सिर लज्जा से झुक गया।

दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश के कुछ हिस्सों में हिन्दुस्तानी के प्रचार के सम्बन्ध में भ्रम फैला हुआ है। उदाहरण के लिए मद्रास है। वहाँ स्कूलों में हिन्दी को पाठ्य विषय बनाने का विरोध लोग करते हैं। उनकी धारणा है कि हिन्दी की पढ़ाई से मातृ-भाषा या प्रांतीय भाषा भ्रष्ट हो जायगी। प्रांतीय भाषाओं को मिटा कर उसके स्थान पर हिन्दी का आधिपत्य होगा; यह बिलकुल भ्रमपूर्ण कल्पना है। प्रान्तों में प्रान्तीय भाषाएँ प्रथम स्थान प्राप्त करेंगी। हिन्दी को तो दूसरा ही स्थान प्राप्त होगा। अतः मद्रास के लोगों का राष्ट्र-भाषा प्रचार का सच्चा उद्देश्य समझ लेना चाहिए और हिन्दी-विरोध से हाथ खींच लेना चाहिए।"[१]

श्री श्रीनिवास शास्त्री के विचार—

माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। अंग्रेज़ी के प्रकांड विद्वान् होते हुए भी उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार अत्यन्त आवश्यक बताया था। स्कूलों, कालेजों तथा अदालतों की व्यावहारिक भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी को ही अंगीकार करने की भी उन्होंने अपील की थी। वे हिन्दी के कितने ज़बरदस्त हिमायती थे, यह बात उनके भाषण के नीचे लिखे उद्धरण से ज्ञात हो सकती है।

"यद्यपि मैं जनतंत्र शासन का समर्थक और सहायक हूँ, तो भी मैं सोचा करता हूँ कि यदि मुझमें शक्ति होती तो मैं थोड़े समय के लिए भारत का सर्वाधिपति हो जाता। यदि भाग्य से मैं उस पद पर पहुँच जाता तो मैं कितनी ही योजनाएँ अमल में लाने की कोशिश करता। उन सबमें सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण कार्य यह करता कि मैं सारे देश में यह आज्ञा जारी करता कि सारे स्कूलों, कालेजों, सरकारी कार्यालयों और अदालतों के माध्यम की भाषा हिन्दुस्तानी बनायी जाय।"[२]

---

१. हिन्दी ही क्यों ?—कमला देवी गर्ग. एम. ए. पृष्ठ—३२।

२. I have often wished friend and champian of democracy though I am, that it were in my power for a brief spell of time to act as Dictator of all India. I had a great many schemes to put through, if I had the good fortune to be elevated to that position. But among them all, a prominent place was assigned to the edict to go all over the Country and to enforce with every authority that I could Command, that in all Schools and Colleges, in all the offices

आचार्य काका कालेलकर के विचार—

दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन में श्री. आचार्य काका कालेलकर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। राष्ट्र-भाषा की समस्या पर उन्होंने जितनी गंभीरता के साथ विचार किया, शायद ही किसी ने किया हो। भाषा सम्बन्धी प्रश्नों में उन के अनुभव, योग्यता और गहरी विद्वत्ता के महात्मा गाँधी जी तक कायल रहते थे। वे राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि आदि पर समय-समय पर अपने अमूल्य विचारों से दूसरों को मार्ग-दर्शन करते रहते हैं। हिन्दी साहित्य को अति तुच्छ बना कर हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने पर आपत्ति उठानेवालों को उन्होंने मुँह-तोड़ जवाब दे कर यह साबित करने का प्रयत्न किया है कि हिन्दी का साहित्य दुनिया की अन्य किसी भी भाषा के साहित्य से किसी भी कदर निम्नकोटि का नहीं है। उन के भाषण का निम्न-लिखित अंश पठनीय है।

प्रौढ़ साहित्य—

"माना कि हिन्दुस्तान के अधिकांश लोग हिन्दी जानते हैं। फिर भी कुछ लोग पूछते हैं कि हिन्दी में प्रौढ़ साहित्य कहाँ है कि जिससे वह राष्ट्र-भाषा का श्रेष्ठ पद प्राप्त कर सके? लेकिन यह सवाल ही गलत है कि हिन्दी में प्रौढ़ साहित्य कहाँ है? आप सृष्टि-वर्णन की किसी कविता को लें, शृंगार, वीर, करुण, भक्ति या अन्य कोई रस लें दुनिया की किसी भी भाषा से हिन्दी इस विषय में पीछे न रहेगी। जिस भाषा में तुलसीदास ने अपनी रामायण लिखी, जिस भाषा में कबीर ने एकेश्वरी भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया, जिस भाषा में कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम व्यक्त हुआ है, जिस भाषा में विचार-सागर जैसे वेदान्त रत्नों की रचना हुई है, जिस भाषा में सूरदास का कविता-सागर हिलोरें ले रहा है और जिस भाषा में भूषण कवि ने गो-ब्राह्मण प्रति पालक शिवाजी के प्रताप का वर्णन किया है, कौन कहेगा कि उस भाषा का साहित्य प्रौढ़ नहीं है? हो सकता है कि आधुनिक विज्ञान और अन्य शास्त्रीय शोधों पर हिन्दी में पुस्तकें न हों, और इतिहास और राजनीति की मीमांसा करनेवाले ग्रन्थ भी उसमें न हों। लेकिन यह हिन्दी का दोष नहीं है। हमारे जीवन के व्यापक बनते ही हिन्दी भाषा बात की बात में इस ओर भी जोरों से अग्रसर हो जायगी। जिस भाषा ने साहित्य के एक विभाग में अपनी क्षमता अपना सामर्थ्य और उत्कर्ष सिद्ध किया है, उस भाषा के लिए यह शंका करना उचित ही नहीं कि वह अन्य विभागों में पिछड़ जायगी।"[1]

---

of Government and all its Courts of justice, Hindustani should be recognised medium of Communication.

(दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा--१९३३-३४ के दीक्षान्त भाषण से)

१. हिन्दी ही क्यों?—कमलादेवी गर्ग एम. ए. पृष्ठ ८९।

कांग्रेस में राष्ट्र-भाषा का प्रस्ताव—

महात्मा जी जब से भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में आये तब से एक नया ही क्रम शुरू हुआ। सन् १९१६ में लखनऊ के तथा १९१७ में कलकत्ते के काँग्रेस अधिवेशनों में उन्होंने दक्षिण भारत में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

इस तरह दक्षिण भारत का क्षेत्र हिन्दी प्रचार के लिए पहले ही से तैयार हो गया था। और सन् १९१८ में उसमें हिन्दी प्रचार का बीजारोपण हुआ।

नागरी प्रचारिणी सभा—

सन् १८९३ जुलाई में स्व० ठाकुर शिवकुमार सिंह के प्रयत्नों से काशी नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित हुई थी। पहले कचहरियों में फारसी लिपि की जगह नागरी लिपि का व्यवहार कराना ही इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था। पीछे चल कर इस संस्था की ओर से हिन्दी साहित्य की खोज और प्रकाशन का कार्य भी आरंभ हुआ। इसके अतिरिक्त साधारण जनता में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न करना और हिन्दी साहित्य के अध्ययन एवं अनुसंधान की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना भी सभा के कार्यक्रम के अंग थे। परन्तु इस दिशा में सभा का कार्य संतोषजनक नहीं रहा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन—

सन् १९१० में नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। तब से साहित्य सम्मेलन के द्वारा ही हिन्दी साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन का कार्य होने लगा। सम्मेलन ने एक परीक्षा-क्रम निर्धारित किया। हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन अधिक व्यापक और लोकप्रिय बना। हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या भी बढ़ी। परीक्षायें नियमित और व्यवस्थित रूप से चलने लगीं। नवीन पत्र-पत्रिकायें निकलने लगीं, जिनसे नये प्रचारकों और नये लेखकों को प्रोत्साहन मिला। उनकी भी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। यह सर्व विदित है कि स्व० महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा 'सरस्वती' पत्रिका का हिन्दी के विकास एवं प्रचार में बहुत ही महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

साहित्य सम्मेलन के प्रचार-विभाग ने इस हिन्दी आन्दोलन को काफ़ी बल पहुँचाने का प्रयत्न किया। सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन उत्तर के प्रमुख नगरों में बड़ी धूम-धाम से होने लगे।

श्री टंडन जी का नेतृत्व—

प्रायः देश के बड़े-बड़े साहित्यकार, राजनीतिक नेता, देशी नरेश जैसे गण्यमान्य व्यक्ति इन अधिवेशनों के अध्यक्ष बनते थे। स्व० पं० मदन मोहन मालवीय जी के अनुरोध से श्री पुरुषोत्तम दास टंडन जी ने सम्मेलन का नेतृत्व ग्रहण किया। वे सम्मेलन को सुसंगठित और सशक्त बनाने का निरंतर प्रयत्न करते रहे। उन दिनों कवीन्द्र रवीन्द्र, बड़ोदा नरेश श्री सयाजी राव गायकवाड़ जैसे विख्यात व्यक्तियों का सम्मेलन का अध्यक्ष-पद ग्रहण करना संस्था की प्रतिष्ठा तथा यश का परिचायक है।

प्रकरण २

साहित्य सम्मेलन का इन्दौर अधिवेशन

सन् १९१८ मार्च महीने में साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन इन्दौर में हुआ। यह दक्षिण के हिन्दी प्रचार के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। महात्मा गाँधी जी ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता ग्रहण की थी। उनका अध्यक्ष-भाषण हिन्दी के सम्बन्ध में विशेष महत्व रखता है। अंग्रेज़ी और राष्ट्र-भाषा हिन्दी के विषय में उनकी उस समय की विचार-धारा का परिचय हमें उनके भाषण के नीचे लिखे उद्धरण से मिल सकता है।

अंग्रेजी का मोह—

"शिक्षित वर्ग जैसा कि माननीय पंडित जी (पं० मदनमोहन मालवीय जी) ने अपने पत्र में दिखाया है, अंग्रेज़ी के मोह में फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृ-भाषा से उसे असंतोष हो गया है। पहली माता से जो दूध मिलता है उसमें ज़हर और पानी मिला हुआ है और दूसरी माता से शुद्ध दूध मिलता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले, हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अन्धा है, वह देख नहीं सकता और गुलाम नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेज़ी के मोह में फँसे हैं, हमारी प्रजा अज्ञान में डूब रही है। सम्मेलन को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, काँग्रेस में, प्रान्तीय सभाओं में और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अंग्रेज़ी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेज़ी का व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे तो अंग्रेज़ी भी सर्व-व्यापक न रहेगी। अब हमें अपनी मातृ-भाषा को और नष्ट करके उसका खून नहीं करना चाहिए। जैसे अंग्रेज़ अपनी मादरी ज़बान अंग्रेज़ी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा बनने का गौरव प्रदान करें[1]।"

यह धारणा गलत है कि गाँधी जी अंग्रेज़ी के शत्रु थे। वास्तव में वे अंग्रेज़ी के महत्व को मानते थे, उसके उच्च साहित्य के प्रति भी उनके हृदय में सद्भावना

---

(१) राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी—पृष्ठ १०—नवजीवन प्रकाशन।

रही है। अंग्रेज़ी के प्रति द्वेष की भावना उनके हृदय को छू तक नहीं गयी थी। वे केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही अंग्रेज़ी को देश की राष्ट्र-भाषा के लिए अनुपयुक्त बताते थे। अंग्रेज़ी की जड़-पूजा को भी वे वाँछनीय नहीं समझते थे। अंग्रेज़ी को भारत से एकदम निकाल देने का भी वे विचार नहीं करते थे। अंग्रेज़ी को उचित स्थान देने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। उस सम्बन्ध में उनके विचार यों प्रकटहुए हैं।

अंग्रेजी की जड़-पूजा वाँछनीय नहीं—

"कहना आवश्यक नहीं है कि मैं अंग्रेज़ी भाषा से द्वेष नहीं करता हूँ। अंग्रेज़ी साहित्य-भंडार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेज़ी भाषा की मार्फ़त हमको विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेज़ी का ज्ञान भारतवासियों के लिए कितना आवश्यक है। लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़-पूजा करना दूसरी बात है[१]।"

उस ज़माने में अहिन्दी भाषा-भाषियों को हिन्दी सिखलाने के लिए योग्य शिक्षक मिलना कठिन था। उस दृष्टि से लिखी हुई पाठ्यपुस्तकें भी नहीं थीं। खास करके दक्षिणी जनता में हिन्दी का प्रचार करना उक्त कारणों से और भी कठिन मालूम हुआ। अतः उन्होंने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता को समझाते हुए प्रचार के लिए योग्य शिक्षक, आवश्यक पुस्तक आदि की ओर भी सम्मेलन के संचालकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए यों कहा—

हिन्दी-शिक्षक की आवश्यकता—

"भाषा प्रचार के लिए हिन्दी-शिक्षक होना चाहिए। हिन्दी-बंगाली सीखनेवालों के लिये एक छोटी सी पुस्तक मैंने देखी है, वैसे ही मराठी में भी है। अन्य भाषा-भाषियों के लिए ऐसी किताबें देखने में नहीं आयी हैं। यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक है। मुझे उम्मीद है, सम्मेलन इस कार्य को शीघ्रता से अपने हाथ में लेगा।"

"सबसे कष्टदायी मामला द्राविड़ भाषाओं के लिए है। वहाँ तो कुछ प्रयत्न नहीं हुआ है। हिन्दी भाषा सिखानेवाले शिक्षकों को तैयार करना चाहिए। ऐसे शिक्षकों की बड़ी कमी है। ऐसे एक शिक्षक प्रयाग से आपके लोकप्रिय मंत्री भाई पुरुषोत्तम-दास जी टंडन के द्वारा मुझे मिले हैं[२]।"

---

(१) राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी—पृष्ठ १३—नवजीवन प्रकाशन।

(२) राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी—पृष्ठ—१३।

दक्षिण में हिन्दी प्रचार की आयोजना—

गाँधी जी के भाषण के उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि इन्दौर अधिवेशन के अवसर पर ही दक्षिण में हिन्दी प्रचार करने के लिए रीडरें अथवा स्वयं शिक्षक एवं योग्य हिन्दी प्रचारकों को तैयार करने का निर्णय हुआ था। उस भार को उठाने का साहित्य सम्मेलन से अनुरोध भी किया था। सम्मेलन में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और तदनुसार दक्षिण में हिन्दी प्रचार करने की आयोजना बनी। गाँधी जी ने इस आयोजना को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त धन की माँग भी उत्तर भारतीयों के सामने पेश की थी।

हिन्दी प्रचार के लिए उत्तर का सर्व प्रथम दान—

दक्षिण में हिन्दी प्रचार का आरम्भ शीघ्र ही करने के लिए इन्दौर नरेश तथा इन्दौर के धनी सेठ श्री हुकुमचन्द जी ने दस-दस हजार रुपयों की थैलियाँ गाँधी जी को भेंट की थीं। यह धन दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचारार्थ उत्तर भारतीयों का दिया हुआ सर्व प्रथम दान है।

हिन्दी प्रचारक की माँग—

सम्मेलन के बाद गाँधी जी ने दक्षिण के कुछ प्रमुख नेताओं से लिखा-पढ़ी की। हिन्दीप्रचार के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने समाचार-पत्रों में लेख भी लिखे। गाँधी जी के उक्त विचारों को पढ़कर दक्षिण के कुछ उत्साही देश-प्रेमी युवकों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट करते हुए गाँधी जी से प्रार्थना की कि हिन्दी पढ़ाने के लिए एक सुयोग्य अध्यापक को दक्षिण में भेजा जाय। इस माँग की पूर्ति के लिए गाँधी जी ने अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गाँधी जी को हिन्दी प्रचार करने के लिए दक्षिण भेजा। श्री देवदास उस समय केवल अट्ठारह वर्ष के थे।

मद्रास में हिन्दी प्रचार का श्रीगणेश—

गाँधी जी का आदेश पाकर श्री देवदास गाँधी सन् १९१८ में दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ मद्रास पहुँचे। स्थानीय सज्जनों से मिलकर नगर में एक हिन्दी वर्ग खोलने का उन्होंने प्रयत्न किया। फलतः सन् १९१८ मई महीने में सर्व प्रथम हिन्दी वर्ग मद्रास के गोखले हॉल में खुला जिसका औपचारिक उद्घाटन सम्मेलन ब्राडवे, मद्रास के तत्कालीन 'होमरूल लीग' के कार्यालय में हुआ था। डा. सी. पी. रामस्वामी अय्यर जी ने इस सम्मेलन का अध्यक्षपद ग्रहण किया। वर्ग का उद्घाटन श्रीमती एनीबेसेंट जी ने किया। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में देश के लिए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता बताते हुए हिन्दी पढ़ने पर जोर दिया। गाँधी जी

की इस आयोजना का अध्यक्ष तथा उद्घाटिका दोनों ने बड़े जोरों का समर्थन भी किया।

श्रीमती बेसेंट अपने 'होमरूल लीग' के मुख्य-पत्र अंग्रेजी दैनिक 'न्यू इन्डिया' में अंग्रेजी अनुवाद के साथ हिन्दी लेख प्रकाशित करती थी। वे हिन्दी का राष्ट्र-भाषा होना अत्यंत आवश्यक और अंग्रेजी का इस देश की राष्ट्र-भाषा बन जाना देश के लिए खतरनाक समझती थीं। उनका कहना था कि जिस दिन अंग्रेज़ी हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा हो जायगी उस दिन समझ लेना चाहिए कि हमारी बरबादी शुरू हुई। उनकी राय में एक देश की मुट्ठी भर लोगों का दूसरे देश के करोड़ों लोगों पर हुकूमत करना ही देश की भारी मुसीबत थी, तिस पर भी उस देश की भाषा को मिटाकर विदेशी भाषा को वहाँ की जनता पर जबरदस्ती थोप देना अत्यन्त विनाशकारी कार्य है।

हिन्दी आन्दोलन के आरंभ की झाँकी—

'राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ' में दक्षिण के हिन्दीप्रचार आन्दोलन के प्रारंभ की मुख्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के आदि दाक्षिणात्य प्रवर्तक, हिन्दी प्रचार सभा के संस्थापक पं० हरिहर शर्मा जी ने एक लेख लिखा है। उक्त लेख प्रामाणिक रूप में प्रारंभ की बातों का हमें विशद परिचय देता है। उसका नीचे उद्धृत अंश विशेष ध्यान देने योग्य है।

इन्दौर-प्रस्ताव—

"इन्दौर अधिवेशन (१९१८) में दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार करने के लिए आयोजना बनी। एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि प्रतिवर्ष छः दक्षिण भारतीय नवयुवक हिन्दी सीखने प्रयाग भेजे जायँ और हिन्दी भाषा-भाषी छः युवकों को दक्षिणी भाषा सीखने और साथ-साथ वहाँ हिन्दी का प्रचार करने के लिए दक्षिण भारत में भेजा जाय।

× × ×

बीस हजार का दान—

धन की आवश्यकता पड़ी। गाँधी जी के माँगने पर इन्दौर नगर के धन-कुबेर सेठ सर हुकुमचन्द ने तथा तत्कालीन इन्दौर-नरेश यशवंतराव होलकर ने दस-दस हजार रुपये की सहायता पहुँचायी। यह रकम बापूजी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को सौंपी। इसके बाद उन्होंने दक्षिण भारत के समाचार-पत्रों में सूचना निकाली कि यदि वहाँ हिन्दी वर्गों का प्रबन्ध किया जा सके तो हिन्दी सिखाने के लिए अध्यापक भेजे जायँ। मद्रास शहर में कुछ नवयुवक भारत-सेवासंघ (इंडियन सर्विस लीग) नामक समाज-सेवा करनेवाली संस्था चला रहे थे। उन लोगों ने बापूजी को पत्र लिखा।

प्रथम हिन्दी वर्ग—

बापूजी ने अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गाँधी को हिन्दी वर्ग चलाने के लिए भेजा और सन् १९१८ के मई महीने के आरंभ में उक्त सेवा-समाज के अध्यक्ष श्री. सी. पी. रामस्वामी अय्यर की अध्यक्षता में श्रीमती बेसेंट के हाथों हिन्दी वर्ग का उद्घाटन हुआ।

सर्वप्रथम हिन्दी शिक्षार्थी—

"मुझे सन् १९१५ से ही बापूजी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला था। साबरमती-आश्रम की स्थापना के पहले भी कुछ समय उनके साथ रहने का सुअवसर मुझे मिला था। उनसे अनुमति लेकर मैं स्वदेशी का प्रचार करने मद्रास चला आया था। इन्दौर के प्रस्ताव और बापूजी की योजना पढ़कर मैंने बापूजी को लिखा कि इस कार्य में मैं सम्मिलित होऊँगा। उन्होंने मुझे स्वीकृति दे दी और लिखा कि इसी कार्य के लिए अपने पुत्र देवदास गाँधी को भेज रहे हैं। हिन्दी का पहला वर्ग देवदास ने चलाया। देवदास से सलाह-मशविरा करके मैंने कुछ नवयुवकों को चुना। मैं सपत्नीक था। स्वदेशी-आन्दोलन में मेरे साथ काम करनेवाले मेरे मित्र वन्दे-मातरम् सुब्रह्मण्यम् सपत्नीक प्रयाग चलने को तैयार हुए। मैंने शिवराम शर्मा † नामक नवयुवक को भी चुन लिया। हम पाँचों मई महीने में प्रयाग पहुँचे। उस समय टंडनजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री थे और प्रचार सम्बन्धी कार्य भी सँभालते थे। कुछ समय बाद पं० रामनरेश त्रिपाठी प्रधानमंत्री बने। प्रयाग में टंडनजी ने हमलोगों को ठहरने का प्रबन्ध कर दिया था। हमारे साथ रामनरेश त्रिपाठी के रहने का भी प्रबन्ध हुआ। हमें पढ़ाने के लिए गणेशदीन त्रिपाठी नामक अध्यापक नियुक्त हुए। हरिप्रसाद द्विवेदी (वियोगी हरि) भी पढ़ाते थे।

× × ×

हिन्दी-स्वबोधिनी—

सन् १९२० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन पटना में हुआ। उसमें मद्रास के हम कुछ प्रचारक सम्मिलित हुए। वहाँ टंडनजी, राजेन्द्र बाबू और अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओं के साथ विचार-विनिमय के बाद यह निश्चय हुआ कि मद्रासियों के योग्य कुछ अच्छी पुस्तकें निकाली जायँ। इस उद्देश्य से राजमहेन्द्रम् का काम श्री-हृषीकेश शर्माजी को सौंपकर मैंने शिवराम शर्मा को मद्रास बुला लिया। वहाँ उनकी सहायता लेकर मैंने 'हिन्दी स्वबोधिनी' अँग्रेजी और तमिल में तैयार की। बापूजी को

---

† ये ही हरिहर शर्मा जी के सर्वप्रथम सहयोगी कार्यकर्ता हैं जिनका उल्लेख इसमें कई प्रसंगों पर हुआ है।

यह पुस्तक बहुत पसन्द आयी। उन्होंने उसकी प्रस्तावना लिखकर हमको आशीर्वाद दिया। यह हिन्दी पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रचार कार्यालय की ओर से प्रकाशित हुई। इसीके आधार पर हृषीकेश शर्मा जी ने तेलुगु में हिन्दी-स्वबोधिनी तैयार की। बाद को इसकी मलयालम् और कन्नड़ प्रतियाँ तैयार हुईं। इनका परिवर्तित संस्करण आजकल चल रहा है।

'हिन्दी का हीर'—

'हिन्दी का हीर' नामक पुस्तक श्री प्रतापनारायण बाजपेयी ने लिखी। यह अत्यन्त लोकप्रिय बनी। इसमें अंग्रेज़ी में हिन्दी के व्याकरण नियम बताये गये थे। इसके बाद तीन रीडरें तैयार की गयीं।

× × ×

हिन्दी-प्रेस—

श्री जमनालालजी की कृपा से हमलोग अपना छापाखाना स्थापित करने में सफल हुए। सन् १९२३ में छोटे पैमाने पर प्रेस स्थापित हुआ।

प्रथम हिन्दी-प्रचारक विद्यालय—

गोदावरी नदी के किनारे राजमहेन्द्रवरम् के पास धवलेश्वर में एक विद्यालय खोला गया। जिसके आचार्य हृषीकेश शर्माजी थे। दूसरा विद्यालय कावेरी नदी के किनारे ईरोड़ नगर में स्व० पं० मोतीलाल नेहरू के हाथों खोला गया। पहले पं० अवधनन्दन इसे सँभालते थे। इनके बाद कुछ समय तक कृष्णस्वामी और फिर शिवराम शर्मा सँभालते थे। उस विद्यालय के लिए सब तरह की सुविधाएँ श्री. ई. वी. रामस्वामि नायिक्कर ने कर दी थी।

× × ×

प्रारम्भ के सहायक—

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री जमनालाल बजाज, श्री काका कालेलकर, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री. सी. पी. रामस्वामी अय्यर, श्री रंगस्वामी अय्यंगार, श्री पट्टाभि-सीतारामय्या, श्री. के. भाष्यम् , श्री रामदास पन्तलु, श्री संजीवकामत, श्री वैद्यनाथ अय्यर, श्री. डा. राजन् आदि प्रारंभ के प्रबल सहायकों में प्रमुख हैं।

× × ×

आर्थिक सहायता—

होलकर नरेश, सर सेठ हुकुमचन्द, मारवाड़ी अग्रवाल महासभा। तथा प्रेस के लिए बंबई की श्रीमती सुव्रताबाई, रामनारायण रुइया। पुस्तक प्रकाशन के लिए सेठ घनश्यामदास बिड़ला। हिन्दी यात्री-दल के लिए प्रभाशंकर पट्टाणि। विद्यालय भवन के

लिए श्री कर्नल पंडाले और डा. रंगाचारी, रंगस्वामी। मंडप के लिए 'रंगस्वामी अय्यंगार निधि' आदि से विशेष रूप में आर्थिक सहायता मिली है।

× × ×

प्रारंभिक वर्ग के विद्यार्थी—

मद्रास हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री सदाशिव अय्यर, सुप्रसिद्ध वकील श्री वेंकटराम शास्त्री, श्री के. भाष्यम् अय्यंगार, श्री एन. सुन्दर अय्यर, श्री रंगरत्न आदि हिन्दी वर्ग में भर्ती होकर अध्ययन करते थे। श्रीमती अंबु जम्माल, श्री दुर्गाबाई, श्रीमती इन्दिरा रामदुरै, श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति आदि महिलाओं का योगदान हिन्दी प्रचार कार्य की वृद्धि में सहायक रहा है।

× × ×

समाचार-पत्रों की सहायता—

मद्रास के सुप्रसिद्ध 'हिन्दू' और एनिबेसेंट की 'न्यू इंडिया' ने प्रचार में काफी सहायता पहुँचायी। 'आनन्द विकटन' तथा अन्य तमिल पत्रों ने भी सहायता दी है।[1]"

दक्षिण के सर्व प्रथम हिन्दी-प्रचारक

स्व. देवदास गाँधी जी दक्षिण के आदि हिन्दी प्रवर्तक के नाम से स्मरणीय हो चुके हैं। मद्रास जैसे नगर में जहाँ का वातावरण अंग्रेजी से अत्यंत प्रभावित था, वहाँ के अंग्रेजी के अनन्य समर्थकों और आराधकों को राष्ट्र-भाषा हिन्दी पढ़ने के लिए प्रेरित करना श्री देवदास के लिए बड़ा ही दुष्कर कार्य था। लेकिन लगन और निरंतर प्रयत्न के फलस्वरूप शीघ्र ही वे इस में सफलमनोरथ हुए। धीरे-धीरे जनता हिन्दी की ओर आकृष्ट होने लगी।

थोड़े ही दिनों में मद्रास शहर में हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या बढ़ गयी।

स्वामी सत्यदेव जी—

जब मद्रास का कार्य भार बढ़ा तब श्री. देवदास जी के लिए अकेले इस भार को संभालना कठिन हो गया। इसलिए साहित्य सम्मेलन ने स्वामी सत्यदेव जी को देवदास जी की मदद के लिए भेजा। स्वामी सत्यदेव जी सन् १९२८ के अगस्त महीने में मद्रास पहुँचे। उन्हों ने 'दक्षिण भारत की अतीत की स्मृतियाँ' शीर्षक लेख में अपने मद्रास आने के संबंध में यों लिखा है:—"यह सन् १९१८ की बात है। मोतिहारी (चंपारन) में मेरे ऊपर बिहार सरकार ने १४४ धारा का बम-गोला फेंक

---

१. आधार—'दक्षिण में हिन्दी प्रचार'—पं० हरिहर शर्मा, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ६५८।

दिया था और मैंने उसे स्वीकार न कर हुकुमनामे पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। मेरी इच्छा सरकार के अन्याय के विरुद्ध भिड़ने की थी। परन्तु महात्मा गांधी जी का तार नड़ियाद से आया कि धारा को मत तोड़ो; इसे हटवा दिया जायगा। गाँधी रूपी सूर्य का उस समय उदय ही हुआ था और मैं उस की रश्मियों का स्नेह-भाजन बन चुका था। मैंने कहा मान लिया और महात्मा जी ने बिहार सरकार से पत्र-व्यवहार कर उस हुक्म को बदल कर मुझे अपने पास बुला लिया। मैं नड़ियाद पहुँचा।"

"ये बरसात के दिन थे। नड़ियाद में कुछ दिन रह कर मैं महात्मा जी की आज्ञा के अनुसार हिन्दी प्रचारार्थ मद्रास की ओर रवाना हुआ। चिरंजीवी देवदास गाँधी पहले ही झंडा ले कर वहाँ पहुँच चुके थे। जब मैं मद्रास पहुँचा तो उन्होंने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया और हिन्दी माता की सेवा का वह पुण्य कार्य प्रारंभ हुआ।"

"कैसी थी वह शुभ घड़ी! किसे मालूम था कि उस पुनीत घड़ी में रोपा हुआ बीज लहलहाता वृक्ष हो जायगा जिसके नीचे हज़ारों मद्रासी विद्यार्थी राष्ट्र-भाषा की कठिन समस्या को हल करेंगे?

कई स्वार्थ त्यागी नौजवानों ने इस यज्ञ में आहुति देने का संकल्प किया। उनकी सहायता से नगर में हिन्दी वर्ग स्थापित कर दिये और प्रांत के कई स्थानों में केन्द्र भी बनाये।

एक वर्ष तक मैं मद्रास में रहा। इतने थोड़े समय में हिन्दी-प्रचार कार्य ने बड़ा अच्छा स्वरूप ले लिया। हमारे वर्ग सफलतापूर्वक चलने लगे, विद्यार्थियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी और नगर के गण्यमान्य सज्जनों ने हमारे साथ पूर्ण सहयोग दिया। मैलापुर के श्री वेंकिटराम जी शास्त्री, श्री भाष्यम्, श्री शिवस्वामी अय्यर आदि महानुभावों ने हमें हर प्रकार से उत्साहित किया। श्री राजगोपालाचार्य भी हमारी सहायतार्थ दौड़-धूप करने लगे। उनके सेलम नगर में भी हिन्दी का केन्द्र बना। त्रिचिनापल्ली में भी हमारा केन्द्र स्थापित हुआ। इस प्रकार प्रभु की कृपा से माता हिन्दी के पुजारियों की संख्या की वृद्धि होने लगी।

वह एक वर्ष कैसे आनंद से बीता? श्री देवदास गाँधी जी के साथ काम करने के वे दिन मुझे कभी नहीं भूल सकते। उनकी मधुर-स्मृतियाँ मेरे हृदय-पट पर सदा ताज़ी बनी रहेंगी। हर्ष है कि पं० हरिहर शर्मा, पं० हृषीकेश शर्मा आदि कार्यकर्त्ताओं के अथक परिश्रम और सतत उद्योग से आज सारे मद्रास प्रांत में हिन्दी परीक्षा केन्द्र स्थापित हो चुके हैं।"[1]

---

१. हिन्दी प्रचारक दशाब्दि—अंक—एप्रिल १९३२
"दक्षिण भारत की अतीत स्मृतियाँ"—स्वामी सत्यदेव

स्वामी सत्यदेव जी दक्षिण के सर्व द्वितीय प्रमुख हिन्दी प्रचारक के रूप में दक्षिणवासियों के लिए चिर स्मरणीय हैं। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व और ओजस्वी वाणी ने मद्रासवालों को हिन्दी की ओर आकर्षित किया। शहर के गण्यमान्य प्रतिष्ठित सज्जन स्वामी जी से हिन्दी सीखने लगे। उनमें सर्व श्री. भाष्यम् अय्यंगार, टी. आर. वेंकिटराम शास्त्री, एन. सुन्दर अय्यर[1] आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी की पहली पुस्तक—

उन दिनों दक्षिण के लोगों को हिन्दी पढ़ाने के लिए उपयोगी रीडरों का सर्वथा अभाव था। श्री. देवदास जी इन्डियन प्रेस की बालोपयोगी पुस्तकों से काम लेते थे। दक्षिण की जनता की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए श्री स्वामी सत्यदेव जी ने "हिन्दी की पहली पुस्तक" नाम से एक रीडर लिखी। यह पुस्तक बहुत ही लोकप्रिय बनी। वर्षों तक दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों के लिए यह पाठ्य पुस्तक रही। दक्षिण के विद्यार्थियों के लिए लिखी यह "हिन्दी की पहली पुस्तक" दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ प्रकाशित उपयोगी पुस्तक माला का प्रथम पुष्प माना जा सकता है। इस पुस्तक की गद्यशैली उच्चस्तर की थी। विषय भी स्फूर्तिदायक था। उसका थोड़ा अंश नमूने के तौर पर यहाँ उद्धृत है :—

"देश सेवा"

"वह पुरुष इस संसार में धन्य है, जिसको देश सेवा की लगन हो। कौन ऐसा है जो मौत के मुँह से बच सकता है? कौन ऐसा है, जिसको संसार का ऐश्वर्य एक न एक दिन नहीं छोड़ जाना है? कौन ऐसा है, जो यहाँ सदा बैठा रहेगा? एक न एक दिन हम सबको एक ही मार्ग से जाना है।

× × ×

ओहो, देश सेवा की महिमा बड़ी विचित्र है। फिर ऐसे देश की सेवा क्यों न मोक्ष देने वाली हो जिसमें ऋषि-मुनियों ने उग्र तप किया हो। जिस देश में प्रकृति ने अपना पूरा सौंदर्य दिखाया हो। जहाँ के पर्वत, नदियाँ, वृक्ष आदि देश की श्रेष्ठता के प्रमाण हों। जिस देश की रत्ती-रत्ती ज़मीन महात्माओं के रुधिर से सींची हुई हो। ऐसे पवित्र देश में पैदा होकर भी जो मनुष्य उसकी गिरी हुई दशा सँभालने की कोशिश नहीं करता उसका जीवन देश के लिए व्यर्थ बोझा है[2]।"

हिन्दी अध्यापक तैयार करने की आयोजना—

दक्षिण में धीरे-धीरे हिन्दी प्रचार का क्षेत्र विस्तृत होता गया। तदनुसार हिन्दी प्रचारकों की माँगें भी बढ़ती गयीं। लेकिन विभिन्न केन्द्रों में काम करने के लिए

---

१. श्री एन. सुन्दर अय्यर का परिचय 'केरल' के प्रकरण में दिया गया है।

२. "हिन्दी की पहली पुस्तक" 'स्वामी सत्यदेव'

योग्य प्रचारक कहाँ मिल सकते थे ? शीघ्र ही साहित्य सम्मेलन का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। प्रचारकों की बढ़ती हुई माँगें पूरी करने के लिए यह आयोजना बनायी गयी कि दक्षिण के कुछ उत्साही युवकों को उत्तर में भेजकर प्रचारक बनने के लिए हिन्दी की पर्याप्त शिक्षा दिलायी जाय और शिक्षा पूरी होने पर वे दक्षिण के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी प्रचारार्थ भेजे जाएँ। इस आयोजना के अनुसार गाँधी जी ने श्री. हरिहर शर्माजी को लिखा कि कुछ उत्साही युवकों को साथ लेकर वे उत्तर में जाकर हिन्दी का अध्ययन करें। श्री. शर्माजी गाँधीजी से पहिले से ही परिचित थे। गाँधीजी के साबरमती आश्रम के अन्तेवासियों में शर्माजी भी एक प्रमुख व्यक्ति थे। उनकी कर्तव्यनिष्ठा तथा देश-प्रेम से गाँधीजी प्रभावित थे। अतएव उन्होंने शर्माजी को ही इस कार्य के लिए योग्य समझा। दक्षिण के हिन्दी प्रचार का पूरा भार श्री शर्माजी को सौंपने का उन्होंने संकल्प भी किया था।

सर्व प्रथम हिन्दी शिक्षार्थी दल—

गाँधीजी का आदेश पाकर श्री. हरिहर शर्माजी कुछ देश-प्रेमी उत्साही युवकों को जिनमें श्री. क. म. शिवराम शर्मा, मल्लादि वेंकट सीतारामाँजनेयुलु आदि शामिल थे। साथ लेकर सन् १९१८ मई महीने में प्रयाग पहुँचे। साहित्य सम्मेलन ने उनकी शिक्षा का समुचित प्रबंध किया। दक्षिण भारतीयों का यह सर्व प्रथम दल था जो हिन्दी का अध्ययन करने के लिए उत्तर गया। साल भर के अध्ययन के बाद सन् १९१९ अगस्त में उस दल के लोग दक्षिण वापस आये। इनके आने के कुछ महीने बाद श्री स्वामी सत्यदेवजी अपने कार्य से निवृत्त होकर उत्तर लौट गये। तब हरिहर शर्माजी और देवदास गाँधीजी दोनों मिलकर हिन्दी प्रचार का पूरा भार सँभालने लगे। हिन्दी प्रचार कार्यालय के कार्यों के अतिरिक्त हिन्दी-वर्ग चलाना भी उनका दैनिक कार्यक्रम था। शर्माजी के दल के अन्य प्रमुख व्यक्ति श्री. क. म. शिवराम शर्मा तथा श्री मल्लादि सीतारामाँजनेयुलु आन्ध्र में प्रचारार्थ भेजे गये। श्री. शिवराम शर्मा तथा श्री सीतारामाँजनेयुलु मछलीपट्टणम् में हिन्दी प्रचार कार्य में लग गये।

और दो दल—

सन् १९१९ के अंत में तीन उत्तर भारतीय प्रचारक दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ आये। वे श्री. प्रतापनारायण वाजपेयी, श्री क्षेमानन्द राहत तथा श्री हृषीकेश शर्मा थे। वे ट्रिची, मद्रास और मछलीपट्टणम् में हिन्दी प्रचार करने लगे। श्री देवदास गाँधीजी ने इसी वर्ष दक्षिण के हिन्दी प्रचार केन्द्रों का निरीक्षण किया। उन्होंने इस सिलसिले में ट्रिची, सेलम्, कोयंबत्तर, राजमहेन्द्रवरम्, मछलीपट्टणम् आदि केन्द्रों में भ्रमण किया।

इस बीच में आन्ध्र प्रान्त से हिन्दी शिक्षार्थियों के दो दल उत्तर में हिन्दी पढ़ने के लिए गये। उन दलों के श्री जंध्याल शिवन्न शास्त्री, स्व० श्री पीसपाटि वेंकट सुब्बराव, श्री नरसिंहाचार्युलु, श्री मालपाटि रामकृष्ण शास्त्री, श्री मेडिचेर्ल वेंकटेश्वर राव आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वे हिन्दी की शिक्षा पाकर साल भर बाद वापस आये और आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी प्रचार-कार्य में लग गये।

सन् १९१९–२० का राजनीतिक वातावरण और हिन्दी-प्रचार—

सन् १९१९ के राजनैतिक वातावरण में सनसनी थी। वातावरण बड़ा प्रभावशाली था। अंग्रेज़ सरकार की दमन नीति पूरी जोरों पर थी। भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में उस समय की घटनाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। असहयोग और खिलाफ़त आन्दोलनों का नेतृत्व गाँधीजी ने ग्रहण किया था। सन् १९२० में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया। गाँधीजी ने 'होम रूल लीग' का सभापतित्व ग्रहण करते हुए जो वक्तव्य प्रकाशित किया था, उसमें राष्ट्रभाषा के महत्व पर भी प्रकाश डाला था। उनके वक्तव्य का नीचे उद्धृत अंश राष्ट्र-भाषा हिन्दी प्रचार से सम्बन्धित है:—

"मेरी राय में स्वराज्य शीघ्र प्राप्त करने का साधन स्वदेशी, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा मानना और प्रांतों का भाषाओं के अनुसार नये सिरे से निर्माण करना है। इसलिये लीग को इन कामों में लगाना चाहता हूँ[1]।"

असहयोग और राष्ट्रीय शिक्षा—

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन देश भर में पूरे जोरों पर था। नागपुर काँग्रेस से वास्तव में भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है।

नागपुर काँग्रेस के प्रस्ताव का लोगों ने बड़ा स्वागत किया। असहयोग का कार्य-क्रम सफलतापूर्वक शुरू हुआ। राष्ट्रीय-शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत सफलता हुई। काँग्रेस के इतिहास में इसके सम्बन्ध में लिखा हुआ है।

"हाँ, अदालतों और कालेजों के बहिष्कार में उससे कम सफलता मिली, फिर भी उनकी शान और रोब को गहरा धक्का पहुँचा। देश भर में कितने ही वकीलों ने वकालत छोड़ दी और दिलोजान से अपने को आन्दोलन में झोंक दिया। हाँ, राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अलबत्ता आशातीत सफलता दिखाई पड़ी। गाँधीजी ने देश के नौजवानों से अपील की थी और उसका जवाब उनकी ओर से बड़े उत्साह के साथ मिला। यह काम महज बहिष्कार तक ही सीमित न था। राष्ट्रीय विद्यापीठ, राष्ट्रीय कालेज और राष्ट्रीय स्कूल जगह-जगह खोले गये। इस तरह चार महीने के भीतर ही भीतर राष्ट्रीय मुसलिम विद्यापीठ अलीगढ़, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, बंगाल

---

१. कांग्रेस का इतिहास-अध्याय १ पृष्ठ १५१ (असहयोग का जन्म)

विद्यापीठ और एक बड़ी तादाद में राष्ट्रीय स्कूल देश में चारों ओर खुल गये। हजारों विद्यार्थी उनमें आये। राष्ट्रीय शिक्षा को जो देश में प्रोत्साहन मिल रहा था, उसका यह फल था[1]।"

असहयोग और रचनात्मक कार्य—

असहयोग आन्दोलन के सिलसिले में देश के अनेकों युवकों ने स्कूल, कालेज छोड़ दिये, अनेकों ने नौकरियाँ छोड़ दीं। अनेकों ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यों के लिए अपने आपको अर्पित किया। खादी प्रचार, हरिजनोद्धार जैसे कार्यों में वे जी-जान से लग गये। उत्तर के कुछ युवकों ने दक्षिण में हिन्दी प्रचार करने का पुनीत कार्य ग्रहण किया।

इस सम्बन्ध में श्री अवधनन्दन जी जिन्होंने उस समय उत्तर से यहाँ आकर अपनी आयु के ४० वर्ष दक्षिण के हिन्दी प्रचार में बिताये। यों लिखते हैं :—

सत्याग्रह के मंत्र—

"मेट्रिक की परीक्षा समाप्त करने के बाद मेरे हृदय में देशाटन और राष्ट्रीय कार्य करने की भावना उमंगें मारने लगीं। अब तक गाँधी जी का प्रभाव देश भर में छाने लगा था। चंपारन की शानदार विजय के बाद वे देश के सर्वमान्य नेता स्वीकृत हो चुके थे। अब वे भारत को आजादी दिलाने की आयोजना बना रहे थे और सत्याग्रह का मंत्र लोगों के कानों में फूँक रहे थे। उनके प्रभाव से भला देश का कोई युवक कैसे बच सकता था। मैंने भी गाँधीजी के बताये मार्ग का अनुसरण करके अपनी तुच्छ सेवा देश के चरणों पर अर्पित करने का निश्चय किया और पढ़ाई बन्द करके राष्ट्रीय कार्य में कूद पड़ा। उसी समय सुना कि दक्षिण में गाँधीजी ने हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ किया है। मेरे मन में तरंगें मारने लगीं। मैं सीधे प्रयाग पहुँचा और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी से मिला। वे ही उस समय सम्मेलन के मंत्री थे और मद्रास में हिन्दी का कार्य सम्मेलन के तत्वावधान में ही हो रहा था। मेरा विचार सुनकर टंडन जी ने प्रसन्नता प्रकट की और पं० हरिहर शर्मा के नाम पत्र देकर मद्रास जाने की अनुमति दे दी। उनकी आज्ञा पाकर २० जून १९२० को मैं सीधे मद्रास पहुँचा"।[2]

पं० देवदूत जी के विचार—

उन दिनों उत्तर में हिन्दी प्रचारार्थ आये हुए युवकों में पं. देवदूत विद्यार्थी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे सन् १९२० से ले कर १९४६ तक, छब्बीस वर्ष दक्षिण

---

१. काँग्रेस का इतिहास भाग २ पृष्ठ १७२।

२. हिन्दी प्रचारक का इतिहास (आन्ध्र) पृष्ठ ४६।

के हिन्दी प्रचारक्षेत्र के, एक प्रमुख कार्यकर्ता रहे। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने संस्मरण में यों लिखा है :—

"१९२० में कांग्रेस का असहयोग आन्दोलन शुरू होते ही अपनी पढ़ाई छोड़ देने पर मैंने अपने को एक दिन दक्षिण भारत में पाया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने हिन्दी का प्रचार करने के लिए मुझे मद्रास भेज दिया था।

हिन्दी प्रचारक बन कर घूमना एक गौरव की बात थी। हिन्दी प्रचारक गाँधी जी के अनुचर माने जाते थे।"[1]

१९२७ तक के हिन्दी प्रचारक—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अधीन आरंभ से (सन् १९१८) लेकर सन् १९२७ तक कुल ६८ प्रचारकों ने विभिन्न केन्द्रों में कार्य किया। इसके अतिरिक्त कई स्वतंत्र प्रचारकों ने भी हिन्दी प्रचार की वृद्धि में अपनी सेवाएँ अर्पित की हैं। सन् १९२७ में (सभा के स्वतंत्र रूप में रजिस्टर्ड होते समय) सभा की ओर से काम करनेवाले प्रमुख प्रचारक निम्न लिखित थे।

नाम	कार्यक्षेत्र	
१. श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी	मद्रास	उत्तर भारतीय
२. श्री देवदूत विद्यार्थी	मद्रास	
३. " अवधनन्दन (प्रसाद)	त्रिचिनापल्लि	
४. " रघुवर दयाल मिश्र	मदुरा	
५. " रामानन्द शर्मा (श्रीवास्तव)	"	
६. " जमुना प्रसाद (श्रीवास्तव)	मैसूर	
७. " शिवन्न शास्त्री	गुडिवाड़ा	आन्ध्र
८. " पी० वेंकिट सुब्बाराव	सीता नगरम्	
९. " भ० वेंकिट सुब्बय्या	बेजवाड़ा	
१०. " द० रामकृष्ण शास्त्री	बेमुरु	
११. " उन्नव राजगोपालकृष्णय्या	मछलिपट्टम्	
१२. " टी० कृष्णस्वामी	सेलम्	तामिल नाडु
१३. " एस० रामचन्द्र शास्त्री	कुंभकोणम्	
१४. " भारत संतानम् मुत्तय्यादास	तूतिकोरिन	
१५. श्री सिद्धनाथ पंत	बंगलोर	कर्नाटक
१६. " के० आर्य०	धारवाड़	

---

१. हिन्दी प्रचार का इतिहास (आन्ध्र)।

१७. श्री एम० के० दामोदरन् उण्णि	कुमरकम्	केरल
१८. ,, के० केशवन् नायर	ओट्टपालम्	
१९. ,, पी० के० केशवन् नायर	कोट्टयम्	
२०. ,, पी० के० नारायणन् नायर	तिरुवनतपुरम्	
२१. ,, के० वी० नायर	पेरुंपलम्	
२२. ,, स्वामी शंकरानन्द	नेय्याटिनकरा	

उत्तर भारतीय प्रमुख प्रचारक—

उन दिनों उत्तर से हिन्दी प्रचारार्थ दक्षिण में आये हुए हिन्दी प्रचारकों में सर्व श्री प्रतापनारायण वाजपेयी, पं० हृषीकेश शर्मा, जमुना प्रसाद, पं० रामानन्द शर्मा, पं० अवधनन्दन, पं० रघुवर दयालु मिश्र, पं० व्रजनन्दन, पं० देवदूत विद्यार्थी, पं० रामभरोसे श्रीवास्तव, नागेश्वर मिश्र, सिद्ध गोपाल, रामगोपाल शर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी अमूल्य सेवाएँ दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगी। दक्षिण के वातावरण के अनुकूल अपने आपको पूरे दाक्षिणात्य बनाकर वर्षों तक हिन्दी की उन्होंने जो सेवा की है, उसका मूल्य आँकना कठिन है।

कार्य में विस्तार—

सन् १९२० मई के बाद मद्रास का हिन्दी प्रचार कार्यालय जार्ज-टाउन से मइलापुर को बदल दिया गया। हरिहर शर्माजी तथा देवदास गाँधीजी कार्यालय का संचालन करने लगे।

रीडरों की आयोजना—

पहले लिखा जा चुका है कि उन दिनों दक्षिण के विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाने के लिए उपयुक्त हिन्दी रीडरों का सर्वथा अभाव था। स्वामी सत्यदेव जी की "पहली पुस्तक" के बाद सभा ने उनके नमूने पर दूसरी और तीसरी पुस्तकें प्रकाशित कीं। श्री. पं० हरिहर शर्मा, श्री. क. म. शिवराम शर्माजी, श्री. देवदूत विद्यार्थी, श्री. सत्य-नारायण तथा श्री. पं. अवधनन्दन की सेवाएँ इस कार्य में विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी स्वबोधिनी—

श्री. हरिहर शर्माजी तथा क. म. शिवराम शर्माजी ने मिल कर हिन्दी-अंग्रेजी और हिन्दी-तमिल स्वबोधिनियाँ लिखीं। श्री. हृषीकेश शर्माजी तथा श्री. दामोदरन् उण्णि जी ने क्रमशः उसका तेलुगु और मलयालम् में अनुवाद किया। कुछ वर्षों के बाद श्री. सत्यनारायण जी और श्री. अवधनन्दन जी ने नये ढंग की हिन्दी-अंग्रेजी-स्वबोधिनी लिखी। दक्षिण की चारों भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ। समय पर

उसका संशोधन भी होता रहा। वर्तमान हिन्दी स्वबोधिनी उसीका रूपान्तर-मात्र है।

हिन्दी प्रचार प्रेस—

श्रीमती सुव्रता बाई, रामनारायणलाल रुइया बंबई की सहायता से १९२२ में हिन्दी प्रचार प्रेस की स्थापना हुई। उन्होंने १०६५५ रुपये प्रेस के लिये दान दिए। असहयोग आन्दोलन के समय प्रेस कानून के अनुसार सरकार ने २०००/– रुपये की ज़मानत माँगी जिसकी वजह से दो मास के लिए प्रेस का कार्य बन्द रहा।

महत्वपूर्ण दान—

हिन्दी प्रचार प्रेस की स्थापना और हिन्दी प्रचार के लिए नीचे लिखे सज्जनों ने जो दान दिया वह हिन्दी प्रचार के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[1]

महाराजा होल्कर	—	१००००/–	१९१८
सर सेठ हुकुम चन्द	—	१००००/–	”
अग्रवाल महासभा	—	५००००/–	१९२०
घनश्याम दास बिड़ला	—	१००००/–	”

श्री. जमनालाल जी द्वारा यह दान उत्तर से प्राप्त हुआ। जमनालाल जी ने और १५००० रुपये सन् १९३० में दिये।

डॉ. पी. जे. मेहता, रंगूला ५० रुपये प्रतिमास शुरू से देते रहे। उसके अलावा रु० ६१५०/– और चन्दा दिये।

सन् १९२२ तक हिन्दी की रीडरें एक मामूली प्रेस में छपती थीं। अतः छपाई अच्छी नहीं होती थी। धन और समय का अपव्यय होता था। अतः नये प्रेस की ज़रूरत महसूस हुई। कार्यालय, प्रेस, विद्यालय आदि के लिए मइलापुर का मकान भी सुविधाजनक नहीं था। अतएव फिर स्थान बदलना पड़ा। ट्रिप्लिकेन (तिरुव-ल्लिकेणी) में किराये पर एक मकान लिया गया। हिन्दी प्रचार प्रेस की स्थापना नहीं हुई। उस समय प्रेस तो बहुत छोटा था। धीरे-धीरे उसका विकास हुआ। जब सन् १९३६ में त्यागरायनगर में सभाभवन बना तो प्रेस और कार्यालय उसमें बदल दिये गये।

शिक्षक विद्यालय की आयोजना—

ज्यों-ज्यों हिन्दी का प्रचार कार्य जड़ जमाता गया, त्यों-त्यों प्रचारकों की माँगें भी बढ़ती गयीं। दक्षिण के चार प्रान्तों के विभिन्न केन्द्रों में प्रचारक भेजना सभा के

---

१. हिन्दी प्रचारक १९३१ आगस्त, पृष्ठ २३५।

लिये कठिन हो गया। इसलिए दक्षिण भारतीय युवकों का एक और दल हिन्दी पढ़ने के लिए उत्तर भेजा गया। उसके बाद प्रचारकों को दक्षिण में ही तैयार करने की आयोजना बनी। उसके अनुसार दक्षिण में एक हिन्दी प्रचारक विद्यालय खोलने का निश्चय हुआ।

सर्वप्रथम हिन्दी प्रचारक विद्यालय, राजमहेन्द्री (आन्ध्र)—

सन् १९२१ में हिन्दी प्रचारक कार्यालय मद्रास की तरफ़ से राजमहेन्द्री (आन्ध्र) में एक हिन्दी प्रचारक विद्यालय खोला गया था। आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में 'प्रचारक' तैयार कर भेजना ही उसका उद्देश्य था। उस विद्यालय में २० आन्ध्रयुवकों ने हिन्दी की शिक्षा पाई। वे सबके सब प्रचारक बन कर कार्य करने लगे। पं. हृषीकेश शर्मा जी तथा श्री रामानन्द शर्मा जी उसमें अध्यापन का कार्य करते थे।

तमिलनाडु का सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचारक विद्यालय, ईरोड—

सन् १९२२ में सभा की तरफ़ से दूसरा हिन्दी प्रचारक विद्यालय, ईरोड (तमिलनाड) में खुला। इस विद्यालय की एक विशेषता यह रही कि उसका उद्घाटन पूज्य पं० मोतीलाल नेहरू ने किया था। दूसरी विशेषता यह रही कि दक्षिण के सुप्रसिद्ध द्राविड़ नेता श्री रामस्वामीनायिक्कर के मकान पर वह विद्यालय खोला गया था। उन दिनों श्री रामस्वामी नायिक्कार मूलतः हिन्दी के विरोधी नहीं थे, इसका यह स्पष्ट प्रमाण है। श्री देवदूत विद्यार्थी तथा श्री पं० अवधनन्दन जी ने विद्यालय में अध्यापन का कार्य किया था। उसमें बहुत ही कम विद्यार्थियों ने शिक्षा पायी थी।

सर्वप्रथम केन्द्रीय विद्यालय, मद्रास—

सन् १९२४ में सभा को इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि चारों प्रान्तों के उत्साही नवयुवकों को हिन्दी-प्रचारक की शिक्षा देने के लिए एक केन्द्र विद्यालय खोला जाय। समाचारपत्रों में विज्ञापन दिया गया कि मद्रास में एक हिन्दी प्रचारक विद्यालय खोला जायगा जिसमें पन्द्रह-पन्द्रह रुपये की छात्रवृत्ति देकर योग्य विद्यार्थी भर्ती किये जाएँगे। विद्यालय में भर्ती होने के लिए सभा की प्राथमिक या प्रवेशिका (उस समय मध्यमा के स्थान पर प्रवेशिका परीक्षा थी) की योग्यता आवश्यक मानी गयी थी। विज्ञापन के अनुसार कुल २० विद्यार्थी विद्यालय में भर्ती हुए जिनमें तीन मलयाली थे। उन तीनों के नाम ये हैं—पी० के० नारायणन् नाय्यर, के० वी० केशवन् नाय्यर (लेखक)। कर्नाटक से केवल एक ही विद्यार्थी था जिसका नाम श्री सिद्धनाथ पंत है। आज कर्नाटक के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तकों में श्री पंतजी सर्वप्रथम व्यक्ति माने जाते हैं। आज भी वे पूर्ववत् उसी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। अन्य विद्यार्थियों में श्री एस० आर० शास्त्री हैं जो इन दिनों द० भा०

हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मंत्री हैं। उस केन्द्र विद्यालय से शिक्षा पाकर हिन्दी प्रचारक्षेत्र में उतरनेवालों में उपर्युक्त चारों व्यक्ति ही विशेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्य सम्मेलन का निरीक्षण कार्य—

सन् १९२३ में साहित्य सम्मेलन की ओर से स्व. रामदास गौड़, सन् १९२४ में श्री द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी और सन् १९२५ में बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार कार्य का निरीक्षण करने आये थे।

अन्य निरीक्षक—

सन् १९३१ नवंबर में केन्द्र हिन्दी प्रचारक विद्यालय का निरीक्षण देश के कुछ प्रमुख नेताओं ने किया। उनमें हिन्दुस्तानी सेवादल के संस्थापक डा० हर्डीकर, प्रमुख राष्ट्रीय नेत्री श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय, बंबई काँग्रेस की अन्तिम डिक्टेटर और काँग्रेस बुलेटिन की संपादिका कुमारी सोफ़िया सोमजी, सुप्रसिद्ध लेखक राहुल सांकृत्यायन, काशी विद्यापीठ के अध्यापक स्वामी प्रज्ञानपाद और बौद्धभिक्षु आनन्द (विद्यानन्द कालेज, लंका) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। विद्यालय के कार्य को देखकर वे सब अतीव संतुष्ट हुए और उन्होंने मुक्तकंठ से इस संस्था की प्रशंसा की। विद्यालय की निरीक्षक-बही में दर्ज किये हुए कुछ विचार नीचे उद्धृत हैं।

"ता० ११-१२-१९३१ को मुझे हिन्दी विद्यालय का उत्तम कार्य जो हिन्दी प्रचार के लिए किया जाता है, देखकर प्रसन्नता हुई। मैं उसकी सफलता चाहती हूँ।"

—श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय

"बढ़िया कार्य! बिना इसके देश में एकता नहीं आ सकेगी। यदि भारत की जीवित जाति बनना है तो उसे हिन्दुस्तानी की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए और उसके देश व्यापी प्रचार का प्रयत्न करना चाहिए।"

—एन. एस. हर्डीकर

"राष्ट्रीय जागृति को सुप्रतिष्ठित करने के लिए हिन्दी प्रचारक विद्यालय का काम देश के निर्माण के लिए स्तंभ स्वरूप है। यहाँ के संचालकवर्गों की निष्ठा प्रशंसनीय है।"

—स्वामी प्रज्ञानपाद

"हिन्दी प्रचारक विद्यालय का दक्षिण में काम वस्तुतः अन्यन्त स्तुत्य है।"

—राहुल सांकृत्यायन[1]

हिन्दी प्रचारार्थ जगद्गुरु शंकराचार्य (कामकोटि पीठाधीश) का दान—

श्री टंडन जी ने दक्षिण के विभिन्न प्रदेशों में भ्रमण करके हिन्दी प्रचार का

---

1. हिन्दी प्रचारक—दिसंबर १९३१.

निरीक्षण किया और चंदा वसूल करने का भी कुछ प्रयास किया। उनकी यात्रा के समय एक महत्वपूर्ण घटना हुई, जिसका उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है।

दक्षिण के सुप्रसिद्ध श्री काँची कामकोटिपीठाधीश जगद्गुरु श्री शंकराचार्य उन दिनों तंजाउर में 'आडुडयार कोविल' नामक तीर्थ-स्थान में रहते थे। श्री टंडन जी ने उनसे मिलकर हिन्दी प्रचार के सम्बन्ध में बातचीत की। श्री शंकराचार्य जी ने प्रसन्न होकर हिन्दी प्रचार के लिए १०० रुपये का दान दिया। हिन्दी प्रचार के लिए दक्षिण भारतीय का दिया हुआ यही सर्वप्रथम दान है।

सर्वप्रथम शाखा कार्यालय, आन्ध्र—

आन्ध्र देश में उन दिनों बड़ी तीव्रशक्ति के साथ हिन्दी प्रचार होने लगा। आन्ध्र के लिए एक अलग शाखा-कार्यालय खोलना आवश्यक समझा गया। फलतः सन् १९२२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालय 'आन्ध्र शाखा' की स्थापना नेल्लूर केन्द्र में हुई। श्री रामभरोसे श्रीवास्तव (उत्तर भारतीय हिन्दी प्रचारक) इस शाखा-कार्यालय के संचालक नियुक्त हुए। श्री मो० सत्यनारायण जी सहायक संचालक के रूप में कार्य करते थे। कुछ समय बाद यह शाखा-कार्यालय वहाँ से बेजवाड़ा केन्द्र को बदल दिया गया।

शाखा कार्यालय तमिलनाडु—

उन दिनों तमिलनाडु में भी धीरे-धीरे हिन्दी प्रचार ज़ोर पकड़ने लगा था। वहाँ भी एक शाखा-कार्यालय की आवश्यकता मालूम हुई। सन् १९२८ में ट्रिची में साहित्य-सम्मेलन का शाखा-कार्यालय स्थापित हुआ जिसके सर्वप्रथम संचालक पं० अवधनन्दन जी थे।

काँग्रेस की कार्रवाइयों में हिन्दी—

उस समय तक काँग्रेस का सारा काम विशेषतः हिन्दुस्तानी में होने लगा था। इस पर श्रीमती एनिबेसेंट जैसे कुछ अंग्रेज़ी भक्त काँग्रेसी नेता नाराज़ हुए। अंग्रेजी से प्रभावित काँग्रेसी लीडरों का उस समय हिन्दी का विरोध करना स्वाभाविक था। खासकर के मद्रास के अंग्रेज़ी-शिक्षित नेताओं को काँग्रेस की सारी कार्रवाइयाँ हिन्दी में चलाना उस समय बहुत ही अखरता रहा होगा। इस विरोध को देखकर गाँधी जी ने काँग्रेस में 'हिन्दुस्तानी' कार्रवाई पर प्रकाश डालते हुए 'यंग इंडिया' में 'अपील टु मद्रास (Appeal to Madras)' शीर्षक लेख प्रकाशित किया। नीचे लिखे अंश से हमें ज्ञात हो सकता है कि गांधी जी ने अपने पक्ष के समर्थन में कितनी ज़बरदस्त दलीलें दी थीं।

श्रीमती एनिबेसेंट की नाराज़गी—

"मैं देखता हूँ कि अब की काँग्रेस का सारा काम खासकर हिन्दुस्तानी में होने की वजह से श्रीमती एनिबेसेंट नाराज़ हुई हैं और इस आश्चर्य जनक परिणाम पर पहुँची हैं कि इससे काँग्रेस राष्ट्रीय न रह कर एक प्रान्तीय सभा बन गया है। मेरे दिल में श्रीमती बेसेंट के लिए और उनकी भारत सेवा के लिए बहुत इज्ज़त है। अपनी प्रौढ़ उम्र का अंश उन्होंने हिन्दुस्तान की सेवा में खर्च किया है और जिसके कारण वे शायद लोकमान्य तिलक के बाद की, दूसरे मेंबर की लोक-प्रियता प्राप्त कर चुकी हैं, जो उचित ही है। लेकिन आजकल चूँकि पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को उनके विचार पसन्द नहीं पड़ते हैं, इसलिए उनकी लोक-प्रियता कुछ कम हुई है। और उनके इस विचार से कि हिन्दुस्तानी के इस्तेमाल से काँग्रेस एक प्रांतीय सभा बन गयी है, सार्वजनिक रीति से अपना मत भेद प्रकट करते हुए मुझे दुख होता है। मेरी राय में यह एक गंभीर भूल है और जिसकी ओर सबका ध्यान खींचना मेरा फ़र्ज़ हो जाता है।

सन् १९१५ से मैं एक के सिवा काँग्रेस की सभी बैठकों में शामिल हुआ हूँ। उसके कारबार को अंग्रेज़ी के बदले में हिन्दुस्तानी में चलाने की उपयोगिता के विचार से मैंने उनका खास तौर से अभ्यास किया है। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हज़ारों प्रेक्षकों से इसकी चर्चा की है। लोकमान्य तिलक और श्रीमती बेसेंट सहित सभी लोकसेवकों की अपेक्षा मैं शायद सारे देश में ज़्यादा घूम चुका हूँ। और पढ़े-लिखों और अनपढ़ों को मिला कर सबसे ज़्यादा लोगों से मिल चुका हूँ; और मैं सोच-समझ कर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कारबार चलाने के लिए या विचार-विनिमय के लिए हिन्दुस्तानी को छोड़ कर दूसरी कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके। साथ ही व्यापक अनुभव के आधार पर मेरी यही पक्की राय है कि पिछले दो सालों को छोड़ कर बाकी सब सालों में काँग्रेस का करीब-करीब सारा काम अंग्रेजी में चलाने से राष्ट्र को बहुत नुकसान उठाना पड़ा है। इसके अलावा मैं यह भी कहा चाहता हूँ कि एक मद्रास प्रान्त को छोड़ कर बाकी सब जगह राष्ट्रीय काँग्रेस के दर्शकों और प्रतिनिधियों की बड़ी संख्या अंग्रेजी के मुकाबिले हिन्दुस्तानी को हमेशा ही ज़्यादा समझ सकी है। इसका एक आश्चर्यजनक परिणाम यह हुआ कि इन तमाम वर्षों के लंबे समय में काँग्रेस दिखाने भर को राष्ट्रीय रही है। लोक-शिक्षा की सच्ची कसौटी पर उसे कसें, उसकी कीमत कूतें तो कहना होगा कि वह कभी राष्ट्रीय नहीं थी। दुनिया का दूसरा कोई देश होता तो इस तरह की संस्था, जो हर साल अपनी लोकप्रियता में बढ़ती ही रही है, अपनी जिन्दगी के ३४ सालों में आम लोगों के सामने उनकी अपनी भाषा में तरह-तरह के सवालों की चर्चा कर के उन्हें

हल करती और इस तरह लोगों को राजनीति की तालीम देती। और जैसे-जैसे राष्ट्रीय भावना जागेगी और राजनैतिक ज्ञान और शिक्षा की भूख खुलेगी—और खुलनी चाहिए—वैसे-वैसे अंग्रेज़ी में बोलनेवालों के लिए अपने सर्वसाधारण श्रोताओं का ध्यान-पात्र बनना अधिकाधिक कठिन होता जायगा, फिर भले ही वक्ता कितना ही शक्तिशाली और लोकप्रिय क्यों न हो। इसलिए मैं मद्रास प्रान्त की जनता से प्रार्थना करता हूँ कि वह इस बात को समझ ले कि लोक-सेवा का काम करनेवालों के लिए हिन्दुस्तानी सीखना ज़रूरी है।[1]"

विद्यालय-जीवन की एक झाँकी—

मद्रास का हिन्दी प्रचारक विद्यालय सन् १९२४ में ट्रिप्लिकेन के बिग-स्ट्रीट में खुला था। मकान किराये का था। छात्रावास भी उसी में था, सुविधा बहुत ही कम थी। क्लास में बेंच, डेस्क, कुर्सी, मेज़ आदि उपकरण नहीं थे। चटाई बिछा कर उसी पर बैठ कर हमलोग अध्ययन करते थे। अध्यापक भी पढ़ाते समय आसन बिछाकर एक छोटी डेस्क सामने रखे बैठते थे। अंग्रेजी सभ्यता के प्रभावपूर्ण वातावरण में मद्रास जैसे बड़े शहर में वह छोटा विद्यालय निम्न कोटि का माना जा सकता है। लेकिन हमारे लिए वह 'तक्षशिला' का गुरुकुल था।

हमारा जीवन सादा था। हमें १५ रुपये की छात्रवृत्ति मिलती थी। मोटा खाना, मोटा पहनना, यही हमारा आदर्श था। प्रतिमास पन्द्रह रुपये पर गुज़र करना हमारे लिए कठिन था। फिर भी हमें शिकायत नहीं थी। हमें हिन्दी प्रचारक बनकर देश की सेवा के कार्य में अपने आप को अर्पित करने की शक्ति प्राप्त करनी थी; उसी के लिए आवश्यक त्याग-वृत्ति पैदा करनी थी। पहिले ही से हमारा हृदय राष्ट्रीयता के भावों से ओतप्रोत था। इसलिए विद्यालय जीवन के कष्टों की हम परवाह नहीं करते थे।

आचार्य श्री हृषीकेश शर्माजी उसी मकान के एक छोटे कमरे में परिवार समेत रहते थे। उसी कमरे में उनकी रसोई बनती थी। उसी में उनका स्वाध्याय होता था और उसी में वे सोते थे। श्री हरिहर शर्माजी तथा श्री. क. म. शिवराम शर्माजी हमें पढ़ाने में हृषीकेश शर्माजी को समय समय पर मदद पहुँचाते थे। हरिहर शर्मा जी को दक्षिण के हिन्दी प्रचार संबन्धी कार्यों का गुरुतर कार्य संभालना था, साथ ही साथ प्रेस का भी संचालन करना पड़ता था, अतएव पढ़ाने के लिए उनको अधिक अवकाश नहीं मिल सकता था। श्री. क. म. शिवराम शर्माजी कुछ महीने बाद अन्य स्थान पर हिन्दी प्रचार के लिए भेजे गये थे। तब श्री हृषीकेश शर्माजी अकेले ही विद्यालय का सारा कार्य संभालते थे। बीच में उत्तर से दो-तीन हिन्दी अध्यापक

---

१. Young India २१-१-१९२०

पढ़ाने आये थे। लेकिन उनकी सेवाएँ हमें पर्याप्त मात्रा में नहीं प्राप्त हुईं। हमारी सारी पढ़ाई भी हृषीकेश शर्मा पर ही निर्भर रहती थी। वे सदा-सर्वदा पढ़ाई के कार्य में दत्तचित्त रहते थे। हमें सुयोग्य प्रचारक बनाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था।

विद्यालय जीवन हमारा बहुत ही संयत और अनुशासनपूर्ण था। प्रातः काल, पाँच बजे हम उठते थे। शौच आदि से निवृत्त होकर हम विद्यालय की सफ़ाई में लग जाते थे। झाड़ू देना, पाखाना साफ़ करना, पौधों को सींचना आदि दैनिक कार्य-क्रम था। हम नियमित व्यायाम के क्रम का भी पालन करते थे। सबेरे सब मिल कर प्रार्थना करते थे। गुरुदेव हृषीकेश शर्माजी भी अपने सुरीले कंठ से गाते थे। सब छात्र मिल कर उनके साथ गाते थे। प्रार्थना के बाद हम स्वाध्याय करने में लग जाते थे। आठ बजे नाश्ते का समय नियत था। नाश्ते के बाद पाँच मिनट का अवकाश रहता था। सुबह साढ़े तीन घंटे की और शाम को तीन बजे से पाँच बजे तक दो घंटे की कुल साढ़े पाँच घंटे की पढ़ाई होती थी। रविवार के दिन छुट्टी रहती थी। हम लोग हर रविवार को प्रातःकाल अपने आचार्य के साथ ट्रिप्लिकेन 'बीच' जाया करते थे। कभी-कभी समुद्र स्नान का आनन्द भी लेते थे।

विद्यालय जीवन में हमारे चरित्र पर विशेष ध्यान रखा जाता था। खादी पहनना सबके लिए अनिवार्य था। हिन्दी में बोलने का अभ्यास करने के लिए हर सप्ताह वाग्वर्द्धिनी सभा की बैठक हुआ करती थी। सबके लिए उसमें भाग लेना और नियत विषय पर बोलना अनिवार्य था। विद्यालय में हिन्दी का ही वातावरण था। जब कभी आचार्य हमें अपनी-अपनी मातृ-भाषा में बोलते सुनते तो वे तुरंत हमें टोक देते और कहते कि 'तुम हिन्दी सीखने आये हो उसी में बोला करो।' हम लोग उनकी आज्ञा का पालन करते थे। जो कुछ बोलने की शक्ति हमें प्राप्त हुई है, उसका पूरा श्रेय उन्हीं को दिया जा सकता है।

परीक्षा का पाठ्यक्रम—

हमारा पाठ्यक्रम भारी था। प्राचीन पद्य की पुस्तकें अधिक थीं। तुलसी रामायण, सूर-सागर, कबीर-वचनावली, रहिमन-विलास, कवितावली, बिहारी-सतसई, पद्मावत, रामचन्द्रिका आदि श्री हृषीकेश शर्माजी बड़ी विद्वत्ता तथा मनोरंजक ढंग से पढ़ाते थे। लेकिन हम उन सबको कहाँ तक पचा पाये, यह अब कहना कठिन है। हाँ, इतना तो हम जानते हैं कि आज भी इस बात का हमें गर्व है कि उन ग्रन्थों को विद्यार्थियों को पढ़ाने में हम पर्याप्त योग्यता रखते हैं। गद्य की पुस्तकों का उस ज़माने में सर्वथा अभाव था। हिन्दी में आधुनिक कविताओं का क्षेत्र उन दिनों वास्तव में खाली था। नाटक, उपन्यास, कहानी आदि के क्षेत्र में भी काफ़ी प्रगति नहीं हुई थी। हिन्दी-साहित्य के इतिहास के लिए 'मिश्रबन्धु विनोद' ही एकमात्र सहारा था। आलोचनात्मक ग्रन्थ बिलकुल कम थे।

कोर्स एक वर्ष का था। हमने कोर्स पूरा करके 'हिन्दी-प्रचारक' परीक्षा दी। साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से वह परीक्षा चलायी जाती थी। प्रचारक परीक्षा के बाद हमने साहित्य सम्मेलन की 'मध्यमा' परीक्षा की भी तैयारी की। उसमें उत्तीर्ण भी हुए। परीक्षा के समाप्त होते ही करीब डेढ़ वर्ष के अध्ययन के बाद हम प्रचारक बनकर बाहर निकले। उसके बाद वह विद्यालय सन् १९२९ तक बन्द रहा। सन् १९२९ के अन्त में पुनः विद्यालय खुला जिसमें दूसरे दल के विद्यार्थी भर्ती हुए थे, जिनमें श्री. चन्द्रहासन्, श्री सी. जी. गोपालकृष्णन्, श्री. जी. एन. नायर, श्री. पी. जी. वासुदेव, श्री. के. राघवन् नायर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।"[1]

हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास द्वारा संचालित हिन्दी प्रचारक विद्यालय-जीवन की झाँकी नीचे दिये संस्करण से भी मिल सकती है। विद्यालय से बिदा लेते समय एक स्नातक श्री हिरण्मय जी ने यह लेख पढ़ा था। उसका नीचे लिखा अंश विद्यालय जीवन पर प्रकाश डालता है:—

"आज हमें अपने बिछोह का यह अवसर ऐसा प्रतीत होता है मानों एक ही माता के पुत्र मिलकर किसी युद्ध में जाने के लिए तैयार होकर, प्रेममयी माता से आज्ञा पाकर, घुटने टेक कर बैठे हों। ऐसे मौके पर यदि मैं हृदयान्तर्गत भावनाओं के उद्वेग को प्रकट करने की कोशिश करूँ तो अनुचित न होगा।

सादा जीवन—

दक्षिण भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले, भिन्न-भिन्न विचार वाले हम लोगों को किसी अदृश्य शक्ति के आकर्षण से यहाँ आकर विद्यालय में एक उद्देश्य के साधन के लिए इकट्ठे होने का सौभाग्य मिला। यहाँ का सादा जीवन, पवित्र वातावरण, सुयोग्य-नियमबद्धता आदि से हमारे जीवन ने दिन पर दिन नया-नया रूप धारण किया। हम एक ऐसी भाषा को अपनाने के लिए आए थे जो हमारे लिए बिलकुल नयी चीज़ थी। पर एकाध महीने के बाद अविश्रान्त श्रम से हमारी वृद्धि होती गयी। हमें हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम बढ़ता गया और उसके साहित्यामृत के स्वाद का अनुभव मिलता गया। हमारी रग-रग में हिन्दी को अपनाने की उमंग की बिजली दौड़ने लगी। इस समय विद्यालय के प्रिन्सिपलजी ने अपने सहयोगियों की सहायता से हमें इस तरह योग्य बना दिया जैसे कि गिरते-उठते हुए बच्चों को लाड़-प्यार के साथ-साथ हाथ पकड़ कर माता ने चलना सिखाया हो। यों ९ मास में हम आसानी से सभा की विशारद परीक्षा में बैठ सके।

---

१. लेखक के संस्मरण से उद्धृत।

कोर्स की विशेषता—

जब विशारद-कोर्स खतम हो गया तब 'प्रचारक' कोर्स में हमारी पढ़ाई ने एक नया रूप-धारण किया। इसमें ऐसे विषयों को बतलाने की कोशिश की गयी कि हम प्रत्येक विद्यार्थी साहित्य तथा बाहरी बातों पर पर्याप्त ज्ञान पाकर यहाँ से निकले और हिन्दी के सन्देश को घर-घर में पहुँचाने के लिए पूर्ण योग्य बन जाय। इसलिए हमें भूगोल, इतिहास, हिन्दी भाषा व उसके साहित्य का इतिहास तथा उसके अंगोपांग की कई बातें सिखलायी गयीं। इसके साथ व्याख्यान-कला तथा राष्ट्रीय संगीत का भी थोड़ा ज्ञान प्राप्त करने पर जोर दिया गया।

आदर्श अध्यापक—

हमें इस विद्यालय के जीवन में यदि किसी तरह की अभिवृद्धि या सफलता मिली है तो वह पूज्य हृषीकेश जी शर्मा के अविश्रान्त श्रम से ही मिली है। वे सिर्फ हमारे प्रिन्सिपल होकर पढ़ाने या हमारे ऊपर गुरु की हैसियत से अधिकार जमानेवाले नहीं थे। वे हमारे शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के मार्ग-दर्शक थे। वे हमसे इस तरह मिल गये थे कि हम उन्हें अपने जीवन में कभी नहीं भूल सकते। हमारे सामने पवित्र उद्देश्य को रखकर वे दिलोजान से यही चाहते थे कि हम न केवल सुयोग्य हिन्दी प्रचारक बनकर निकलें, बल्कि सच्चे सैनिक बनकर, जनता के सच्चे सेवक बनकर निकलें। निशिदिन उनका यही सुख-स्वप्न था। पंडितजी ने अपने साधु स्वभाव से, निर्मल हृदय से, पवित्र चरित्र-बल से हमारे जीवन में एक नयी स्फूर्ति का संचार कराया है।

विद्यार्थियों के मित्र—

पंडित जी के बाद श्री अवधनन्दन जी की बात याद आती है। उनमें युवकों को अपने प्रेम-सूत्र से बाँध लेने की एक अद्भुत शक्ति है। उन्होंने हमारे हृदय को अपने वश में कर लिया था। उन्होंने हम सबमें एक नयी जान फूँकी है। वे वर्ग में इतनी योग्यता के साथ पढ़ाते थे कि हमें इच्छा बनी रहती कि और भी उनकी कुछ बातें सुनते रहें।

प्रधान मन्त्री तथा परीक्षा मन्त्री—

प्रधान मंत्री पं० हरिहर शर्मा जी तथा परीक्षा मंत्री सत्यनारायण जी यद्यपि कभी-कभी विशेष विषय का वर्ग लेते थे तो भी उनको हम अध्यापकों की श्रेणी में नहीं मानते थे। उनका और हमारा सम्बन्ध और ही है। पूज्य हरिहर शर्मा जी की गंभीर मुख-मुद्रा से और श्रीमान् सत्यनारायण जी के चतुर-वचन पूर्ण उदात्त स्वभाव से हम जरूर प्रभावित हुए हैं।

एकता का भाव—

भले ही हम कभी खेलते हुए बच्चों के जैसे झगड़ा कर बैठे हों तो भी उसके बाद एक ही मिनट में फिर इस तरह मिल जाते थे जैसे कि दूध में पानी। किसी के हृदय में यह भावना न उठती थी कि हम मलयाली अलग हैं, वे तमिल भाई भिन्न हैं और ये कन्नड़ी और तेलुगु हैं। सच्ची बात कहूँ तो मेरा सम्बन्ध कन्नड़ी भाइयों की अपेक्षा दूसरे तमिल आदि भाइयों से ज्यादा रहा।

देश-प्रेम—

आज एक ओर इस विद्यालय के बिछोह का दुःख, दूसरी ओर मित्रों के बिछोह का ताप, तीसरी ओर देश की दयनीय अवस्था का अनुताप हमें जर्जरित कर रहे हैं। आँखों से आँसू बहाते हुए, कन्धों पर कर्तव्य का बोझ लेते हुए, हृदय को पत्थर बना के चारों ओर आवृत अन्धकार को हटाते हुए, हम इस विद्यालय से बिदा हो रहे हैं।"[१]

हिन्दी प्रचार के तरीके और साधन-परीक्षाओं का आरंभ—

सन् १९१८ में जब दक्षिण में हिन्दी प्रचार का श्रीगणेश हुआ तो हिन्दी पढ़ानेवालों के लिए न तो कोई निश्चित पाठ्यक्रम था न क्रमबद्ध परीक्षायें थीं। उत्तर से शिक्षा पा कर आए हुए प्रचारकों में अधिकतर लोग साहित्य सम्मेलन की 'मध्यमा' परीक्षा में उत्तीर्ण थे। जब धीरे-धीरे हिन्दी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी तब एक निश्चित पाठ्य-पद्धति के अनुसार हिन्दी पढ़ाने की आवश्यकता, तदनुसार श्रेणीबद्ध परीक्षायें चलाने की भी आयोजना बनायी गयी। फलतः सन् १९२२ से हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की ओर से प्राथमिक, प्रवेशिका और राष्ट्र-भाषा नाम की तीन क्रमवद्ध प्रारंभिक परीक्षाओं का पाठ्यक्रम निर्धारित हुआ। उसके अनुसार प्रारंभिक परीक्षाएँ ता. ११ मार्च १९२३ रविवार के दिन दक्षिण के विभिन्न केन्द्रों में चलीं। उस समय इन परीक्षाओं का शुल्क चार आने, आठ आने, और एक रुपया रहा।

प्राथमिक परीक्षा के बाद की परीक्षा का नाम उन दिनों 'प्रवेशिका' था। आजकल की 'मध्यमा' परीक्षा उसी का नामांतर मात्र है। 'राष्ट्रभाषा' का नाम अब भी बना हुआ है। राष्ट्रभाषा का स्तर काफी ऊँचा था, क्योंकि वही उस समय की दक्षिण की सर्वोच्च परीक्षा थी। उसका पाठ्यक्रम भारी था। नूरजहाँ (नाटक) मिलन जैसी उच्च श्रेणी की पुस्तकें नियत थीं। उर्दू शैली की पुस्तक 'तिलिस्माती मुंदरी' उनमें शामिल थी।

---

(१) 'हिन्दी प्रचारक'—सितंबर १९३२ पृष्ठ ३०६

राष्ट्र-भाषा के पश्चात् 'तुलसी रामायण' नामक एक और परीक्षा थोड़े समय तक चली। सिर्फ 'तुलसी रामायण' पर प्रश्न पूछे जाते थे। यह परीक्षा अधिक वर्ष तक नहीं चली। बहुत ही कम लोग उसमें बैठते थे। अतएव शीघ्र ही उसे बन्द कर देना पड़ा।

परीक्षाओं के प्रमाण-पत्रों पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा उसकी मद्रास शाखा के संचालकों एवं परीक्षा मंत्री के हस्ताक्षर रहते थे। सन् १९२७ में हिन्दी प्रचार सभा के साहित्य सम्मेलन से सम्बन्ध-विच्छेद होने तक यह क्रम जारी रहा। उसके बाद प्रमाण-पत्रों पर दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मंत्री एवं परीक्षा मंत्री हस्ताक्षर करने लगे।

हिन्दी प्रचारकों को तैयार करने के लिए सन् १९३० तक जो प्रचारक विद्यालय चले उनमें 'हिन्दी प्रचारक' परीक्षा के लिए विद्यार्थी तैयार किये जाते थे। साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की तरफ से ही प्रचारक परीक्षा चलती थी। परीक्षा पास कर लेने पर विद्यार्थियों को 'हिन्दी प्रचारक सनद' दी जाती थी। प्रचारक परीक्षा के पाठ्यक्रम में उस समय शिक्षण-कला, भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान आदि का कोई स्थान नहीं था। केवल साहित्य का ही अध्ययन जरूरी समझा जाता था। सन् १९३० से ही प्रचारक परीक्षा के पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन हुआ। साहित्य के अतिरिक्त शिक्षण-कला का प्रश्न-पत्र भी शामिल किया गया था।

सन् १९३० में सभा ने 'राष्ट्र-भाषा विशारद' नामक एकउ पाधि परीक्षा चलाने का निश्चय किया। इसमें पाँच प्रश्न-पत्र, प्राचीन पद्य, आधुनिक गद्य-पद्य, नाटक, निबंध, व्याकरण, कहानियाँ, साहित्य का इतिहास आदि रखे गये थे। * पहले पहल जब यह परीक्षा चली तब सारे दक्षिण भारत में कुल ३३ परीक्षार्थियों ने परीक्षा दी।

उपाधि वितरण समारोह—

उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को उपाधि देने के लिए विश्वविद्यालय के दीक्षान्तस मारोह की तरह उपाधिदान-उत्सव मनाने का सभा ने निश्चय किया। तदनुसार सन् १९३२ में सर्वप्रथम उपाधि वितरण-समारोह मद्रास में हुआ। श्री. आचार्य काका कालेलकर ने उसमें दीक्षान्त भाषण दिया था। उपाधि लेनेवाले स्नातकों को सभा की तरफ़ से सभा की मुहरवाली खादी-पोशाक दी जाती थी। उसी पोशाक में वे उपाधि पा सकते थे। उपाधि-पत्रों पर सभा के संस्थापक एवं आजीवन अध्यक्ष पूज्य महात्मा गाँधी जी तथा सभा के परीक्षा मंत्री के हस्ताक्षर की मुहर चालू है। सन् १९३१ से १९६२ तक सभा के २८ उपाधि वितरण समारोह हुए हैं। उनमें दीक्षान्त भाषण देनेवालों के नाम निम्नलिखित हैं:—

---

* हिन्दी परीक्षाओं के विकास-क्रमवाले प्रकरण में विस्तृत परिचय देखें।

१९३१ —आचार्य काका कालेलकर
१९३२ —प्रोफ़ेसर मोहम्मद आगा शुस्तरी
[1]१९३३ —पं० रामनरेश त्रिपाठी
१९३४ —बाबू प्रेमचन्द
१९३५ —पं० सुन्दरलाल
[2]१९३६ —बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन
१९३७ —जनाब याकूब हसन सेठ
१९३८ —श्रीमती सरोजिनी नायडू
१९३९ —श्री बालगंगाधर खेर
१९४० —डा० पट्टाभि सीतारामय्या
१९४१ —आचार्य विनोबा भावे
१९४२, १९४३ —जनाब सैयद अब्दुल्ला
[3]१९४६ —राजकुमारी अमृत कौर
१९४८ —डा० जाकिर हुसैन
१९४९ —आचार्य विनोबा भावे
१९५० —श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर
१९५२ —„ श्रीप्रकाश
१९५३ —„ ए. जी. रामचन्द्र राव
१९५४ —डा. वी. रामकृष्ण राव
(जनवरी) १९५६ —श्री. एन. सुन्दरय्यर
(आगस्त) १९५६ —राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद
१९५७ —श्री जगजीवन राम
१९५८ —डा. हरेकृष्ण मेहताब
१९५९ —श्री सदाशिव कनोजी पटेल
१९६० —डा. बी. गोपालरेड्डी
१९६१ —डा. श्रीमाली
१९६२ —श्री लालबहादुर शास्त्री

१, २, ३. सन् १९३३, ३६ और ४६ के उपाधि वितरण समारोहों में पूज्य महात्मा गाँधी जी ने अध्यक्षपद ग्रहण किया ।

प्रकरण ३

सभा स्वावलंबी संस्था के रूप में—

सन् १९२७ तक दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का संचालन-सूत्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हाथ में था। सन् १९२७ में सम्मेलन से अलग कर के सभा को एक स्वतंत्र संस्था के रूप में रजिस्टर कराने का प्रस्ताव हुआ। प्रस्तावक स्व. जमनालाल जी थे। अखिल कर्नाटक हिन्दी प्रचार सम्मेलन के अवसर पर ही यह प्रस्ताव सभा के कार्यकर्ताओं की एक विशेष बैठक में स्वीकृत हुआ था। तत्सम्बन्धी विवरण आन्ध्र हिन्दी प्रचार संघ द्वारा प्रकाशित हिन्दी प्रचार के इतिहास में उल्लिखित है जिसका आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है।

"यों चौमुखी प्रगति प्राप्त कार्य का व्यवस्थित रूप से संचालन करने के लिए श्री सिद्धनाथ पंत ने सन् १९२७ के जुलाई मास में बेंगलोर में अखिल कर्नाटक हिन्दी प्रचार सम्मेलन का संगठन किया। इस सम्मेलन का अध्यक्षपद पूज्य महात्मा गाँधी ने ग्रहण किया और उसका उद्घाटन महात्मा मालवीय जी के हाथों हुआ। हिन्दी प्रचार के इतिहास में यह अतीव महत्वपूर्ण घटना है कि इसी सम्मेलन के अवसर पर मद्रास के हिन्दी प्रचार कार्यालय के नव संगठित रूप 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की पहली बैठक बंगलूर में संपन्न हुई। उस बैठक में सभा के आजीवन अध्यक्ष महात्मा गाँधी, श्री पं० हरिहर शर्मा (प्रधान मंत्री), श्री. पं० हृषीकेश शर्मा (परीक्षा मंत्री) और श्री. मोटूरी सत्यनारायण (प्रचार मंत्री) ने भाग लिया। अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओं में श्री. पं० देवदूत विद्यार्थी, पं० सिद्धनाथ पंत आदि शामिल थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' को पृथक् करने का प्रस्ताव इसी बैठक में स्व० श्री सेठ जमनालाल जी बजाज ने पेश किया और वह सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।[1]"

स्वावलंबन का आदर्श—

जब से दक्षिण में हिन्दी का प्रचार बढ़ने लगा, तब से साहित्य सम्मेलन दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार कार्य में समुचित रूप में आर्थिक सहायता पहुँचाने एवं यहाँ के कार्यसंचालन में समयोचित ध्यान देने में असमर्थ हुआ। इधर कार्य बढ़ता गया, उधर से आवश्यक आर्थिक सहायता समय पर नहीं पहुँचती थी। दक्षिणवाले हिन्दी

---

१. हिन्दी प्रचार का इतिहास—"कर्नाटक में हिन्दी प्रचार" पृष्ठ-८०।

प्रेमियों की ओर से यह शिकायत हुई कि उत्तर वाले विशेषतः साहित्य सम्मेलन वाले इधर ध्यान नहीं देते। संभवतः सम्मेलन के संचालकों की यह धारणा रही होगी कि दक्षिण के कार्य के लिए दक्षिण से ही धन-संचय करना चाहिए। महात्मा गाँधी स्वावलंबन के पक्षपाती थे। उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि दक्षिण के हिन्दी प्रचार-कार्य का पूरा भार दक्षिणवालों को ही स्वयं उठाना चाहिए। इस संबन्ध में साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों से परामर्श लिया गया। यही कारण है कि अन्त में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, एक स्वतंत्र संस्था के रूप में सन् १९२७ में रजिस्टर्ड हुई।

'साहित्य सम्मेलन' से संबन्ध विच्छेद—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा सन् १९२७ में साहित्य सम्मेलन के दायित्व-से मुक्त हुई और स्वतंत्र संस्था के रूप में उसका रजिस्ट्रेशन भी हो गया। दुर्भाग्य से उस समय दोनों संस्थाओं में कुछ मत-भेद हो चला। उसका कारण तो बड़ा विचित्र और हास्यास्पद प्रतीत होता है। केवल तुच्छ बातों को आवश्यकता से अधिक महत्व दे कर संघर्ष पैदा करने की प्रवृत्ति मनुष्य की परंपरागत दुर्बलता है। साहित्य सम्मेलन के मत-भेद की तुच्छता जानने के लिए उस समय के "सम्मेलन वार्षिक विवरण" से उद्धृत और 'हिन्दी प्रचार' फरवरी अंक १९३२ में प्रकाशित टिप्पणी का नीचे लिखा अंश बहुत ही सहायक होगा।

"सन् १९१८ में जो अधिवेशन इन्दौर में गाँधी जी के सभापतित्व में हुआ था उसमें मद्रास में हिन्दी प्रचार का प्रश्न उठाया गया था और उसी वर्ष एक संस्था भी स्थापित की गयी थी। ९ वर्ष तक यह संस्था सम्मेलन के अधीन थी। किन्तु १९२६ के अन्त में इस संस्था के और सम्मेलन के पदाधिकारियों में कुछ मत-भेद हो गया। दिन पर दिन बात बढ़ती गयी और इसलिए जो सराहनीय कार्य उस संस्था द्वारा हो रहा था उसकी चर्चा करना यहाँ पर अनावश्यक है। किन्तु उस संस्था के और सम्मेलन के संबन्ध के विषय में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठा है। सम्मेलन की तरफ से जो हिन्दी भाषा में परीक्षाएँ ली जाती हैं, उसके पाँच केन्द्र दक्षिण भारत में हैं। और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की ओर से भी हिन्दी भाषा में उस प्रान्त में परीक्षा ली जाती है। इनके आपस में मत भेद होने के कारण दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा यह चाहती है कि वह संस्था सम्मेलन की संबद्ध संस्था मानी जावे और दक्षिण भारत में सम्मेलन द्वारा कोई परीक्षा अलग से न हो। इसके विपरीत इस समय सम्मेलन की परीक्षाओं के जो केन्द्र हैं, उनके व्यवस्थापक चाहते हैं कि सम्मेलन की परीक्षाएँ बन्द न की जावें। यह प्रश्न बड़े महत्व का है। इसलिए स्थायी समिति ने इसका निर्णय वार्षिक अधिवेशन पर छोड़ दिया। सम्मेलन की परीक्षाओं के बन्द

करने से सम्मेलन की आर्थिक हानि लगभग ६० प्रतिवर्ष की होगी। किन्तु सोचना यह चाहिये कि जब दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार का कार्य एक सुसंगठित संस्था को सम्मेलन ने सौंप दिया है कि जिसके सभापति महात्मा गाँधी इस सम्मेलन के भी भूतपूर्व सभापति हैं और जब इतने दिनों से यह संस्था चाहती है कि नियमानुसार यह सम्मेलन से संबद्ध कर ली जावे तब उस संस्था को संबद्ध संस्था मान कर दक्षिण भारत के कुल केन्द्रों का प्रबंध उस संस्था को सौंप दिया जावे और उस संस्था से यह नियम बनवा लिया जावे कि परीक्षा की तिथि, पाठ्य-क्रम, परीक्षक नियत करना आदि कुल अधिकार उस संस्था को होते हुए भी उसके लिए आवश्यक है कि वह उन सबों की सूचना प्रतिवर्ष सम्मेलन को देती रहे और यदि सम्मेलन इन विषयों में कोई परामर्श दे तो उस परामर्श को उस संस्था को स्वीकार करना पड़े।"

"जिस प्रकार दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार का कार्य हो रहा है उसी प्रकार पंजाब प्रांत में भी प्रचार की अत्यंत आवश्यकता है। वहाँ पं० भीमसेन जी द्वारा प्रचार कार्य हो रहा है। यदि पं० भीमसेन को वैसी ही धन की और मनुष्य का सहायता मिल जाय जैसी दक्षिण भारत के लिए पं० हरिहर शर्मा को मिलती है तो संभव है, पंजाब का कार्य भी उतना ही सन्तोष जनक हो जावे"।[1]

उपर्युक्त उद्धरण की टीका-टिप्पणी कर के किसी नतीजे पर लेखक को नहीं पहुँचना है, न किसी प्रकार की दूषित मनोवृत्ति से प्रेरित होकर उस मतभेद की निन्दा करना ही लेखक का उद्देश्य है। इस मत-भेद के मूल में केवल स्वार्थजन्य मन-मुटाव ही हम पा सकते हैं। निष्पक्ष होकर इस वक्तव्य को ध्यान पूर्वक जाँच की जाय तो उक्त बात स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगी।

इस संबन्ध-विच्छेद के संबन्ध में पं. हरिहर शर्मा जी ने "दक्षिण भारतीयों से निवेदन" शीर्षक एक वक्तव्य निकाला था जिसमें उन्होंने सभा की तत्कालीन आर्थिक दशा पर प्रकाश डालते हुए दक्षिण भारतीयों से धन के लिए अपील भी की थी। उसका निम्न लिखित अंश ध्यान देने योग्य है।

"जो लोग दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार के इतिहास से परिचित हैं, वे जानते हैं कि यह कार्य १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के, जो इन्दौर में हुआ था, एक विशेष प्रस्ताव का फल है। उसी संस्था को पूज्य महात्मा जी ने यह कार्य सौंप दिया था। उसने सुचारु रूप से इस कार्य का संचालन कुछ साल तक (सन् १९१८ से २७ तक) किया। जब तक उसके मंत्री-मंडल में राष्ट्रीय विचार के सज्जनों की

---

१. हिन्दी प्रचारक फरवरी १९३२ हिन्दी साहित्य सम्मेलन व मद्रास प्रचार पृष्ठ—५०।

उपस्थिति संतोष जनक बनी रही, परस्पर सद्भावना से काम में प्रगति होती गयी। परंतु जब कुछ लोगों को अधिकार-लोलुपता के कारण उस संस्था के मंत्रियों से कुछ मत-भेद हुआ और अंत में परिस्थिति यहाँ तक पहुँची कि उस समय के मंत्री-मंडल ने कोर्ट में जाने की धमकी पूज्य महात्मा जी, जमनालालजी तथा इन पंक्तियों के लेखक (हरिहर शर्मा जी) को रजिस्टर्ड नोटिस द्वारा दी। धन्य हैं महामना पं. मालवीय जी कि जब उन्होंने यह बात सुनी, तुरंत ही आप ने इस मत-भेद संबन्धी झगड़े का निपटारा कर दिया और पूज्य महात्मा जी को दक्षिण भारत की इस प्रचार संस्था की संपत्ति, संचालन आदि का पूरा अधिकार उक्त सम्मेलन की स्थायी समिति के एक प्रस्ताव द्वारा दिलाया। महात्मा जी ने इस संस्था की रजिस्टरी १८६१ की २१ धारा के अनुसार धार्मिक सार्वजनिक संस्थाओं में शामिल कर करा दी।[1]

उस समय सभा की कार्यकारिणी समिति में १५ सदस्य थे। उनके नाम यों हैं।

समिति के पदाधिकारी—

अध्यक्ष —महात्मा गांधी

उपाध्यक्ष —श्री. एस० श्रीनिवास अय्यंगार
श्री. के० नागेश्वरराव पन्तुलु

कोषाध्यक्ष —श्री. के० भाष्यम्

मंत्री —हरिहरशर्मा

सदस्य —श्री. जमनालाल बजाज
" पुरुषोत्तमदास टंडन
" डा० पट्टाभि सीतारामय्या
" डा० पी० सुब्बरायन (मुख्य मंत्री, मद्रास)
" एस० सत्यमूर्ति
" सी० राजगोपालाचारी
" रामनाथ गोयनका
" करणसिंह मेहता
" प्रो० सत्यनारायण
" पं० हृषीकेश शर्मा

राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थायें—

देश में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार करने के लिए अखिल भारतीय शिक्षण-संस्थाओं की जो आयोजना बनी, उसके अनुसार राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था के रूप में दक्षिण भारत

---

१. 'हिन्दी प्रचारक' फरवरी १९३२.

हिन्दी प्रचार सभा को भी शामिल किया गया। इस सम्बन्ध में ता० १५-१-३० को गुजरात विद्यापीठ में आचार्य युगलकिशोर जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् का एक विराट अधिवेशन हुआ था। आचार्य युगलकिशोर जी उन दिनों गुरुकुल काँगड़ी के कुलपति थे। आचार्य नरेन्द्रदेव, आचार्य काका कालेलकर जैसे प्रकाण्ड पण्डितों ने उसमें भाग लिया था। तीन दिन के अधिवेशनों में राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी कई विषयों पर विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद हुआ। अधिवेशनों में स्वीकृत प्रस्ताव देश की राष्ट्रीय शिक्षा तथा राष्ट्र-भाषा के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाले हैं। दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन की दिशा में मार्ग-दर्शन करने में उन प्रस्तावों का महत्व सबसे अधिक माना जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा तथा शिक्षण-संस्थाओं के सिद्धान्त, आदर्श और कार्यों की रूप-रेखा की जानकारी निम्नलिखित कुछ प्रस्तावों से भली-भाँति हासिल हो सकती है।

महत्वपूर्ण प्रस्ताव—

(१) देश को वर्तमान स्थिति में राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं का कार्य मुख्यतः स्वराज्यसेवी सेवक तैयार करना है।

(२) राष्ट्रीय-शिक्षा का प्रचार निर्बाध गति से करने के लिए एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना हो, जिसमें देश की सारी गैर-सरकारी संस्थाओं का प्रतिनिधित्व रहे।

(३) प्रत्येक संस्था का कर्तव्य है कि वह अपने कार्यकर्ताओं और विद्यार्थियों के लिए हिन्दी का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य करे और उसके लिए तुरन्त उचित व्यवस्था करे।

(४) संस्थाओं के कार्यकर्ताओं तथा विद्यार्थियों के लिए खादी पहनना, सूत कातना, सरकार से कोई सम्बन्ध न रखना, जाति-पाँति का विचार छोड़ देना तथा धार्मिक सहिष्णुता रखना अत्यन्त आवश्यक है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-मण्डल की इस आयोजनाके अनुसार नीचे लिखी संस्थाएँ मण्डल की सम्बद्ध-संस्थाएँ मानी गयीं।

१. गुजरात विद्यापीठ —अहमदाबाद
२. काशी विद्यापीठ —काशी
३. बिहार विद्यापीठ —पटना
४. तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ —पूना
५. जामिया मिलिया इसलामिया —दिल्ली
६. गुरुकुल —काँगड़ी

७. गुरुकुल —वृन्दावन
८. श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन —भावनगर
९. वंगीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् —कलकत्ता
१०. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा —मद्रास

आदर्श प्रचारक—

उन दिनों प्रचारक बनने के लिये हर एक को नीचे लिखी प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़ती थीं:—

१—मेरा दृढ़ विश्वास है कि देश के लिए राष्ट्र-भाषा का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

२—मैंने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार-कार्य में अपना पूरा समय व्यतीत करने का निश्चय कर लिया है।

३—मेरे तथा मेरे कुटुम्ब के निर्वाह के लिए सभा जो प्रबन्ध करेगी, उससे मैं संतुष्ट रहूँगा। मैं अपने समय और शक्ति को अपने कुटुम्ब के लिए धनोपार्जन करने में न बिताकर सभा के उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णरूप से योग दूँगा।

४—मैं सदा सभा के उद्देश्यों को ही अपने सामने रखूँगा और उसकी वृद्धि और उन्नति के लिए पूर्ण उत्साह के साथ चेष्टा करूँगा।

५—सभा के नियम तथा उसकी आज्ञाओं के लिए मैं बाध्य रहूँगा। मैं सभा कार्यालय की सामयिक सूचना के अनुसार कार्य किया करूँगा।

६—मैं किसी जाति-पाँति, पंथ, धर्म आदि का भेद-भाव न रखकर सभी को समान भाव से हिन्दी सिखाने के लिए सर्वदा तैयार रहूँगा।

६—मैं अपने व्यक्तिगत जीवन को सादा और पवित्र रखूँगा।

प्रचारकों का चरित्र कैसा हो ?—

सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को अपना चरित्र उज्ज्वल रखना चाहिए, इस सम्बन्ध में गाँधीजी ने समय-समय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। गाँधीजी का अटल विश्वास था कि जनता की सेवा करनेवाले, कार्यकर्ता, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न रहें, अपने चरित्र की शुद्धि पर ही समाज में प्रतिष्ठित हो सकते हैं। उन्होंने विशेषतः दक्षिण के हिन्दीप्रचारकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए 'हरिजन-सेवक' में कई एक लेख लिखे जिनका प्रभाव प्रचारकों पर पड़े बिना नहीं रह सका। प्रचारकों को दक्षिण में जो कुछ प्रतिष्ठा मिली है, केवल उनके चरित्र बल पर ही प्राप्त हो सकी है। दक्षिण के हिन्दी-विद्यार्थियों में अधिक संख्या लड़कियों की रही है। उनके बीच में अपने नैतिक बल के सहारे, पतन के गहरे गड्ढे में गिरे बिना बचे

रहने में सभी प्रचारक सफल हुए हैं। हो सकता है कहीं-कहीं बहुत ही अल्पमात्रा में इसका अपवाद भी हुआ हो। लेकिन कोई भी हिन्दी-प्रचारक इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि प्रचारकों की सफलता उनके चरित्र-बल पर ही निर्भर रही है।

महात्मा गाँधीजी ने सन् १९३७ के 'हरिजनसेवक' में इस सम्बन्ध में जो लेख लिखा था, उसका सारांश नीचे उद्धृत है:—

"जिन संस्थाओं के साथ मेरा निकट का सम्बन्ध रहता है, उन्हें जनसमुदाय-पुरुषों तथा स्त्रियों से काम लेना पड़ता है। ये संस्थाएँ सैकड़ों स्वयं-सेवकों की मदद से अपना काम चलाती हैं। उनके पास एक नैतिक बल के सिवाय दूसरे किसी प्रकार की कोई सत्ता नहीं होती। स्वयं-सेवकों पर जनता विश्वास रखती है, क्योंकि वह मान लेती है कि उनका चरित्र शुद्ध होगा। जिस क्षण वे अपनी चारित्र्य-शुद्धि की साख खो देंगे, उसी क्षण उनकी प्रतिष्ठा और उनका प्रभाव कम हो जायगा। यह चीज दक्षिण भारत के हिन्दी शिक्षकों पर बहुत जोर से लागू होती है। दक्षिण भारत में परदे का रिवाज़ नहीं है। वहाँ लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ हिन्दी में ज्यादा दिलचस्पी लेती हैं। शिक्षकों को अपने धन्धे के कारण ही अपने शिष्यों और शिष्याओं पर नैतिक अधिकार प्राप्त होता है। उससे उनका सन्देह दूर हो जाता है और वे एक तरह का विश्वास, जो साधारणतया नहीं रखा जाता, शिक्षकों के प्रति रखने लगते हैं।

इस आशय का एक सुझाव पहले ही आ चुका है कि अगर हिन्दी-प्रचार-सभा अपने को सौ फ़ीसदी सुरक्षित बनाना चाहती है, तो उसे लड़कियों को खानगी शिक्षा देने की प्रथा बिलकुल ही बन्द कर देनी चाहिए। मैं इससे सहमत न हो सका। हम चाहे जितने ही सावधान रहें, तो भी पतन की घटनाएँ तो घटेंगी ही। इसलिए जितनी ही सावधानी रखें, थोड़ी ही है। पर लड़कियों की खानगी शिक्षा बन्द कर देना तो नैतिकता के सम्बन्ध में अपना दिवाला कबूल कर लेने जैसी बात है। हमारे लिए घबरा जाने या हताश हो जाने का कोई कारण नहीं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दी शिक्षकों ने साधारणतया चरित्र-शुद्धि के सम्बन्ध में निष्कलंक रहकर अपना कार्य सम्पन्न किया है। पतन सिद्ध हो जाने पर एक भी उदाहरण मैंने जनता से छिपा कर नहीं रखा। हम प्रलोभन को आमंत्रण न दें, इसी तरह प्रलोभन से बिलकुल ही बचने के लिए लोहे के पिंजड़े में बन्द होकर न बैठ जायँ। प्रलोभन जब बिना बुलाये हमारे सामने आ जाय, तब उसका सामना करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।"[१]

---

(१) **हरिजन सेवक—** १०-४-३७

वर्धा में हिन्दी प्रचारकों के अध्यापनमंदिर का उद्घाटन करते समय सन् १९३७ में गाँधीजी ने जो भाषण दिया, उसमें भी उन्होंने प्रचारकों के चरित्र के सम्बन्ध में अपने विचार यों प्रकट किये थेः—

"राजेन्द्रबाबू ने यह कहकर कि प्रचारकों को चरित्रवान होना चाहिए, मेरा काम बहुत हल्का कर दिया है। यह काम विद्वानों का नहीं है, यह तो फ़कीरों का काम है जिनका चरित्र बिलकुल शुद्ध हो और जो स्वार्थ-साधन से परे हों। अगर लोग आपको न चाहें, और जिन लोगों के बीच जाकर आप काम कर रहे हों, वे आप पर हाथ चला बैठें, तो भी मैं उन्हें दोष नहीं दूँगा। क्योंकि उन्होंने अहिंसा का कोई व्रत तो नहीं लिया है।

इसी तरह से धन से भी हमको ज्यादा मदद नहीं मिलेगी। अकेले धन से क्या हो सकता है ! रुपये से भी अधिक हम चारित्र्य को महत्व देते हैं।"[1]

प्रचारकों की सफलता की कुंजी—

हिन्दी-प्रचार-सभा के अधीन कार्य करनेवाले प्रचारकों को अपने कार्य-क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए क्या-क्या करना चाहिए, क्या-क्या जानना चाहिए तथा उनको कैसा रहना चाहिए, इन बातों की तरफ़ उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए सभा समय-समय पर निर्देश देती रही। क्योंकि हिन्दी प्रचार का कार्य एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य है। जनता के बीच सफलता पूर्वक कार्य करने के लिए प्रचारकों का काफ़ी योग्यता रखना अत्यन्त आवश्यक है। जो प्रचारक जितना ही सुयोग्य, कार्य-दक्ष एवं चरित्रवान हो उसका कार्य उतना ही सफल और सुदृढ़ बन सकता है। हिन्दी प्रचारकों में मुख्यतः निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक समझा गया था।

१. राष्ट्रीय भावना—

हिन्दी प्रचार का कार्य प्रधानतः राष्ट्रीय है। हिन्दी के द्वारा देश में एकता पैदा करना ही हिन्दी प्रचार का मुख्य उद्देश्य है। राष्ट्रीयभावना के बिना यह कार्य करना कठिन है। अतएव हिन्दी प्रचारकों के लिए कार्य-क्षेत्र में उतरने के पहले समझ लेना आवश्यक है कि वे देश की सेवा करने जा रहे हैं। हिन्दी प्रचारक केवल "हिन्दी-टीचर" अथवा 'हिन्दी अध्यापक' नहीं है, बल्कि वह देश का सच्चा राष्ट्रीय शिक्षक है। हिन्दी अध्यापक या टीचर बनना कठिन नहीं है। किंतु हिन्दी प्रचारक बनना आसान नहीं है। प्रचारकों के लिए राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीयता का पक्का आराधक बनना आवश्यक है।

---

(१) हरिजन सेवक — १७-७-३७

२. चरित्र-बल—

हिन्दी प्रचारक राष्ट्रीयता का संदेशवाहक है। उसे राष्ट्रीय शिक्षक बनकर गाँव-गाँव में जाना पड़ता है। घर-घर में जा कर राष्ट्र-भाषा का सन्देश फैलाना है। सभी धन्धों के तथा सभी श्रेणियों के लोगों के संपर्क में उसे काम करना पड़ता है। बच्चे, जवान, बूढ़े, सबका उसे प्रेम-पात्र बनना है। साधारणतः किसी भी स्कूल या कालेज का टीचर लोगों के इतने निकटतम संपर्क में नहीं आता। जनता में उसे कार्य करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हिन्दी प्रचारक का कार्य-क्षेत्र बड़ा व्यापक है। उसका कार्य त्याग और सेवा पर अधिष्ठित है। स्कूल की चहारदीवारी के अन्दर केवल नियमों के पाबन्द रह कर कार्य करना ही हिन्दी टीचर के लिए पर्याप्त है। उसकी कार्यसीमा, स्थान और समय से बन्धी रहती है। लेकिन हिन्दी प्रचारक को राष्ट्रीय कार्यकर्ता के रूप में विस्तृत क्षेत्र में समाज की प्रत्येक व्यक्ति के साथ पेश आना पड़ता है। सबको हिन्दी की तरफ़ आकृष्ट करना पड़ता है। अतः उसमें चरित्रबल की अत्यंत आवश्यकता है। समाज में उसकी योग्यता की पहली कसौटी उसकी सच्चरित्रता और ईमानदारी है।

३. सेवा-परायणता—

गांधीजी की राय में वही सच्चा राष्ट्रसेवक है जो जनता से अपनी सेवा का प्रतिफल नहीं चाहता हो तथा जनता से कुछ भी पारिश्रमिक माँग नहीं लेता हो। लेकिन हिन्दी प्रचारक भी समाज का प्राणी है, उसके भी पेट होता है, घर-बार होता है, बाल-बच्चे होते हैं तब इन सब का निर्वाह कैसे हो? गाँधीजी का यही कहना है कि किसी भी राष्ट्रीय कार्य-कर्ता को अपनी तथा अपने परिवार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि जनता उसकी सेवा चाहती है तो उसके जीवन-निर्वाह का भार जनता स्वयं उठा लेगी। यदि जनता उसकी सेवा नहीं चाहती हो तो यह मानना पड़ेगा कि वह सेवा के लायक नहीं है। ऐसी हालत में उसका उस क्षेत्र से बाहर जाना ही बेहतर होगा। अतएव हिन्दी प्रचारक को भी अपनी सच्ची सेवा और चरित्र के बल पर जनता का प्रेम-पात्र बनना चाहिए। चरित्रवान और आदर्शनिष्ठ प्रचारक ही इसमें सफलता प्राप्त कर सकता है।

४. विनयशीलता, समय-पालन-निष्ठा एवं संगठन—

उपर्युक्त गुण भी उनमें होने चाहिए। विरोधी के सामने भी बड़ी नम्रता के साथ व्यवहार करने की कुशलता उनमें होनी चाहिए। मतभेद होने पर बिना क्रोध व जोश के अपने विचारों को युक्ति संगत तथा संयत भाषा में प्रकट करने की दक्षता भी उसके लिए आवश्यक है। जाति-पाँति या वर्ग अथवा धर्म के संकीर्ण दायरे से

उसे मुक्त रहना चाहिए। सब के साथ समान व्यवहार करना उसके लिए आवश्यक है।

समय के पालन में भी उसे सदा जागरूक रहना चाहिए। समय की पाबंदी ही उसकी सफलता की कुंजी है।

संगठन-शक्ति ही उसकी सफलता की पहली सीढ़ी है। सबका सहयोग प्राप्त करना, कार्य को आगे बढ़ाना, धन संग्रह करना और हिन्दी प्रेमी मंडलों तथा वर्गों का संगठन एवं संचालन करना उसके दैनिक कार्य हैं। यदि संगठन का तरीका उसे नहीं आता हो तो उसके असफल होने में देर नहीं लगती। उसे व्यवहार-कुशल भी बनना चाहिए। विभिन्न प्रकार के लोगों से कैसे पेश आना चाहिए, उनसे कैसे काम लेना चाहिए, उन्हें कैसे खुश रखना चाहिए आदि बातों का ज्ञान उसके लिए आवश्यक है। केवल व्यवहार-ज्ञान के अभाव में हिन्दी प्रचारक का असफल होना आश्चर्य की बात नहीं है।

५. विषय-ज्ञान—

हिन्दी प्रचारक का मुख्य कार्य हिन्दी पढ़ाना है। अतः हिन्दी की पूरी योग्यता उसमें होनी चाहिए। मातृ-भाषा की भी योग्यता उसके लिए आवश्यक है। उन भाषाओं में प्रभावशाली ढंग से बोलने की शक्ति उसे प्राप्त करनी चाहिए। शुद्ध-उच्चारण तथा शुद्ध भाषा-शैली का उसे काफ़ी अभ्यास होना चाहिए।

पढ़ाने के तरीकों तथा मनोविज्ञान का भी ज्ञान रखना उसके लिये ज़रूरी है। शिक्षणकला का ज्ञान प्राप्त करना भी सुयोग्य अध्यापक बनने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

६. त्याग-निष्ठा—

प्रचारक बनने के लिए हर एक को कुछ प्रतिज्ञायें लेनी पड़ती हैं। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा समय-समय पर हिन्दी प्रचारकों को अपने कर्तव्य-पथ में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन देती रही। नये केन्द्र में बिना किसी पूर्व परिचय के हिन्दी का सन्देश ले कर जाना, जनता को अपनी ओर आकृष्ट करके उनकी सहानुभूति को प्राप्त करना और सफलता पूर्वक हिन्दी सिखाना साधारण कार्य नहीं था। प्रचारक की कार्य कुशलता, सच्चरित्रता और त्याग निष्ठा पर ही कार्य की सफलता निर्भर रहती है। स्कूल का कोई अध्यापक जब दूसरे स्कूल में स्थान परिवर्तन पर जाता है, तब उसे वहाँ बनी-बनाई व्यवस्था के अनुसार सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। लेकिन एक अपरिचित स्थान पर जहाँ के लोगों से कोई परिचय नहीं, जहाँ कोई सुविधा और साधन प्राप्त नहीं, अपने कार्य के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करके सफलता के

साथ कार्य करने की क्षमता रखनेवाले प्रचारक उन दिनों बहुत ही कम थे। हिन्दी का क्षेत्र हिन्दी प्रचारकों के लिए आकर्षक भी नहीं था। उसमें उपवास वृत्ति और काँटों की शय्या ही प्रायः सुलभ होती थी। ऐसे अवसर पर राष्ट्रीयता की उज्ज्वल भावना ही एक ऐसी प्रेरक शक्ति रही जो, सैकड़ों हिन्दी प्रचारकों को उन कंटकाकीर्ण पथ पर अग्रसर करती रही। भूखे-प्यासे और अर्द्धनग्न रह कर भी वे अपने आदर्श पर अटल रहे।

सभा का निर्देश—

सफल प्रचारक बनने के लिए सभा में प्रचार विभाग के द्वारा जो निर्देश दिया था उसे यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है। इससे ज्ञान हो सकता है कि उन दिनों में सफल प्रचारक बनने के लिए प्रचारकों को क्या-क्या करना पड़ता था।

मान लीजिये, आप प्रचार-क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं। आपको किसी केन्द्र में जा कर प्रचार कार्य शुरू करना है। आप अपने में पूरा पांडित्य रखते हैं। लेकिन आप नये प्रचारक हैं। आपको विद्यालय और विचार जगत के बाहर का अनुभव नहीं है या कम है। आपको एक नये स्थान में जा कर नये लोगों के बीच काम करना है, काम क्या करना है, अपने लिए काम प्राप्त करना है, काम बनाना है। क्योंकि पहले से बना-बनाया तैयार तो कुछ रहता नहीं कि आप जाएँ और उसमें लग जाएँ। आप को तो स्वयं अपना रास्ता निकालना होगा, लोगों में पहले हिन्दी सीखने की इच्छा पैदा करनी होगी, तब उसकी पूर्ति के लिए आपको काम करना होगा। हिन्दी वर्ग चला कर हिन्दी सिखानी होगी। एक नये केन्द्र में जाकर कैसे काम शुरू करना चाहिए, इसके संबन्ध में कुछ स्पष्ट विचार रखना आवश्यक है।

हिन्दी प्रचार देशभक्ति की दीक्षा है—

"हिन्दीप्रचारक राष्ट्रभाषा के प्रचारक हैं। राष्ट्रभाषा का प्रचार भारतवासियों की एकता के लिए है। भारत की आजादी और उन्नति के लिए एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति ने कहा है—

'एक बोली से एक दिल होगा,
एक दिल से एक कोशिश होगी,
एक कोशिश से एक किस्मत होगी,
और वह किस्मत आज़ादी है।'

हिन्दी-प्रचार केवल अन्तर प्रान्तीय परिचय और व्यवहार बढ़ाने के लिए ही नहीं, वरन् उससे भी बढ़ कर एक नूतन भारतीय राष्ट्र का निर्माण करने के लिए है। भारतवासी देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं के कारण, एक विदेशी भाषा के जाल में

फँस जाने के कारण विभक्त, कमजोर, लक्ष्यहीन और परमुखापेक्षी बने हुए हैं। उनमें आत्मसम्मान की, स्वदेश प्रेम की, स्वाधीनता की एक नयी आकांक्षा उत्पन्न करनी है। उन्हें विदेशी भाषा, साहित्य व संस्कृति और आदर्श की गुलामी से मुक्त करना है। चालीस करोड़ भारतवासी भारत माता की संतान हैं। भारतमाता सब भारतीयों की माता है। उनके पूर्वजों की माता है, उनकी भावी संतति की माता है। सबों में यह चेतना उत्पन्न करनी है। हिन्दी प्रचार भारतीय नवोत्थान की पुकार है। राष्ट्रीय एकता और उद्धार इसका लक्ष्य है।"

नवोत्थान के मिशनरी—

"हिन्दी-प्रचारक नवोत्थान के मिशनरी हैं, सन्देशवाहक हैं। हिन्दी प्रचारक भाषा के पंडित हों, कुशल शिक्षक हों। पर उनकी विशेषता इस बात में है कि वे एक नया आदर्श, एक नयी आशा और विश्वास लेकर जनता के पास जाते हैं। 'एक राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, एक हृदय हो भारत-जननी'—इसमंत्र द्वारा वे लोगों को देशभक्ति की दीक्षा देते हैं। भारत-जननी का कल्याण हो, उद्धार हो, भारत-जननी अपने दुःख-दारिद्र्य से छुटकारा पा कर अपनी संतान पर प्रसन्न हो अभिमान करे, इसके लिए भारतवासियों की एक वाणी हो, एक भावना हो, एक कोशिश हो, यही हिन्दी प्रचारक के मिशन का उद्देश्य है।

सच्चे सेवक—

"हिन्दी प्रचारक अपने मिशन को ठीक-ठीक समझे, उस में दृढ़ विश्वास रखे। उसके मन-वचन-कर्म उसके मिशन के अनुरूप हों। सांप्रदायिकता, या प्रान्तीयता के भाव को हिन्दी प्रचारक के जीवन में कोई स्थान नहीं है। वह सब वर्ग, सब उम्र, सब पेशे और सब धर्म व प्रान्त के लोगों का मित्र है, सहायक है, सेवक है। सेवा ही उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा है सचाई उसका सबसे बड़ा बल है, संयम और उत्साह ही उसके सबसे बड़े मित्र हैं, प्रेम ही उसका मंत्र है।

इन भावों से भरा, इन प्रेरणाओं से प्रेरित, इन कल्पनाओं से उमंगित हिन्दी प्रचारक जहाँ भी जायगा, सफल होगा, दूसरों को प्रभावित करेगा, आदर पायेगा और देश-सेवा के पवित्र आनन्द का आस्वादन करेगा।"[1]

मद्रास सरकार की नीति—

सन् १९२७ में पहले पहल मद्रास सरकार ने अपने पाठ्य-क्रम में हिन्दी को स्थान दिया था। उस समय केवल 'सी' ग्रूप में ऐच्छिक विषय के तौर पर ही वह शामिल की गयी थी। उसके पश्चात् सन् १९३८ में जब कॉंग्रेस मंत्री-मंडल के हाथ

१. 'हिन्दी प्रचारक' दिसंबर—१९४१

शासन की बागडोर आयी तो सरकार ने हाईस्कूल के पहले, दूसरे और तीसरे फार्मों में उसे अनिवार्य विषय बनाया। सभा के कुछ उत्साही कार्यकर्ताओं के प्रयत्न से हिन्दी को 'ए' ग्रूप में भी स्थान मिला। इस प्रकार उस समय हिन्दी को स्कूलों में तीन प्रकार का स्थान प्राप्त हुआ; लेकिन जब काँग्रेसी मंत्री-मंडल ने त्याग-पत्र दिया तो सरकार ने एक अस्थिर नीति का अवलंबन किया। वर्गों में सम्मिलित होना या न होना विद्यार्थियों की इच्छा पर छोड़ दिया गया।

इस अस्थिर नीति के कारण दक्षिण के हिन्दी कार्यकर्ताओं तथा हिन्दी प्रेमियों को बड़ी निराशा हुई। हिन्दी प्रेमियों की यह इच्छा थी कि पहले फार्म से लेकर स्कूल के फाइनल क्लास तक हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाय, जिससे स्कूल फाइनल तक की शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों को हिन्दी की पर्याप्त योग्यता प्राप्त हो। कालेज की ऊँची शिक्षा पाने के इच्छुक विद्यार्थियों को भी वहाँ जाने पर अपनी हिन्दी की पढ़ाई जारी रखने की प्रेरणा मिलेगी और उनकी हिन्दी की जानकारी भी कालेजी-शिक्षा के उपयुक्त होगी।

हिन्दी पर आपत्ति—

उस समय मद्रास के कुछ शिक्षाशास्त्री इस बात से बिलकुल सहमत नहीं हुए कि हिन्दी एक अनिवार्य विषय के रूप में स्कूलों में पढ़ाई जाय। यह आपत्ति उठायी गयी कि मातृ-भाषा और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त एक और तीसरी भाषा अनिवार्य रूप में पढ़ाना विद्यार्थियों के ऊपर बड़ा बोझा डालना होगा। उनकी यह धारणा थी कि हिन्दी की पढ़ाई से मातृ-भाषा को भी धक्का पहुँचेगा और अंग्रेज़ी का स्तर भी गिर जायगा। मद्रास की यह अंग्रेज़ी-मनोवृत्ति हिन्दी के मार्ग में बड़ी बाधक रही। वास्तव में मातृ-भाषा की आड़ में वे अंग्रेज़ी की प्रभुता बनाये रखने के इच्छुक थे। वर्षों की दासता का यह दुष्परिणाम मद्रास प्रांत में सर्वत्र देखने में आता था।

मातृ-भाषा का माध्यम और अंग्रेजी—

जब पढ़ाई का माध्यम मातृ-भाषा बनाने का विचार हुआ तब भी अंग्रेज़ी के कट्टर भक्तों ने उसके विरुद्ध आवाज़ उठायी थी। अंग्रेज़ी के प्रति यह मोह वास्तव में हमारी राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयशिक्षा, राष्ट्रभाषा आदि के विकास में अत्यंत ह्रासकारी सिद्ध हुआ है। लेकिन हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ता इन विरोधों का सामना करते हुए आगे बढ़ते चले गये। वे हिन्दी को समूचे भारत की अन्तर प्रान्तीय भाषा के रूप में विकसित होते देखना चाहते थे, तब वे कैसे पीछे हटते?

उत्थान की ओर —

यद्यपि सन् १९१८ में दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का बीजारोपण मद्रास में हुआ था, तथापि उसके अंकुर के फूट निकलने एवं उसकी छोटी-छोटी शाखाओं

के फैलने में करीब पाँच वर्ष का समय लगा। श्री देवदास गाँधी, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक तथा पं० हरिहर शर्मा जी जैसे कर्मठ मालियों द्वारा सिंचित और पालित होकर वह पौधा बढ़ता गया। पाँच वर्ष के भीतर उसकी नयी शाखायें फैलीं। उसकी जड़ें जमीं। इन पांच वर्षों के अन्दर जो कार्य हुआ, उसे हम दक्षिण के हिन्दी प्रचार का उत्थान की ओर पदार्पण मान सकते हैं; उत्थान की ओर कदम बढ़ाने तथा उसकी जड़ जमाने में उपर्युक्त तीनों व्यक्तियों की अमूल्य सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

उत्थान का प्रथम चरण (सन् १९२३ से २८ तक)—

सन् १९२३ से लेकर सन् १९२८ तक का समय दक्षिण के हिन्दी प्रचार के उत्थान का प्रथम चरण माना जा सकता है। इस काल में हिन्दी प्रचार कार्य चतुर्मुखी रूप धारणकर विकसित और पुष्ट होने लगा। दक्षिण के चारो प्रान्तों में हिन्दी की जड़ जमने लगी। कार्य-कर्ताओं की संख्या बढ़ गयी। विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी प्रचारक पहुँच गये। जनता ने हिन्दी का सहर्ष स्वागत किया। सभा की क्रमबद्ध परीक्षाओं में पर्याप्त संख्या में विद्यार्थी बैठने लगे। सन् १९२७ में जब सभा, साहित्य सम्मेलन प्रयाग से सम्बन्ध-विच्छेद कर संपूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गयी, तब दक्षिण के कार्य का पूरा भार सभा को ही संभालना पड़ा। गांधी जी का आदेश था कि दक्षिण के प्रचार कार्य के लिए उत्तर से धनसंग्रह न किया जाय। इस कठोर परिस्थिति में भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ता ज़रा भी विचलित नहीं हुए। वे अपने पैरों आप ही खड़े होने की शक्ति प्राप्त करने का निरंतर प्रयत्न करते रहे। इस दिशा में उनको आशातीत सफलता प्राप्त हुई। ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय जागृति की लहरें जनता में फैलती गयीं; त्यों-त्यों हिन्दी प्रचार जैसे रचनात्मक कार्य की महत्ता लोग समझते गये और हिन्दी की ओर वे अधिकाधिक आकृष्ट भी होते गये।

राजाजी की अपील—

सन् १९३० जनवरी के 'हिन्दी प्रचारक' मासिक पत्र में श्री सी. राजगोपालाचारी ने 'An appeal to students' शीषक एक प्रस्तावना निकाली थी। राजाजी, जो इन दिनों हिन्दी के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं, उस ज़माने में हिन्दी के कितने प्रबल समर्थक थे, इसका प्रमाण उनकी नीचे उद्धृत अपील से हमें मिल सकता है। उस समय वे हिन्दी प्रचार सभा के उपाध्यक्ष थे। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में उनकी सेवाएँ अमूल्य रही हैं। पर इन दिनों हिन्दी के प्रति उनका दृष्टिकोण बदल गया है। हिन्दी के प्रति सद्भावना रखते हुए भी यह विरोधी मनोवृत्ति उन्होंने किस कारण धारण की है, इसका स्पष्ट कारण समझना कठिन है। उनकी अपील से यह बात प्रकट है कि उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था और वे दक्षिण में उसका शीघ्रातिशीघ्र प्रचार चाहते थे। केवल राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं,

बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी हिन्दी की महत्ता को बताते हुए उन्होंने शिक्षाणालयों में अनिवार्य विषय के रूप में हिन्दी पढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया था। उनकी अपील अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई थी, वह ज्यों की त्यों यहाँ उद्धृत करना उपयोगी सिद्ध होगा।

[1]"If you still have any doubts about the necessity of learning the Hindustani Language, you may ask anyone who has returned from the last Congress. The delegates who went to Lahore and saw the Congress have all realised and will bear testimony to the fact that without a knowledge of Hindustani, it is not possible for one to take a useful part in national gatherings. During the Congress no delegates felt so un comfortable as those from Tamil Nadu, who were ignorant of the national language. The friends who have returned from Lahore, have in their journey to and fro, seen a great deal of India and thay can tell you how generally useful a working knowledge of Hindustani is in any part of India for travel, trade or other business. Every student can and should utilise his spare time to learning the national language. It shouldbe a compulsory part of the school courses, but we should not wait till the Educational Authorities realise their duty. Self-help is best until our educational athorities see how wrong it is not to make the common language of India, a compulsory part of the school course of boys and girls in all provinces in India. The language is easily learnt. Learn up the Sanskrit Script and begin at once."

परीक्षा-समिति—

जबसे दक्षिण में क्रमबद्ध परीक्षाएँ आरंभ हुईं तबसे हिन्दी प्रचार कार्य में तेजी से प्रगति होने लगी। परीक्षाओं का पाठ्यक्रम और प्रश्न-पत्र बनाने एवं परीक्षकों की

---

१. हिन्दी प्रचारक—जनवरी १९३०.

नियुक्ति एवं केन्द्रनिरीक्षण की व्यवस्था करने के कार्यों में सलाह देने के लिए एक परीक्षा-समिति बनायी गयी। उस समिति की पहली बैठक ता० ३०-१२-३१ को हिन्दी प्रचारक विद्यालय, मद्रास में हुई। उसमें निम्नलिखित मुख्य प्रस्ताव पास हुए:—[१]

१—परीक्षा-समिति के अध्यक्ष, सभा के प्रधान मंत्री रहा करेंगे।

२—परीक्षा-समिति की बैठकें साल में दो बार प्रश्न-पत्रों पर विचार करने तथा परीक्षकों और प्राश्निकों की नियुक्ति करने के लिए हुआ करेंगी।

३—परीक्षा-फलों पर विचार करने तथा फल प्रकाशित करने के लिए एक समिति रहेगी, जिसका चुनाव प्रतिवर्ष समिति के सदस्यों से हुआ करेगा।

४—सभा की तरफ़ से 'स्वराज्य-भाषा' नाम की एक परीक्षा चलायी जाएगी जिसके लिए शुल्क १) रहेगा।[२]

५—'राष्ट्र-भाषा विशारद' की उपाधि-प्राप्ति के लिए एक खास तरह का 'गाउन' दिया जायगा।[३]

परीक्षाओं में सभा का दृष्टिकोण—

सन् १९३१ से हिन्दी प्रचार सभा की ओर से प्राथमिक, मध्यमा, राष्ट्र-भाषा, विशारद तथा प्रचारक नाम की पाँच परीक्षाएँ चलायी जाने लगीं। इनमें प्रथम तीन परीक्षाएँ केवल प्रारंभिक मानी गयी थीं। विशारद परीक्षा पहले प्रचारक परीक्षा का एक अंग थी, जिसका उद्देश्य दक्षिण भारत में योग्य अध्यापक तैयार करना था। सन् १९३१ तक राष्ट्र-भाषा के बाद प्रचारक परीक्षा चलती थी। जब सन् १९३१ में प्रचारक परीक्षा से साहित्य-खण्ड अलग करके विशारद परीक्षा चलायी गयी तब प्रचारक परीक्षा मुख्यतः एक तकनी की परीक्षा बन गयी। लेकिन विशारद परीक्षा के उद्देश्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। विशारद परीक्षा के केवल साहित्यिक परीक्षा बन जाने से ऐसे लोगों की भी उस परीक्षा में बैठने की इच्छा हुई जो प्रचारक बनना नहीं चाहते थे। वे केवल हिन्दी की एक साहित्यिक उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होने के इच्छुक थे। धीरे-धीरे इस परीक्षा की लोकप्रियता बढ़ी। सैकड़ों विद्यार्थी इस परीक्षा में बैठने लगे।

---

१. हिन्दी प्रचारक—मार्च १९३२ पृ० ८८

२. 'स्वराज्य भाषा' का प्रस्ताव अमल में नहीं लाया गया।

३. राष्ट्र-भाषा विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उपाधि-वितरण समारंभ पर 'खादी पोशाक' देने का निर्णय इस प्रस्ताव के अनुसार हुआ था। तब से लेकर आज तक यह क्रम चालू है।

थोड़े दिनों के बाद यह बात महसूस की गयी कि सर्व साधारण की उपयोगिता की दृष्टि से इसके पाठ्यक्रम में परिवर्तन आवश्यक है। विशारद परीक्षा के पाठ्यक्रम में उस समय प्राचीन साहित्य भी शामिल था। अतः यह सोचा गया कि जो लोग हिन्दी अध्यापक बनने की इच्छा से हिन्दी नहीं पढ़ते, उनके लिए प्राचीन साहित्य की पुस्तकें, जो अधिकांश व्रजभाषा और अवधीभाषा की हैं, पढ़ना क्यों अनिवार्य हो। राष्ट्र-भाषा की दृष्टि से हिन्दी सीखने और हिन्दी में पर्याप्त योग्यता पाने की अभिलाषा रखनेवालों के लिए प्राचीन पद्य का भी अध्ययन करना कठिन होगा। साहित्यिक रुचि रखनेवाले, हिन्दी की गहरी योग्यता प्राप्त करने के इच्छुक लोग, भले ही जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी आदि का अध्ययन करें, पर साधारण लोगों पर यह भार डालना हिन्दी के प्रचार में बाधा उत्पन्न करना होगा।

पाठ्य-क्रम में उर्दू—

पीछे चलकर सभा के परीक्षा–बोर्ड के सदस्यों की यह भी राय मानी गयी कि हिन्दी के अध्ययन के साथ-साथ उर्दू का भी सामान्यज्ञान पाना हिन्दी प्रचारक बनने की इच्छा रखनेवालों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विशारद के पाठ्यक्रम में उर्दू की पुस्तकें भी रखी गयीं। महाकवि अकबर के शेर, उर्दू-शैली की कहानियाँ, लेखों और व्याख्यानों का (उर्दू-शैली में) एक संग्रह आदि पाठ्यक्रम में शामिल किये गये। उर्दू की चुनी हुई कविताएँ भी अलग रखी गयीं।

सामान्य ज्ञान—

हिन्दी प्रचारक बनने अथवा उच्च योग्यता प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक समझा गया कि वे राजनीतिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषयों की भी काफ़ी जानकारी प्राप्त करें। तदनुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया गया। 'हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ,' 'भारतवर्ष का इतिहास' आदि पुस्तकों के अतिरिक्त उन विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले गद्य, लेख, कहानियाँ, पद्य आदि भी पाठ्यक्रम में शामिल किये गये।

हिन्दी महाविद्यालय —

सभा की प्रारंभिक परीक्षाओं के साथ 'विशारद' उपाधि-परीक्षा भी बहुत ही लोक-प्रिय बनी। परंतु वर्षों के बाद इस बात की कमी मालूम हुई कि उच्च परीक्षाओं में बैठकर उत्तीर्ण होनेवाले लोग हिन्दी की पर्याप्त योग्यता नहीं पाते। वे परीक्षा तो पास कर लेते हैं, परंतु बोलने का अभ्यास उन्हें नहीं के बराबर होता है। इस कमी की पूर्ति करके उन्हें हिन्दी में बोलने का अभ्यास कराने के लिए किसी विद्यालय में, हिन्दी के वातावरण में साल भर रहने के लिए बाध्य करना अनिवार्य समझा गया। इस उद्देश्य को सामने रखकर ही प्रमुख स्थानों में विद्यालय खोलने की

आयोजना बनायी गयी। तदनुसार प्रमुख केन्द्रों में इस प्रकार के विद्यालय खोले गये, जिनमें नियमित रूप से हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था की गयी। इन विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करके बाहर निकलने वाले स्नातक प्राइवेट तौर पर हिन्दी पढ़कर उपाधि ग्रहण करनेवालों से सभी बातों में अच्छे थे। प्रचार के क्षेत्र में भी वे अधिक चमकते थे। इस दृष्टि से सभा की यह आयोजना बहुत ही सफल सिद्ध हुई। विद्यालय के अध्यापन-कार्य में उत्तर के हिन्दी अध्यापकों की भी बहुमूल्य सेवाएँ समय-समय पर प्राप्त होती रही हैं।

प्रकरण ४

नवोत्थान—दूसरा चरण

१९१८–१९३२

सन् १९१८ से सन् १९३२ तक के १४ वर्षों के हिन्दी-प्रचार के कार्य-कलापों को देखते हुए निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि इन चौदह वर्षों में हिन्दी की लोकप्रियता बहुत ही बढ़ गयी थी। इन वर्षों में साढ़े चार लाख लोगों ने हिन्दी सीखी जिनमें दस हजार से अधिक लोगों ने हिन्दी की विभिन्न परीक्षाएँ पास कीं। १९३२ तक प्रतिवर्ष चार हज़ार से अधिक विद्यार्थी सभा की परीक्षाओं में शामिल होते रहे।

आन्दोलन की लोकप्रियता—

इन चौदह वर्षों में दक्षिण के जन-हृदय में हिन्दी का राष्ट्र-भाषा के रूप में स्थान पाना अत्यंत महत्व का कार्य था। लोगों ने इसे नयी राष्ट्रीय जागृति का प्रकाश तथा भावी स्वराज्य के भव्य-भवन का आधार माना। इस आन्दोलन की देशव्यापी सफलता उसकी अपनी उपयोगिता, कार्य की प्रगति और जनता की तत्परता पर निर्भर थी। देश के बड़े-बड़े विद्वानों ने हिन्दी की महत्ता और उपयोगिता को समझ कर उसे अपनाने का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय महासभा ने भी अपनी व्यवहार भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार कर लिया।

स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश—

दक्षिण की म्युनिसिपैलिटियों तथा जिलाबोर्डों ने हिन्दी को प्रोत्साहित किया। कोचिन, ट्रावनकूर और मैसूर के देशी राज्यों की जनता ने हृदय से हिन्दी का स्वागत किया। और वहाँ की सरकारों ने अपने यहाँ के शिक्षणालयों में हिन्दी को स्थान दिया। मद्रास, आन्ध्र और मैसूर की युनिवर्सिटियों ने भी हिन्दी को उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल कर जनता की बढ़ती हुई माँग को पूरा किया। लोगों में यह भावना जागृत हुई कि एक देश के लोगों के लिए एक सामान्य भाषा का ज्ञान प्राप्त करना न केवल राष्ट्रीय दृष्टि से ही अनिवार्य है, बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी अत्यंत आवश्यक है।

सरकार की उदासीनता—

इन वर्षों में सरकारी नीति हिन्दी प्रचार के मार्ग में बड़ी बाधक रही। यद्यपि दक्षिण के देशी राज्यों की सरकारें तथा युनिवर्सिटियाँ इस ओर ध्यान देने लगी थीं तथापि शिक्षणालयों के पाठ्यक्रम में हिन्दी अनिवार्य रूप में स्थान नहीं पा सकी। हिन्दी प्रचारकों ने कठिनाइयों की परवाह नहीं की। वे अपने को राष्ट्र-भाषा के सन्देशवाहक समझते थे। हिन्दी-प्रचार ही उनका राष्ट्र-धर्म बन गया था; अतएव इन विघ्न-बाधाओं का साहसपूर्वक सामना करते हुए वे आगे बढ़ रहे थे।

श्रेय के पात्र—

इस काल में दक्षिण के स्त्री-पुरुषों में हिन्दी के प्रति जो प्रेम, श्रद्धा और उत्साह पैदा हुआ, उसका पूरा श्रेय उस समय के निस्वार्थ हिन्दी प्रचारकों को दिया जा सकता है। ऐसे सैकड़ों स्वार्थत्यागी कर्मनिष्ठ कार्य-कर्ताओं के बल पर ही हिन्दी प्रचार सभा खड़ी रही और इस कार्य में सफलता प्राप्त कर सकी।

इन तेरह वर्षों में दक्षिण में हिन्दी की जड़ जम चुकी थी। श्री देवदास गाँधीजी ने सन् १९१८ में हिन्दी का जो बीज बोया, वह उग कर सन् १९३२ तक एक महान् वृक्ष के रूप में लहलहाता हुआ बढ़ गया और उसकी शाखाएँ दक्षिण के कोने-कोने में फैल गई। सैकड़ों प्रचारक सभा के अधीन दक्षिण के कई केन्द्रों में हिन्दी का सन्देश लेकर पहुँच गये। सभा की परीक्षाओं में चारों प्रान्तों के स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध हजारों की संख्या में बैठने लगे। सभा की सबसे ऊँची 'राष्ट्र-भाषा विशारद' और 'हिन्दी-प्रचारक' परीक्षाओं में जो विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए उन्हें प्रमाण-पत्र देने के लिए विश्वविद्यालयों की तरह उपाधिदान समारोह का क्रम सन् १९३१ से चालू हुआ।

गतिशील वर्ष—

पिछले वर्षों में प्रधानतः सन् १९२७ से लेकर सन् १९३१ तक के पाँच वर्ष अत्यंत गतिशील रहे। इन वर्षों में कार्य का आशातीत विस्तार एवं विकास हुआ। कार्य की प्रणाली में काफ़ी सुधार हुआ। तीव्रगति से कार्य आगे बढ़ता रहा। सभा के बहुमुखी कार्यों का दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों ने हृदय से स्वागत किया। लाखों लोग इस कार्य में सम्मिलित हुए।

गौरवास्पद कार्य—

इन थोड़े वर्षों में जो शिक्षण-कार्य हुआ, किसी भी शिक्षण-संस्था के इतिहास में बहुत ही मार्के का माना जा सकता है। एक शिक्षण-संस्था के रूप में सभा का गौरव इस काल में बढ़ गया। सभा के तेरह वर्षों के अथक प्रयत्न के फलस्वरूप

४,५०,००० लोगों ने हिन्दी सीखना शुरू किया। उनमें से ३,००,००० लोगों ने हिन्दी का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। १०,५०० लोग विविध परीक्षाओं में बैठे जिनमें ९५०० उत्तीर्ण हुए। लगभग २०० केन्द्रों में हिन्दी सिखाने का कार्य होने लगा। उनमें से कुछ केन्द्रों में सभा के सवैतनिक कार्यकर्ताओं द्वारा और अन्य स्थानों पर स्वतंत्र निस्वार्थ प्रचारकों द्वारा यह कार्य चलने लगा। सन् १९३१ फ़रवरी में दक्षिण के ११३ केन्द्रों में सभा की परीक्षाएँ हुईं। इन वर्षों में सभा ने १५० हिन्दी प्रचारकों को तैयार किया।

पुस्तक प्रकाशन—

सभा ने अपना एक पुस्तक-प्रकाशन विभाग खोला। तेरह वर्षों में ५० हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित की गयीं जिनकी ३,५०,००० प्रतियाँ छपीं। उनमें ३,०० ००० प्रतियाँ बिक गयीं। प्रथम नौ वर्ष तक अर्थात् सन् १९२७ तक सभा का आर्थिक भार साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संभाला जाता था पर जब से सभा स्वतंत्र संस्था के रूप में सन् १९२७ में रजिस्टर्ड हुई तब से दक्षिण से ही आवश्यक धन इकट्ठा करके कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय हुआ। सन् १९३१ तक दक्षिण भारत से इस कार्य के लिए ९,५००० रुपये प्राप्त हुए। दक्षिण से इस कार्य के लिए इतने परिमाण में धन का प्राप्त होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इस समय तक यहाँ के लोग हिन्दी को अपना चुके थे। दक्षिण की मुख्य चार भाषाएँ बोलने वालों की कुल संख्या उस समय साढ़े छः करोड़ थी। उनमें इस थोड़े अर्से में ३ लाख लोगों का हिन्दी का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेना, अर्थात् प्रति २०० में एक जन का हिन्दी समझ सकना सभा की आशातीत प्रगति का परिचायक है।

अंग्रेज़ी के मुकाबले में—

सोचने की बात है कि तेरह वर्षों के भीतर सारी जनता में बिना पूँजी के २०० में एक को भाषा-ज्ञान देने का हिसाब हिन्दुस्तान की कितनी शिक्षण संस्थाएँ दे सकती हैं? एक सौ वर्षों से अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए असीम संपत्ति रखनेवाली अंग्रेज़ सरकार का प्रयत्न जारी रहा। तो भी देश की जनता में कितने लोग इन सौ वर्षों में अंग्रेज़ी सीख सके? उसके साथ हिन्दी प्रचार सभा के शिक्षण-कार्य की तुलना की जाय तो निस्सन्देह यह बात सिद्ध हो सकती है कि सभा ने इस दिशा में, बिना पर्याप्त धन-सामग्री के बड़ा अद्भुत कार्य करके दिखाया था। सभा के संचालक एवं कार्यकर्ता इतने केन्द्रों में केवल परीक्षाएँ चलाकर संतृप्त नहीं रह गये, बल्कि वे सरकारी तथा ग़ैर सरकारी पाठशालाओं, युनिवर्सिटियों तथा अन्य शिक्षणालयों में हिन्दी का प्रवेश कराने का निरन्तर प्रयत्न भी करते रहे। फलतः सन् १९३१ तक दक्षिण के चारों प्रान्तों के सैकड़ों हाइस्कूलों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिन्दी ऐच्छिक

विषय के रूप में स्थान प्राप्त कर सकी। उसे अनिवार्य रूप में प्रवेश दिलाने का भी प्रयत्न जारी रहा। अंग्रेज़ी की तरह हिन्दी को अनिवार्य रूप से जब तक पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिलेगा तब तक सभा ने इस प्रयत्न में दम न लेने का प्रण भी किया था।

सवैतनिक प्रचारक—

आरंभ में तो हिन्दी पढ़ाने के लिए उत्तर भारत से ही प्रचारक बुलाये गये थे। पर सन् १९२२ से दक्षिण भारत में ही हिन्दी प्रचारक तैयार होने लगे। उत्तर से शिक्षा प्राप्त करके आये हुए कई नवयुवक भी इनमें शामिल हैं। सन् १९३१ तक सभा के ३८ सवैतनिक प्रचारक थे, जिनमें कुछ तो हिन्दी भाषा-भाषी थे। दक्षिण के प्रचारक भी हिन्दी की योग्यता एवं कार्यकुशलता में उत्तर-भारतीयों से किसी बात में पिछड़े नहीं रहे। सभा-संबद्ध प्रचारकों के अतिरिक्त हिन्दी-प्रचार को जीवन का ध्येय बनाकर स्वतंत्र रूप से काम करने के लिए भी कई लोग हिन्दी के क्षेत्र में आ गये।

प्रचारकों की कठिनाइयाँ—

सन् १९२७ में जब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन से अलग हो गयी, तब दक्षिण के हिन्दी प्रचार का पूरा कार्य-भार उसे स्वयं संभालना पड़ा। सभा के लिए अर्थ-संचय, प्रचार, संगठन, प्रचारक-विद्यालय, केन्द्र-निरीक्षण, परीक्षा-योजना आदि की व्यवस्था में सभा के संचालकों के सामने कई समस्याएँ उपस्थित हुईं। दक्षिण के चारों प्रान्तों में जहाँ अंग्रेज़ी का प्रभुत्व कायम था, राष्ट्र-भाषा की शिक्षा सार्वजनिक रूप में देना-दिलाना अत्यंत कठिन कार्य था। धन का अभाव, शिक्षकों की कमी, अंग्रेज़ी के प्रबल समर्थकों की प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति, अंग्रेज़ सरकार की प्रतिकूल नीति आदि हिन्दी के सर्वव्यापी प्रचार एवं प्रसार में बड़ी ही प्रतिरोधक शक्तियाँ थीं। इन विघ्न-बाधाओं का बड़े धीरज के साथ सामना करते हुए, सभा धीरे-धीरे अपना कदम आगे बढ़ाती ही रही। हिन्दी की लोक-प्रियता बढ़ाने में प्रचारकों का अथक परिश्रम ही सभा का एकमात्र सहारा था।

राष्ट्रीय शिक्षक के रूप में—

यद्यपि उन दिनों प्रचारकों की संख्या कम रही तो भी उनका उत्साह आज की अपेक्षा कई गुना अधिक था। ऐसे हिन्दी प्रचारक, जो राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर देश की सेवा में अपने आप को अर्पित करते थे, भला इन कठिनाइयों से क्या डरते ! कठिनाइयाँ उन्हें अपने कर्तव्य-पथ से कभी विचलित नहीं कर सकीं। स्वार्थ की भावना उन्हें छू तक नहीं गयी थी। सेवा और त्याग के मार्ग पर ही वे चलते थे। वे अपने लक्ष्य की ओर निर्बाध गति से बढ़ते ही गये।

उस समय के राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दी-प्रचारकों ने राष्ट्रीय शिक्षकों के रूप में जो कार्य किया, वह अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

शिक्षण के कार्य की सफलता संस्था, शिक्षक, जनता और साधन की सुव्यवस्था पर ही निर्भर रहती है। हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में उस समय थोड़े से प्रचारकों को अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने का आदेश, तथा आशीष देकर भेजने के अतिरिक्त सभा और कुछ करने में तो सर्वथा असमर्थ थी। किसी अपरिचित केन्द्र में जाकर अपने कार्य के लिए स्वयं साधन-सामग्री जुटाना प्रचारक ही का कर्तव्य था। सभा का आदेश पाकर प्रचारक लोग निश्चित केन्द्रों में पहुँच जाते थे। शहर या गाँव जहाँ भी वे प्रचारार्थ जाते, वहाँ पहुँच जाने पर स्वयं उनको अपने ठहरने, खाने-पीने तथा क्लास चलाने के लिए स्थान का प्रबन्ध करना पड़ता। कहीं-कहीं तो इस कार्य में स्थानीय सज्जनों की थोड़ी-बहुत सहायता भी प्राप्त होती थी। ऐसे कितने ही प्रचारकों से लेखक परिचित हैं, जो होटलों में रहकर कुछ दिनों तक हिन्दी प्रचार के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करते और तब जाकर कुछ लोगों को एकत्र करके हिन्दी-वर्ग आरंभ करते। लेखक खुद भी तो ऐसे प्रचारकों में से हैं।

वर्गों की स्थान-व्यवस्था—

कभी-कभी होटेल के अथवा किसी दूकान के टूटे-फूटे कमरे में या किसी स्थानीय सज्जन के मकान में क्लास चलाने की व्यवस्था होती थी। लेखक को याद है, केरल में ऐसे कई प्रचारक थे जो पेड़ों की छाया में, सरायों अथवा मंदिर के मंडपों में, भजन-मठों में, मैदानों में अथवा नदी के या समुद्र के किनारे पर, जहाँ वर्ग चलाने की विशेष अनुमति किसी अधिकारी से लेनी नहीं पड़ती थी, क्लास चलाते थे। (लेखक ने स्वयं इस प्रकार के स्थानों में हिन्दी-क्लास चलाये हैं।) सरकारी और गैर-सरकारी पाठशालाओं में भी वहाँ की पढ़ाई के समय के बाद या पहले क्लास चलाने की अनुमति कुछ विशेष परिस्थितियों में, कुछ स्थानीय देश-प्रेमी नेताओं के सहयोग से कभी-कभी मिलती भी थी।

हिन्दी विद्यार्थी—

हिन्दी विद्यार्थियों को आकृष्ट करने के लिए प्रचारक को पहले पहल कर-पत्र द्वारा अपने आगमन तथा हिन्दी-क्लास चलाने के उद्देश्य की सूचना देनी पड़ती थी। भाग्यवश, सूचना के पाते ही दो-चार विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने के लिए आ जाते तो क्लास शुरू होता। नहीं तो प्रचारक को हफ़्ते दो-हफ़्ते विद्यार्थियों की प्रतीक्षा करनी पड़ती। स्थानीय काँग्रेसी नेताओं तथा अन्य हिन्दी प्रेमी सज्जनों से इस विद्यार्थी-संचय में काफ़ी सहयोग एवं सहायता कहीं-कहीं प्राप्त होती रही है।

हिन्दी पढ़ने के लिए क्लास में भर्ती होनेवालों में विभिन्न श्रेणी के लोग रहते थे। बच्चे-बालक, जवान-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, वकील-बैरिस्टर, स्कूलों-कालेजों के विद्यार्थी और अध्यापक, सरकारी अफ़सर, क्लार्क, चपरासी, व्यापारी, मज़दूर, किसान आदि भिन्न-भिन्न देशों के लोग विद्यार्थी बनकर आते थे। इन सबको एक ही क्लास में, एक ही पद्धति के अनुसार पढ़ाना बहुत ही दुष्कर कार्य था। अपने कार्यों से निवृत्त होकर साधारणतया शाम के पाँच बजे से रात के ग्यारह बजे तक के किसी समय पर एक घंटा ही इनके क्लास के लिए नियत रहता था। उच्च शिक्षित, अर्ध-शिक्षित अथवा कम पढ़े-लिखे लोगों के एक समुदाय को एक ही समय पर एक ही ढंग से हिन्दी की शिक्षा देने की क्षमता किसमें हो सकती थी? हाँ, सभी प्रचारक इस परिस्थिति से जब धीरे-धीरे परिचित होने लगे तो वे अपने लिये अनुकूल पाठ्य-पद्धति का अवलंबन करके पढ़ाने लगे। मातृभाषा के माध्यम से ही लगभग सभी प्रचारक पढ़ाते थे। उत्तर भारतीय प्रचारक अंग्रेज़ी के माध्यम से पढ़ाते थे। अतः वे अंग्रेजी-शिक्षित लोगों की परिधि में ही काम कर सकते थे। अंग्रेजी से अनभिज्ञ विद्यार्थी उन प्रचारकों के क्लासों में भर्ती नहीं हो सकते थे। हिन्दी में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेने पर कुछ लोग उत्तर भारतीय प्रचारकों के क्लासों में भी जहाँ हिन्दी माध्यम से ही पढ़ाई होती थी, भर्ती होकर अध्ययन कर सकते थे।

विभिन्न श्रेणी के तथा विभिन्न आयु तथा शिक्षा-योग्यता वाले लोगों को एक ही क्लास में बिठाकर पढ़ाने का यह नतीजा निकलता था कि कइयों के लिए हिन्दी पढ़ना कठिन लगता था और वे पढ़ाई बीच ही में छोड़कर चले जाते थे। इस कारण क्लासों में विद्यार्थियों की संख्या बहुधा कम होती थी। जब पर्याप्त संख्या में विद्यार्थी न मिलते तब प्रचारक को अन्यत्र क्लास खोलने के लिए प्रयत्न करना पड़ता था।

शुल्क का नियम—

सभा की अलग-अलग परीक्षाओं के वर्ग चलते थे। शुल्क का कोई निश्चित क्रम न था। लेखक को याद है, साधारणतः सभी प्रचारक गरीब विद्यार्थियों को निःशुल्क हिन्दी सिखाते थे। अन्य विद्यार्थियों से बहुत ही कम शुल्क वसूल करते थे। प्राथमिक के लिए चार आना, मध्यमा के लिए आठ आना, राष्ट्र-भाषा के लिए बारह आना और विशारद के लिए एक रुपया लेने का ही क्रम था। कहीं-कहीं तो प्रचारक अपनी इच्छा के अनुसार इसमें कुछ वृद्धि भी करते थे। गरीबों को मुफ़्त में पुस्तकें देकर निःशुल्क पढ़ने का सौभाग्य सभी हिन्दी प्रचारकों को प्राप्त हुआ है।

जेलों में हिन्दी प्रचार—

सन् १९३९ में जब देशभर में सत्याग्रह आन्दोलन का ज़ोर बढ़ा तो हिन्दी

प्रचारक भी उसकी लहरों से बच नहीं सके। कई प्रचारक सत्याग्रही बनकर जेल गये। लेकिन जेलों में भी उन्होंने हिन्दी का प्रचार-कार्य नहीं छोड़ा। वहाँ भी खूब प्रचार किया। उन दिनों दक्षिण के सभी जेलों में हिन्दी प्रचारक पहुँच गये थे। सन् १९३१ की 'हिन्दी प्रचारक' पत्रिका की संपादकीय टिप्पणी में उसका यों उल्लेख हुआ है :—

"यह बड़े हर्ष की बात है कि इस सत्याग्रह आन्दोलन में हमारे जितने हिन्दी-प्रचारक भाई जेल के भीतर पहुँचे हैं, दुगुने उत्साह के साथ हिन्दी-प्रचार कर रहे हैं। मद्रास प्रान्त में ऐसी कोई जेल नहीं है जहाँ पर हिन्दी प्रचारक नहीं पहुँचे हों, और सत्याग्रहियों को जेल के भीतर हिन्दी न पढ़ाते हों। वेल्लूर जेल में हिन्दी प्रचारकों के सरदार पं० हरिहर शर्मा जी खुद मौजूद हैं जिनकी वजह से अभी तक करीब डेढ़ हज़ार रुपए की पुस्तकें सत्याग्रहियों ने खरीदीं और पं० सुब्बाराव जी (आन्ध्र) अलिपुर जेल में तथा पी. के. नारायण नायर (केरल) कन्ननोर जेल में बड़े प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।"

जेल में श्रीमती देशमुख की हिन्दी-सेवाएँ—

आज श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख भारत की आदरणीय नेत्री बन गयी हैं। परंतु बहुत ही कम लोग जानते हैं कि वे पहले वेल्लूर (आन्ध्र) में 'कस्तूर-देवी बालिका पाठशाला' नामक एक पाठशाला चलाती थीं जहाँ बालिकाओं को हिन्दी-शिक्षा दी जाती थी। आप उस समय के सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनों का भी बड़ी कुशलता के साथ नेतृत्व करती थीं। मद्रास शहर के सत्याग्रह-आन्दोलन के अधिनायक, देश के सुप्रसिद्ध नेता स्व. टी प्रकाशम् जब गिरफ़्तार हुए तो श्रीमती दुर्गाबाई ने ही उसकी अधिनायिका बनकर आन्दोलन कार्य संभाला था। उन्हें भी शीघ्र ही सरकार ने गिरफ़्तार किया और एक वर्ष की कड़ी सज़ा दी।

जेल के भीतर पहुँचने के बाद आपने स्त्री-कैदियों को हिन्दी पढ़ाने का कार्य आरंभ किया। वेल्लूर जेल में आपने हिन्दी प्रचार का बहुत अच्छा काम किया था। इस संबंध में सभा ने जो संपादकीय टिप्पणी [हिन्दी प्रचारक के जनवरी १९३१ अंक में लिखी थी, वह यों है—

महत्वपूर्ण कार्य—

"हिन्दी प्रेमियों को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि श्रीमती दुर्गाबाई ने हिन्दी की अनन्य सेवा की है। सन् १९२४ से लेकर वे 'कस्तूरी देवी बालिका पाठशाला' नामक एक पाठशाला चला रही हैं, जहाँ पर बालिकाओं को हिन्दी की शिक्षा दी जाती है। प्रतिवर्ष इस पाठशाला से बीसों की संख्या में हिन्दी की छात्राएँ परीक्षाओं में पहली श्रेणी में पास हो जाती हैं। श्रीमती दुर्गाबाई एक बड़ी

भारी शक्ति-स्वरूपिणी सामाजिक तथा राजनैतिक कार्य-कर्त्री भी हैं। यह बात हाल ही में आन्ध्र देश के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत प्रकाशम् जी के जेल चले जाने के बाद जब आप मद्रास शहर के सत्याग्रह-आन्दोलन की अधिनेत्री हुईं तब मालूम हुई। इस आन्दोलन में आपको एक वर्ष की सजा हो गई। जेल के भीतर पहुँचने के बाद भी आप जो काम कर रही हैं, वह और भी प्रशंसनीय है। आप जेल के भीतर बड़े संयम के साथ समय बिता रही हैं और सारा समय वहाँ की स्त्री-कैदियों को हिन्दी पढ़ाने में लगा रही हैं। इस समय (१९३१) जनवरी) वेल्लूर जेल में पचास देवियाँ सज़ा भोग रही हैं। श्रीमती जी का यह प्रण है कि इनमें से कोई भी हिन्दी से अनभिज्ञ होकर बाहर न निकले। यह कितना महत्वपूर्ण कार्य है।'

अन्य जेलों में—

वेल्लूर, बल्लारी, राजमहेन्द्री, कन्ननोर, अलिपुर, ट्रिची (तिरुची) आदि स्थानों के जेलों में भी कई हिन्दी प्रचारक सत्याग्रही कैदी बन कर गये थे। वेल्लूर जेल में श्री हरिहर शर्माजी के अतिरिक्त श्री दुग्गिराला बालराम कृष्णय्या और श्री शशि-भूषणराठो कैदियों को हिन्दी पढ़ाते थे। कन्ननोर जेल में श्री नारायण नायर के अलावा स्व. पी. कृष्ण पिल्लै (जो पीछे चलकर केरल के सुविख्यात कम्युनिष्ट नेता बने थे) और श्री टी. कृष्ण स्वामी, ट्रिची (तिरुची) जेल में श्री नागेश्वर मिश्र तथा श्री सिद्ध गोपाल जी, राजमहेन्द्री जेल में श्री कृत्तिवास जी बड़ी लगन के साथ हिन्दी-क्लास चलाते थे। उन दिनों सत्याग्रही-कैदियों के दैनिक-कार्यों में हिन्दी पढ़ना एक प्रमुख अंग बन गया था। हज़ारों लोगों ने जेल में रहकर हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान पाया जो पीछे चलकर सार्वजनिक जीवन में उनके लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ।

हिन्दी प्रचार सप्ताह

सन् १९३१ दिसंबर में मद्रास में हिन्दुस्तान बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर तथा लजिस्लेटिव एसेंबली के भूतपूर्व सदस्य श्री विद्यासागर पंड्या की अध्यक्षता में द्वितीय हिन्दी प्रचारक सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ, उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ था।

"यह सम्मेलन सारे दक्षिण भारत में एक हिन्दी दिवस मनाने की आवश्यकता और उपयोगिता का अनुभव करता है और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा से निवेदन करता है कि वह किसी अनुकूल दिवस को निश्चित करके घोषित करे एवं उस दिवस पर सब स्थानों में व्यवहार में लाने के लिए एक निश्चित कार्य-क्रम प्रकाशित करे।

प्रस्तावक—श्री पी. वे. सुब्बाराव
समर्थक —श्री. पी. के. केशवन् नायर[1]

इस प्रस्ताव के अनुसार श्री जंबुनाथन्, श्री चन्द्रहासन् और श्री अवधनंदन की एक समिति बनायी गयी कि वह इसके लिए एक कार्य-क्रम तैयार करे।

उक्त प्रस्ताव के अनुसार सभा ने सन् १९३४ सितंबर ३० से ६ अक्तूबर तक 'हिन्दी-प्रचार-सप्ताह' मनाने की आयोजना बनायी। हिन्दी आन्दोलन को मज़बूत बनाना ही इसका मुख्य उद्देश्य था। सन् १९३५ से—'दूसरे हिन्दी प्रचार सप्ताह समारोह' से—इस आयोजन का महत्व और भी बढ़ा। १९३५ में 'हिन्दी प्रचार सप्ताह' सभी केन्द्रों में एक त्योहार की तरह मनाया गया। सात दिन का यह उत्सव भिन्न-भिन्न कार्यक्रम के साथ मनाने का निश्चय हुआ। निम्नलिखित प्रकार से प्रत्येक दिन का नाम भी रखा गया।

पहला—उद्घाटन दिवस
दूसरा—बेसेंट दिवस
तीसरा—गाँधी दिवस
चौथा—विद्यार्थी दिवस
पाँचवाँ—महिला दिवस
छठा—मातृ-भाषा दिवस
सातवाँ—गोष्ठी दिवस

जब सप्ताह मनाने के दिन नियत किये गये तो यह उचित समझा गया कि चूँकि सप्ताह के अंतर्गत भारत के दो प्रसिद्ध देश-भक्तों की जन्मतिथियाँ पड़ती हैं, इसलिए इन दिनों में उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव प्रदर्शित किया जाय। उन महान् व्यक्तियों में से एक दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध नेत्री स्व. बेसेंट महिला हैं, जिन्होंने १९१८ में मद्रास के प्रथम हिन्दी वर्ग के उद्घाटन के अवसर पर अध्यक्षासन ग्रहण करके हिन्दी आन्दोलन की सफलता के लिए हृदय से आशीर्वाद दिया था। दूसरे हिन्दी प्रचार आन्दोलन के जन्मदाता महात्मा गाँधी हैं। उन दोनों की जन्मतिथि एक है अर्थात् २ अक्तूबर है। यही कारण है कि उसके नामों से भी सप्ताह मनाने का निश्चय हुआ था।

मातृ-भाषा दिन—

छठे दिन 'मातृ-भाषा दिन' का इस सप्ताह में विशेष महत्व समझा गया। जब से हिन्दी प्रचार जोर पकड़ने लगा, तब से दक्षिण के कुछ लोगों में यह भ्रम फैलाने की कुचेष्टा विरोधियों द्वारा होने लगी कि हिन्दी के प्रचार से मातृ-भाषा को

---

१. 'हिन्दी प्रचारक' जनवरी १९३२।

क्षति पहुँचेगी और हिन्दी का आधिपत्य भविष्य में दक्षिण की सभी भाषाओं के लिए अत्यंत घातक सिद्ध होगा। इस भ्रम को दूर करने के लिए ही 'मातृ-भाषा दिन' मनाना सभा का मुख्य उद्देश्य रहा। जनता को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करना अत्यंत आवश्यक समझा गया कि हिन्दी के प्रचार से प्रादेशिक भाषाओं को क्षति नहीं पहुँचेगी, प्रत्युत हिन्दी उनकी वृद्धि एवं विकास में सहायक ही साबित होगी।

विद्यार्थी-दिवस, महिला-दिवस आदि का भी पूर्णरूप से उपयोग हुआ। विद्यार्थियों और देवियों में हिन्दी के प्रति सद्भावना और हिन्दी पढ़ने में उत्साह पैदा करने में इन दिनों का कार्यक्रम बड़ा सहायक रहा। सप्ताह के कार्यक्रम के मुख्य अंग निम्नलिखित थे।

१. सप्ताह के दिनों में हर केन्द्र में जुलूस निकाला जाय और हिन्दी-सम्मेलन किया जाय।
२. स्कूलों और अन्य शिक्षण-केन्द्रों में सभाएँ बुलाकर उनमें अध्यापकों तथा अन्य गण्यमान्य सज्जनों द्वारा हिन्दी के महत्व पर भाषण कराये जायँ।
३. हिन्दी-नाटकों का प्रदर्शन किया जाय।
४. हिन्दी विद्यार्थियों के लिये हिन्दी-भाषण-स्पर्धा, लेख-स्पर्धा आदि की व्यवस्था की जाय और सर्व प्रथम आनेवालों को पुरस्कार देने का क्रम जारी किया जाय।
५. स्थानीय समाचार-पत्रों में 'सप्ताह' के संबन्ध में लेख आदि प्रकाशित कराये जायँ और धन के लिए अपील की जाय।
६. सिनेमा में तथा प्रमुख स्थानों पर हिन्दी प्रचार सप्ताह के विस्तृत कार्यक्रम का विज्ञापन दिया जाय जिसमें लोगों से हिन्दी सीखने तथा हिन्दी प्रचार में आर्थिक सहायता देने की अपील की जाय।
७. इसके लिए पोस्टर तथा कर-पत्रों का काफ़ी उपयोग किया जाय।

धन-संग्रह की पद्धति—

सभा के लिए धन-संग्रह करना सभी हिन्दी-प्रेमियों का परम कर्तव्य माना जाता था। जब से सभा स्वावलंबी संस्था हुई तभी से सभा के संचालकों का विशेष ध्यान इस ओर रहा था। प्रचार-केन्द्रों के प्रमुख सज्जनों को सभा के सदस्य बनाने का भी प्रयत्न होता रहा।

स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों की सहायता से भी धन-संग्रह करने का प्रयास हुआ।

छोटी-छोटी झंडियाँ बेचकर तथा नाटकप्रदर्शन से धन-संग्रह किया जाता था। सिनेमा-थियेटरों के मालिकों तथा सुप्रसिद्ध गायकों तथा अन्य कलाकारों की सहायता से काफ़ी मात्रा में धन-संग्रह होता था। 'सप्ताह' में जो धन इकट्ठा होता था उसका

तीन चौथाई हिस्सा हर केन्द्र को स्थानीय कार्य के लिए नियत रहता था। शेष भाग केन्द्र सभा की सहायतार्थ भेजना पर्याप्त समझा गया था।

'सप्ताह' का महत्त्व—

'हिन्दी प्रचार-सप्ताह' के महत्त्व एवं कार्य-पद्धति पर प्रकाश डालते हुए 'हिन्दी प्रचार समाचार' के अक्तूबर १९४३ के अंक में संपादकीय टिप्पणी में जो बातें लिखी गयी थीं, उनसे सभा की हिन्दी-हिन्दुस्तानी—उर्दू नीति पर भी प्रकाश पड़ता है। पाठक निम्नलिखित उद्धरण से समझ सकते हैं कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा राजनीतिक दलबन्दी के दल-दल से दूर रहकर ही हिन्दी का प्रचार करना चाहती थी। संस्कृत गर्भित 'शुद्ध हिन्दी' के प्रचार को सभा किस मनोवृत्ति से देख रही थी इसका भी स्पष्ट परिचय इस उद्धरण से मिल सकता है।

नया त्योहार—

'हिन्दी-प्रचार-सप्ताह' दीवाली और दशहरे की तरह आनेवाली चीज़ है, त्योहार है। वह कभी पुराना नहीं हो सकता। साल में यही एक अवसर है जब हमारे सैकड़ों प्रचारक व प्रेमी अपनी खामोशी छोड़कर, मौन-साधना त्याग कर उठते हैं और प्रचार पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं। बरहमपुर से लेकर कन्याकुमारी तक और मैंगलोर से लेकर मद्रास तक जिसके बीच में मैसूर भी पड़ता है—सारा देश इस सप्ताह में एक बार झन-झना उठता है। उस समय हमें अपनी संस्था की महत्ता का बोध होता है।

नया क्षेत्र, नया उत्साह, नयी खुराक—

"यह सप्ताह खासकर इसलिए मनाया जाता है कि हमारे हिन्दी प्रचारक, हिन्दी प्रेमी और हिन्दी प्रेमी मंडलियाँ अपना पढ़ने-पढ़ाने का मामूली काम छोड़कर नये लोगों से मिलें, उन्हें अपना उद्देश्य समझावें, अपने कार्य में उनसे मदद लें, उन्हें हिन्दी का प्रेमी बनावें, उन्हें अपना कार्य समझावें, सभाएँ करें और इस तरह आगामी साल के वास्ते नये लोग, नये विद्यार्थी, नये क्षेत्र, नया उत्साह और नयी खुराक काफ़ी मात्रा में लेकर आगे बढ़ें।"

बेबसी क्यों?

"जो यह साल कई बातों को लेकर बहुत ही विचित्र है, मगर हम अपने मुल्क हिन्दुस्तान की ओर देखते हैं तो एक उदासी, एक मुर्दनी, एक नाउम्मीदी, एक लाचारी की खामोशी नज़र आती है। देश शून्य की ओर देख रहा है कि उसे कुछ कर्तव्य का संकेत मिले—मगर व्यर्थ।"

"ऐसे समय में हमारे सिरताज सींकचों के अन्दर हैं। हमें उनका नाम लेने की भी मनाही कर दी गयी है—ज्यादा क्या कर सकते हैं? फिर पिंजड़े का पक्षी भी तो फड़फड़ाता है। मगर बेबसी भी क्या चीज़ है?

गलतफ़हमी दूर हो—

"आज जब देश में तरह-तरह की नाइत्तफ़ाकी के बादल हमारे ध्रुवतारे को आँखों से ओझल किये हुए हैं, हमने नामों के झगड़े का तूमार अलग खड़ा कर रखा है। भारतवर्ष को मुसलमान भाइयों ने 'हिन्दुस्तान' कर दिया तो हमने कभी उस पर एतराज नहीं किया। ईसाई-दुनियाँ के 'इंडिया' पर भी नहीं चौंके, इतना ही क्यों, तमिल भाइयों ने तो 'इंदिया' को तमिल भाषा का शब्द ही बना लिया। उस पर भी हम नहीं घबराये। इतना ही नहीं, इन नामों के फ़र्क ने उनकी देश-सेवा में किसी तरह का झगड़ा-तकरार नहीं पैदा किया। आज हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का झगड़ा भी तो नामों का ही है। आप कौमी ज़बान को हिन्दी कहें, उर्दू कहें या हिन्दुस्तानी कहें, कुछ अन्तर नहीं पड़ता।"

झगड़ों से दूर—

"हमारे हिन्दी प्रचारक इन झगड़ों से परे हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि वे राजनैतिक झगड़े हैं और अपनी-अपनी खुदगर्जी के वास्ते हो रहे हैं। हम 'हिन्दी प्रचारक' कहीं जाकर हिन्दुस्तानी प्रचारक कहे जायें, तब भी हमें कोई उज्र नहीं होगा, बशर्ते कि हमारा काम आगे बढ़ता जाय और ठीक रास्ते पर बढ़े। इन झगड़ों को जहाँ तक हो सके, मिटाने के वास्ते ही इस संस्था के प्राण महात्मा-गाँधी जी ने इसे हिन्दुस्तानी कहने को कहा है। हमें इस सप्ताह में ये बातें भी साफ़ कर देनी होंगी तथा आगे भी इसका ख्याल रखना होगा।"[1]

'हिन्दी-प्रचार-सप्ताह' का उत्सव आज भी दक्षिण के सभी केन्द्रों में पूर्ववत् मनाया जाता है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद तत्संबंधी समारोहों में कुछ शिथिलता अथवा उदासीनता दृष्टिगत हुई है। लोगों ने यह सवाल उठाया है कि जैसे स्वतंत्रता-दिवस, गणतंत्र-दिवस सरकार की ओर से मनाये जा रहे हैं, तब 'हिन्दी-प्रचार-सप्ताह' हम लोग क्यों मनावें? गान्धी-जयन्ती, स्वतंत्रता दिवस आदि के समारोहों में भी इन दिनों इसी प्रकार की शिथिलता और उदासीनता देखी जाती है।

सम्मेलनों की आयोजना

सर्वप्रथम प्रचारक-सम्मेलन—

दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचारकों का प्रथम सम्मेलन हिन्दी प्रचारक सभा की तरफ़ से सन् १९२३ में मद्रास के 'सौन्दर्य-महल' में हुआ था। श्री पुरुषोत्तम केशव कोतवालजी ने अध्यक्षता ग्रहण की थी।

---

(१) १९४३ अक्तूबर 'हिन्दी प्रचारक समाचार'।

दक्षिण के हिन्दी-प्रचारकों को परस्पर विचार-विनिमय के लिए इस सम्मेलन ने अवसर दिया। सन् १९२३ तक दक्षिण के चारों प्रान्तों में प्रचार-कार्य आरंभ हो चुका था, लेकिन उस समय केरल में एक ही हिन्दी-प्रचारक काम कर रहा था। अन्य प्रान्तों में भी यही दशा रही होगी। एक दर्जन से अधिक प्रचारक किसी भी प्रान्त में उन दिनों नहीं थे। प्रचारकों के अभाव के कारण प्रथम सम्मेलन सफल नहीं हुआ।

दूसरा सम्मेलन—

जब दक्षिण के कई केन्द्रों में हिन्दी का पर्याप्त प्रचार होने लगा और प्रचारकों और विद्यार्थियों की संख्या में सन्तोषजनक वृद्धि हुई, तो प्रचारकों की ओर से पुनः हिन्दी प्रचारक-सम्मेलन बुलाने की माँग पेश हुई। उसके अनुसार ता० २८ और २९ दिसंबर १९३१ को दक्षिण के हिन्दी-प्रचारकों का दूसरा सम्मेलन मद्रास में हुआ। 'हिन्दुस्तान बैंक' के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री विद्यासागर पण्ड्याजी ने इस सम्मेलन का अध्यक्ष-पद ग्रहण किया था।

उस सम्मेलन में आन्ध्र, कर्नाटक, तमिल और केरल के बाईस केन्द्रों तथा मद्रास शहर से केवल चालीस प्रचारकों ने भाग लिया था।

सम्मेलन में हिन्दी-प्रचारक की प्रगति पर और भावी कार्य-क्रम पर विचार-विनिमय हुआ। अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए। प्रचारकों ने सम्मेलन में बड़ा उत्साह दिखाया। बाद के वर्षों में सम्मेलन का यह सिलसिला बराबर जारी रहा।

स्मरणीय सम्मेलन—

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन का तीसरा अधिवेशन ता० ३१-१२-१९३२ को मद्रास में हुआ जो हिन्दी-प्रचार-सभा के इतिहास में अत्यंत महत्व का माना जा सकता है। उसमें श्री देवदास गाँधीजी ने अध्यक्षता ग्रहण की थी।

श्री देवदासजी १४ वर्ष के बाद मद्रास आये। उन्होंने १९१८ में जो कार्य आरंभ किया था, उसकी वृद्धि देखकर वे अतीव संतुष्ट हुए। आपने अध्यक्ष-भाषण में सभा की सफलता पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार यों प्रकट किये।

"दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार का कार्य जब शुरू किया गया था तब किसी को यह आशा नहीं थी कि उसमें शीघ्र ही कोई बड़ी सफलता मिल जाएगी। किन्तु उसके आयोजकों को और विशेषकर गाँधीजी को 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' में परम श्रद्धा थी। थोड़े से प्रयत्न का बहुत बड़ा फल कभी-कभी मिल जाता है; आपका सम्मेलन इस बात की गवाही देता है। इस प्रांत में हिन्दी प्रचार में जो कार्य-सिद्धि हुई है, उससे मैं तो सचमुच आश्चर्य चकित हूँ।"......"इन चौदह वर्षों में आपको जो सफलता मिली है, उसके लिए मैं आपको बधाई दिये बिना नहीं रह सकता। इस प्रान्त में आप

५,५०,००० लोगों के पास पहुँच सके हैं जिनमें से ४ लाख लोगों ने हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त किया और २३ हज़ार लोग आपकी परीक्षाओं में बैठे हैं। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि हिन्दी-प्रचार कार्य से देहातों में भी भारी जागृति पैदा हो रही है। इस समय हिन्दी-प्रचार में लगे हुए ३०० कार्यकर्ताओं में आधे से अधिक आन्ध्र प्रान्त के हैं। मैं आन्ध्र प्रान्त के युवकों को उनकी इस विशेष सफलता के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। आन्ध्र प्रान्त के बाद क्रमशः केरल, कर्नाटक तथा तामिलनाड़ु हैं।"

दक्षिण की साहित्य-रुचि—

दक्षिण के हिन्दी-प्रेमियों की साहित्य-रुचि पर भी उन्होंने यों प्रकाश डाला, "लेकिन एक और बात विशेष उल्लेख-योग्य यह है जो आज के कवि-सम्मेलन से स्पष्ट हो चुकी है। दक्षिण भारत के लोग इस समय हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करने से ही संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि हिन्दी-साहित्य के ऊपर अपना अधिकार जमाने में तथा हिन्दी-साहित्य की उन्नति में अपना मौलिक कार्य दिखाने में भी दिलचस्पी लेते हैं। सभा के अधीन काम करनेवाले इने-गिने उत्तर भारतीय प्रचारक ही इस प्रगति के लिए जिम्मेवार हैं।"[1]

हिन्दी-प्रचारक-भ्रातृमंडल—

सन् १९३१ में हिन्दी-प्रचारक भ्रातृमंडल की स्थापना हुई। उस आयोजना का मुख्य उद्देश्य हिन्दी-प्रचारकों को परस्पर परिचित होने का अवसर देना तथा उनकी सहज साहित्यिक प्रतिभा के विकास के लिए आवश्यक प्रोत्साहन और सुविधाएँ देना रहा।

कवि-सम्मेलन—

सन् १९३२ के तृतीय हिन्दी-प्रचारक-सम्मेलन के अवसर पर भ्रातृमंडल की ओर से दक्षिण भारतीय हिन्दी कवियों का एक सम्मेलन भी हुआ था। श्री देवदूत विद्यार्थी ने सम्मेलन की अध्यक्षता ग्रहण की थी। सम्मेलन में दक्षिण के उदीयमान कवियों ने अपनी-अपनी रचनाएँ सुनायीं। कवियों में श्रीमती शारदादेवी (पं. हृषीकेश शर्माजी की धर्मपत्नी), श्रीमती पार्वतीदेवी मंजेश्वर, श्री के. राघवाचारी, श्री के. हिरण्मय, तटवर्ति सूर्यनारायण मूर्ति, राचकोंड़ नरसिंह, पिंगलि लजपतराव, सिद्धनाथ पंत आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री पिंगलि लजपतरावजी ने आन्ध्र के भक्त-शिरोमणि रामदास पर व्रज-भाषा में एक कविता पढ़कर सुनायी जिसकी लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। श्री जयन्ती प्रसादजी विद्यार्थी श्रीवास्तव (मैसूर) ने उर्दू

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक' १९३२.

के कुछ शेर सुनाये और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी देवी ने अपनी रची कुछ उत्तम कविताएँ पढ़ सुनायीं। श्री हिरण्मय और अन्य दो-एक प्रचारकों ने हास्य-रस की कविताएँ सुनाकर सभासदों का मनोरंजन किया। श्री पंतजी ने अपने रचे सैनिक-संगीत से लोगों में जोश भर दिया।

साहित्य-गोष्ठी—

प्रचारकों के भाषा-ज्ञान की वृद्धि और उनकी योग्यता को बढ़ाने के लिए एक साहित्य-गोष्ठी का भी भ्रातृमंडल की ओर से आयोजन किया गया था। हिन्दी-प्रचार-क्षेत्र तथा दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक समन्वय से सम्बन्ध रखनेवाले विभिन्न विषयों पर प्रचारकों ने निबन्ध पढ़कर सुनाये।

सांस्कृतिक एकता—

हिन्दी-प्रचारकों के परिश्रम से दक्षिण और उत्तर की भावात्मक एकता की नींव पड़ी। किसी भी भाषा का साहित्य, उसे बोलने वालों के हृदय के भावों का, उन के उत्थान और पतन का, उनकी प्रतिभा और प्रज्ञा का तथा उनके आचार-विचारों का प्रतिबिंब कहा जा सकता है। भाषा भावात्मक एकता का साधन-मात्र है। भाषा का वास्तविक लक्ष्य सांस्कृतिक एकता है। यहाँ इसका विस्तार न कर के सिर्फ़ इतना ही कहना काफ़ी है कि प्रचारक लोग दक्षिण के हिन्दी-प्रचार-कार्य के अतिरिक्त दक्षिण देश की सभी भाषाओं, यहाँ के ऐतिहासिक राज्यों और प्राचीन व अर्वाचीन कवियों तथा उनके काव्यों के सम्बन्ध में लेख, आलोचना, समीक्षा आदि हिन्दी में लिखते रहे। हिन्दी प्रादेशिक भाषाओं के चुने हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थों के अनुवाद, हिन्दी नाटकों के अभिनय, अन्तर-प्रान्तीय-वाक्स्पर्धा आदि का भी इस भ्रातृमण्डल के द्वारा आयोजन हुआ था। निम्न लिखित कविता भ्रातृमंडल द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन के अवसर पर समस्यापूर्ति में पढ़ी गयी थी।

कविताओं के नमूने—

ताज देखेंगे

चाहे जो हो जगती तल पर,
अपना गौरव लाज रखेंगे।
भारत राणी के सर पर,
सन्तत मंगल ताज देखेंगे॥
नोकरशाही मार भगाकर,
लुटेरों को बाज़ करेंगे।

ऐसी हिम्मत किसमें है जो,
इसमें दस्तंदाज़ करेंगे ॥
स्वराज शासन पाकर नहीं,
गैरों के मुँह-ताज़ रहेंगे।
राष्ट्रभाषा हिन्दी करके,
सब एक आवाज़ रहेंगे ॥
हिन्दू मुसलिम भाई-भाई,
सन्नत सुख से साज करेंगे।
मन्दिर में औ' मसजिद में,
पूजा और नमाज़ करेंगे ॥
माता की बलिवेदी पर,
जीवन शान से राज रहेंगे।
पोथी पुरानी बन्धन से,
सर्वदा हम आज़ाद रहेंगे ॥
जीवन भर मर-मर कर,
दीन जनों का काज करेंगे।
स्वतंत्र झण्डा फहरा कर हम,
वीरों के सर ताज रहेंगे ॥

—"दरिद्र नारायण"

कवि-सम्मेलन में भ्रातृमंडल द्वारा दिये गये 'हिन्दुस्तानी हो' शीर्षक पर रची हुई और एक सुन्दर यह कविता है।

'हिन्दुस्तानी हो'*

जप-तप-होम हमारा हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो,
भारत-गौरव-बानी हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो।
ममता, समता, क्षमता हममें लानेवाली हो,
निशिदिन ध्यान हमारा हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो ॥

नव नव विद्या संतत हमको देनेवाली हो,
विश्व विमोहन को रूप यह दर्शानेवाली हो।
सकल कला समाश्रित ज्ञान सुख प्रकाशिनी हो,
निशिदिन ध्यान हमारा हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो ॥

* हिन्दी प्रचारक १९३३ जनवरी पृष्ठ ४७.

कोटि-कोटि जन की बोली देश-वासिनी हो,
कायर कपूत जनता इससे क्षण में जगनेवाली हो।
काले शासन की शक्ति यह घटानेवाली हो,
निशिदिन ध्यान हमारा हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो॥

सच्चे मर्द बनाकर नव-जीवन देनेवाली हो,
शहीदों को जन्म दिलाकर धन्य बनानेवाली हो।
रामराज्य को फिर से स्थापित करनेवाली हो,
निशिदिन ध्यान हमारा हिन्दी-हिन्दुस्तानी हो॥

—"हिरण्मय"

नाटक प्रदर्शन—

भ्रातृमंडल की आयोजनाओं में हिन्दी नाटक का प्रदर्शन भी एक प्रमुख कार्य था। जनवरी पहली तारीख १९३३ को मद्रास के "सौंदर्य महल" में 'मेवाड़-पतन' नाटक भ्रातृमंडल के सदस्यों द्वारा अभिनीत हुआ। प्रचारकों की अभिनय-पटुता देखकर लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। दर्शकों पर नाटक का बड़ा प्रभाव पड़ा। दर्शकों में शहर के कई प्रमुख प्रतिष्ठित सज्जन, कांग्रेसी नेता, व्यापारी आदि सम्मिलित थे। श्री देवदास गाँधीजी भी दर्शकों में थे।

इस भ्रातृमंडल के संबन्ध में, उसके मंत्री श्री एस. वी. शिवराम शर्मा का वक्तव्य यों है :—

"हालांकि इस प्रान्त में हिन्दी का प्रचार दस-बारह बरस से हो रहा है तो भी दो ही बार सभी कार्यकर्ताओं को एक ही जगह मिलने-जुलने और एक दूसरे का परिचय हासिल करने का मौका मिला है। वजह यह है कि प्रचारकों का कोई संगठन नहीं था। कोई भी आन्दोलन या संस्था अपने उद्देश्यों की सफलता तब तक नहीं पा सकती, जब तक उसके कार्यकर्ता सुसंगठित होकर परस्पर सहयोग और सहानुभूति से काम न करें। अतः यह बहुत ज़रूरी है कि सभी प्रचारक साल भर में एक मर्तबा मिलें और कार्य के सम्बन्ध में सलाह-मशविरा करें। मंडल ऐसा काम कर सकता है जिससे प्रचारकों में साहित्यिक रुचि बढ़े और वे अपने भाषा सम्बन्धी ज्ञान की तरक्की कर सकें।"

व्याकरण सुधार की कल्पना—

"यह मानी हुई बात है कि जो भाषा देश की जनता के मामूली उपयोग के लिए कठिन हो, वह कदापि राष्ट्र-भाषा नहीं बन सकती। याने हिन्दी या हिन्दुस्तानी, व्याकरण की दृष्टि से जितनी आसान बना दी जाय उतनी ही उसकी उपयोगिता

बढ़ सकती है। हम दक्षिण भारत में जिस भाषा का प्रचार करते हैं और उत्तर में अखबार, साहित्य तथा लिखने-पढ़ने के लिए हिन्दी का जो रूप व्यवहार में लाया जाता है, उसे हम सार्वजनिक उपयोग के लिए सुलभ नहीं कह सकते। व्याकरण तथा प्रयोग के नियमों को और भी कहीं ढीला करना जरूरी होगा। इतना ही नहीं, हमें हिन्दी-उर्दू का भी झगड़ा तय करना होगा।"[1]

जीता-जागता चित्र—

तृतीय हिन्दी प्रचारक सम्मेलन के विविध कार्यक्रमों का सिंहावलोकन करते हुए श्री हृषीकेश शर्माजी ने जो विचार व्यक्त किये थे उनसे हिन्दी प्रचार सभा के तत्कालीन कार्य-कलापों की झाँकी पाठकों को मिल सकती है। उनके विचार यों थे—

"अब का तृतीय प्रचारक-सम्मेलन जिसका समारोह सफलता और शान-शौकत के साथ हुआ, वहाँ कार्यकर्ताओं की कार्य-कुशलता, दूरदर्शिता और सच्ची दिली-लगन का जीता-जागता चित्र था। इस सिलसिले में हम इतना ही कहेंगे कि निकट भविष्य में दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल और आशापूर्ण है।"

× × × ×

इस सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता थी सफलता की प्रत्यक्ष-प्रतिभा और दक्षिण भारत के प्रथम हिन्दी प्रचारक श्रद्धेय भाई देवदास जी गाँधी का सभापति पद पर विराजमान होना। इस योग्य पद पर भाई साहब से बढ़कर योग्य अधिकारी कहाँ मिलता! इन पिछले २४ वर्षों में दक्षिण भारत में राष्ट्र-भाषा हिन्दी ने जो गौरव प्राप्त किया है वह उस समय के अल्पवयस्क मधुर-स्वभाव देवदास जी की तपस्या का फल है। यरवदा कारागार में कमलासनस्थ और पंचत्रिंशत्कोटि भारतीयों के हृदयासनस्थ तपस्वी बापू ने इस नम्रता की प्रतिमूर्ति बाल-कर्मयोगी को हिन्दी के सौभाग्य से मद्रास भेजा था। भाई जी के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व में वह शक्ति है जिसने इस सम्मेलन में ज़िन्दादिली, नयी स्फूर्ति और जीवन-ज्योति प्रज्वलित कर दी। इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए उनका नाम ही दूर-दूर से लोगों को खींच लाया। हिन्दी प्रचार की ज़रूरियातों को मद्दे नज़र रखकर अध्यक्ष की हैसियत से दिया हुआ आपका भाषण राष्ट्रभाषा के साहित्य की एक अमूल्य चीज़ है। भाषण में भाषा-सौष्ठव तो है ही, साथ ही हिन्दी वैयाकरणों के दिलों में खलबली मचानेवाली क्रान्ति की चिनगारियाँ भी चमक रही हैं। क्या हिन्दी जगत् के बड़े-बड़े साहित्य-सेवी और हिन्दी की सरलता के हिमायती कर्णधार देवदास जी के विचार-स्वातंत्र्य का स्वागत, अपनी

---

१. 'हिन्दी प्रचारक—जनवरी १९३३।

'सनातनी कट्टरता' छोड़कर करेंगे ? आपने सभा के सामने एक ठोस प्रोग्राम (कार्य-क्रम) रखा है। हाँ, प्रतिवर्ष उत्तरा और दक्षिणापथ की एकता को स्थायी बनाये रखने के लिए, दक्षिण भारत से, हिन्दी ज्ञान के प्यासे मस्ताने मुसाफिरों का दल उत्तर भारत की ओर यात्रार्थ अवश्य निकले। सो तो ठीक है, पर हम पूछते हैं, उत्तर भारत के जोशीले जवानों, हिन्दी के दीवानों से कि उनका जत्था कब झंडा लेकर अपनी प्यारी मातृ-भाषा और भारत की राष्ट्र-भाषा बनाने वाली हिन्दी के हित-साधनार्थ कन्याकुमारी तक की यात्रा करने के लिए निकलेगा ? हम उस क्षण की प्रतीक्षा में हैं।

× × × ×

इस सम्मेलन की कुछ विशेषताएँ थीं। हिन्दी प्रचार सभा दक्षिण भारतीयों की एक प्यारी संस्था है। इसी के द्वारा सारे दक्षिण भारत में व्यवस्थित और संगठित रूप से हिन्दी प्रचार अपनी तेज़ रफ़्तार से बढ़ रहा है। और इस रफ़्तार के बढ़ाने में सभा के परीक्षा-विभाग ने, जिसने अब एक उत्तम राष्ट्रीय, व्यापक और व्यवस्थाबद्ध रूप धारण कर लिया है, और जिससे किसी भी सरकारी विश्व विद्यालय को ईर्ष्या हो सकती है, पदवीदान की रचना की है। अब की बार सभा का पदवीदान समारंभ (उपाधि-वितरणोत्सव) सम्मेलन के साथ ही संपन्न हुआ। गतवर्ष गुजरात विद्यापीठ के तपस्वी कुलपति काका साहेब कालेलकर का पुनीत सत्संग और उनका स्नातकों को दिया हुआ उपदेश–अभिभाषण–सभा की प्रवृत्तियों को श्री वृद्धि में सहायक हुआ था। इस वर्ष मैसूर विश्व विद्यालय के अरबी-फ़ारसी-उर्दू विभाग के संचालक प्रोफ़ेसर आगा मुहम्मद शुस्तरी साहब ने इस वर्ष के स्नातकों के सामने अभिभाषण देने की कृपा की। शुस्तरी साहब ईरानी मुसलमान हैं। मैसूर के शिक्षा-क्षेत्र में आप एक ऐसा सर्वमान्य ऊँचा स्थान रखते हैं, जो बहुत कम व्यक्तियों को प्राप्त है। वे कितने महान और गंभीर विद्वान हैं और उनके हृदय तथा शरीर से क्षण क्षण स्पष्ट झलकने वाली सौजन्य-सूचक नम्रता कितनी आकर्षक है, इसका पता हमें उनके साथ कुछ ही देर रहकर लग गया था। छरहरे बदन के इस ईरानी विद्वान के मुख पर खेलने-वाली बालकों जैसी सरलता और शुचिता हम भूल नहीं सकेंगे। उनके भाषण का शब्द संस्कृत और हिन्दी प्रेम का परिचायक था। हम आपको निर्भीक स्पष्टवादिता के कायल हैं, किन्तु आपके एक विचार के घोर विरोधी भी हैं। आपने हिन्दुस्तान में हिन्दी-उर्दू के झगड़े का हमेशा के लिए खात्मा कर डालने के लिए एक सामान्य लिपि पर अपने विचार रखते हुए शुद्ध-स्वदेशी सुन्दर साफ़-सुथरी देवनागरी लिपि के स्थान पर कुछ दिन के लिए विदेशी 'रोमन लिपि' के उपयोग के लिए जो प्रस्ताव किया है उसे यह देश, जहाँ नागरी और उर्दू-लिपि का ही अधिक प्राचार हो, कहाँ

तक स्वीकार करेगा ! दूसरे ही दिन प्रचारक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए श्रद्धेय गुर्जर कवीन्द्र ईरानी विद्वान खबरदार साहब ने अपने प्रभाव-शाली वक्तव्य में प्रो. शुस्तरीजी के विचारों का प्रबल युक्तियुक्त खण्डन कर दिया था। सम्मेलन के अध्यक्ष ने भी लिपि के प्रश्न पर अपने भाषण में इस पर बहुत ही अच्छा प्रकाश डाला है।

× × × ×

वक्तृत्व-स्पर्धा का अधिवेशन भी बड़े मार्के का रहा। दक्षिण में हिन्दी की वक्तृत्व-शैली को उत्तेजित करने और हिन्दी-व्याख्या-शैली के प्रचार के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि इसी तरह के "वक्तृत्व स्पर्धा-सम्मेलन" प्रत्येक केन्द्र में धूम-धाम से हों और पुरस्कार योग्य व्यक्तियों को प्रोत्साहित तथा पुरस्कृत किया जाय। इस स्पर्धा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को खासा इनाम दिया जाना चाहिए।

× × ×

सम्मेलन की एक उपयोगी और महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि 'प्रदर्शिनी' में रखे हुए कार्टून (व्यंगचित्र) अपने ढंग के निराले थे। प्रदर्शिनी के मंत्री सिद्धनाथ जी ने थोड़े ही समय में प्रदर्शिनी को आकर्षक बनाया है। सभा के निस्पृह सेवक पंतजी प्रदर्शिनी को अपने सहयोगियों की सहायता से लोगों की नज़रों पर चढ़ा सके। पंतजी ने उसे अपने प्रबन्ध के नीचे लेकर बहुत ऊँचा बना दिया था। प्रदर्शिनी का वातावरण सुप्रबन्ध-कारिणी प्रवृत्ति का परिचय कराता था। उसमें त्रुटियाँ न थीं, सो बात नहीं है, और अवश्य थीं, पर-प्रदर्शिनी सफलता पूर्वक हुई।

× × ×

"हिन्दी प्रचारक भ्रातृमण्डल की प्रेरणा से सम्मेलन के मंडप में प्रथम दक्षिण भारत कवि-सम्मेलन भी अपनी धूम-धाम मचा गया। समस्या-पूर्तियाँ और कविताएँ पढ़ी गयीं। कविताएँ दक्षिण भारत और हिन्दी प्रचार के नाते प्रायः अच्छी थीं। जब कि उत्तर भारत के कवि-सम्मेलनों में भी कभी-कभी बहुत ही साधारण-सी कविताएँ सुनने को मिल जाती हैं तब मद्रास के लिए तो ऐसा प्रथम कवि-सम्मेलन औसत दर्जे से ऊँचा था। मैसूर के श्री जयन्ती प्रसादजी श्रीवास्तव की उर्दू-कविता जिसे उन्होंने बड़े ही जोश के साथ पढ़ा था, बहुत अच्छी थी और उपस्थित लोगों ने खूब प्रशंसा की। कवि-सम्मेलन की स्वागताध्यक्षा का भाषण साहित्य की विवेचनात्मक दृष्टि से अच्छा था और अध्यक्ष देवदूत जी के भाषण में कला और कविता की सुन्दर व्याख्या थी। कविताएँ तुकी-बेतुकी सभी ढंग की थीं। व्रजभाषा और खड़ी बोली की भिड़न्त भी हुई। प्रस्ताव भी पेश किया गया, "व्रजभाषा का उपयोग न किया जाय।" परंतु दक्षिण भारत के तरुण कवि काहे को किसी के बन्धन में पड़ने लगे, और कवि तो सदा निरंकुश ही रहना पसन्द करते हैं। किंतु हमारी, इन उदीयमान कवि बनने

वालों से एक विनम्र प्रार्थना है। वह यह कि आप कविता कीजिए, खूब कीजिए, पर हिन्दी-संसार के कवियों की उत्कृष्ट प्राचीन-नवीन रचना का भी अच्छी तरह स्वाध्याय व अनुशीलन कीजिए, और कम से कम तुक-बंदी के कुछ नियम "हिन्दी पद्य रचना" द्वारा ध्यान में रखकर कविता की सृष्टि कीजिये। आशा है भ्रातृमंडल आगामी वर्ष द्वितीय दक्षिण भारत कवि-सम्मेलन के समय इस पर अधिक ध्यान देगा।

× × ×

"मेवाड़पतन" नाटक के प्रदर्शन से मद्रास शहर की जनता पर, खासकर साहूकारपेट की मारवाड़ी, गुजराती आदि उत्तर भारतीय प्रजा पर, अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके दिलों को इस अभिनय ने हिन्दी की उन्नति की ओर आकर्षित किया है। गोविन्द सिंह के पात्र ने दर्शकों को मुग्ध कर दिया था। उस वीर वृद्ध के मुँह से निकली हुई गंभीर वज्र-ध्वनि हमारे अधमरे महत्व को तेज और उत्साह दान करती थी। हमारा हृदय उल्लसित हो उठा था। हिन्दी प्रचारक भ्रातृमंडल ने इस नाटक को खेलकर अपनी उपयोगित साबित कर दी। साहूकारपेट के उत्साही तरुण हमारे प्रिय व्रज, मदन और बाबूलाल का भी अच्छा सहयोग भ्रातृमंडल को मिला। आगे भी इन मातृ-भाषा भक्त भाइयों से हमें बहुत बड़ी आशाएँ हैं। हम अभिनय-कलाधर भाई श्री जमुना से भी विशेष अनुरोध करते हैं कि वे अपनी शैलियों को हिन्दी अभिनय-कला की दिशा में अर्पित कर दें तो दक्षिण भारत में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार करने में बड़ी सहायता पहुँचेगी। दक्षिण भारत की जनता हिन्दी के चुने हुए सुन्दर सुरुचि-वर्धक नाटकों का जब सफल अभिनय देखेगी तब उसका हृदय हिन्दी सीखने के लिए उत्साहित हो उठेगा, और तब हिन्दी-संगीत और हिन्दी नाट्य-कला के रंग में रँग कर यहाँ के हज़ारों नर-नारी, वर्षों-महीनों में, नहीं घण्टों और मिनटों में हिन्दी के प्रेमी बनेंगे।

× × ×

प्रतिनिधियों और सम्मेलन के अध्यक्ष के ठहरने के लिए उत्तम प्रबन्ध था। आगत आदरणीय अतिथियों की व्यवस्था और उनके खान-पान के इन्तज़ाम का भार श्रद्धेय हरिहरशर्मा जी की धर्मपत्नी गोमती बहन ने अपने ऊपर लिया था। हम ने उन्हें देखा है, वे न नींद जानती थीं, न आराम। एक सप्ताह तक उन्होंने जलपान, कलेवा, भोजन और ब्यालू की व्यवस्था कर निश्चित-सा कर दिया था। प्रीति-भोज की बहार भी खूब रंगत लायी। रात्रि-भोज १–१–३३ को प्रिय प्रतापमलजी सेठ की ओर से हुआ। यह भोज, मधुर पक्वान्न, पायस जैसे पदार्थों से समस्त प्रतिनिधियों के लिए तृप्तिकर हुआ। दूसरे दिन का भोज हिन्दी माता के सच्चे सपूत श्रीमान रामनाथजी गोयनका की ओर से था। दोनों भोज अपने ढंग के निराले थे।

× × ×

सम्मेलन और उसके साथ कई समारंभ हुए। भाई देवदासजी का सभापतित्व, वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध प्रोफ़ेसर शुस्तरी साहब और खबरदार साहब के आशीर्वाद, मद्रास शहर के हिन्दी प्रेमी प्रतिष्ठित सज्जनों का समागम, चारों प्रान्तों के कार्यकर्ताओं तथा कई भाई-बहनों का इस राष्ट्रीय-यज्ञ हिन्दी-उत्सव में सम्मिलित होकर एक सप्ताह तक पारिवारिक जीवन बिताना, प्रदर्शिनी, वक्तृत्व-स्पर्धा, कवि सम्मेलन, नाटक-प्रदर्शन, प्रचारक-भ्रातृ-मंडल का कार्यक्रम, परस्पर अपूर्व प्रेम, अनुनय-विनय और आपस का शिष्टाचार; इत्यादि दृश्य—यह सारी धूम-धाम फिर से पुनर्मिलन का निमंत्रण देती है।"[1]

'हिन्दी प्रचारक' का दशाब्दि उत्सव

ता० २७-४-३३ को 'हिन्दी प्रचारक' पत्रिका का 'दशाब्दि-उत्सव' हिन्दी प्रचारक विद्यालय, मद्रास में 'विशाल भारत' के संपादक श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की अध्यक्षता में मनाया गया। अध्यक्ष-भाषण में आपने जो विचार व्यक्त किये थे, उनका नीचे उद्धृत अंश इस बात का प्रमाण है कि सभा के बढ़ते हुए कार्य को देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए थे।

उन्होंने यों कहाः—दक्षिण भारत के स्त्री-पुरुषों और बालक-बालिकाओं में हिन्दी के प्रति प्रेम देख कर मैं सचमुच आश्चर्य में पड़ गया हूँ और मेरा अनुमान है आपका यह कार्य किसी भी सहृदय हिन्दी भाषी को चकित किये बिना न रहेगा। शुद्ध राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर जहाँ ५०-६० वर्ष के वृद्ध और ५-६ वर्ष की लड़कियाँ हिन्दी पढ़ने में संलग्न हों, वहाँ सफलता क्यों न मिलेगी?

"इस कार्य को देखकर हम हिन्दी भाषा-भाषियों को अभिमान से फूल न जाना चाहिए; बल्कि और गंभीरतापूर्वक अपनी जिम्मेवारी का अनुभव करना चाहिए। हमारी राष्ट्र-भाषा का प्राचीन साहित्य तो अवश्य ऐसा है जिसे हम गौरव के साथ लोगों के सम्मुख रख सकते हैं।

यह बात मुझे यहाँ खेदपूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि राष्ट्र-भाषा का साहित्य जैसा उन्नत होना चाहिए वैसा उन्नत साहित्य हिन्दी का अभी नहीं बन पाया है। हम उस दिन की प्रतीक्षा बड़ी उत्कंठा के साथ कर रहे हैं जब स्वयं दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी अपनी सर्वोत्तम रचनाएँ राष्ट्र-भाषा को अर्पित करेंगे। दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार कार्य के प्राण हरिहरशर्माजी से मेरा दस-बारह वर्ष से परिचय है और जब पहली बार मैंने उनका भाषण हिन्दी साहित्य सम्मेलन के किसी अधिवेशन

(१) 'हिन्दी प्रचारक' १९३३ जनवरी पृष्ठ—७६
('सिंहावलोकन' श्री हृषीकेश शर्मा)

पर सुना था तब मैं यह ख्याल भी नहीं कर सका था कि इनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है और सत्यनारायण जी के विषय में मुझे और भी धोखा हुआ। आज से चौदह वर्ष पहले जो बीज महात्माजी ने बोया था और जिसे जमनालालजी, देवदास जी इत्यादि ने बड़े परिश्रम के साथ सींचा था, वह आज एक हरे-भरे वृक्ष के रूप में विद्यमान है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार प्राचीनकाल में तत्कालीन राष्ट्र-भाषा संस्कृत के द्वारा दक्षिण के भगवान् शंकर, रामानुज तथा माधवाचार्य ने उत्तर पर विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार आप लोग फिर आधुनिक राष्ट्र-भाषा हिन्दी द्वारा उत्तर पर विजयी होंगे।[1]

बापूजी का सन्देश—

महात्मा गाँधीजी ने दक्षिण के हिन्दी प्रचार कार्य की सर्वव्यापकता के संबन्ध में हरिहरशर्माजी को एक संदेश में लिखा कि वे दक्षिण के कोने-कोने में हिन्दी का प्रचार चाहते हैं। उनका संदेश यों थाः—

"पं० हरिहरशर्मा से दक्षिण प्रान्तों में हिन्दीप्रचार का बयान सुनकर सामान्यतया संतोष ही होना चाहिए; किन्तु मुझे तो तभी संतोष होगा जब हरेक देहात में भी राष्ट्र-भाषा का प्रचार हो जाय। इस शुभ काम के लिए जिससे जो कुछ भी सहायता दी जा सकती है, वह दे।"

१७—६—१९३३ मोहनदास गाँधी

हिन्दी-साहित्य के प्रति दृष्टिकोण—

जब दक्षिण में हिन्दी का सर्वव्यापक प्रचार होने लगा, हिन्दी के कुछ विरोधियों ने यह कहना शुरू किया कि हिन्दी में दक्षिण की भाषाओं के मुकाबले में साहित्य कम है अथवा कुछ नहीं है। लोगों में आज भी इस संबन्ध में भ्रम फैला हुआ है। आज के हिन्दी-विरोधी आन्दोलनवाले भी उस पुराने स्वर में स्वर मिलाकर हिन्दी की निन्दा किया करते हैं। उन लोगों की यह धारणा भ्रामक कल्पना पर आधारित है। उसे दूर करना हिन्दी भाषा-भाषियों का कर्तव्य है। लेकिन दक्षिण के हिन्दी विद्वानों का उत्तरदायित्व भी इस विषय में उत्तरवालों से कम नहीं है। यह मानी हुई बात है कि पराधीनता में किसी भी देशी भाषा के साहित्य का विकास हो ही नहीं सकता। यदि वर्षों की गुलामी में भारतीय भाषाओं की उन्नति नहीं हुई अथवा उच्चकोटि की साहित्य-रचना नहीं हुई तो उसके लिए कोई भाषा दोषी नहीं ठहर सकती।

---

(1) हिन्दी प्रचारक—दशाब्दि अंक अप्रैल १९३३

भारत की कोई भी भाषा यह दावा नहीं कर सकती कि परतंत्रता में रहते हुए उसका सर्वतोमुखी विकास हुआ है। किसी भारतीय भाषा का साहित्य पराधीनता में फूले-फले और किसी का मुर्झा जाय, ऐसा हो ही नहीं सकता। सब कहीं विजेताओं का यह प्रथम कर्तव्य रहा कि वह विजित देश की भाषा का सब से पहले विकास बन्द करे और अपनी भाषा का प्रचार शुरू करे। भारत में भी वही हुआ। अंग्रेजी का प्रचार बढ़ा, भारतीय भाषाएँ अंग्रेज़ी के नीचे दब गयीं। तब किसी एक भाषा का यह दावा करना कि उसका साहित्य सर्वोत्कृष्ट है कोई मानी नहीं रखता। दक्षिण के लोगों का भ्रम दूर करने के लिए उत्तरवालों को क्या करना चाहिए, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने सन् १९३३ में हुए, हिन्दी-प्रचार सभा के उपाधि-दान-सम्मेलन में अपने विचार यों व्यक्त किये थे :—

"इस कार्य को देखकर हम हिन्दी भाषियों को अभिमान से फूल न जाना चाहिए; बल्कि और भी गंभीरतापूर्वक अपनी जिम्मेवारी का अनुभव करना चाहिए। हमारी राष्ट्र-भाषा का प्राचीन साहित्य तो अवश्य ऐसा है जिसे हम गौरव के साथ लोगों के सम्मुख रख सकते हैं। पर हमारा आधुनिक साहित्य अभी उन्नत नहीं है, फिर भी हमारे यहाँ प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुदर्शन इत्यादि ऐसे लेखक और कवि हैं जिनकी रचनाएँ पढ़कर दक्षिण के लोगों को निराश नहीं होना पड़ेगा।"

उन्होंने दक्षिण के हिन्दी-प्रेमियों की साहित्यिक रचनाओं से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की कामना करते हुए फिर यों कहा :—

"हम उस दिन की प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठा के साथ कर रहे हैं, जब स्वयं दक्षिण भारत के हिन्दी-प्रेमी अपनी सर्वोत्तम रचनाएँ राष्ट्र-भाषा को अर्पित करेंगे। दक्षिण भारत के लेखकों तथा कवियों की हिन्दी रचनाओं का हम लोग सादर स्वागत करेंगे।"

दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक समन्वय में साहित्य का आदान-प्रदान कितना उपयोगी सिद्ध होगा, इस बात पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि उत्तर भारत के निवासी इस बात में बड़े अपराधी हैं। क्योंकि दक्षिण भारत में जो सैकड़ों ऐसे लेखक उत्पन्न हो गये हैं, जो हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद तमिल, तेलुगु, कन्नड़ी और मलयालम में कर सकते हैं, पर उत्तर भारत में दो चार भी लेखक ऐसे न मिलेंगे जो दक्षिण भारत की भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद कर सकें। उन्होंने यह भी अपने भाषण में घोषित किया कि "मैं अपने पत्र (विशाल भारत) का एक 'दक्षिण भारत

अंक' निकालना चाहता हूँ। दक्षिण के संगीत, साहित्य, कला इत्यादि के क्षेत्रों में जो-जो विशिष्ट व्यक्ति कार्य कर रहे हैं, उनका परिचय उत्तर भारतीयों को मिलना चाहिए। प्रांतीयता के भावों को दूर करने में और पारस्परिक कलह को रोकने के लिए सांस्कृतिक एकता का यह आन्दोलन बहुत सहायक होगा।

हिन्दी भाषियों में 'मिशनरी स्पिरिट' नहीं

दक्षिण भारत के हिन्दी-प्रचारकों की कार्य तत्परता देखकर श्री बनारसीदास चतुर्वेदी बहुत ही हर्षित हुए। उन्होंने दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों की तारीफ़ में कहा कि 'जिस योग्यता और मिशनरी स्पिरिट से दक्षिण के हिन्दी प्रचारक काम कर रहे हैं, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। हिन्दी भाषा-भाषियों में इस मिशनरी स्पिरिट का प्रायः अभाव ही है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के शान्ति-निकेतन में जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों के विद्वान प्रायः जाते रहते हैं और अपनी संस्कृति और साहित्य से वहाँ के शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को परिचित कराते हैं; पर हिन्दी भाषा-भाषी विद्वानों का ध्यान इधर नहीं गया। इतने वर्षों में भी हमलोग वहाँ हिन्दी शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं कर पाये। स्वयं महात्माजी ने आज से कई वर्ष पहले एक बार आश्रम में मुझसे कहा था—"मैं समस्त गुजरात में हिन्दी का प्रचार करना चाहता हूँ, पर मुझे ऐसे हिन्दी भाषा-भाषी युवक नहीं मिलते जो निर्वाह मात्र के लिए पैसा लेकर निस्वार्थ भाव से यह काम कर सकें; महाराष्ट्र में ऐसे कार्यकर्त्ता अच्छी संख्या में मिलते हैं। मेरे पास एक सुयोग्य महाराष्ट्र नवयुवक थे जो बी. ए., एल. एल. बी. होने पर भी केवल पन्द्रह रुपये लेकर काम करते थे। हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में इस भावना से काम करनेवालों की कमी है" महात्माजी का यह कथन आज भी उतना ही ठीक है, जितना तब था।

दक्षिण के हिन्दी प्रचार में त्रुटि—

दक्षिण में श्री बनारसीदासजी कुछ दिन तक भ्रमण पर रहे। भ्रमण में उन्होंने हिन्दी प्रचार-कार्य का निरीक्षण किया। हिन्दी के सर्वव्यापक प्रचार एवं प्रसार से प्रभावित होते हुए भी, उन्होंने यहाँ जो त्रुटियाँ पायीं, उन पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने "दक्षिणी यात्रा" शीर्षक अपने लेख में यों लिखा थाः—

"दक्षिण के हिन्दी प्रचार सम्बन्धी कार्य का यथोचित निरीक्षण करने के लिए तीन महीने की आवश्यकता थी। आठ ही दिनों में हम देख ही क्या सकते थे। फिर भी जो कुछ हमने देखा, उससे हम बड़े प्रभावित हुए। एक त्रुटि हमें दीख पड़ी, वह यह कि शुद्ध हिन्दी बोलने का अभ्यास अनेक छात्रों तथा छात्राओं को नहीं हो पाया। यदि समय-समय पर उत्तर भारत से कुछ प्रचारक उधर जाते रहें तो उन लोगों को शुद्ध हिन्दी सुनने तथा बोलने के अवसर अधिक मिल सकते हैं। उसके

सिवा दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचारकों को उत्तर भारत में आने के लिए मौके मिलने चाहिए। दक्षिण भारत से जो विद्यार्थी उत्तर भारत की संस्थाओं में अध्ययन करने के लिए जाएँ, उनके साथ हमें पूर्ण सहानुभूति तथा उदारता का बर्ताव करना चाहिए।"

उत्तर और दक्षिण की सांस्कृतिक एकता—

श्री चतुर्वेदीजी का विश्वास था कि उत्तर के लोगों का यह कर्तव्य है कि वे दक्षिण की कुछ भाषाएँ अवश्य सीखें। दक्षिण और उत्तर की एकता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने महत्वपूर्ण विचार यों प्रकट किये:—

"दक्षिण भारत के निवासियों का हिन्दी-प्रेम देखकर एक प्रश्न सहसा हमारे मन में उठता है। क्या, हम लोगों में से कुछ लोग तमिल, तेलुगु, कन्नड़ी तथा मलयालम् भाषाओं को पढ़ें ? उत्तर और दक्षिण की सच्ची एकता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे नवयुवक साहित्यसेवी उन भाषाओं में से एक का अध्ययन करें। जब महात्मा जी साठ-पैंसठ वर्ष की उम्र में बंगला भाषा सीखना प्रारंभ कर सकते हैं तो बीस-बाईस वर्ष के युवकों के लिए तमिल या तेलुगु सीखना असंभव है! उत्तर तथा दक्षिण के सांस्कृतिक मेल के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।"[१]

---

१. 'हिन्दी प्रचारक' दिसंबर १९३३

प्रकरण ५

व्याकरण-सुधार-विचार विमर्श—

जब से दक्षिण में हिन्दी का अध्यापन और अध्ययन का कार्य बढ़ने लगा तब से अध्यापक, विद्यार्थी दोनों यह अनुभव करने लगे कि हिन्दी के व्याकरण के नियम या तो अपूर्ण हैं या शिथिल हैं। यह निर्विवाद बात है कि 'व्याकरण ही भाषा की गति-विधि पर अनुशासन करता है। भाषा के पश्चात् ही उसका व्याकरण बनता है।' हिन्दी के व्याकरण के नियमों में कुछ ऐसे शिथिल नियम निर्धारित हैं जिनके अनुसार हिन्दी भाषा-भाषी साहित्यिक भी नहीं चलते। उदाहरण के रूप में लिंग सम्बन्धी नियम प्रस्तुत किया जा सकता है। स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिंग की पहचान करानेवाले नियमों की अव्यवस्था दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों और अध्यापकों को बहुत ही खटकनेवाली है। उत्तर के लेखकों की भाषा में भी कई शब्दों के प्रयोग में व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं पाया जाता। हिन्दी के शब्द-कोशों में भी लिंग निर्णय में शिथिलता दिखाई पड़ती है। इस हालत में दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों और अध्यापकों को इस विषय में कठिनाई अनुभव होती हो तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। लिंग-निर्णय, 'ने' नियम, 'का-के-की' नियम, उच्चारण, वर्णमाला आदि की अनिश्चित और अनियंत्रित नियम-शिथिलता के कारण जो कठिनाइयाँ अनुभूत हुईं, उनको ध्यान में रखते हुए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक-सम्मेलन के सन् १९३२ के अधिवेशन में हिन्दी-व्याकरण का सुधार सम्बन्धी एक प्रस्ताव पास हुआ था। प्रस्तावक उन दिनों के सुप्रसिद्ध हिन्दी कार्यकर्ता श्री जंबुनाथन् थे। (श्री जंबुनाथन् इन दिनों मैसूर विश्वविद्यालय के साइन्स के प्रोफेसर हैं)। उनके प्रस्ताव का आशय यह था :—

"हिन्दी शिक्षा को और भी सुलभ बनाने के लिए यह सम्मेलन हिन्दी-व्याकरण को एक सरल रूप देने की आवश्यकता समझता है और इसीलिए सम्मेलन यह प्रस्ताव करता है कि हिन्दी प्रचार की दृष्टि से व्याकरण के वर्तमान रूप में क्या-क्या परिवर्तन आवश्यक हैं। यह बात उत्तर के हिन्दी विद्वानों और हिन्दी साहित्यसेवी संस्थाओं को ज्ञापित करने और इस प्रस्ताव पर तुरंत कार्रवाई करने का कार्य श्री एम० वी० जंबुनाथन् तथा पं० अवधनन्दन को सौंपा जाय।[1]"

इस प्रस्ताव पर काफ़ी चर्चा हुई और अन्त में बहुमत से वह पास भी हुआ।

---

1. 'हिन्दी प्रचारक' अप्रैल १९३३।

उक्त प्रस्ताव के समर्थन में श्री जंबुनाथन्‌जी ने 'हिन्दी प्रचारक' में तीन-चार लेख भी लिखे थे। उनके विचार पठनीय हैं। उनके विचारों का सारांश यह है:—

"हिन्दी में वह सरलता नहीं है जो एक राष्ट्र-भाषा के लिए आवश्यक है, अतः प्रचार की दृष्टि से उसे और भी सरल और लचीला बनाना चाहिए। भाषा को कड़े बंधन में रखने से उसका विकास बन्द होता है। अतएव हिन्दी के प्रचार में दक्षिण के विद्यार्थियों को होनेवाली कठिनाइयों को कम करने के सदुद्देश्य से हिन्दी के व्याकरण को सरल बनाना बुद्धिमत्ता का काम होगा।"

उन्होंने अपने विचारों की पुष्टि में उत्तर के कुछ विद्वानों के व्याकरण सुधार सम्बन्धी वक्तव्य को प्रस्तुत करते हुए यों लिखा था :—

"यह बड़े संतोष की बात है कि उत्तर भारत के हिन्दी के विद्वान् भी व्याकरण सुधार की आवश्यकता समझते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्वालियर-अधिवेशन में पं० श्यामबिहारी मिश्र ने अपने अध्यक्ष भाषण में कहा है कि व्याकरण के नियमों को कड़े रखने से भाषा की उन्नति में धक्का पहुँचता है। इसलिए भाषा के विकास की दृष्टि से व्याकरण के नियमों को कुछ ढीला होने देना आवश्यक है।"[1]

हिन्दी व्याकरण के सुधार के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए श्री जंबुनाथन् ने नीचे लिखे सुझाव दिये।

१—'ने' प्रत्यय निकाल दिया जाय और अकर्मक जैसा सकर्मक क्रिया का भी भूतकालिक रूप हो।

जैसे—लड़का खाया, लड़के खाये, लड़की खायी इत्यादि।

श्री जंबुनाथन्‌जी कहते हैं कि यह सच है, इस परिवर्तन से हिन्दी की सुन्दरता चली गयी-सी प्रतीत होगी; वाक्य बहुत भद्दे दीखेंगे; किन्तु कुछ दिन के अभ्यास से यह प्रतीति दूर होगी; वाक्य सुन्दर और मधुर मालूम पड़ेंगे।

२—दूसरा सुधार यह है कि लिंग-निर्णय में जो गड़बड़ी है वह दूर की जाय। प्राणिवाचक शब्दों में स्त्रीबोध करानेवाले सभी शब्द स्त्रीलिंग और अन्य सभी शब्द पुल्लिंग माने जायँ।

३—सर्वनामों और आकारान्त पुल्लिंग शब्दों में जब विभक्ति प्रत्यय लगते हैं, तब उन शब्दों के रूप में कोई परिवर्तन न हो।

जैसे—मैं का भाई का नाम; वह लड़का का पुस्तक आदि।

४—चाहिए, पड़ना, होना आदि सहायक क्रियाओं के प्रयोग में कर्ता से 'को' प्रत्यय न जोड़ा जाय; कर्ता प्रथमा विभक्ति में ही रहे।

जैसे—आप खाना चाहिए; मैं जाना पड़ा; वह एक रुपया देना है, आदि।

---

१. 'हिन्दी प्रचारक'—अप्रैल १९३२।

५—मध्यम पुरुष 'तुम' निकाल दिया जाय; 'तू' एकवचन रहे और 'आप' बहुवचन। पर 'तू' का प्रयोग आम तौर से न किया जाय।

जैसे—मैं खाता हूँ—हम खाते हैं
तू खाता है—आप खाते हैं
वह खाता है—वे खाते हैं (आदि)

६—नीचे लिखे वाक्य ठीक माने जायँ।
मैं आकर चार दिन हुए।
राम को दो भाई हैं।
विद्वान् को सब आदर करते हैं।

श्री जंबुनाथन् ने उपर्युक्त सुझाव देते हुए यह सूचित किया है कि दक्षिण भारत के लोग अपनी मातृ-भाषा की रूढ़ि और मुहावरों का हिन्दी में प्रयोग करेंगे; उसे हिन्दी-भाषा-भाषियों को स्वीकार करना ही पड़ेगा। नहीं तो आगे चलकर उत्तर भारत की हिन्दी और दक्षिण की हिन्दी में काफ़ी अन्तर पड़ेगा और धीरे-धीरे वे शायद ही एक दूसरे को पहचान सकें। ऐसी हालत में हिन्दी के राष्ट्र-भाषा के पद से च्युत होने की सम्भावना है।

उन्होंने अपने विचारों की पुष्टि में आचार्य काकाकालेलकर, देवदास गाँधी और डॉ० अनसारी के व्याकरण-सुधार विषयक विचारों को भी व्यक्त किया है।

आचार्य काकाकालेलकर ने व्याकरण-सुधार सम्बन्धी अपने विचार एक स्थान पर यों व्यक्त किये थे।

"जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है, उनसे हम एक प्रार्थना करेंगे। राष्ट्रहित की दृष्टि से और अपना स्वार्थ समझ कर भी आपको एक दम आसान हिन्दी का ही व्यवहार करना चाहिए। हम अपने-अपने प्रान्त के मुहावरे और कहावतें हिन्दी में दाखिल करेंगे। आपको यह मंजूर करना होगा। फ्रेंच भाषा जब यूरोप की सर्वमान्य भाषा हुई, तब फ्रेंच लोगों ने सभी के सुभीते के लिए अपना व्याकरण भी कुछ आसान कर दिया; सार्वत्रिक गलतियों को मान्यता दी। आपको भी हिन्दी व्याकरण इसी तरह से लचीला रखना होगा।"[१]

इसी विषय की चर्चा करते हुए श्री देवदास गाँधी जी ने अपनी राय यों दी :—

"मेरा यह दृढ़ अभिप्राय है कि यदि हम हिन्दी भाषा का हिन्दुस्तान भर में, खास कर दक्षिण में, विस्तृत प्रचार पूर्ण रूप से सफल करना चाहते हैं तो हिन्दी भाषा के कतिपय नियमों में कुछ सुधार किया जाना नितांत आवश्यक है। अप्राणिवाचकों के पुँल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दो विभाग निकाल देने चाहिए। भूतकाल में सकर्मक

---

१. हिन्दी प्रचारक, अप्रैल १९३३.

क्रिया के साथ 'ने' का प्रयोग, जो भाषा के सीखनेवालों के रास्ते में इधर बड़ी अड़चन डालता है, निकाल दिया जाय तो बड़ा फायदा होगा। इस नियम ने जो-जो बाधाएँ डाली हैं, उनकी गवाही हज़ारों हिन्दी सीखने का प्रयत्न करनेवाले लोगों से मिलती रहती है।"[१]

डॉ० अनसारी के विचार—

"भाषा में भी हुस्न और खूबसूरती काम की बातों के साथ-साथ चल सकती है; नहीं तो मुमकिन है, भाषा ज़रूरत से ज़्यादा खूबसूरत और ज़रूरत से ज़्यादा बनावटी हो जाय। काम की बात और बनावट-सजावट में जब आपस का रिश्ता कमज़ोर हो जाता है तो ज़बान समझने की ज़रूरत अपना रास्ता लेती है और बनावट-सजावट अपना। आम लोग पहिले के साथ होते हैं, और ज्यादा पढ़े-लिखे लोग दूसरे के साथ। लेकिन, इस जुदाई से ज़बान के दोनों हिस्से टोटे में रहते हैं।"[२]

श्री जम्बुनाथन् 'व्याकरण-सुधार' पर प्रकाश डालते हुए फिर भी लिखते रहे। अपनी जबरदस्त दलीलों से वे हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान उस ओर आकृष्ट करने में कुछ हद तक सफल हुए। लिंग-निर्णय और 'ने' प्रत्यय पर प्रकट किये गये उनके विचारों का यद्यपि कुछ दक्षिणी लोगों ने ही खण्डन किया, तो भी आज भी व्याकरण-सुधार और भाषा-सरलीकरण की समस्या को लेकर वाद-विवाद चल रहा है। जम्बुनाथन् जी के उस समय के विचार इस लम्बे अर्से के बाद भी ज्यों के त्यों दक्षिण की ही नहीं; बल्कि समूचे भारत की भाषा-समस्या के मूल में विद्यमान रहते हैं। वर्तमान समय के राष्ट्र-भाषा प्रेमियों को चाहिए कि वे श्री जम्बुनाथन् जी के निम्न-लिखित विचारों पर गौर करें और इस समस्या को हल करने का उपाय ढूँढ़ निकालें। उनके विचार यों हैं :—

"अब रही लिंग-निर्णय की बात। सहाय, विनय, बर्फ़, तमाखू, दरार, श्वास, गेंद, गड़बड़, कलम, आत्मा, मजा, समाज, चाल-चलन, स्टेशन, मोटर, फ़ीस, वायु, सामर्थ्य आदि शब्द उभयलिंगों में प्रयुक्त होते हैं। इस आज़ादी के क्षेत्र को कुछ और बढ़ाना चाहिए। मामूली तौर से अप्राणिवाचक शब्द सब पुँल्लिंग होते हैं, मगर रोटी, भीड़, दाल, रात, प्यास, कृपा, बीमारी, किताब आदि शब्द, जो अब स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं, एक पीढ़ी तक हिन्दी के कट्टर-पन्थियों को उसी लिंग में प्रयुक्त करने की आज़ादी दी जाएगी। इससे किसी को किसी तरह की तकलीफ़ न होगी।

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक'—अप्रैल—१९३३।

२. " " "

" 'ने' के सम्बन्ध में भी यही बात है। व्याकरण नियम के अनुसार 'हम आपकी बात समझे' और 'हमने आपकी बात समझी' ये दोनों ठीक हैं। तब 'हम आपकी सुने' यह क्यों अशुद्ध माना जाय? जिसको जो प्रयोग पसन्द आवे, करने की छूट देनी चाहिए, अर्थात् दोनों वाक्य—'हम आपकी बात सुने' और 'हमने आपकी बात सुनी'—शुद्ध माने जायँ। कुछ दिनों तक पुरानी पद्धति का अनुसरण करने की छूट हिन्दी के कट्टर-पन्थियों को दी जाय।"[1]

व्याकरण-सुधार का विरोध—

दक्षिण के कुछ कार्य-कर्ताओं ने श्री जंबुनाथन् के विचारों का खण्डन करते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये। उनके विचारों का सारांश नीचे उद्धृत है।

श्री एम. एस. शर्मा (टेलिचेरी) के विचार—

"अगर ये परिवर्तन लाये जायँ तो सबको नये सिरे से हिन्दी सिखानी पड़ेगी। मातृ-भाषाभाषी, साहित्यिक लोग और दक्षिण के हिन्दी पढ़े-लिखे लोग ये सब दुविधा में पड़ जाएँगे। इसके अतिरिक्त और एक मुसीबत हिन्दी पर आएगी; वह यह कि आधुनिक हिन्दी साहित्य, जो अब तक बन चुका है, बिलकुल अप्रामाणिक हो जाएगा और साथ ही हिन्दी के सिद्धहस्त लेखकों तथा कवियों की कलम से स्रवित हिन्दी की अमृत धारा की गति अवरुद्ध हो जायगी; इस कारण सदियों तक हिन्दी में सजीव साहित्य का निर्माण असंभव सा हो जाएगा। इस प्रकार के परिवर्तन में पड़कर हिन्दी भाषा विस्तृत, संग्राहक और लचीली होने के बजाय भद्दी, विकृत और शिथिल बन जाएगी।"[2]

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अनुभवी तथा विद्वान् कार्यकर्ता श्री भालचन्द्र आपटे ने, जिनकी मातृ-भाषा मराठी है, अपने विचार पत्रों में प्रकट किये थे। उनके विचारों का सारांश नीचे उद्धृत है।

"हिन्दी के व्याकरण का सुधार करना हो तो उसका असर हिन्दी के साथ-साथ उर्दू, मराठी आदि पर कैसा पड़ेगा, इस पर ध्यान देना आवश्यक है। यदि अन्य भाषाओं की असुविधा कर, कुछ भाषाओं की सुविधा पर ध्यान देने का नाम ही हिन्दी-व्याकरण-सुधार है, तब तो हमें कुछ नहीं कहना है। एक अपूर्णता को दूर करते हुए दूसरी अपूर्णता पेश करने का नाम सुधार नहीं। सुधार में व्यापकता होनी चाहिए। वर्तमान हिन्दी के व्याकरण में संशोधन करने से दक्षिण भारतीयों को बहुत

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक'—जुलाई—१९३३।

२. हिन्दी प्रचारक—मई—१९३३।

सुविधा हो जाएगी, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु उत्तर के लोगों को उससे दस गुना असुविधा होगी, यह भी विचारणीय बात है।"[1]

श्री काकाकालेलकर के विचार—

व्याकरण-सुधारवाद के सिलसिले में आचार्य कालेलकर ने पक्ष-विपक्ष कीद लीलों पर गौर करते हुए तटस्थभाव से जो विचार इस सम्बन्ध में व्यक्त किये, वे अत्यन्त महत्व के हैं। उनके विचारों का उद्धृत अंश पठनीय है।

"हिन्दी राष्ट्र-भाषा है, उसका मुख्य कारण, करोड़ों भारतवासियों की आज वह जन्म-भाषा है। उनका अधिकार हिन्दी पर अधिक है। उन्होंने सदियों से उस भाषा की सेवा भी की है। उनके व्याकरण पर दक्षिण के लोग मनमाने हस्तक्षेप नहीं कर सकते। दक्षिण के लोग हिन्दी के व्याकरण की सरलता अवश्य माँग सकते हैं। वह विकल्प रूप से माँगनी है। उत्तर के करोड़ों हिन्दी भाषा-भाषी आपके सुभीते के लिए अपने मुहावरों को न छोड़ेंगे; आप दक्षिणी मुहावरों की आदत से हिन्दी में जितनी भूलें करेंगे उनमें से, एकाध नियम ढूँढ़ कर, उसके अनुसार आपकी भूलें, भूलें न मानी जायँ। इतनी ही आप आशा रख सकते हैं। मैं उत्तर-दक्षिण के बीच में रहनेवाला हूँ। मेरा यह निर्णय तटस्थ भाव से दिया हुआ है।"[2]

बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी के विचार—

जब दक्षिण में 'व्याकरण सुधार की समस्या' को लेकर तीव्र वाद-विवाद होने लगा तो बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी ने हिन्दी की शब्दावली और हिन्दी व्याकरण के सम्बन्ध में दक्षिणी लोगों की कठिनाइयों को जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने दक्षिण के हिन्दी-कार्यकर्ताओं के सामने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए, उनसे अनुरोध किया कि वे अपने अनुभव के आधार पर व्याकरण और शब्दावली के विषय में विचार लिख भेजें। राजेन्द्रबाबूजी ने उक्त वक्तव्य में अपने विचार यों प्रकट किये थे:—

"दक्षिण भारतीय प्रान्तों में हिन्दी प्रचार में हिन्दी-व्याकरण और शब्दावली के कारण से आप लोगों को कौन सी कठिनाइयाँ अनुभूत हुई हैं? मेरा विचार है कि हिन्दी की शब्दावली को अन्य भाषाओं से शब्द लेकर बढ़ाया जाय और इसके लिए उर्दू, फारसी के प्रचलित शब्दों को तथा प्रान्तीय भाषाओं के और हिन्दी-भाषी ग्रामों की ग्राम्य-भाषा के भी सभी शब्द निस्संकोच लिये जायँ। शब्दावली के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी के लिए हिन्दी का व्याकरण भी कठिनाइयाँ उपस्थित

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक'—जून १९३३।

२. हिन्दी-प्रचारक जुलाई—१९३३

करता है। मैं जानना चाहता हूँ कि इस सम्बन्ध में आप लोगों का क्या अनुभव है? दक्षिण भारतीय किन नियमों में अधिक कठिनाई अनुभव करते हैं और व्याकरण को सुगम और सहज साध्य बनाने के लिये किस परिवर्तन की आवश्यकता है?[1]"

लिंगभेद-नियंत्रण समिति—

सन् १९३५ में आगरा में 'लिंगभेद-नियंत्रण समिति' नामक एक समिति स्थापित हुई। उसके संयोजक श्री रामरत्न जी रहे। उन्होंने एक वक्तव्य द्वारा यह सूचित किया था कि 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, दिल्ली अधिवेशन में, हिन्दी भाषा की राष्ट्रीयता तथा उसके प्रकार की दृष्टि से हिन्दी-शब्दों के लिंग-भेद का यथा संभव नियंत्रण किया जाय' इस आशय का एक प्रस्ताव पास हुआ है, और इस कार्य के लिए एक समिति बनायी गयी है जिसके सदस्यों में बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन, रावबहादुर पं० सुखदेव बिहारी मिश्र लखनऊ, कर्मवीर-संपादक पं० माखनलाल चतुर्वेदी और पं० हरिहर शर्मा, मद्रास प्रमुख हैं।

संयोजक ने निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर माँगे थे।

१—भिन्न-भिन्न प्रांतों में हिन्दी बोलने या लिखनेवालों के सामने क्या-क्या कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं?

२—ये कठिनाइयाँ किस प्रकार दूर की जा सकती हैं?

उक्त प्रश्नों के आधार पर हिन्दी के कार्यकर्ताओं से जो उत्तर मंगाये गये थे, उन पर क्या कार्रवाई हुई, इसका अभी तक पता नहीं चला है। इतना तो निश्चित है कि व्यापक रूप में समिति द्वारा कुछ कार्य नहीं हुआ है।

सर्वप्रथम कार्यकारिणी समिति—

सभा की कार्यकारिणी समिति का नया चुनाव ९-३-१९३२ को हुआ। निम्नलिखित सज्जन उसके सदस्य चुने गये :—

१. श्री. महात्मा गाँधी—(आजीवन अध्यक्ष)
२. " नागेश्वर राव पंतलु (उपाध्यक्ष)
३. " ए. रंगस्वामी अय्यंगार (उपाध्यक्ष)
४. " राजगोपालाचारी
५. " भाष्यम्
६. " रामनाथ गोयनका } कोषाध्यक्ष
७. " हरिहर शर्मा }
८. " देवशी मूलचन्द
९. " वी. रामदास पंतलु

---

१. 'हिन्दी प्रचारक'—१९३५

१०. ,, संजीवी कामत

११. ,, इग्नेशियस ।

उस समय आजीवन कार्यकर्ता-मण्डल भी स्वीकृत हुआ था। निम्नलिखित ९ प्रचारक आजीवन कार्यकर्ता नियुक्त हुए थे।

१. श्री. हरिहर शर्मा
२. ,, रघुवरदयालु मिश्र
३. ,, अवधनन्दन
४. ,, देवदूत विद्यार्थी
५. ,, सत्यनारायण
६. ,, पी. वी. सुब्बाराव
७. ,, रामचन्द्र शास्त्री
८. ,, दामोदर उण्णी
९. ,, हृषीकेश शर्मा

कार्यकारिणी समिति ने पिछले प्रचारक सम्मेलन के प्रस्तावों पर भी ध्यान देकर आवश्यक उपनियम बनाये।

सभा के साहित्य निर्माण-कार्य को सुचारु रूप से चलाने और परीक्षा सम्बन्धी कार्य को सुव्यवस्थित करने में साहित्य मंत्री व परीक्षा मंत्री को सहायता देने के लिए निम्नलिखित सदस्यों की समितियाँ बनायी गयी थीं। आरंभ में सभा के साहित्य-निर्माण तथा परीक्षा-आयोजना के ये ही निर्माता रहे।

साहित्य-समिति—

१. श्री. हरिहर शर्मा (प्रधान मंत्री)
२. ,, सत्यनारायण
३. ,, हृषीकेश शर्मा
४. ,, अवधनन्दन
५. ,, रघुवरदयालु मिश्र
६. ,, नागेश्वर मिश्र
७. ,, चन्द्रहासन
८. ,, रामचन्द्र शास्त्री

परीक्षा समिति—

१. श्री. हरिहर शर्मा (प्रधान मंत्री)
२. ,, सत्यनारायण (परीक्षा मंत्री)

आधार :—'हिन्दी प्रचारक'—१९३२ मार्च-पृष्ठ ८४

३. " हृषीकेश शर्मा
४. " अवधनन्दन
५. " देवदूत विद्यार्थी
६. " जमुना प्रसाद श्रीवास्तव
७. " पी. वी. सुब्बाराव
८. " पी. के. केशवन् नायर
९. " एम. वी. जम्बुनाथन्

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी (संपादक, विशालभारत, कलकत्ता) की दक्षिण यात्रा—

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने दक्षिण-यात्रा शीर्षक अपने लेख में दक्षिण के हिन्दी प्रचार कार्यों का स्वयं निरीक्षण करके जो प्रत्यक्ष परिचय पाया, उसका वर्णन किया है। इससे पाठक १९१८ से १९३३ तक १४ वर्षों के दक्षिण के हिन्दी प्रचार की झाँकी पा सकते हैं। उन्होंने यों लिखा है:—

"सन् १९१८ के इन्दौर हिन्दी साहित्यसम्मेलन का वह दिन अभी तक मुझे स्मरण है, जब महात्माजी ने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए धन की अपील की थी। उस समय यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि यह छोटा-सा पौधा आगे चलकर ऐसे सुविशाल मनोहर वृक्ष का रूप धारण करेगा। इन आठ दिनों में मुझे बंगलोर, मैसूर, तुमकूर, मद्रास और बेजवाड़ा की यात्रा करनी पड़ी। कर्नाटक प्रान्त में जो कार्य हो रहा है, उसीका निरीक्षण मैं कर पाया। वैसे यह कार्य चार प्रान्तों में विभक्त है—आन्ध्र देश, तमिल, केरल और कर्नाटक। इसमें अकेले आन्ध्र देश में लगभग २५० केन्द्रों में हिन्दी-प्रचार हो रहा है।"

हिन्दी के प्रति उत्साह—

"दक्षिण में हिन्दी-प्रचार के संम्बन्ध में जो बातें मुझे महत्वपूर्ण जँचीं, उनका संक्षेप में यहाँ वर्णन कर देना आवश्यक है। दक्षिण के स्त्री-पुरुषों और लड़के-लड़कियों में राष्ट्र-भाषा सीखने के प्रति सच्चा उत्साह है। अकेले मैसूर नगर से ३०० से अधिक विद्यार्थी प्रतिवर्ष दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओं में बैठते हैं।"

स्वावलंबी-कार्य—

"दूसरी बात जो दक्षिण के हिन्दी-प्रचार के सम्बन्ध में मुझे महत्वपूर्ण जँची, वह यह कि अब वह स्वावलंबी बन गया है। दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार सम्बन्धी-कार्य को हम स्वावलंबी इसी अर्थ में समझते हैं कि यदि उत्तर से आर्थिक सहायता न भी मिले, तो भी दक्षिण भारतवाले अपना काम किसी न किसी तरह चला सकते हैं।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा इस समय लगभग ३० प्रचारकों को नियमित रूप से वेतन देती है और वे अपना संपूर्ण समय हिन्दी प्रचार के कार्य में लगाते हैं। उनके अतिरिक्त पचासों प्रचारक सभाके वैतनिक कार्यकर्ता न होते हुए प्राइवेट तौर पर हिन्दी पढ़ाकर अपनी गुजर करते हैं। यह बड़ी आशाप्रद बात है कि दक्षिण भारत के निवासी हिन्दी पढ़ने के लिए इतने उत्सुक हैं कि वे अपने पास से पैसा खर्च करने के लिए तैयार हैं। उत्तर भारत के हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए यह क्या कम गौरव की बात है कि उनकी भाषा के मिशनरियों के अड्डे अब दक्षिण के मुख्य-मुख्य नगरों में स्थापित हो चुके हैं।"[१]

श्री सत्यनारायण का भ्रमण—

नवंबर १९३३ में सभा के प्रचार मंत्री श्री सत्यनारायण जी ने उत्तर भारत में भ्रमण किया। उत्तर के हिन्दी प्रेमियों और साहित्यकारों से मिलकर दक्षिण के विद्यार्थियों को उत्तर में जाकर हिन्दी में उच्चशिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ दिलाने का प्रयत्न किया।

उन्होंने इस सिलसिले में पं० मदन मोहन मालवीय जी से मिलकर उन्हें दक्षिण की हिन्दी प्रचार सम्बन्धी बातें समझायीं। श्रीमालवीयजी ने इस विषय में सहायता देने का वचन दिया। उन्होंने दक्षिण के हिन्दी प्रचार की सफलता पर हर्ष प्रकट करते हुए एक सन्देश भी दिया। सन्देश यों है :—

वाइस चान्सलर्स लॉड्ज
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय,
१७–११–१९३३

गाँधीजी के उत्तम कामों में दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का काम अति प्रशंसनीय है। मुझको यह सुनकर प्रसन्नता होती है कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास प्रान्त में हिन्दी प्रचार का काम बहुत उत्साह से कर रही है। राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीय भाव के प्रेमी सज्जनों से मैं अनुरोध करता हूँ कि वे अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार इस उत्तम काम में सहायता दें।"[२]

(ह०) मदन मोहन मालवीय।

हिन्दुस्तानी हितैषी मंडल, मद्रास—

उक्त मंडल की स्थापना मद्रास प्रान्तवासी हिन्दी भाषियों द्वारा (जो सैकड़ों वर्ष पहले से आकर सदा के लिए दक्षिण में बस गये हैं) हुई थी। हिन्दुओं में स्वभाषा

१—हिन्दी प्रचारक' १९३३ सितंबर।

२—'हिन्दी प्रचारक'—नवंबर—१९३३

हिन्दी को फैलाना, पारस्परिक प्रेम, सहानुभूति तथा उत्तर-दक्षिण के बीच में बन्धुत्व-भाव उत्पन्न करना, हिन्दी पुस्तकालय व वाचनालय स्थापित करना, हिन्दी भाषी हिन्दू विद्यार्थियों के लिए एक छात्रालय स्थापित करना, हिन्दी और अंग्रेजी में मंडल के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक पत्रिका प्रकाशित करना आदि इसके कार्यक्रम के अन्तर्गत थे। हिन्दी प्रचारक विद्यालय, मद्रास के प्रधान आचार्य श्री हृषीकेश शर्मा की अध्यक्षता में २१-५-१९३३ को मंडल की एक बैठक हुई। उसमें मंडल सम्बन्धी नियमावली बनायी गयी। एक मंडल-समिति भी कायम की गयी थी। समिति के वक्तव्य में यह कहा गया है कि "उक्त मंडल के स्थापित होने का पूरा श्रेय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को है, क्योंकि जिसकी अत्यन्त श्रद्धा और पंद्रह वर्षों के कठिन परिश्रम के फलस्वरूप ही आज प्रवासी हिन्दी भाषी हिन्दुओं में मातृ-भाषा की जागृति पैदा हो सकी है और समय पर सभा के कार्यकर्ताओं द्वारा बहुत कुछ सहायता भी मिलती आयी है और आशा है आगे भी मिलती रहेगी। यदि ऐसा न होता तो यहाँ नागरी लिपि को देखना भी दुर्लभ हो जाता। इस प्रकार हिन्दी प्रचार सभा का कार्य प्रशंसनीय है।"[१]

हिन्दी में नोबल पुरस्कार की आवश्यकता—

सन् १९३३ मई के 'विशाल भारत' कलकत्ता में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने दक्षिण में हिन्दी के प्रचार के लिए अधिक प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति को एक विशेष पारितोषिक देने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। इस सम्बन्ध में उनके नीचे उद्धृत विचार विशेष महत्व के हैं।

'उच्चकोटि के साहित्य के उत्पादन के साथ साहित्य सम्मेलन का एक प्रधान उद्देश्य हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा बनाना तथा देश के अहिन्दी प्रान्तों के जन-साधारण में हिन्दी का प्रचार करना है। इसलिए जिस प्रकार का नोबल-पुरस्कार उस व्यक्ति को मिलता है जो संसार में अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए सबसे अधिक उद्योग करता है, उसी प्रकार हिन्दी में प्रति पाँचवें वर्ष एक पुरस्कार उस व्यक्ति को मिलना चाहिए, जो हिन्दी प्रचार में सबसे अधिक सफल प्रयत्न करे। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए सबसे अधिक प्रयत्न महात्मा गाँधी और पुरुषोत्तमदास टंडन ने किया है; परंतु व्यावहारिक रूप में पिछले दस वर्षों में मद्रास के श्री हरिहर शर्मा ने हिन्दी का जितना व्यापक प्रचार किया है, वह अभिनन्दनीय है। मद्रास के हिन्दी-प्रचारकों के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित न करना और उन्हें प्रोत्साहन न देना, हमारे लिए सरासर कृतघ्नता होगी; अतः साहित्य-सम्मेलन तथा मंगलाप्रसाद

(१) 'हिन्दी प्रचारक' १९३३
वक्तव्य—डॉ. श्यामलाल मंडडेकर

पारितोषिक समिति से हम निवेदन करते हैं कि वह इस प्रस्ताव पर उचित ध्यान दें।"[1]

प्रथम हिन्दी ज्ञानयात्री दल सन् १९३४—

सन् १९३४ में दक्षिण से हिन्दी ज्ञानयात्रियों का एक दल उत्तर भारत गया था। उसमें श्री हृषीकेश शर्मा, श्री सिद्धनाथ पंत, श्री सत्यनारायण, श्री चन्द्रहासन, श्री. टी. एस. राधाकृष्णन् आदि सभा के प्रमुख कार्यकर्ता शामिल थे। उस दल का उत्तर की विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं में हार्दिक स्वागत हुआ। दक्षिण और उत्तर के बीच में सांस्कृतिक समन्वय के लिए यह दल बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। उस प्रथम ज्ञानयात्री दल की प्रशंसा में पं० सुन्दरलाल ने ये शब्द व्यक्त किये थे:—

"कौन ऐसा शिक्षित भारतवासी होगा जो अपने देश की हालत को सुधारने की कुछ भी चाह न रखता हो और जिसकी निगाहें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और उसके कारनामों की तरफ न गई हों। अप्रैल सन् १९३४ में जब आपके यहाँ का यात्री-दल इलाहाबाद पहुँचा तो वहाँ के और बहुत से लोगों की तरह मुझे भी उनके साथ मिलकर बैठने और बातचीत करने का फ़ख़ हासिल हुआ। उनमें से कुछ के साथ मेरा परिचय वर्षों पहले का था। आपके 'यात्रियों' का सौजन्य, उनकी वह निस्वार्थ भावना जिसमें अहंभाव का पता न चलता था, उनके देश-प्रेम से भरे हुए हृदय जिनमें संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की गुंजाइश तक नजर न आती थी, उनके सुसंस्कृत विचार और उनका "कर्मकौशल" इन सबने मिलकर मेरे दिल पर वही असर डाला जो उत्तर भारत के हज़ारों और निवासियों के दिलों पर डाला होगा।

एक और चीज़ थी जिसने पहले से मेरे दिल को इस असर के लिए तैयार कर रखा था। मेरे परम मित्र पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने यहाँ से जाकर मुझे जो हालात सुनाये थे, आपके यात्रियों के विचारों, भावों और आदर्शों में मुझे उनकी ज़िन्दा तसवीर देखने को मिल गयी। दल के नेताओं के थोड़ा सा कहने पर ही मैंने वादा कर लिया कि मैं किसी मौके पर दक्षिण आकर ज़्यादह नज़दीक से आपकी इन मुबारिक कोशिशों का अध्ययन करूँगा।"[2]

दूसरा ज्ञानयात्री दल–१९४७—

दूसरा दल भी पूर्व निश्चय के अनुसार ता. ५ मार्च १९४७ को मद्रास से रवाना हुआ। वह मध्य प्रान्त, बम्बई, महाराष्ट्र तथा गुजरात के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का निरीक्षण करता हुआ बड़ौदा पहुँचा। वर्धा, नागपुर, बम्बई, पूना, सूरत,

---

(१) (संपादकीय, 'विशाल भारत', मई १९३३ से)

(२) हिन्दी प्रचार दिसंबर १९३५।

बड़ौदा आदि जगहों पर साहित्यिक गोष्ठियों में दल का स्वागत किया गया और दल के सदस्यों ने दक्षिण के साहित्य, कला और संस्कृति पर भाषण दिये।

दल के सदस्यों ने राष्ट्रीय निर्माण के कार्य में लगी हुई संस्थाओं की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया और सभा तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्य-क्षेत्र में समन्वय लाने के लिए उपाय-योजनाओं पर विचार-विनिमय किया। दल ने जिन संस्थाओं का दर्शन कर परिचय प्राप्त किया, वे ये हैं :—

वर्धा की संस्थाएँ :—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ; ग्रामोद्योग विद्यालय; चर्मालय; चरखा संघ; सरंजाम कार्यालय; महिलाश्रम; हिन्दुस्तानी प्रचार समिति तथा राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति।

नागपुर की संस्थाएँ :—साऊथ इंडियन क्लब; राष्ट्रभाषा प्रचार सभा।

बम्बई की संस्थाएँ :—हिन्दुस्तानी प्रचार सभा; राष्ट्र-भाषा प्रचार सभा; हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

पूना की संस्थाएँ :—भारतीय इतिहास संशोधक मण्डल; सर्वेण्टस् आफ़ इंडिया सोसायटी; सेवासदन; महिला विश्वविद्यालय (कर्वे युनिवर्सिटी); महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा सभा तथा राष्ट्र-भाषा प्रचार मण्डल, सूरत।

दल के सदस्य मध्यप्रांत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री रविशंकर शुक्ल, अन्न मंत्री आर. के. पटील, बम्बई के प्रधानमंत्री श्री. बी. जी. खेर से मुलाकात कर हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में सरकार की नीति पर विचार-विनिमय किया। इसके अलावा श्रीमन्नारायण अग्रवाल, आर्यनायकम्, आशा देवी, भदन्त आनंद कौसल्यायन, के. एम. मुन्शी, लीलावती मुन्शी, अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू के अध्यक्ष, श्री. के. ए. फ़ैज़ी से मुलाकात की। सर्वश्री विनोबा भावे, काका साहेब कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, प्रो. भंसाली तथा हृषीकेशजी शर्मा से आशीर्वाद पाये। दल की साहित्य-गोष्ठियों में सर्वश्री अमरनाथ झा, सुभद्राकुमारी चौहान, राधाकृष्ण खेतान, सीताराम चतुर्वेदी, ओंकारनाथ आदि विद्वानों तथा साहित्यिकों ने भाग लिया। इन ज्ञान यात्री दलों ने उत्तर की हिन्दी भाषी जनता तथा साहित्यकारों के बीच में दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के नाते सहानुभूति प्राप्त करने में सफलता पायी। ❀

बम्बई में सभा की ओर से प्रचार कार्य—

१९२३ से बम्बई में हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। श्री शंकरन् ने वहाँ बड़ा अच्छा कार्य किया। इस सम्बन्ध में श्री काका कालेलकर ने बम्बईवालों को निम्नलिखित संदेश दिया।

❀ आधार :—हिन्दी प्रचारक अप्रैल १९४७—

"पिछले १० वर्ष में बम्बई ने जो कुछ कार्य कर दिखाया है, उससे बम्बई ने स्वराज्य नगरी होने का अधिकार सिद्ध किया है। इस स्वराज्य नगरी में अगर स्वराज्य भाषा हिन्दी का काफ़ी प्रचार न हो तो यह दुःख की बात तो है ही; लेकिन दुःख से भी अधिक आश्चर्य की है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने बम्बई की यह कमी दूर करने का उपक्रम किया है। बम्बई में ज्यादातर गुजराती, मराठी व कोंकणी भाषाएँ बोली जाती हैं। हिन्दी इन तीन भाषाओं के बहुत नज़दीक आती है। एक बात याद रखनी चाहिए कि बम्बई को सिर्फ़ हिन्दी समझ लेना काफी नहीं है। बम्बई को तो स्वराज्य-कार्य में नेतृत्व करना है। इसलिए बम्बई निवासी सब को हिन्दुस्तानी भाषा पर आवश्यक अधिकार हासिल कर लेना चाहिए। मुझे विश्वास है कि बम्बई इसे आसानी से कर दिखावेगी।"[१]

यरवदा जेल से गाँधीजी का पत्र—

हिन्दी प्रचारक, श्री सिद्धनाथ पंत ने पूज्य गाँधीजी को एक पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने गाँधीजी से प्रार्थना की थी कि "खेद और निराशा की बात है कि मुझे हिन्दी भाषा की एक संगठित 'राष्ट्रीय-शैली' जो हिन्दू, मुसलमान और ईसाई आदि सबके अनुकूल हो, दृष्टिगोचर नहीं हुई। अतः आप से सविनय प्रार्थना है कि आप ही पथ-प्रदर्शक बनने की कृपा करें। आप अब से आगे केवल हिन्दी लिखा करें तो सभी राष्ट्रवादी खास-करके दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी आपका अनुसरण करेंगे। आपकी वाणी राष्ट्रवाणी है। अतः आपकी शैली राष्ट्रीय शैली है।"

पत्र के उत्तर में यरवदा मन्दिर से पूज्य गाँधीजी ने जो पत्र पंतजी को भेजा था वह यों है:—

यरवदा मन्दिर, २६–६–३२

भाई सिद्धनाथ,

आपका खत मिला। मेरे हिन्दी ही में लिखने से हमारा काम थोड़ा निपटने वाला है? मेरा तो यही विश्वास है कि जब दक्षिण प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार काफी होगा तब उन्हीं लोगों के प्रभाव से अपने आप हिन्दी-उर्दू का मिलन हो जायगा।

आपका,
मोहनदास गाँधी[२]

---

(१) हिन्दी प्रचारक-अक्टूबर १९३३

(२) हिन्दी प्रचारक—सितंबर १९३२—पृष्ठ २०४

राधाकृष्णन् के विचार—

श्री एस. राधाकृष्णन् उन दिनों आन्ध्र यूनिवर्सिटी के उपकुलपति (Vice Chancellor) थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार यों व्यक्त किये थे—

It will be highly useful if South Indians Possess a working knowledge of Hindi so long as we insist a working knowledge of Hindi in the S. S. L. C. I dare it will not interfere much with the other stundies and their standards.

Sir. S. Radhakrishnan
M. A. D. L
Vice chancellor
Andhra University
September 1933.

श्री काका कालेलकर का दक्षिण में भ्रमण—

काकासाहब ने हिन्दी प्रचार के लिए धन संग्रहार्थ १९३४ दिसंबर से १९३५ फ़रवरी तक दक्षिण के चारो प्रान्तों में भ्रमण किया। उन्होंने वहाँ के हिन्दी प्रेमी सज्जनों से करीब १९,००० रुपये वसूल किये। उनके भ्रमण के सम्बन्ध में 'हिन्दी प्रचारक' जनवरी १९३५ के अंक में संपादकीय नोट में यों लिखा है:—

"वैसे हिन्दी-प्रचार के साथ आचार्य काका साहब का एक तरह से पारिवारिक सम्बन्ध रहा। प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से आप पहले ही से हिन्दी-प्रचार की प्रगति में सहायता देते रहे। हिन्दी का संदेश लेकर आप दक्षिण में जब-जब गये, प्रचारकों को एक नया प्रकाश देकर गये। अब की बार तो आपने कई असुविधाओं को सहकर महान् त्याग-निष्ठा के साथ लगातार तीन महीने तक हिन्दी-प्रचार के हेतु दक्षिण में भ्रमण किया। दक्षिण के एक सिरे से दूसरे सिरे तक राष्ट्रीयता के विकास रूपी हिन्दी के प्रकाश को फैलाते ही नहीं गये; बल्कि उसमें एक अद्भुत शक्ति भी भरते गये। सैकड़ों हिन्दी प्रचारकों से तथा हज़ारों हिन्दी प्रेमियों से जिस तरह से आप मिले, जिस सहिष्णुता व श्रम के साथ उनकी हिन्दी-सेवाओं की अकांक्षाओं को मज़बूत किया, उनकी कठिनाइयों की जाँच कर जिस प्राशा के साथ उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया, वह काका साहब जैसे प्रगाढ़ विद्वान विशेष अनुभवी व सच्चे देश भक्त ही कर सकते हैं। आपने अपनी इस अमूल्य सहायता से समस्त हिन्दी प्रचारकों को कच्चे धागे से बाँध लिया है।

दक्षिण धार्मिक-कार्यों के लिए दान देने में मशहूर है। लेकिन काका साहब की तपस्या व वक्तृत्व शक्ति ने कई धनी व दाताओं को दिल खोलकर हिन्दी-प्रचार जैसे

राष्ट्रीय कार्य में भी सहायता के लिए बाध्य किया। काका साहब का यह भ्रमण हिन्दी प्रचार के इतिहास में अभूतपूर्व और चिरस्मरणीय रहेगा।" [१]

साहित्य सम्मेलन का २४—वाँ इन्दौर अधिवेशन—१९३५

सम्मेलन का २४-वाँ अधिवेशन दक्षिण के हिन्दी प्रचार के कार्य को स्वावलम्बी बनाने एवं दक्षिण और उत्तर के लोगों का ध्यान हिन्दी-प्रचार आन्दोलन की तरफ़ आकृष्ट करने के लिए बहुत ही सहायक रहा। महात्मा गाँधीजी ही उस अधिवेशन के अध्यक्ष रहे। उन्होंने दक्षिण के हिन्दी-प्रचार कार्य को स्वावलंबी बनाने पर जोर दिया और अन्य अहिन्दी प्रान्तों में भी हिन्दी-प्रचार करने की ओर साहित्य सम्मेलन का ध्यान आकर्षित किया। हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार भी स्पष्ट किये।

उनके अध्यक्षपद से दिये गये भाषण का निम्नलिखित अंश विशेष महत्व का है—

"मैंने आपके अधिवेशनों की रिपोर्ट कुछ अंशों में देखी है। सबसे पहला अधिवेशन सन् १९१० में हुआ था। मेरा क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान नहीं के बराबर है। आपकी प्रथम परीक्षा में मैं उत्तीर्ण नहीं हो सकता हूँ। लेकिन हिन्दी भाषा का प्रेम किसी से कम नहीं ठहर सकता है। मेरा क्षेत्र दक्षिण में हिन्दी प्रचार है। सन् १९१८ में जब आपका अधिवेशन यहाँ हुआ था, तब से दक्षिण में हिन्दी-प्रचार के कार्य का आरंभ हुआ है। वह कार्य तब से उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। धनाभाव के कारण उसे रुकना नहीं चाहिए। पं० हरिहर शर्मा धन के लिए मुझे नित्य सताते हैं। उनसे मैं कहता हूँ" "अब मुझे मत सताओ। दक्षिण से ही आपको पैसे मिलने चाहिए। इतना भी करने की शक्ति यदि आप में नहीं है तो आप अपना प्रयत्न निष्फल समझिए। कहने को तो मैं यह कह देता हूँ, पर इतनी बड़ी संस्था को २१ वर्ष तक नाबालिग रहने का भी तो हक होना चाहिए। इसलिए मौका आया तो मैंने दो लाख की माँग की।" "आप पूछ सकते हैं कि केवल दक्षिण ही में हिन्दी के लिए क्यों? मेरा उत्तर यह है कि दक्षिण भारत कोई छोटा मुल्क नहीं है। वह तो एक महाद्वीप-सा है। वहाँ चार प्रान्त और चार भाषाएँ हैं—तमिल, तेलुगु, मलयालम् और कनड़ी। आबादी करीब सात करोड़ है। इतने लोगों में यदि हम हिन्दी प्रचार की नींव मज़बूत कर सकें तो अन्य प्रान्तों में

१—'हिन्दीप्रचारक' जनवरी १९३५

बहुत ही सुभीता हो जाएगा।" "जो भी हो, इतनी बात तो निर्विवाद है कि दक्षिण में हिन्दी-प्रचार सबसे कठिन कार्य है। तथापि १८ वर्षों से हम व्यवस्थित रूप में वहाँ जो कार्य करते हैं, उसके फलस्वरूप इन वर्षों में छः लाख दक्षिणवासियों ने हिन्दी में प्रवेश किया। ८२००० परीक्षा में बैठे, १२०० स्थानों में शिक्षा दी गयी, ६०० शिक्षक तैयार हुए और आज ४५० स्थानों में कार्य हो रहा है। सन् १९३१ से स्नातक परीक्षा का भी आरंभ हुआ और आज स्नातकों की संख्या ३०० है। वहाँ हिन्दी की ७० किताबें तैयार हुईं और मद्रास में उनकी ८,००,००० प्रतियाँ छपीं। सत्रह वर्ष पूर्व दक्षिण के एक भी हाईस्कूल में हिन्दी की पढ़ाई नहीं होती थी पर आज ७० हाईस्कूलों में हिन्दी पढ़ायी जाती है। सब मिलाकर ७० कार्यकर्ता काम कर रहे हैं और इस प्रयास में ४,००,००० रुपये खर्च हुए हैं।"

स्त्रियों में प्रचार—

"यहाँ एक और बात कह देना जरूरी है। काका साहेब अपने निरीक्षण के बाद कहते हैं कि दक्षिण में बहनों ने हिन्दी-प्रचार के लिए बहुत काम किया है। वे इसकी महिमा समझ गयी हैं। वे यहाँ तक हिस्सा ले रही हैं कि कुछ पुरुषों को यह फिक्र लग रही है कि यदि स्त्रियाँ इस तरह उद्यमी बनेंगी तो घर कौन सँभालेगा ?"

"क्या, इतनी प्रगति संतोषजनक नहीं मानी जा सकती है ? ऐसे वृक्ष को हमें और भी न बढ़ाना चाहिए ? आज जब कि मुझे यह स्थान दिया गया है तब भी मैं इस संस्था को चिरस्थायी बनाने का यत्न न करूँ तो मेरे जैसा मूर्ख कौन माना जा सकता है ? मैंने आपको इस संस्था का उज्ज्वल पक्ष ही दिखाया है। इसका यह मतलब नहीं है कि इसका काला पक्ष है ही नहीं।"

"जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वरि-विकार।" [1]

मतभेत—

गाँधीजी को दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ एक लाख रुपये की थैली भेंट करने की बात तयँ हुई तो उत्तर के कुछ हिन्दी प्रेमी लोगों ने उसका घोर विरोध किया जिसके सम्बन्ध से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार के तत्कालीन प्रधान मंत्री हरिहर शर्माजी का वक्तव्य आगे दिया गया है। गाँधीजी ने उसकी यों सफाई दीः—

"रही एक लाख के व्यय की बात। क्या, यह व्यय सम्मेलन के प्रयागस्थ केन्द्र से होना आवश्यक नहीं है ? यदि ऐसा न किया गया तो क्या इससे सम्मेलन का अपमान नहीं होगा ?"—इन प्रश्नों के उत्तर में मेरा नम्र निवेदन यह है कि इसमें

1—हिन्दी प्रचारक अप्रैल अंक १९३५ पृ० ९४ "महात्मा गांधी का अध्यक्षीय भाषण"

अपमान की कोई बात नहीं है। सम्मेलन न होता तो दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा भी न होती। सन् १९१८ में इसी शहर में, इसी सम्मेलन की छाया में उस संस्था का उद्भव हुआ। बाद के इतिहास में जाना आवश्यक नहीं है। अंत में उस संस्था को सम्मेलन ने स्वतंत्र कर दिया, यों कहिए कि 'डोमिनियन स्टेट्स' दे दिया। इससे सम्मेलन का गौरव बढ़ा ही है, कम नहीं हुआ। यदि सम्मेलन सेस म्बन्धित संस्थाएँ स्वावलंबी बन जाएँ तो इससे ज्यादा हर्ष की बात सम्मेलन के लिए कौन-सी हो सकती है? आप से जो एक लाख रुपये की भिक्षा माँगी जा रही है, वह उस स्वतंत्र संस्था के लिए है। उसको भी झंडा तो सम्मेलन का फहराना है।

अन्य प्रान्तों का सवाल—

"पर तब यह प्रश्न उठता है कि क्या, अन्य प्रान्तों की बात छोड़ दी जाय? क्या, अन्य प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार की आवश्यकता नहीं है? अवश्य है। मुझे दक्षिण का पक्षपात नहीं है और न अन्य प्रान्तों से द्वेष। मैंने अन्य प्रान्तों के लिए भी काफ़ी प्रयत्न किया है, लेकिन कार्यकर्ताओं के अभाव के कारण वहाँ इतनी क्या, थोड़ी भी सफलता नहीं मिल सकी। बेचारे बाबा राघवदास, उत्कल, बंगाल और आसाम में हिन्दी-प्रचार के लिए अधिक प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है, लेकिन उसे नहीं के बराबर ही मानना चाहिए। जो कुछ भी सहायता मैं उनको दिला सकता था, वह दिलाने की चेष्टा भी मैंने की है। बाबाजी के मार्फ़त आसाम में गउहाटी, जोरहट, शिवसागर और नौगाँव में प्रयत्न हो रहा है।" "उत्कल में कटक, पुरी और बरहमपुर में कुछ प्रयत्न हो रहा है। उत्कल के बारे में एक बड़ी आशाजनक बात यह है कि श्री गोपबन्धु चौधरी और उनकी धर्मपत्नी रमादेवी हिन्दी-प्रचार में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। बंगाल में तो एक समिति बन गयी थी, सब कुछ हुआ था; हिन्दी पर प्रेम रखनेवाले बंगाली भी काफ़ी हैं। श्री रामानन्द बाबू, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि की सहायता से 'विशाल भारत' निकाल रहे हैं। यह कोई छोटी बात नहीं है। कलकत्ता में हिन्दी प्रेमी मारवाड़ी सज्जन भी कम नहीं हैं, वह बहुत ही कम समझा जाना चाहिए।" "पंजाब की बात मैं छोड़ देता हूँ, क्योंकि पंजाब में तो उर्दू सब समझते हैं। वहाँ तो केवल लिपि की बात रह जाती है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए काका साहब की अध्यक्षता में लिपि-परिषद हो रही है। इसलिए मैं इस बारे में कुछ नहीं कहना चाहता।"

"अब रहे सिन्ध, महाराष्ट्र और गुजरात। इन तीनों प्रान्तों में जो कुछ हो रहा है, वह शायद ही उल्लेखनीय है। पर मुझे उम्मीद है कि इस सम्मेलन में हम वहाँ के लिए भी कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य करने का निश्चय करेंगे।"

गलतफ़हमी—

"आप जानते हैं कि मेरी सलाह से काका साहब कालेलकर दक्षिण में प्रचार-कार्य का निरीक्षण करने और पं० हरिहर शर्मा को मदद देने के लिए गये थे। उन्होंने तमिलनाडु, मलबार, ट्रावनकोर, मैसूर, आन्ध्र और उत्कल तक भ्रमण किया, हिन्दी प्रेमियों से मिले और कुछ चन्दा भी इकट्ठा किया। इस भ्रमण में उनका अनुभव यह हुआ कि कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि हम प्रान्तीय भाषाओं को नष्ट करके हिन्दी को सारे भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाना चाहते हैं। इस गलतफ़हमी से भ्रमित हो, वे हमारे प्रचार का विरोध करते हैं। मेरा ख्याल है कि हमें इस बारे में अपनी नीति स्पष्ट करके ऐसी गलतफ़हमियाँ दूर करनी चाहिएँ। मैं हमेशा से यह मानता हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रान्तीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ़ यह है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए हम हिन्दी भाषा सीखें।[१]

हिन्दी-प्रदर्शिनी—

इन्दौर में साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ, उसमें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने १९३५ तक के दक्षिण के हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी कार्य-कलापों की एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया था। प्रदर्शिनी में सभा की प्रकाशित पुस्तकें तथा प्रचार, परीक्षा आदि के सम्बन्ध में आवश्यक चार्ट, चित्रात्मक आँकड़े आदि बड़े आकर्षक ढंग से प्रकाशित किये गये थे। दक्षिण भारतीयों की लिखी हुई हस्तलिखित पुस्तकें और पत्रिकाओं की प्रतियाँ भी प्रदर्शित की गयी थीं। प्रदर्शिनी शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्धक रही। दर्शकों ने बड़ा हर्ष प्रकट किया।

कुछ उत्तरभारतीयों की हास्यास्पद मनोवृत्ति—

इन्दौर के अधिवेशन के समय सम्मेलन की स्वागत-समिति ने दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ गाँधीजी को एक लाख रुपये की थैली भेंट करने का निश्चय किया। तब वहाँ के कुछ लोगों ने इसका घोर विरोध किया और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभा और उसके कार्य की अवहेलना करते हुए समाचार-पत्रों में लेख लिखे। उसके द्वारा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बीच में मनमुटाव पैदा करने का प्रयत्न किया गया।

हरिहरशर्माजी का वक्तव्य—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के मंत्री श्री हरिहरशर्माजी ने सभा की नीति

---

(१) 'हिन्दी प्रचारक' पृ०—१४, अप्रैल १९३५।

की सफ़ाई देते हुए जो वक्तव्य निकाला था, उससे यह बात स्पष्ट हो सकती है कि सभा किसी भी प्रकार से साहित्य सम्मेलन की विरोधिनी संस्था नहीं है। वह वक्तव्य यों है—

"जब से यह बात तयँ हो गयी कि स्वागत समिति महात्माजी को एक लाख रुपये की थैली भेंट करेगी और महात्माजी उसे दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के लिए खर्च करेंगे, तब से उत्तर भारत में एक तहलका मच गया। हिन्दी के कई पत्रों ने इस निश्चय के अनुकूल व प्रतिकूल अपने विचार प्रकट किये। जिस ढंग से यह आंदोलन चलाया गया और जैसी भाषा का उपयोग किया गया, उसमें जाना तो अब बिलकुल अनावश्यक है। लेकिन इस आंदोलन के द्वारा सभा और सम्मेलन के बीच के संबन्ध के विषय में गलतफ़हमी पैदा करने की कोशिश की गई है, उसीके सम्बन्ध में हम यहाँ कुछ लिखना चाहते हैं। इन आन्दोलन-कर्ताओं में से कुछ लोगों का यह भी कहना था कि अब दक्षिण भारत का हिन्दी प्रचार आन्दोलन स्वावलंबी हो गया है। अतः इस समय उत्तर भारत से किसी तरह की सहायता की आवश्यकता नहीं रही।"

समाचार-पत्रों में यह खुल्लम-खुल्ला लिखा गया है कि सभा सम्मेलन की प्रतिद्वन्द्वी है और सम्मेलन की प्रतिष्ठा घटाने का प्रयत्न करती रहती है। इससे बढ़कर असत्य की बात इस सम्बन्ध में कोई दूसरी हो नहीं सकती। निम्नलिखित बातें सभा और सम्मेलन के संबंध को स्पष्ट कर देंगी।

(१) सभा सम्मेलन को अपनी मातृसंस्था होने के सत्य को अपनी वार्षिक रिपोर्ट में उल्लेख करती रहती है।

(२) सभा और सम्मेलन के संबन्ध का उल्लेख सभा के विधान के नियम १७ में किया हुआ है।

(३) सम्मेलन के नियमानुसार सभा उसकी संबद्ध संस्था है और हर साल स्थायी-समिति में अपने प्रतिनिधियों को भेजती है।

(४) सभा के वर्तमान प्रमुख कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन के एक विशेष अधिवेशन का प्रबन्ध काकिनाड़ा में १९२३ में बड़ी सफलता के साथ किया था और उसके बाद सम्मेलन के अधिवेशन को अपने प्रान्त में करने के सतत विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए परसाल दिल्ली अधिवेशन में निमन्त्रण भी दिया था। लेकिन इन्दौर के हिन्दी-प्रेमियों के अनुरोध से इन्हें अपना निमन्त्रण वापिस लेना पड़ा। इस साल भी दक्षिण भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों पर सम्मेलन की रजत-जयन्ती मनाने के लिए सभाएँ हुई और सम्मेलन को निम्नलिखित

बातें समझाने के लिए सभा के प्रधान-मन्त्री तथा अन्य प्रतिनिधि इन्दौर पहुँचे भी थे।

(५) सम्मेलन की परीक्षाओं का प्रचार करने से सभा के किसी कार्यकर्ता ने अब तक मुँह नहीं मोड़ा। दक्षिण भारत में सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए पाँच केन्द्र हैं जिनके व्यवस्थापकों में सभा के प्रधान-मन्त्री तथा प्रचार-मन्त्री भी हैं।

(६) सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठने के लिए सभा के कार्यकर्ताओं को खास प्रोत्साहन दिया जाता है और सभा के कार्यकर्ता सम्मेलन के स्नातक बनने के लिए बड़े उत्सुक रहते हैं और सम्मेलन की दी हुई उपाधि बड़े गौरव के साथ अपने नाम के साथ लिखते हैं।

(७) सभा अपना वार्षिक-विवरण सम्मेलन-कार्यालय में भेजती है जिसके उद्धरण सम्मेलन की रिपोर्ट में छपते हैं।

(८) दक्षिण भारत में सम्मेलन के अनुकूल आज भी इतना वातावरण है कि प्रायः यहाँ के सब हिन्दी-प्रेमी यही समझते हैं कि अब भी इसका हिन्दी-कार्य अपनी देख-रेख में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभा के ज़रिए सम्मेलन चला रहा है।

अब यह पूछा जा सकता है कि सम्मेलन से यहाँ का कार्य अलग क्यों किया गया? अब यह प्रश्न काफ़ी पुराना हो चुका है। इसके औचित्य तथा अनौचित्य के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक नहीं है। लेकिन एक बात अवश्य कही जा सकती है कि दक्षिण में हिन्दी-प्रचार-कार्य की प्रगति का एक कारण यहाँ के कार्य को, यहाँ के लोगों को सौंप कर उसके लिए उनको जिम्मेदार बनाना भी है। अपनी इस विवेकपूर्ण नीति के फल-पूर्ण परिणाम पर संतुष्ट होने का अधिकार सम्मेलन को पूरा-पूरा है। अब रही, यहाँ के कार्य के स्वावलम्बी होने की बात। यहाँ का कार्य अब तक स्वावलंबी नहीं हो पाया। बाहर से मदद माँगने की आवश्यकता पड़ रही है, इस बात का दुःख यहाँ की सभा को जितना है उतना किसी को नहीं हो सकता। दक्षिण भारत का क्षेत्र बहुत विस्तृत तथा कार्य बहुत ही ज्यादा है। सभा की वर्तमान आर्थिक स्थिति बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है। कहीं से भी इस समय अच्छी सहायता नहीं मिले तो सभा की उन्नति रुक जाएगी और उसके कार्य में शिथिलता आ जाएगी। ऐसी हालत में क्या समस्त हिन्दी के हितैषियों का यह धर्म नहीं है कि वे उसकी सहायता करें?[1]

---

१. हिन्दी प्रचारक—अप्रैल १९३५।

इन्दौर अधिवेशन में लिपि-परिषद्—

इन्दौर अधिवेशन के लिपि-परिषद के अध्यक्ष की हैसियत से दिया हुआ श्री काका कालेलकरजी का भाषण बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। वे अपने मौलिक विचार एवं कार्यशक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने नागरी लिपि सुधार सम्बन्धी अपने मौलिक विचार भी प्रकट किये हैं। उस सुधार सम्बन्धी आयोजना को कार्यान्वित करने का पूरा भार अपने ऊपर लिया। तदनुसार एक समिति कायम की गयी जिसके अध्यक्ष वे स्वयं रहे।

भ्रम-दूरीकरण—

राष्ट्र-भाषा प्रेमियों की दृष्टि से सम्मेलन का एक और महत्वपूर्ण प्रस्ताव प्रान्तीय भाषावादियों का भ्रम दूर करने के सम्बन्ध में हुआ। हिन्दी प्रचार ज्यों-ज्यों ज़ोर पकड़ने लगा, त्यों-त्यों प्रान्तीय भाषा भक्तों ने यह गलत-फ़हमी फैलाना शुरू किया था कि हिन्दी भाषा के प्रचार से प्रान्तीय भाषा को क्षति पहुँचेगी और दक्षिण में हिन्दी का ही बोलबाला होगा। महात्मा गाँधी ने अपने भाषण में इस भ्रम को दूर करने की चेष्टा की थी। सम्मेलन ने एक प्रस्ताव इस सम्बन्ध में पास करते हुए यह स्पष्ट किया कि "राष्ट्र-भाषा के प्रचार का उद्देश्य एक भाषा के द्वारा भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों को निकट लाना ही है, किसी प्रान्तीय भाषा को आघात पहुँचाना नहीं है। इस प्रस्ताव का एक दूसरा भाग यह भी था जिससे राष्ट्र-भाषा की व्याख्या की गयी। प्रस्ताव में यह स्पष्ट किया गया कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी वही कहलायेगी जिसमें प्रयत्नपूर्वक न संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग हो, न फारसी-अरबी के और न इन भाषाओं का बहिष्कार ही हो। जो भाषा नागरी लिपि व उर्दू लिपि में लिखी जाती है, वही राष्ट्र-भाषा हिन्दी मानी जाय।

अधिवेशन का महत्व—

इस इन्दौर अधिवेशन में महात्मा गांधी का अध्यक्ष-पद ग्रहण करना और श्रीमंत महाराजाधिराज यशवन्तराव होलकर का सम्मेलन का उद्घाटन करना ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ जो १७ वर्ष बाद उसी नगर में दोहरायी गयी थीं। जिस शान-शौकत के साथ उस अधिवेशन को इन्दौर की हिन्दी प्रेमी जनता ने चलाया था, शायद ही और कहीं ऐसा हुआ हो। मध्यभारत हिन्दी-साहित्य समिति ने बड़ी सफलता के साथ अपने गुरुतर उत्तरदायित्व को संभाला था। उससे केवल मध्यभारत का ही नहीं, बल्कि सारी हिन्दी भाषा-भाषी जनता का सिर ऊँचा हुआ था।

प्रेमचन्द का स्वप्न—

प्रेमचन्दजी ने इन्दौर के साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अन्तर प्रान्तीय हिन्दी साहित्य परिषद संबंधी प्रस्ताव पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रीय साहित्य की आवश्यकता

पर जोर दिया था। हिन्दी साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की अपनी मधुर कल्पना को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया था :—

"इन्दौर साहित्य सम्मेलन ने अबकी अन्तर प्रान्तीय साहित्य परिषद् का प्रस्ताव स्वीकार करके हिन्दी साहित्य को वह प्रगति प्रदान कर दी है, जो राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-साहित्य के निर्माण और उन्नति के लिए ज़रूरी थी।"

"इससे विदित होता है कि हिन्दी द्वारा राष्ट्र को बलवान करने की भावना देश में कितनी व्याप्त हो रही है। अगर हिन्दी राष्ट्रभाषा है तो हिन्दी में राष्ट्र का साहित्य भी होना चाहिए। श्रद्धेय मुंशीजी ने इस प्रस्ताव को कार्य रूप में लाने के लिए पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया है, और आशा है, दो-चार महीनों में अन्तर प्रान्तीय साहित्य परिषद् की स्थापना हो जाएगी। अखिल भारतीय विज्ञान परिषद् है, इतिहास परिषद् है, इंटर यूनिवर्सिटी बोर्ड है, फिर राष्ट्र का साहित्य ही क्यों प्रान्तीय सीमाओं में बन्द रहे? साहित्य सभ्य-जीवन का सबसे प्रभावशाली अंग है। उसे संगठित करने की व्यवस्था यद्यपि देर में हुई, पर शायद "देर आयद दुरुस्त आयद" के अनुसार वह अपनी तेज़ चाल से मंज़िल को जल्द पूरा कर ले।"

परिषद् का हमारे तुच्छ विचार में पहला काम यह होना चाहिए कि वह हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय मनोवृत्ति पैदा करे। दुर्भाग्य से हमारे प्रान्तीय साहित्य में अभी तक प्रान्तीयता का साम्राज्य है। हर प्रान्त में प्रान्तीय साहित्य परिषद् है; पर उनमें आपस में कोई आदान-प्रदान नहीं, कोई विचार-विनिमय नहीं। मराठी या बंगाली साहित्य में क्या हो रहा है, इसकी खबर बहुत कम आदमियों को है। तमिल या तेलुगु साहित्य की क्या प्रगति है, यह हम नहीं जानते। हमारे प्रान्तीय साहित्यों में कौन सी प्रवृत्ति इस लायक है कि उससे सारे राष्ट्र को फायदा पहुँच सके, हमको इसका ज्ञान नहीं। अपने शब्दकोष को बढ़ाने के लिए उन्होंने क्या आयोजन किया है, पश्चिम के साहित्य का उन पर क्या असर पड़ा है, और उसमें कौन सी वस्तु उन्होंने अपनायी है; इस तरह की सैकड़ों समस्याएँ हैं, जिन पर यदि एक दूसरे की सलाह, सहायता और सहयोग से काम लिया जाय, तो हमारा बहुत सा समय और बहुत सा धन बच जाय और हम थोड़े ही दिनों में अपने साहित्य में वह सामग्री और वह विचार-धाराएँ ला सकें, जिनसे उसे संसार की साहित्यिक बिरादरी में प्रतिष्ठा का स्थान मिल सके।

प्रकृति का कुछ ऐसा विधान है, कि भिन्न-भिन्न भूभाग के प्राणियों में मानसिकता का विकास कुछ विशेष रूप धारण कर लिया करता है। किसी देश के निवासी बड़े मनोरंजन प्रिय होते हैं, तो किसी देश के बड़े मननशील। किसी देश में हरेक व्यक्ति अपनी डफली अलग बजाता है। किसी देश के लोग कला के प्रेमी हैं, तो किसी

देश के लोग व्यवसाय के। भारत एक समूचा महाद्वीप है और इसके भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भी यही वैचित्र्य मौजूद है। किसी प्रान्त ने नाट्यकला में कदम आगे बढ़ाये हैं, तो किसी ने कविता में; किसी ने तात्त्विक विवेचन में, तो किसी ने ऐतिहासिक खोज में। अगर इन सभी प्रवृत्तियों को हम अपने राष्ट्र-साहित्य में एकत्र कर सकें तो वह किस कोटि का होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है।

परिषद् का दूसरा काम यह होना चाहिए कि वह प्रान्तीय साहित्य-सेवियों को प्रतिवर्ष किसी स्थान पर निमंत्रित करके उन्हें आपस में मिलने-जुलने, साहित्य की समस्याओं पर दूसरों के विचार सुनने और अपने विचार प्रकट करने और इस तरह साहित्य में नई धाराओं का मार्ग दिखाने की व्यवस्था कर सके। वह हिन्दी को प्रान्तीय साहित्यों के रत्नों से अलंकृत करे, ताकि केवल हिन्दी जानकर ही किसी प्रान्त का निवासी, हरेक प्रान्त के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सके, और कालान्तर में हिन्दी पढ़ना और लिखना हर एक भारतीय के लिए वैसा ही ज़रूरी हो जाय, जैसे यूरोप में फ्रेंच है। इस तरह साहित्य की एक धारा सारे भारत में प्रवाहित हो जाएगी और एक समय आएगा, जब हिन्दी साहित्य, संसार में उसी तरह पढ़ा जाएगा, जैसे आज रूस और फ्रांस का साहित्य पढ़ा जाता है। क्योंकि उसपर सारे भारत की प्रतिभा और मौलिकता की मुहर होगी।[1]"

देशी नरेशों की हिन्दी-सेवा—

सन् १९३५ में साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में भाषण देते हुए राय बहादुर डॉ० सरजू प्रसाद तिवारी ने देशी नरेशों की हिन्दी-सेवा में महत्वपूर्ण योगदान देने-वाले देशी नरेशों का उल्लेख यों किया है :—

"हिन्दी के उत्थान में देशी नरेश अग्रसर हो रहे हैं। राजपूताना और मध्य भारत के अधिकांश राज्यों में राज-भाषा हिन्दी है; परन्तु समस्त कार्य तो अंग्रेज़ी भाषा में ही होते हैं। महाराष्ट्र भाषा-भाषी होते हुए भी श्रीमंत बड़ौदा नरेश ने अपने राज्य के सभी कामों में हिन्दी का व्यवहार करने की आज्ञा देकर जो आदर्श उपस्थित किया है, उसने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार में बड़ी सहायता दी है। देवास नरेश श्रीमंत महाराज सदाशिवराव जी खासे साहब ने भी इसी वर्ष से अपने राज्य के समस्त विभागों का कार्य हिन्दी में करने की सामयिक घोषणा करने की कृपा की है। श्रीमान् ओर्छा नरेश ने भी दो हज़ार रुपये के 'देव पुरस्कार' का श्रीगणेश करके बड़ा सराहनीय कार्य किया है। यह पुरस्कार हिन्दी में प्रचलित सभी पुरस्कारों से बड़ा है और सम्भवतः देश की किसी भी भाषा में इतना बड़ा साहित्यिक पुरस्कार नहीं है। प्रजावत्सल होलकर नरेश और उनकी सरकार सदा से हिन्दी के प्रति प्रेम

---

१. 'हिन्दी प्रचारक' अगस्त १९३५।

प्रदर्शित करती रही है। साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन पर जब महात्मा गाँधी जी ने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार की जो योजना प्रारम्भ की थी, उसमें श्रीमन्त भूतपूर्व महाराज ने १०,०००) की बहुमूल्य सहायता प्रदान की थी। इसी प्रकार मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति को भी श्रीमन्त होलकर नरेश और उनकी सरकार ने समय-समय पर सहायताएँ प्रदान की हैं। उन्होंने साहित्य और कला की उन्नति के लिए अनेक प्रकार की सहायता प्रदान की है। कुछ समय पूर्व तक हिन्दी और मराठी साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए ५०००) वार्षिक सहायता दी जाती थी जिससे दोनों भाषाओं के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

'यथा राजा तथा प्रजा' की नीति के अनुसार श्रीमंत होलकर की धनीमानी प्रजा भी राष्ट्र-भाषा की सेवा में सदा सहायक रही है। श्रीमान् दानवीर रावराजा सर सेठ हुकुमचन्द जी ने मद्रास में हिन्दी प्रचार के लिए सम्मेलन को १०,०००) की सहायता दी थी और 'हुकुमचन्द-ग्रन्थमाला' के प्रकाशनार्थ मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति को मासिक सहायता भी दिया करते हैं।"[1]

स्व. श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति की हिन्दी-सेवा—

हिन्दी क्षेत्र में खासकर मद्रास प्रान्त में हिन्दी प्रचार का आन्दोलन जब से आरंभ हुआ तभी से श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति का इस क्षेत्र के साथ सम्बन्ध रहा।

सर्वप्रथम हिन्दी वर्ग जब पं० गोपालाचार्लु के परिश्रम से आयुर्वेदिक कालेज मद्रास में आरंभ हुआ, तब श्री आचार्लुजी ने आयुर्वेद के शिक्षण में हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य समझ कर वहाँ के छात्रों के लिए हिन्दी वर्ग चलाने की आयोजना की। स्व० डा० लक्ष्मीपतिजी इस कालेज के आचार्य रहे। तब इन वर्गों में श्रीमती रुक्मिणी देवीजी बड़े उत्साह के साथ विद्यार्थिनी बनीं और धीरे-धीरे भाषा-प्रेम ने तथा ज्ञान-पिपासा ने आप में एक ऐसा जबरदस्त असर डाला कि खास तौर पर अपने निवास में बड़ी दिलचस्पी के साथ हिन्दी पढ़ने लगीं। उस समय के आदर्श प्रचारक श्री हृषीकेशजी की निष्ठा और श्री देवीजी की श्रद्धा के कारण मद्रास में हिन्दी का आन्दोलन बड़ी सफलता के साथ सभा द्वारा संगठित हुआ।

इसके अलावा सभा की हर तरह की साहित्यिक और सांस्कृतिक योजनाओं में देवीजी हमेशा अग्रसर रहीं। सन् १९३२–१९३३ में जब सभा द्वारा यात्री-दल आयोजित हुआ था तब उसमें आप उस दल की एक प्रधान सदस्या रहीं। सन् १९५१ में आपका देहान्त हुआ।

---

१. हिन्दी प्रचारक अप्रैल १९३५।

आधार—'हिन्दुस्तानी प्रचार'—१९५१ सितंबर–पृष्ठ ५६५

गाँधीजी का सन्देश—

सन् १९३३ की बात है। पूज्य महात्माजी से दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमियों के लिए सन्देश मिला था। उसे उन्होंने स्वयं अपने हाथों से लिखकर दिया था। उसमें लिखा था :—"दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का जो कार्य हो रहा है, उसका विवरण सुनकर, साधारणतया संतोष ही होना चाहिए। लेकिन तब तक मुझे पूरा संतोष नहीं होगा, जब तक हिन्दी न जाननेवाला एक भी दक्षिण भारतीय रहे।" इससे स्पष्ट होता है कि महात्माजी की दृष्टि में जिस तरह उस वक्त कार्य हो रहा था, उसकी गति संतोषजनक नहीं थी। अगर हम कम से कम शिक्षित दक्षिण भारतीयों को ही हिन्दी सिखाना चाहें, तब भी इस वक्त हमारे पास जो साधन मौजूद हैं, वे बिलकुल अपर्याप्त हैं। हमें अपने कार्य की रफ्तार बढ़ानी होगी। कोई ऐसी योजना बनानी चाहिए, जिससे हम अपने कार्य की रफ्तार ज़्यादा से ज़्यादा तेज़ बना सकें।

मालवीयजी का सन्देश—

Vice-Chancellor's Lodge.
Benares Hindu University.
17 th Nov. 33

"गांधीजी के उत्तम कामों में दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का काम अति प्रशंसनीय है। मुझ को यह सुनकर प्रसन्नता होती है कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास प्रान्त में हिन्दी प्रचार का काम बहुत उत्साह के साथ कर रही है। राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीय भाव के प्रेमी सज्जनों से मैं अनुरोध करता हूँ कि वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार इस उत्तम काम में सहायता दें।"

—मदन मोहन मालवीय

सभा का नया विधान सन् १९३५

सभा ने अपना पहला विधान १९२७ में बनाया जबकि उसका साहित्य सम्मेलन से सम्बन्ध-विच्छेद हुआ था। तब से सभा के कार्य-कलापों में वृद्धि हुई और यह महसूस हुआ कि सभा के संगठन, संचालन और प्रशासन के लिए विधान में आवश्यक परिवर्तन किया जाय। उस समय तक प्रांतीय सभाओं के लिए केन्द्र विधान के अन्तर्गत कोई विधि-विधान नहीं बना था। अतः प्रान्तों में भी केन्द्र सभा के अधीन प्रचार संगठन आदि के लिए स्वतंत्र सभाएँ भी केन्द्र सभा की शाखा के रूप में स्थापित करने का निश्चय हुआ। वर्तमान प्रांतीय सभाएँ उस

हिन्दी प्रचार समाचार-अगस्त १९४०—पृष्ठ २०१

समय के विधान के अनुसार बनी स्वतंत्र शाखाएँ हैं जो समय-समय पर स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अपने विधान में आवश्यक परिवर्तन और संशोधन करती आयी हैं।

विश्वविद्यालय के नमूने पर—

सभा ने अपने विधान को विश्वविद्यालयों के नमूने पर बनाने का निश्चय किया और उसके अनुसार पुराने विधान में आवश्यक परिवर्तन किया। प्रजातंत्रात्मक विधान के अनुसार सभा का संचालन, संगठन एवं प्रशासन की यह प्रणाली पीछे चलकर कहाँ-कहाँ सफल हुई, किन बातों में विफल हुई, इसका उल्लेख आगे किया जाएगा। इस विधान के निर्माता श्री काका कालेलकर हैं। महात्माजी के आशीर्वाद से यह बना है। स्वयं महात्माजी ने इसे पढ़कर अपनी स्वीकृति और आशीर्वाद के साथ व्यवस्थापक समिति में विचारार्थ भेजा था।

नयी संशोधित नियमावली—

सभा का नया विधान और नयी नियमावली २२ अगस्त १९३५ की विराट समिति में स्वीकृत हो गयी और ता० १–६–१९३५ से वह अमल में आयी। वह यों है—

(१) नाम—

इस सभा का नाम होगा—'दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा'।

(२) कार्यालय स्थान—

सभा का प्रधान कार्यालय मद्रास में रहेगा।

(३) उद्देश्य—

भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी का देवनागरी लिपि के द्वारा दक्षिण भारत भर में, प्रधानतः आन्ध्र, तमिल, केरल तथा कर्नाटक प्रांतों और वहाँ की रियासतों में प्रचार करना ही सभा का उद्देश्य होगा।

(४) कार्य-क्रम—

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए निम्नलिखित साधन काम में लाये जायेंगे—धन-संग्रह करना, प्रचार-कार्य करना, भाषा सिखाने का उचित प्रबन्ध करना, हिन्दी में परीक्षाएँ लेने की व्यवस्था करना, उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र, उपाधि-पत्र आदि प्रदान करना, पुस्तक-पुस्तिकाएँ तथा पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करना, पुस्तकालय, वाचनालय, विद्यार्थी-वसति-गृह (होस्टल) चलाना, हिन्दी की उच्च-शिक्षा देने के लिए महाविद्यालयों की स्थापना करना, प्रचारकों तथा प्रचारिकाओं को तैयार करने

के लिए प्रचारक विद्यालय का संचालन करना और भी अन्य उपयुक्त कार्य करना जिनके जरिये हिन्दी भाषा के प्रचार में और उसे लोकप्रिय बनाने में मदद पहुँचे।

(५) समितियाँ—

उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभा का कार्य निम्नलिखित समितियों के अधीन होगा :—

(अ) निधिपालक मंडल।
(आ) व्यवस्थापिका समिति।
(इ) कार्यकारिणी समिति।
(ई) शिक्षा परिषद।

(६) सदस्यता—

१८ साल से ज़्यादा उम्रवाले सभी लोग जो सभा के उद्देश्यों से सहमत हों और नीचे लिखे अनुसार सभा को चन्दा या दान देते हों, कार्य-कारिणी समिति द्वारा नीचे बताए मुताबिक भिन्न-भिन्न श्रेणियों के सदस्य बनाये जायेंगे। जो संस्था सभा के उद्देश्यों से सहमत हो तथा नियमानुसार सभा को चन्दा या दान देती हो, वह भी सभा में अपने अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा सदस्यता कायम रख सकती है।

(अ) **संरक्षक** :—जो सभा को कम से कम ५००० रुपये एक ही मुश्त में दान दें, वे सभा के संरक्षक कहलाएँगे।

(आ) **पोषक** :—जो सभा को एक मुश्त में कम से कम ५०० रुपये दें, वे पोषक होंगे।

(इ) **आजीवन सदस्य** :—जो सभा को कम से कम २५० रुपये दान दें, वे आजीवन सदस्य होंगे।

(ई) **साधारण सदस्य** :—जो सभा को प्रतिवर्ष कम से कम १० रुपये का चन्दा प्रदान करें, वे साधारण सदस्य होंगे।

(उ) **सम्मान्य सदस्य** :—कार्य-कारिणी समिति उन लोगों को सम्मान्य सदस्य बना सकेगी जिनकी सम्मति प्राप्त हो तथा जिनके सदस्य रहने से सभा के कार्य में वृद्धि होने का पूरा विश्वास हो। लेकिन किसी भी समय में ऐसे सदस्यों की संख्या १५ से अधिक न रहेगी।

(ऊ) **सहायक सदस्य** :—ऊपर के सदस्यों के अलावा सभा ऐसे लोगों को सहायक सदस्य बनावेगी जो सालाना कम से कम ३ रुपये का चन्दा

देंगे। लेकिन वे व्यवस्थापिका समिति के सदस्य न चुने जा सकेंगे और न उनको सदस्य चुनने का अधिकार होगा।

(७) व्यवस्थापिका समिति—

संगठन :—

(१) सभा की एक व्यवस्थापिका समिति रहेगी जिसके निम्नलिखित प्रकार के सदस्य होंगे जिनका निम्नलिखित प्रकार कार्य होगा :—

(क) सभा के अध्यक्ष।
(ख) निधिपालक मण्डल के सदस्य।
(ग) सभी संरक्षक।
(घ) सभी पोषक।
(ङ) सभी सम्मान्य सदस्य।
(च) सभी आजीवन सदस्य।
(छ) शिक्षा-परिषद् के सभी तात्कालिक सदस्य।
(ज) प्रत्येक प्रान्तीय-समिति के उनके आपस में से चुने हुए दस प्रतिनिधि।
(झ) कार्य-कारिणी समिति के इसके लिए बनाये उपनियमानुसार सभा के साधारण सदस्यों द्वारा अपने में से चुने हुए प्रतिनिधि जो उस समय के साधारण सदस्यों की संख्या के पंचमांश हों, लेकिन ६ से कम भी न हों।
(ञ) सभा के ऐसे छः स्नातक, जो कार्यकारिणी-समिति द्वारा मनोनीत किये जाएँगे जिन्हें उपाधि-पत्र प्राप्त हुए कम से कम दो वर्ष हो चुके हों।

(२) ऊपरी खंड (१) की धारा छ, ज, झ, ञ के अनुसार चुने हुए व्यवस्थापिका समिति के सदस्य चुनाव की तारीख से ३ वर्ष पूरा होने पर अपने सदस्य-स्थान को खाली करेंगे।

(८) कार्य व अधिकार :—

व्यवस्थापिका समिति के कार्य तथा अधिकार निम्नलिखित प्रकार के होंगे :—

(क) सभा के वार्षिक-कार्य विवरण पर विचार करना।

(ख) अगले वर्ष के आय-व्यय अनुमान-पत्र पर विचार करके उसे स्वीकृत करना तथा अगले साल के लिए आय-व्यय-परीक्षक नियुक्त करना।

(ग) उपाध्यक्ष व कार्य-कारिणी-समिति के ऐसे सदस्यों को चुनना जैसे नीचे बताया गया है।

(घ) समय-समय पर सभा के कार्य की नीति का निर्धारण करना।

(ङ) कार्य-कारिणी समिति की सिफ़ारिशों के मुताबिक उपाधियाँ कायम करना।

(च) कार्य-कारिणी समिति, शिक्षा परिषद तथा निधि पालक मण्डल के द्वारा विचारार्थ भेजे हुए विषयों पर निर्णय करना।

(छ) सभा के किसी नियम का परिवर्तन या संशोधन करना। लेकिन ऊपर के नियम (१) से (४) पर परिवर्तन का विचार नहीं हो सकेगा। जब तक अध्यक्ष पहले से उसके लिए लिखित स्वीकृति न दें या निधिपालक मंडल ऐसे परिवर्तन के लिए प्रस्ताव के द्वारा अधिकार न दें। ऐसे अधिवेशनों की सूचना सदस्यों को कम से कम १४ दिन पूर्व देनी होगी तथा उस सूचना के साथ ही साथ अधिवेशन में होनेवाले विचारणीय विषयों में नियम परिवर्तनों का विवरण भी देना अनिवार्य होगा। इन अधिवेशनों में कम से कम उपस्थित दो-तिहाई सदस्यों की सम्मति पर ही नियमों में परिवर्तन हो सकता है।

(९) बैठक, सूचना व गणपूरक संख्या (कोरम)—

(अ) व्यवस्थापिका समिति का अधिवेशन साधारणतः वर्ष में एक बार दिसंबर महीने में हुआ करेगा।

(आ) व्यवस्थापिका समिति की बैठक की गण-पूरक संख्या (कोरम) १५ होगी।

(इ) व्यवस्थापिका समिति के २५ सदस्यों के हस्ताक्षर सहित लिखित प्रार्थना-पत्र मिल जाने पर कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव पर व्यवस्थापिका समिति की खास बैठक बुलायी जा सकेगी।

(१०) अध्यक्ष :—

(क) सभा के वर्तमान अध्यक्ष महात्मा गांधी आजीवन अध्यक्ष होंगे।

(ख) अध्यक्ष के निम्नलिखित अधिकार होंगे :—

(१) आकस्मिक आपत्तियों का निवारण करने के लिए आवश्यक उपाय करना व कार्य-कारिणी समिति की अगली बैठक में उसे रखना।

(२) किसी स्वीकृत व्यय को रोकने या बन्द करने तथा उस पर पुनर्विचार करने की आज्ञा उस समिति को देना जो उसके लिए अधिकृत हो।

(३) अपने कार्य को पत्र, गश्ती-चिट्ठी अथवा अपने खास प्रतिनिधि के द्वारा पूरा करना।

(४) सभा के कार्य में आनेवाले सभी विवाद व सन्देहों पर अपना अन्तिम निर्णय देना।

(११) निधि-पालक मण्डल—

(अ) सभा की स्थायी और अस्थायी सभी तरह की जायदाद की आवश्यक रक्षा करने तथा उसको उचित प्रकार से लगाने आदि का भार एक निधिपालक मण्डल पर रहेगा जिसके कम से कम तीन और ज्यादा से ज्यादा सात सदस्य रहेंगे।

(आ) वे आजीवन या त्याग-पत्र देने तक मंडल के सदस्य रहेंगे।

(इ) निम्नलिखित सज्जन, जो निधिपालक मंडल के वर्तमान सदस्य हैं, इन नियमों के अनुसार आगे भी सदस्य रहेंगे :—

(१) श्रीयुत जमनालाल बजाज।
(२) „ सी राजगोपालाचारी।
(३) „ रामनाथ गोयनका।
(४) „ डा० पट्टाभि सीतारामय्या।
(५) „ पं० हरिहरशर्मा।

(ई) निधिपालक-मण्डल के वर्तमान दोनों खाली स्थानों की व आगे यदि कोई अन्य स्थान खाली हो तो उसकी, मण्डल के अन्य सदस्य पूर्ति कर सकेंगे। किन्तु ऐसा करना सर्वदा ज़रूरी नहीं रहेगा, जब तक कि मण्डल के शेष सदस्यों की संख्या तीन से कम न हो।

(उ) मण्डल अपने में से एक सदस्य को, जो मद्रास के निवासी हों, सभा का कोषाध्यक्ष तथा मैनेजिंग ट्रस्टी नियुक्त करेगा। सभा की भिन्न-भिन्न निधियों को तथा दूसरी तरह की रकम को जैसा वह उचित समझे, समय-समय पर कोषाध्यक्ष व मैनेजिंग ट्रस्टी के नाम पर कर दिया करेगा; लेकिन इस तरह उनके नाम पर अलग रखी हुई रकम सभा की ही है, यह साफ़ बताया जाना चाहिए।

(ऊ) 'इण्डियन ट्रस्ट ऑक्ट' की धारा २० के अनुसार अपने नाम रखी हुई किसी भी सम्पत्ति या निधि को मैनेजिंग ट्रस्टी किसी भी सेक्यूरिटी में लगा सकेंगे। पर मण्डल को अधिकार होगा कि वह इसके अलावा और तरह से भी लगाने की सलाह मैनेजिंग ट्रस्टी को दे।

(ऋ) मण्डल मैनेजिंग ट्रस्टी व कोषाध्यक्ष को सभा की तरफ़ से दस्तावेज़ लिख देने का अधिकार दे सकेगा।

(ए) निधिपालक मण्डल को या उसकी स्वीकृति से मैनेजिंग ट्रस्टी को, सभा के अर्थसम्बन्धी हर एक मामले व हित की रक्षा करने व सँभालने का अधिकार होगा। वे हिसाब की जाँच करें, किसी भी सम्पत्ति व तत्सम्बन्धी कागज़ात को जाँचें तथा सभा के आर्थिक मामलों व सम्पत्ति सम्बन्धी बातों पर कैफ़ियत तलब करें।

(ऐ) निधिपालक मण्डल को अपना कार्य गश्ती-चिट्ठी से करने का अधिकार होगा। सभा के प्रधान मंत्री निधिपालक मण्डल के सदस्य हों या न हों, वे मण्डल के संयोजक होंगे और इस मामले में मैनेजिंग ट्रस्टी के कहे अनुसार कार्य करेंगे।

(१२) कार्यकारिणी समिति—

संगठन :—

सभा के कार्यों का संचालन करने के लिए एक कार्य-कारिणी समिति रहेगी, जिसका संगठन इस प्रकार होगा :—

(अ) सभा के अध्यक्ष।

(आ) नियम ६ के अनुसार होनेवाले सदस्यों में से व्यवस्थापिका समिति द्वारा चुने जानेवाले दो उपाध्यक्ष जिनमें एक मद्रास शहर के रहनेवाले होंगे।

(इ) निधिपालक मण्डल के मैनेजिंग ट्रस्टी व कोषाध्यक्ष।

(ई) व्यवस्थापिका समिति द्वारा अपनी सालाना बैठक में निम्नलिखित प्रकार के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से चुने जानेवाले दस सदस्य :—

(१) प्रत्येक प्रान्तीय समिति का एक-एक प्रतिनिधि।

(२) शिक्षा-समिति के तीन प्रचारक प्रतिनिधि, जिनमें से दो ऐसे प्रचारक हों, जिनका सेवा-काल दस वर्ष से कम न हो।

(३) तीन ऐसे सज्जन, जो सभा के कार्यकर्ता न हों और नियम ६ के अनुसार सदस्य हुए हों।

(४) कार्य-कारिणी समिति को, व्यवस्थापिका समिति के सदस्यों से ज्यादा से ज्यादा दो और सदस्यों को, जैसे जब वह उचित समझे अपनी समिति के सदस्य बनाने का अधिकार भी होगा।

(१३) प्रवर्तक—

दो उपाध्यक्षों में से मद्रास नगरवासी एक को अध्यक्ष अपने सहायक मनोनीत करेंगे जो सभा के प्रवर्तक कहलायेंगे।

कार्य-कारिणी समिति अपने सदस्यों में से एक प्रचारक को 'प्रधान मंत्री' चुनेगी जो साधारणतः कम से कम दस वर्ष के सेवा-काल के हों।

(१४) कार्य-कारिणी समिति के कार्य :—

कार्यकारिणी समिति का कार्य निम्नलिखित प्रकार रहेगा :—

(क) व्यवस्थापिका समिति की निर्धारित नीति के अनुसार सभा का कार्य संचालन करना।

(ख) प्रति वर्ष सभा का आय-व्यय-अनुमान-पत्र (बजट) तैयार करके निधि-पालक मण्डल के पास विचार के लिए भेजना।

(ग) उक्त मण्डल की सिफ़ारिश के साथ व्यवस्थापिका समिति के सामने स्वीकृति के लिए रखना।

(घ) वार्षिक विवरण तैयार कर व्यवस्थापिका-समिति के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित करना।

(ङ) सभा की सब प्रवृत्तियों का निरीक्षण और संचालन करना।

(च) व्यवस्थापिका समिति की स्वीकृत बजट में आवश्यक परिवर्तन या संशोधन करना। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि सभा के सालाना खर्च में १०००) रुपये से अधिक न होने पावे तथा व्यवस्थापिका समिति के किसी विशेष निर्देश का या किसी दाता की शर्तों का उल्लंघन न हो।

(छ) नियमानुसार ऐसी संस्थाओं को सभा के साथ सम्बद्ध करना जो सभा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम कर रही हों तथा आवश्यकता पड़ने पर उनका सम्बन्ध विच्छेद करना। लेकिन सम्बद्ध-विच्छेद व्यवस्थापिका समिति की अगली बैठक में स्वीकार कराना आवश्यक होगा।

(ज) सभा के उद्देश्यों तथा नियमों को ध्यान में रखते हुए अपने कार्य-संचालन के लिए उपनियम बनाना व आवश्यकता पड़ने पर उनमें उचित परिवर्तन या संशोधन करना।

(१५) खाली स्थान की पूर्ति :—

अगर कार्यकारिणी समिति के सदस्य व उपाध्यक्षों की कोई जगह खाली हो जाय तो व्यवस्थापिका समिति अपनी अगली बैठक में उसकी पूर्ति करेगी। किन्तु ज़रूरी हो तो कार्य-कारिणी समिति को बीच की अवधि के लिए उस खाली स्थान की पूर्ति अपनी तरफ़ से करने का अधिकार भी रहेगा।

(१६) समिति की अवधि :—

निधिपालक मण्डल के मैनेजिंग ट्रस्टी के अलावा कार्यकारिणी समिति की सदस्यता की अवधि तीन वर्ष की होगी। किसी भी सदस्य का स्थान खाली होने पर

बचे हुए समय के लिए ही दूसरे चुने जाएँगे। लेकिन एक बार नियमानुसार चुनी हुई कार्यकारिणी समिति तब तक काम करती रहेगी, जब तक दूसरी कार्यकारिणी समिति नियमानुसार न चुनी जाय।

(१७) बैठक :—

कार्यकारिणी समिति की बैठक साधारणतः महीने में एक बार हुआ करेगी। पर आवश्यकता के अनुसार प्रधानमंत्री, ज्यादा बैठकें भी बुला सकेंगे। समिति की विशेष बैठक तीन सदस्यों का लिखित प्रार्थना-पत्र पाने पर बुलायी जायगी। अध्यक्ष के आदेशानुसार प्रधान मंत्री कोई कार्य पत्र द्वारा भी कर सकेंगे।

(१८) विशेष परिस्थितियों को छोड़कर साधारणतया समिति की बैठक के लिए ५ दिन की नोटिस देना जरूरी होगा।

(१९) कोरम :—

कार्यकारिणी समिति की बैठक की गणपूरक-संख्या (कोरम) पाँच की होगी।

(२०) शिक्षा-परिषद् :—

(अ) सभा की एक शिक्षा-परिषद होगी जिसमें सभा के सभी प्रचारकों द्वारा चुने हुए १० प्रचारक सदस्य होंगे जिनमें कम से कम पाँच सदस्य १० वर्ष की सेवा के हों। ये सदस्य प्रति तीसरे वर्ष में एक बार चुने जाएँगे। चुनाव के नियम कार्यकारिणी समिति के द्वारा निश्चित होंगे। सभा के प्रधान मंत्री परिषद् के अधिकृत सदस्य रहेंगे। परिषद् में बाहर से पाँच सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार कार्यकारिणी समिति को होगा।

(आ) प्रचारक सदस्य तब तक ही शिक्षा-परिषद् के सदस्य रहेंगे जब तक वे सभा के कार्यकर्ता रहें।

(२१) सभा के प्रधान मंत्री शिक्षा-परिषद के मंत्री होंगे।

(२२) शिक्षा-परिषद, कार्य-कारिणी समिति तथा व्यवस्थापिका समिति को परीक्षा, पाठ्यक्रम, प्रकाशन, प्रचार, शिक्षण आदि कार्यों में ज़रूरी सलाह दिया करेगी।

(२३) प्रान्तीय सभाएँ :—

कार्य-कारिणी समिति आवश्यकता के अनुसार हिन्दी के प्रचार को बढ़ाने के लिए आन्ध्र, तमिलनाडु, केरल तथा कर्नाटक प्रान्तों में प्रान्तीय-सभाओं की स्थापना करेगी। मद्रास शहर सीधे प्रधान सभा के अन्तर्गत रहेगा।

(२४) साधारण :—

किसी सदस्य की मृत्यु, अलग होने या हटाये जाने से सभा बन्द नहीं होगी। निधि-पालक मंडल, व्यवस्थापिका समिति, कार्य-कारिणी समिति तथा शिक्षा परिषद के

किसी व्यक्ति के किसी निश्चित अवधि के अन्दर सदस्य न होने के कारण सभा की कोई कार्रवाई बेकायदा नहीं ठहरायी जाएगी।

(२५) मतनिर्णय :—

सभा की व्यवस्थापिका समिति, कार्यकारिणी समिति या शिक्षा-परिषद की बैठकों में सदस्यों के बहुमत के अनुसार निर्णय हुआ करेंगे। जब किसी विषय पर समान मत आएँगे, तब सभापति के मत से ही अन्तिम निर्णय होगा। मतनिर्णय लेने के सम्बन्ध में यदि पहले ही कोई निश्चित उपनियम न हो तो सभापति को उस पर निर्णय देने का अधिकार रहेगा।

(२६) सभापति—

अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभा के प्रवर्तक ही साधारणतः व्यवस्थापिका समिति एवं कार्यकारिणी समिति की बैठकों में अध्यक्ष-स्थान ग्रहण करेंगे।

(२७) नियुक्ति व बरखास्त—

सभा के प्रचारकों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति, तथा बरखास्त और शिस्त सम्बन्धी अन्य कार्रवाइयों को चलाने के लिए समय-समय पर कार्यकारिणी समिति आवश्यक उपनियम बनाएगी।

(२८) प्रचारक—

उपर्युक्त नियमों में प्रचारक वह व्यक्ति माना जायगा जो कार्य-कारिणी समिति के द्वारा बनाये गये उपनियमों के अनुसार सभा की सेवा में नियुक्त हुआ हो।

(२९) सभा का वर्ष—

जनवरी महीने की पहिली तारीख से लेकर उस वर्ष के दिसंबर महीने की ३१ तारीख तक का समय सभा का वर्ष समझा जायगा।

(३०) कानूनी कार्रवाई—

सभा पर और उसकी तरफ़ से होनेवाली सभी तरह की कानूनी कार्रवाई प्रधान मंत्री के नाम पर ही होगी।[1]

सर० टी० विजयराघवाचारी का प्रस्ताव

सर० टी० विजयराघवाचारी भारत के उन इने-गिने व्यक्तियों में से हैं, जिनका यश हिन्दुस्तान में ही नहीं, बल्कि बाहरी देशों में भी फैला हुआ है। आप विविध

---

१. 'हिन्दी प्रचारक अगस्त १९३५ से उद्धृत।

विषयों के योग्य विद्वान, बड़े अनुभवी और सफल अफ़सर थे। सन् १९२८ में आप सभा कार्यालय में पधारे थे। आपने उस समय एक व्याख्यान के द्वारा दक्षिण भारतीयों के सामने एक प्रस्ताव रखा था, जिसमें आपने कहा था कि राष्ट्रीय आवश्यकता और पारस्परिक लाभ की दृष्टि से यह आवश्यक है कि सभी स्कूलों और कालेजों में हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाय। उस समय इसका विरोध किसी ने नहीं किया; बल्कि इस नये प्रस्ताव का लोगों ने स्वागत किया। दस वर्ष के बाद श्री विजयराघवाचारी जी फिर सभा के आँगन में आये।

सभा की प्रगति में संतोष—

सन् १९२८ से १९३८ तक इन दस वर्षों में सभा ने जो प्रगति की, उसे देखकर श्री आचार्य जी को बड़ा आनन्द हुआ। जब उनके हाथ में पहले और दूसरे दशाब्दों के तुलनात्मक आँकड़े दिये गये, तब उनको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुधा सभी विभागों में सभा का इन दस वर्षों में दस गुना कार्य बढ़ा। सभा के अपने निजी मकान बन गये। कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ गयी। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ तो गई ही। सबसे अधिक खुशी की बात उनको यह मालूम हुई कि कांग्रेस सरकार ने हिन्दी को अनिवार्य पाठ्य-क्रम का विषय बनाया है। श्री आचार्य जी के दस वर्ष के पहले की इच्छा उस दिन पूरी हुई। उन्होंने एक बहुत ही सुन्दर भाषण में अपनी खुशी ही प्रकट नहीं की; बल्कि हिन्दी-विरोधियों की संकीर्णता की जोर से निन्दा भी की। आपने आसानी से यह साबित किया कि हिन्दी की अनिवार्य पढ़ाई शिक्षण-शास्त्र की दृष्टि से और उपयोगिता की दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक है।❀

❀ आधार 'हिन्दीप्रचार समाचार' १९३९ मई।

प्रकरण ६

हिन्दी प्रचार की पंचवर्षीय योजना की रूप-रेखा—

दक्षिण के हिन्दी प्रचार में प्रगति लाने के लिए श्री विष्णुदत्त शर्मा 'तरंगी' ने 'हिन्दी प्रचारक' के जून १९३५ के अंक में एक पंचवर्षीय योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की थी। योजना की कई एक बातों पर अमल किया गया है। लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों तथा साधन-सामग्री के अभाव के कारण बहुत-सी बातें कार्यान्वित करने में सभा आज तक असमर्थ रही है। अतः यह योजना अधूरी रह गयी। योजना की रूप-रेखा विशेष ध्यान देने योग्य है। वह यों है :—

केन्द्रीय समिति की स्थापना—

"हिन्दी प्रचार के लिए हमारे पंचवर्षीय कार्यक्रम में एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की जानी चाहिए। इस हेतु हिन्दी के साहित्यकारों की एक अखिल भारतवर्षीय परिषद् की योजना की जाय। इस समिति के संगठन के समय सभापति का चुनाव बहुत ही महत्वपूर्ण अंग रहेगा; क्योंकि उपर्युक्त सभापति ही समिति को वज़नदार बना सकेगा। इस समिति के संगठन में एक बात यह ध्यान में रखने योग्य है कि एक एम० एल० ए० और हरेक प्रान्त के एक-एक एम० एल० सी० को अवश्य रखना चाहिए। इनकी सहायता से सरकार का रुख हिन्दी के सम्बन्ध में जाना जा सकेगा और समय-समय पर हिन्दी प्रचार सम्बन्धी योजनाओं के सम्बन्ध में कौंसिलों का लोकमत जाग्रत किया जा सकेगा। इस तरह केन्द्रीय समिति का संगठन निम्नलिखित प्रकार से होगा—सभापति, कार्याध्यक्ष, एक उपसभापति, एक प्रधान मंत्री, दो संयुक्त प्रधान मंत्री। सदस्य संख्या हरेक प्रान्त से तीन-तीन रहेगी (देशी रियासतों सहित) और कोषाध्यक्ष।

इस समिति की स्थापना के पश्चात् ही धन-संग्रह का कार्य शुरू होना चाहिए। ५० लाख व्यक्ति इस हैसियत के हों, जो साल में दो आना चन्दा दे सकते हैं तो यह आशा व्यर्थ न होगी कि ६१ लाख रुपया सालाना इकट्ठा किया जाय।

हिन्दी सप्ताह की योजना—

प्रारम्भ में हिन्दी भाषा-भाषियों के नाम अपील करके प्रान्तीय समितियों का संगठन किया जाना चाहिए। इसके हेतु सभापति से दौरा करने का अनुरोध करना चाहिए। इन प्रान्तीय समितियों से ज़िला समितियों और ग्राम समितियों की स्थापना

की जानी चाहिए। इसी दौरे के सिलसिले में चंदा वसूली का भी काम होना चाहिए।

एक प्रचारक-विद्यालय की व्यवस्था की जाय जिसमें कि हरेक प्रान्त से एक एक व्यक्ति संगठन की शिक्षा ले। वही व्यक्ति प्रान्त का मुख्य प्रचारक बना दिया जाय। वर्ष के अन्तिम सप्ताह में 'हिन्दी सप्ताह' मनाया जाय। वह धन-संग्रह नाटकों द्वारा या फेरी द्वारा हो सकता है। यही एक मोटा खाका है जिसको पंचवर्षीय कार्यक्रम के अनुसार पहिले वर्ष में हमें खतम कर देना पड़ेगा।

द्वितीय वर्ष :—निशा-पाठशालाएँ—

इस वर्ष के प्रारंभ से ही हरेक स्थान में निशा पाठशालाओं की व्यवस्था हो। हमारी इस प्रारंभिक शिक्षा का कार्य-क्रम सिर्फ अक्षर-ज्ञान तक होना चाहिए और हिन्दी साहित्य के प्रचलित सुबोध साहित्य की पुस्तकों की ओर रुचि और पत्रों के पठन-पाठन की आदत पैदा करनी चाहिए। जहाँ पर पाठशाला की स्थापना संभव न हो, वहाँ पर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी एक या दो व्यक्तियों को पढ़ाकर अपना कर्तव्य पूरा कर सकता है। तात्पर्य यह है कि जागृति इस सीमा तक अवश्य होनी चाहिए कि हरेक व्यक्ति इस बात को अनुभव करने लगे कि उस कार्य-क्रम की सफलता की एक बड़ी भारी ज़िम्मेदारी उस पर है।

हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन—

सभी केन्द्रों में हिन्दी नाटकों के अधिक से अधिक अभिनयों का आयोजन किया जाना चाहिए। हरेक शहर में इतने हिन्दी प्रेमी मिल सकते हैं कि एक नाटक खेल सकें। शहर और देहातों की रुचि के अनुकूल नाटक खेले जायँ। इससे यह आशा की जाती है कि नाटक-प्रदर्शन से हिन्दी भाषा का पठन-पाठन न करनेवाले लोगों में हिन्दी जानने की आकांक्षा पैदा होगी और प्रत्येक स्थान की शाखा को एक खासी रकम इस तरह से अपना कोष बढ़ाने में प्राप्त हो जायगी।

हिन्दी प्रचार यात्री-दल—

अवकाश के दिनों में हरेक ज़िले में एक हिन्दी-प्रचार यात्री-दल की व्यवस्था की जाय। यह दल गाँव-गाँव में घूमकर लोगों को इस बात के लिए उत्साहित करे कि वे हिन्दी सीखें। जहाँ-जहाँ यह दल जाय, वहाँ-वहाँ ऐसे सुलभ ग्रन्थों को बाँटता जाय जो कि लोगों को रुचिकर हों।

संकीर्तनों का प्रभाव—

अधिकांशतः साधारण जनता संगीत से अधिक प्रेम करती है और संगीत का उस पर अधिक प्रभाव पड़ता है। अतएव अगर संकीर्तन-दल भी दौरा करे तो यह सबसे उत्तम हो। लोग इससे अधिक प्रभावित होंगे।

इसके सिवाय और भी तरीके हो सकते हैं जिनके द्वारा जनता को आकर्षित करके हिन्दी पाठशालाओं की वृद्धि की जा सकती है। प्रचार के अन्य उपाय भी यथा समय कार्य में लाये जा सकते हैं।

तृतीय वर्ष—

पंचवर्षीय कार्यक्रम में तृतीय वर्ष अधिक महत्व का रहेगा। क्योंकि इस वर्ष तक संगठन ठीक-ठीक चलने लगेगा। प्रान्तों, ज़िलों, कस्बों और ग्रामों में समितियाँ कायम हो जायँगी। और इतनी आशा करना व्यर्थ न होगा कि अगर हमारी केन्द्रीय समिति मजबूत रही तो हम हिन्दी प्रचार के क्षेत्र को कम से कम वर्तमान क्षेत्र से एक तिहाई बढ़ा देने में समर्थ हो सकेंगे।

हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि हमारा कार्य इस बात को ज़ाहिर करे कि हिन्दी प्रचार से हमारा मतलब एक ऐसी भाषा को प्रचलित करना है जो कि सारे हिन्दुस्तान के लोगों के विचारों के आदान-प्रदान का एक सर्व साधारण माध्यम बन सके। हमारा यह तात्पर्य कभी नहीं है कि हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में बाधक हों, लेकिन हमारा यह स्पष्ट उद्देश्य है कि अपनी प्रान्तीय भाषा के सिवाय हम हिन्दी को भी कोने-कोने में प्रचलित देखना चाहते हैं।

शिक्षा का माध्यम—

इसी वर्ष सरकारी और गैर-सरकारी दोनों तरीकों से इस बात पर जोर देने का प्रयत्न हो कि मातृ-भाषा शिक्षा का माध्यम बनायी जाय। यूनिवर्सिटियों की सेनेट का चुनाव भी इसी मसले को सामने रख कर लड़ा जाय। अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी को एक अनिवार्य वैकल्पिक विषय बना दिया जाय।

डाकखाने में हिन्दी—

इस वर्ष के कार्य-क्रम में एक और उल्लेखनीय बात होगी कि डाकखाने में हिन्दी, कामकाज की भाषा बनायी जाय। डाकखाने के मार्फत चिट्ठियाँ, रजिस्ट्री, पार्सल और मनीआर्डर आदि हिन्दी में भी लिखे जायँ। तार हिन्दी में भी भेजे जायँ। प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी व्यापारी से अनुरोध किया जाय कि वह अपने सब पते हिन्दी में ही लिखा करें। हिन्दुस्तान की जब एक तिहाई से अधिक और आधे के करीब जनता हिन्दी में पता लिखने लगेगी तब डाकखाने वालों को हिन्दी के लिए व्यवस्था करनी पड़ेगी।

चतुर्थ वर्ष—

इस वर्ष के कार्यक्रम में महिलाओं को हिन्दी सिखाने का विशेष यत्न किया जाना चाहिए। जब तक शिक्षालयों में हिन्दी की गणना अनिवार्य विषयों में नहीं

हो जाती तब तक यह कठिन है कि और तरीके से हिन्दी प्रचार किया जा सके। केन्द्रीय संघ को अपनी शक्तियों को विशेष रूप से इसमें लगाना चाहिए।

पंचम वर्ष—

इसके बाद का वर्ष हमें हिन्दी प्रचार के अंतिम वर्ष में ला देगा। जितने स्कूल हिन्दी के पंचवार्षिक कार्यक्रम के मुताबिक स्थापित किये गये हों, उन्हें स्थायी स्वरूप देने के लिए बाध्य हो जाना पड़ेगा।

हिन्दी विश्वविद्यालय—

हिन्दी के लेखकों का यह वर्ष रहेगा। क्योंकि चार वर्ष के पश्चात् हम हर तरह के साहित्य के विक्रय का क्षेत्र तैयार कर सकेंगे और कुछ ऐसे साहित्य-कारों की उपज कर सकेंगे जो अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी की श्रीवृद्धि करने में तत्पर रहें।

अखिल भारतीय उत्सव—

पाँच वर्ष के भीतर हमारे कार्यक्रम को पूरा कर देना चाहिए। इस बीच में कम से कम दस हजार नियमित हिन्दी पाठशालाएँ होनी चाहिए।

पंचम वर्ष में इस अनुमान के भीतर जो कमी हो, वह पूरी कर दी जानी चाहिए।

इस कार्य-क्रम के समाप्त होने के साथ ही एक अखिल भारतीय प्रदर्शन होना चाहिए। यह हिन्दी-सेवक-सम्मेलन होगा, जिसमें कि पंचवर्षीय कार्य-क्रम का सिंहावलोकन और एक स्थायी कार्य-क्रम निर्धारित करना चाहिए।

इस पंचवर्षीय योजना से यह आशा की जाती है कि देश में हिन्दी के प्रचार की दशा बदल जायगी, पत्रों की दशा बदल जायगी, पत्रकारों की दशा बदल जायगी। और सारे हिन्दुस्तान की दशा बदल जायगी। हिन्दी का ज्ञान भारत में सांस्कृतिक एवं राजनैतिक ऐक्य में सहायक हो।"[1]

सभा-भवन-निर्माण की योजना—

जब हिन्दी प्रचार सभा का कार्य-भार बढ़ने लगा तो सभा के लिए निजी भवन की आवश्यकता मालूम होने लगी। सन् १९१८ से सभा-कार्यालय, प्रेस, विद्यालय आदि के कार्य किराये के मकानों पर ही चलते रहे। बीच-बीच में मकान बदलना पड़ता था। इससे कार्य में बड़ी कठिनाइयाँ होती थीं। सन् १९३२ में इस दिशा में प्रयत्न शुरू हुआ। मकान बनवाने के लिए धन-संग्रह करने की आयोजना बनी। उत्तर भारत

---

१. हिन्दी प्रचारक—जून १९३५।

से तो इसके लिए विशेष सहायता मिलने की आशा नहीं थी। क्योंकि गाँधीजी चाहते थे कि जहाँ तक संभव है उत्तर से आगे के कार्य के लिए धन-संग्रह करने का विचार न किया जाय और दक्षिण के इस महान् कार्य के लिए दक्षिणवासियों से ही आवश्यक धन प्राप्त किया जाय। उसके अनुसार सभा ने इस संबन्ध में १९३२ मार्च में निम्नलिखित अपील निकाली :—

"हिन्दी प्रेमी व खासकर हिन्दी परीक्षार्थी तथा प्रचारक बन्धुओं की सेवा में भवन-निधि के लिए कर, पत्र, रसीद आदि परीक्षा के समय में भेजा जा चुका था। हिन्दी प्रेमी जनता इस बात से अच्छी तरह परिचित है कि सभा को अपने निजी भवन के न होने के कारण क्या-क्या तकलीफें उठानी पड़ी हैं। आज तक सभा को कार्यालय व प्रेस के लिए कई बार जगह बदलनी पड़ी है। विद्यालय के लिए तो अलग स्थान लेना पड़ा है। इतने महत्त्वपूर्ण तथा भिन्न-भिन्न विभाग युक्त एवं उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त और विस्तृत राष्ट्रीय संस्था के लिए निजी भवन की कितनी आवश्यकता है यह आसानी से पाठक समझ सकते हैं। इस समय संस्था के मुख्य कार्य-स्थान तीन स्थानों में बँटे हैं। इसके अतिरिक्त कार्यकर्ता-प्रचारकों के रहने का स्थान अलग है। मासिक किराया हद से ज़्यादा दिये जाने पर भी बड़ी असुविधाएँ सहनी पड़ती हैं। इसलिए हिन्दी प्रेमी जनता से व खासकर प्रचारक बन्धुओं से प्रार्थना है कि वे भरसक उद्योग कर इस कार्य को सफल बनावें। उत्तर भारत के हिन्दी प्रेमियों से भी हमारी प्रार्थना है कि वे इसमें पर्याप्त सहायता पहुँचावें।"[1]

अपील में श्री वी. वी. श्रीनिवास अय्यंगार (भूतपूर्व जज, मद्रास हाईकोर्ट), ए. रंगस्वामी अय्यंगार (संपादक, 'हिन्दू'), टी. आर. वेंकिटरामशास्त्री (भूतपूर्व अड्वोकेट जनरल), डॉ. पी. सुब्बरायन, एम. एल. सी. (भूतपूर्व मुख्य मंत्री, मद्रास), दिवान बहादूर आर. एन. आरोग्यस्वामी मुदलियार एम. एल. सी. (भूतपूर्व मंत्री, मद्रास), विद्यासागर पांडेय (बैंक ऑफ हिन्दुस्तान), वी. रामदास पंतलु, नारायण-दास गिरिधर दास, एस. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी (भूतपूर्व डेप्यूटी प्रेसिडेंट, विधान सभा, मद्रास), आर. रंगनाथ मुदलियार एम. एल. सी. (भूतपूर्व मंत्री, मद्रास), पी. वरदरा-जुलु नायिडु (संपादक, तमिलनाडु) आदि ४५ गण्यमान्य नेताओं तथा नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों के हस्ताक्षर थे।

गाँधीजी का सन्देश :—

गाँधीजी ने निम्नलिखित शब्दों में उसका समर्थन किया :—

"मैं हृदय से इस अपील का समर्थन करता हूँ और आशा करता हूँ कि इसके लिए जनता से पूरी मदद मिल जाएगी।"

मो. क. गाँधी

---

(१) 'हिन्दी प्रचारक'—दशाब्दि अंक अप्रैल १९३३

सभा-भवन का शिलान्यास—

सन् १९१८ से १९३६ तक १८ वर्ष सभा किराये के मकानों में कार्यालय, प्रेस आदि का संचालन करती रही। निजी भवन बनवाने के लिए आवश्यक धन-संग्रह करना सरल कार्य नहीं था। फिर भी १८ वर्षों के बाद शर्माजी की आशा सफल हुई। मद्रास कॉर्पॉरेशन से साढ़े तीन एकड़ ज़मीन त्यागराय नगर में खरीदी गयी। मद्रास कॉर्पॉरेशन के तत्कालीन मेयर जनाब अब्दुल हमीद् खाँ साहब ने ता० ९-२-१९३६ को दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा-भवन का शिलान्यास किया।

सन् १९३६ के अन्त तक भवन-निर्माण का कार्य पूरा करने की आयोजना बनायी। कार्यालय, प्रेस, वाचनालय तथा पुस्तकालय एवं कार्यकर्ताओं के लिए भवन, विद्यालय, छात्रावास आदि बनवाने का निश्चय किया। हिन्दी अनिवार्य बनाकर साधारण शिक्षा देने के लिए एक पाठशाला भी खोलने की सभा की कल्पना थी। व्यायामशाला, प्रार्थना-मन्दिर आदि बनवाने का भी विचार हुआ।

सभा-भवन का उद्घाटन—

पूर्व योजना के अनुसार सन् १९३६ में ही सभा-भवन का निर्माण पूरा हुआ। उसका उद्घाटन-उत्सव ता० ७-१०-१९३६ को मनाया गया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने सभा का उद्घाटन किया। उत्सव में शहर के गण्यमान्य सज्जनों के अतिरिक्त करीब २०,००० लोगों ने भाग लिया था।

सभा-भवन का हॉल स्व० रंगस्वामी अय्यंगार के स्मारक रूप में बना है जिसमें उनकी मूर्ति स्थापित हुई है।

विद्यालय भवन—

श्री करनल के० जी० पंडालै और श्री एस० आर० एम० सीटि० ए० अन्नामलै चेट्टियार के दान से ही विद्यालय भवन का निर्माण हुआ था। सन् १९३८ में विद्यालय की इमारत बनी थी।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा, १९३६—

जब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा दक्षिण के चारों प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार सफलतापूर्वक चलने लगा तो उत्तर भारतीय अहिन्दी प्रान्तों में उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। वहाँ पर व्यवस्थित रूप से हिन्दी का प्रचार शुरू नहीं हुआ था। लेकिन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओं में महाराष्ट्र, गुजरात, हैदराबाद, सिन्ध, उड़ीसा आदि प्रान्तों से परीक्षार्थी बैठने लगे। सभा ने उन प्रदेशों में भी परीक्षा-केन्द्र खोले। जब नये-नये केन्द्रों तथा परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ने लगी तो गाँधीजी ने वहाँ भी संगठित रूप में हिन्दी प्रचार करने की व्यवस्था करना

आवश्यक समझा। उन्होंने साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों से अनुरोध किया कि वे उक्त कार्य-भार को संभालें। जब सन् १९३५ में इन्दौर में साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन गाँधीजी की अध्यक्षता में हुआ तो गाँधीजी ने अहिन्दी उत्तर भारतीय प्रदेशों में हिन्दी प्रचार करने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। लेकिन उनके विचार तुरन्त कार्यान्वित नहीं हुए। अगले वर्ष सन् १९३६ में जब नागपुर में साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन बाबू राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुआ तब गाँधीजी के उन विचारों को कार्यान्वित करने के लिए 'हिन्दी-प्रचार समिति' स्थापित हुई। बाद को वही समिति 'राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति' नाम से प्रसिद्ध हुई। श्री राजेन्द्र बाबू उस समिति के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस समिति के सम्बन्ध में राजेन्द्र बाबू ने अपनी आत्मकथा में यों लिखा है :—

"सम्मेलन ने राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति बना दी, जिसका सभापति मैं बनाया गया। सम्मेलन में एक प्रचार समिति भी नियमानुसार हुआ करती है। नागपुर सम्मेलन ने महसूस किया कि प्रचार समिति हिन्दी भाषी प्रान्तों में साहित्य प्रचार का काम किया करे और राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति उन प्रान्तों में राष्ट्र-भाषा का प्रचार करे, जहाँ की भाषा हिन्दी नहीं है। दक्षिण भारत में आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्नाटक में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा बहुत अच्छा काम करती आ रही है और उसके द्वारा प्रचार का काम खूब ज़ोरों से चलाया गया है। पर दूसरे अहिन्दी प्रान्तों में यह प्रचार व्यवस्थित नहीं हुआ था। इसलिए गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, आसाम, उत्कल इत्यादि प्रान्तों में प्रचार कार्य करने का भार इस राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति को सौंपा गया।

मैं इसका सभापति तो बना। पर इसके नीति-निर्देश का काम गाँधीजी ने किया और अर्थ-संग्रह का सेठ जमनालाल बजाज ने। इसमें सम्मेलन के कई प्रमुख व्यक्ति, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, पंडित दयाशंकर दुबे, डॉ० बाबूराम सक्सेना प्रभृति सदस्य बनाये गये। कुछ अहिन्दी प्रान्तों के प्रतिनिधि-स्वरूप वहाँ के हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित किये गये। यह समिति तीन बरसों के लिए ही बनायी गयी थी। पर वह तीन बरस बीतने पर फिर मनोनीत कर दी गयी। १९३६ से १९४२ छः बरसों में इस समिति ने अहिन्दी प्रान्तों में विशेषकर गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश के महाराष्ट्री जिलों, उत्कल और असम में बहुत काम किया। विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें बनवायीं, परीक्षाएँ लीं। हज़ारों की संख्या में विद्यार्थियों ने परीक्षाएँ दीं और उत्तीर्ण भी हुए। सेठ पद्मपत सिंघानियाँ ने पाँच बरसों तक रु० १५,०००) वार्षिक-कुल रु० ७५,०००) का दान देकर इसके अर्थाभाव को बहुत कुछ दूर कर दिया। श्री काका कालेलकर, श्री सत्यनारायण, श्री श्रीमन्नारायण और श्री दादा धर्माधिकारी के

परिश्रम तथा उत्साह ने, गाँधीजी के वरद हस्तों के नीचे इसे एक व्यापक प्रभावशाली, उच्चाकांक्षावाली, सफल संस्था बना दिया।"[1]

श्री सत्यनारायणजी उक्त राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति के प्रथम प्रधान मंत्री नियुक्त हुए। उन्होंने सभी उत्तर भारतीय अहिन्दी प्रान्तों में भ्रमण किया। और वहाँ के कार्य को सुव्यवस्थित और सुसंगठित करने का प्रयत्न किया। श्री काकासाहब ने भी इस कार्य में उनको मदद पहुँचायी। सत्यनारायणजी की कार्यदक्षता से वहाँ भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के नमूने पर कार्य होने लगा। राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति की तरफ़ से प्रचार, प्रकाशन, परीक्षा आदि का कार्य होने लगा। तब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने वहाँ के केन्द्रों में अपनी परीक्षाएँ चलाना बन्द कर दिया। दक्षिण के अहिन्दी प्रान्तों—आन्ध्र, कर्नाटक, तमिल, केरल—में ही अपना कार्य सीमित रखा। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर के अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी प्रचार करने का भी श्रेय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को ही दिया जा सकता है।

इस संस्था की तरफ से १९३७ से राष्ट्र-भाषा प्रवेश, राष्ट्र-भाषा परिचय और राष्ट्र-भाषा कोविद नामक तीन परीक्षाएँ चलने लगीं। असम, उत्कल, गुजरात, बम्बई, महाराष्ट्र, युक्त प्रान्त और सिन्ध में परीक्षाएँ चलीं। पहले मद्रास हिन्दी प्रचार सभा; बम्बई, महाराष्ट्र और गुजरात में भी अपनी परीक्षाएँ चलाती थी। लेकिन १९३७ के आपस के समझौते के अनुसार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और वर्धा राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति की एक दूसरे के प्रचार क्षेत्र में सीमाएँ निर्धारित की गयीं। तदनुसार मद्रास सभा ने बम्बई और महाराष्ट्र में परीक्षाएँ चलाना बन्द कर दिया।

काँग्रेस और हिन्दी—

जब से गाँधीजी काँग्रेस के सूत्रधार बने तब से राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर उन्होंने अपने तर्कयुक्त विचार प्रकट करने शुरू किए। उनके उन विचारों का बड़ा प्रभाव उस समय के सभी राष्ट्रीय नेताओं पर पड़े बिना नहीं रह सका। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानने के संबन्ध में उनकी दलीलों को सर्वव्यापक मान्यता मिली। वस्तुतः गाँधीजी की वही विचार-धारा कांग्रेसी नीति में परिवर्तित हो गयी। यही कारण है कि राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी के प्रचार को काँग्रेस के कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इसलिए गाँधीजी ही काँग्रेसी नीति में हिन्दी के प्रचार को महत्व देने एवं अहिन्दी प्रांतों में उसके व्यापक प्रचार की व्यवस्था करने के श्रेय-पात्र माने जाते हैं। काँग्रेस के अंग्रेज़ी-समर्थक नेताओं को हिन्दी का व्यवहार उन दिनों भले ही कुछ अखरा हो, तो भी किसी ने खुले तौर पर काँग्रेसी नीति पर आपत्ति उठाने का साहस नहीं किया। अतएव सार्वजनिक सम्मेलनों में काँग्रेसी नीति के अनुसार

---

१. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद—आत्मकथा पृष्ठ ४५६–४५७।

हिन्दी-भाषणों का भी क्रम चल पड़ा। अन्त में सन् १९२५ में काँग्रेस के कानपुर अधिवेशन में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के संबन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ—

"काँग्रेस की यह सभा प्रस्ताव करती है कि काँग्रेस कमेटी और वर्किङ्ग कमेटी की कार्रवाई आम तौर पर हिन्दुस्तानी में चलेगी। अगर कोई वक्ता हिन्दुस्तानी न जानता हो या दूसरी आवश्यकता पड़ने पर, अँग्रेज़ी या प्रान्तीय भाषा इस्तेमाल की जा सकती है। प्रान्तीय कमेटियों की कार्रवाई आम तौर पर प्रान्तीय भाषाओं में चलेगी। हिन्दुस्तानी भी इस्तेमाल की जा सकती है।"[1]

इस प्रस्ताव का यह फल हुआ कि हिन्दी भाषी राष्ट्रीय नेता काँग्रेसी नीति के अनुसार हिन्दी में भाषण देने लगे। हिन्दी का व्यवहार काँग्रेस अधिवेशनों तथा काँग्रेस-कार्यालयों में होने लगा। काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में अध्यक्ष के अंग्रेज़ी भाषण की प्रतियाँ हिन्दी में भी अनूदित होकर बँटने लगीं।

हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू इन तीनों की व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने इनको एक ही भाषा के तीन नाम बताया। देवनागरी तथा उर्दू-लिपि दोनों का व्यवहार करने पर भी उन्होंने ज़ोर दिया।

काँग्रेस की इस नीति का दक्षिण में कोई विरोध नहीं हुआ। कारण साफ़ था। यहाँ के लोगों के लिए हिन्दी एक नयी चीज़ थी। अतः उसके नाम-भेद अथवा रूप-भेद पर माथापची करने का किसी ने उस समय प्रयास नहीं किया। क्योंकि राष्ट्रीयता की चेतना से प्रेरित होकर दक्षिण भारतीयों ने राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाया था। अन्य बातें उनके लिए नगण्य थीं।

स्मरणीय वर्ष—१९३८—

सितंबर १९३८ में हिन्दी आन्दोलन को शुरू हुए ठीक २० वर्ष पूरे हुए। इन बीस वर्षों में यह आन्दोलन कई अवस्थाओं में गुजरा। उसने अच्छे और बुरे दिन देखे। उसके कार्यकर्ताओं ने कई कष्ट झेले। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि सबसे अच्छा वर्ष १९३८ रहा है। परीक्षार्थियों की संख्या, धन-संग्रह, जनता के सहयोग आदि की दृष्टियों से १९३८ सभा के इतिहास में स्मरणीय वर्ष रहा है। सब से अधिक महत्व की बात यह हुई कि काँग्रेसी मंत्रि-मण्डल ने हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल करने की घोषणा की और तदनुसार १२५ स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश हो गया। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि मद्रास सरकार ने हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' नाम से ही स्कूलों में प्रविष्ट कराया। सन् १९१८ से १९३८ तक सभा 'हिन्दी' के नाम से ही उस भाषा का प्रचार करती

---

(१) राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी—पृष्ठ २५।

आयी थी। लेकिन इस नये नामकरण के कारण सभा को अपनी नीति स्पष्ट करनी पड़ी। सभा ने हिन्दी-हिन्दुस्तानी-उर्दू तीनों को एक ही भाषा मानने की अपनी नीति अपनायी। सभा की यह दलील रही कि परिवर्तित परिस्थिति में हिन्दुस्तानी कहना हो तो उसके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

नाटक स्पर्धा—

हिन्दी के प्रचार में नाटकों का अभिनय महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नाटक के अभिनय से विद्यार्थियों को अपनी हिन्दी की योग्यता तथा बोलने की शक्ति बढ़ाने का अवसर मिलता है। हिन्दी प्रचार के केन्द्रों में हिन्दी-नाटक-प्रदर्शन प्रचार का एक प्रमुख साधन रहा है। हज़ारों केन्द्रों में समय-समय पर प्रचारकों ने नाटक का अभिनय किया और प्रेक्षकों में हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि पैदा करने का प्रयत्न किया। स्थानीय प्रचार सम्बन्धी खर्च के लिए जनता से आवश्यकता भर धन-संग्रह करने के लिए भी नाटक-प्रदर्शन उपयोगी रहा है। नाटक खेलने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के हेतु सभा ने १९३९ से अन्तर-प्रान्तीय नाटक-स्पर्धा चलाने का निश्चय किया। सभी प्रान्तों की नाटक-मण्डलियों के अलग-अलग नाटक-प्रदर्शन की व्यवस्था मद्रास में करने का निश्चय हुआ। सर्व-प्रथम आनेवाली नाटक मण्डली को पुरस्कार के रूप में एक गश्ती ढाल भी देने का निर्णय हुआ। १९३९ में इस प्रकार की जो स्पर्धा हुई उसमें आन्ध्र देश सर्वप्रथम निकला और उसको गश्ती ढाल मिली।

वाक् स्पर्धा—

नाटक-स्पर्धा के अतिरिक्त एक अन्तर-प्रान्तीय हिन्दी वाक् स्पर्धा भी चलाने की आयोजना सभा ने बनायी। इसमें सर्वप्रथम आनेवाले प्रान्त को चाँदी का एक गश्ती प्याला देने का निश्चय हुआ। सन् १९३९ में हिन्दी वाक् स्पर्धा भी हुई जिसमें आन्ध्र देश ही सर्वप्रथम आया और गश्ती प्याला भी उसे प्राप्त हुआ।

दस सूचनाएँ—

सन् १९३९ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के तत्वावधान में हुए हिन्दी प्रचारक सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से भाषण देते हुए स्व. श्री महादेव देसाई ने दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों को बड़े महत्वपूर्ण उपदेश दिये थे। उनके उपदेश दक्षिण के हिन्दी कार्यकर्ताओं के लिए अत्यन्त स्फूर्तिदायक रहे। उन्होंने यों कहा:—

"अब मैं प्रचार कार्य की सुविधा के बारे में कुछ सूचनाएँ दूँगा। तमिल—तेलुगु का उत्कृष्ट साहित्य है। हिन्दुस्तान के और प्रान्तों की तरह दक्षिणी प्रान्तों में भी साधु-संत काफ़ी हुए हैं। आपको चाहिए कि 'कुरल' में से, त्यागराज के भजनों में से और आंडाल जैसी भक्तिनियों के भजनों में से आप उत्कृष्ट भाग चुन-चुनकर

उनको नागरी में प्रकाशित करें और साथ उनका अक्षरशः नागरी अनुवाद भी दे दें। ऐसा करने से आप 'एक पंथ दो काज' करेंगे।

× × ×

अब मेरी दूसरी सूचना। आपकी पाठ्य-पुस्तकें मैं देख रहा था। उनकी छपाई और उर्दू और हिन्दी भाषा के एक ही ज़बान में लिखे पाठ देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। उनमें कबीर साहब के बारे में एक पाठ है। उसे सरसरी तौर पर मैं पढ़ गया। मुझे वह रूखा-सा लगा। कबीर जैसे महात्मा के बारे में पाठ हो और उसमें कबीर के कोई प्रसिद्ध वचन न हों, यह बात मुझे बहुत खटकी।

× × ×

वैसे ही तुलसीदास, रहीम ऐसे साधु और कवियों के वचन को भी समझिये। आप इन वचनों के समानार्थ वचन अपने साधुओं के भजनों में से निकाल कर दोनों को साथ-साथ प्रकाशित करके उनका खूब प्रचार कर सकते हैं।

उर्दू कवियों में से कई छोटे-छोटे शेर के टुकड़े ऐसे मिलेंगे, जो हरेक आदमी जबानी याद कर सकता है, समझ सकता है।

ज़ौक, दाग, अकबर, एक बाल, ऐसे शायरों में से कई मज़ेदार और आसान ज़बान के नमूने मिलेंगे।

× × ×

अब मेरी तीसरी सूचना। हिन्दुस्तानी बोलनेवाले बड़े प्रौढ़ नेताओं में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद बहुत बढ़िया 'सब की बोली' बोलते हैं। 'टुकड़ा', 'नक्शा', 'रंग', 'ढंग', 'झलक', 'कड़ी', जैसे छोटे-छोटे शब्द उनकी तकरीर में भरे रहते हैं। उनसे आप विनय करें कि आपके जलसे में रस लेने जायँ, उनसे आप कुछ पाठ भी तैयार करावें।

× × ×

अब मेरी चौथी सूचना। क्योंकि हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रचार प्रांतीय भाषा का विरोधी नहीं है। प्रचारकों का कर्तव्य है कि शुद्ध प्रांतीय जलसों में प्रांतीय भाषा में ही कार्य कराने की कोशिश करें और राष्ट्रीय जलसों में राष्ट्र-भाषा में कार्य कराने की कोशिश करें।

× × ×

मेरी पाँचवीं सूचना यह है कि आप उत्तर हिन्दुस्तान के नेताओं को समय-समय पर बुलाते रहें और उनसे 'सबकी बोली' हिन्दुस्तानी में दक्षिण भारत के स्थान-स्थान पर व्याख्यान कराते रहें।

× × ×

मेरी छठवीं सूचना यह है कि राष्ट्र-कार्य-विषयक जलसे वर्किंग कमिटी के और ए. आइ. सी. सी. के जलसे दक्षिण भारत में कराने का प्रान्तीय काँग्रेस कमिटियों से आप अनुरोध करें।

× × ×

सातवीं सूचना यह है कि प्रचार के पवित्र कार्य में देवियों की मदद ज़्यादा लेते जायँ और निःशुल्क प्रचारकों को इस काम में खींचते जायँ।

× × ×

आठवीं सूचना यह है कि आप मुसलमान भाइयों को भी प्रचारक बनाने की कोशिश करें और उनकी मदद लेते रहें। इससे प्रचार कार्य तो होगा ही, परन्तु हिन्दू-मुसलमान ऐक्य का काम भी होगा।

× × ×

नौवीं सूचना यह है कि आप एक-एक पन्ने की प्रचार-पत्रिका निकालें, उसमें क्रमशः लिपि का बोध हो और गाँववालों के नित्य के काम से सम्बन्ध रखनेवाली सूचना हिन्दुस्तानी और प्रान्तीय भाषा में बड़े-बड़े हरफ़ से लिखी गयी हो। सार्वत्रिक लोक-शिक्षण का यह एक अच्छा साधन होगा।

× × ×

मेरी दसवीं सूचना यह है कि आप अखबारवालों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी के लिए दिलचस्पी पैदा करें। "हिन्दू" जैसे प्रभावशाली अखबार में हर रोज़ एक कॉलम सरल हिन्दुस्तानी ज़बान और नागरी लिपि में क्यों न छपे? 'आनन्द विकटन' जैसे अति लोकप्रिय साप्ताहिक में राजाजी जैसे लेखक की एकाध कहानी आसान हिन्दी में छपे, और उसका प्रांतीय भाषा में अनुवाद दिया जाय। और क्योंकि वह विनोद से छलकता हुआ साप्ताहिक है अतः वह अपने कुछ कार्टून (कटाक्षचित्र) और हास्यात्मक टुकड़े Titbits हिन्दुस्तानी में दे। मैं "हिन्दू" और "आनन्द विकटन" के संपादक महाशयों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस काम में मदद करें।" [1]

× × ×

आदर्श प्रचारक—

उन्होंने आदर्श प्रचारकों के कर्तव्यों को समझाते हुए यों कहा :—

"आपका कार्य और आपकी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। आप न केवल भाषा के प्रचारक हैं, बल्कि राष्ट्रीयता के भी हैं, गाँवों में जाकर आप ग्राम-सेवा के प्रचारक

---

(१) हिन्दी प्रचार समाचार-दिसम्बर १९३९ पृष्ठ ४३०.

बनते हैं। विलायती लिबास, विलायती ढंग से पहना हुआ, सिगरेट फूँकता हुआ कोई प्रचारक मैंने नहीं देखा, ऐसा कोई प्रचारक खयाल में भी नहीं आ सकता है। हमारा प्रचारक कबीर का यह वचन ध्यान में रखकर अपने काम पर निकलेगा :—

रूखा सूखा खाइकै, ठंडा पानी पीव।
देख बिरानी चूपड़ी, मत ललचावे जीव ॥

मनु भगवान ने, मेरे खयाल में, प्रचारकों के लिए एक सुवर्णमंत्र दिया है :—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतं वदेद्वाचं, मनः पूतं समाचरेत् ॥

इस मंत्र का अक्षर और आत्मा का पालन किया जाय तो हम आदर्श प्रचारक बन सकते हैं। इसका भाव तो स्पष्ट है। हम जहाँ-जहाँ विचरें अपनी दृष्टि पवित्र निर्मल रखकर पैर रखते जायँ। आहार में भी संयम रखें क्योंकि जल तक वस्त्रपूत पीने को कहा है। वाणी सत्य से सुसंस्कृत हो और आचरणमात्र शुद्ध पवित्र विचार का प्रतिबिम्ब हो।

ऐसे आदर्श प्रचारक बनने का हमारा सदैव प्रयत्न रहेगा तो हमारा कार्य सुगम बनेगा। स्वराज्य का कार्य इसलिए कठिन है कि हम अपने छोटे-छोटे स्वार्थों की रक्षा(Safe guard) करना चाहते हैं। कोई कहता है, हिन्दी खतरे में है। कोई कहता है, उर्दू खतरे में है, तो कोई तमिल-तेलुगु खतरे में बताते हैं, पर यह सब भूल जाते हैं कि वे स्वराज को खतरे में डाल रहे हैं। वे और सब बातों की तो रक्षा करना चाहते हैं, स्वराज की ही रक्षा नहीं करना चाहते। ऐसे संकुचित भाव का नाश कर स्वराज की लगन जगह-जगह पैदा करना शुद्ध, निरभिमान और सरल जीवनवाले प्रचारक का काम है।[१]"

साहित्य सम्मेलन की जिम्मेवारी—

सन् १९३९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के काशी-अधिवेशन में भाग लेने के बाद सभा के अनुभवी कार्यकर्ता श्री अवधनन्दन जी ने सम्मेलन की जिम्मेदारी पर प्रकाश डालते हुए अपने कुछ विचार व्यक्त किये थे। सम्मेलन की तत्कालीन नीति तथा कार्यपद्धति के संबंध में पूरी जानकारी उक्त विचारों से पाठकों को मिल सकती है। उनके विचार यों थे :—

" इस वर्ष के सम्मेलन का अधिवेशन सफल नहीं कहा जा सकता। पहली बात तो यह थी कि सम्मेलन के सामने वर्ष भर के कार्य के लिए कोई योजना उपस्थित नहीं की गयी। हिन्दी साहित्य कई अंगों में अपूर्ण और अधूरा है। उसकी

---

(१) हिन्दी प्रचार समाचार—दिसंबर १९३९ पृष्ठ ४३३.

पूर्ति के लिए सम्मेलन में न कोई प्रोग्राम बना, न ऐसे किसी प्रोग्राम पर विचार किया गया। दूसरी बात यह हुई कि सम्मेलन का बहुत-सा समय राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रलिपि के रूपों की चर्चा में निकल गया। जो कार्य राष्ट्रभाषा सम्मेलन का था और जिसकी काफ़ी चर्चा राष्ट्र-भाषा सम्मेलन में हो चुकी थी, उन्हीं प्रश्नों पर सम्मेलन में फिर चर्चा हुई, जिसमें सम्मेलन का बहुत-सा बहुमूल्य समय खराब गया।

राष्ट्र-भाषा का सवाल—

सम्मेलन ने राष्ट्र-भाषा का प्रश्न अपने हाथ में लेकर अपने को बड़ी उलझन में डाल लिया है। राष्ट्रभाषा का प्रश्न सार्वदेशिक है। उसका संबन्ध सारे देश से है। यह ख्याल करना कि यह प्रश्न केवल हिन्दी भाषा-भाषियों का है और उस संबन्ध में निर्णय करने की सारी जिम्मेवारी उन्हीं पर है, गलत है। हिन्दी का वही रूप राष्ट्र-भाषा का स्थान ले सकता है जो व्यापक हो, जिसमें प्रान्तीयता या सांप्रदा-कता न हो। लेकिन यह बड़े दुःख की बात है कि हिन्दी के कुछ विद्वान इस प्रश्न पर उदारता के साथ विचार नहीं करते। वे हिन्दी को अपनी निजी संपत्ति समझते हैं और उसके रूप में, उसके व्याकरण में, उसकी लिपि में, ज़रा भी परिवर्तन गवारा करने को तैयार नहीं हैं। यह प्रवृत्ति हिन्दी प्रचार में सहायक होने के बदले उसकी राह में रुकावट ही डालेगी।

राष्ट्रलिपि—

राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में भी सम्मेलन का दृष्टिकोण कुछ वैसा ही संकुचित मालूम हुआ जैसा राष्ट्र-भाषा के संबन्ध में। देश ने देवनागरी को राष्ट्रलिपि माना है और इस बात का प्रयत्न हो रहा है कि देश की सभी भाषाएँ राष्ट्रलिपि देवनागरी में ही लिखी जायँ। भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि काफ़ी नहीं है; उसमें सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता है। साथ ही उसको छपाई आदि वर्तमान वैज्ञानिक साधनों के उपयुक्त भी बनाना है। लेकिन हिन्दी के कुछ विद्वान देवनागरी लिपि को सर्वांगपूर्ण समझते हैं और उसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं चाहते। इस संबन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पर पूरे तीन घण्टे तक बहस होती रही।

'इस सम्मेलन के विचार में भारत की राष्ट्रलिपि नागरी इतनी पूर्ण और उपयोगी है कि सब दृष्टियों से विचार करने पर अभी उसमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।'

इस प्रस्ताव पर कई विद्वानों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण भाषण दिये। कुछ लोगों ने तो यह भी कहा कि प्रस्ताव से 'अभी' शब्द निकालकर उसकी जगह 'कभी' शब्द

रख देना चाहिए। आखिर श्री काका साहब, पं० गोविन्द मालवीय और श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन के समझाने के बाद प्रस्ताव वापिस ले लिया गया।

कार्य शैली—

सम्मेलन की कार्यशैली में काफ़ी परिवर्तन की आवश्यकता मालूम होती है। सम्मेलन की वर्तमान कार्य-प्रणाली संतोषजनक नहीं मालूम होती। वह सन् १९१६-१७ के पूर्व के काँग्रेस या आजकल के लिबरल फ़ेडरेशन की तरह साल में एक बार बैठक करती है। बैठक के समय काफ़ी चहल-पहल रहती है; फिर वर्ष भर के लिए सन्नाटा छा जाता है। इसकी स्थायी समिति इतनी बड़ी है कि उसके द्वारा कोई ठोस कार्य होना मुश्किल है। सम्मेलन का कार्य-क्षेत्र बहुत ज़्यादा विस्तृत है। उसे चाहिए कि भिन्न-भिन्न विभागों के लिए स्थायी समितियाँ बना दे, जो अपने-अपने विभाग के कार्य के लिए 'एक्सपर्ट बाडी' समझी जाय और बिना उससे सलाह लिये सम्मेलन किसी महत्वपूर्ण कार्य पर निर्णय न करे।

सम्मेलन की नियमावली—

सम्मेलन की नियमावली में भी परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। स्थायी समिति के सदस्यों के चुनाव का ही प्रश्न लीजिये। ४० सदस्यों का चुनाव करने में पूरे चार घण्टे लगे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से सदस्यों का कोटा निश्चित कर देने से चुनाव में बड़ी सरलता आ जायगी और प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधि सम्मेलन में आ जायँगे। आजकल जहाँ सम्मेलन होता है वहाँ के प्रतिनिधि तो स्थायी समिति में काफ़ी संख्या में आ जाते हैं; पर दूर के प्रान्तों का कोई मुश्किल से चुना जाता है। इस बार मद्रास और महाराष्ट्र से सिर्फ़ एक-एक प्रतिनिधि चुने जा सके।

दूसरी दृष्टियों से सम्मेलन काफ़ी सफल रहा। भीड़ काफ़ी थी। प्रतिनिधि भी अच्छी संख्या में आये थे।

× × × ×

जैसा हमेशा होता है सम्मेलन में श्री टंडनजी का व्यक्तित्व हर जगह नज़र आ रहा था। सम्मेलन के साथ-साथ विज्ञान-सम्मेलन, साहित्य-सम्मेलन, राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन आदि अनेक सम्मेलन हुए। इसमें दर्शकों की काफ़ी भीड़ रहती थी"[१]

उच्चस्तर की परीक्षा—

राष्ट्रभाषा विशारद परीक्षा सभा की उच्च परीक्षा मानी जाती है। उसका स्तर ऊँचा उठाना आवश्यक समझकर सन् १९३९ में इसके पाठ्य-क्रम में कुछ परिवर्तन किया गया।

---

(१) हिन्दी प्रचार समाचार—अक्तूबर १९३९ पृ० ३४६

राष्ट्रभाषा विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवालों से यह आशा की जाती है कि वे हिन्दी की अच्छी योग्यता प्राप्त करें। उन दिनों प्रायः विशारद पास करके दक्षिण के नवयुवक प्रचारक बनते थे। मद्रास सरकार ने हिन्दी अध्यापकों के लिए विशारद की उपाधि स्वीकार की है। ऐसी हालत में यह जरूरी था कि विशारद उपाधिधारी अध्यापकों का हिन्दी-ज्ञान काफ़ी अच्छा हो और वे हिन्दी पढ़ाने में पर्याप्त योग्यता रखें।

हिन्दी की अच्छी जानकारी से सभा का यह उद्देश्य था कि प्रचारकों और अध्यापकों को—

१. हिन्दी में प्रकाशित होनेवाले पत्र-पत्रिकाओं की भाषा समझने की शक्ति हो।
२. आये दिन राजनैतिक तथा सामाजिक विषयों पर हिन्दी अखबारों में प्रकाशित होनेवाले लेखों, व्याख्यानों और समाचारों को पढ़कर तथा इन्हीं विषयों पर हिन्दी भाषा-भाषी विद्वानों तथा राजनैतिक नेताओं द्वारा दिये गये भाषणों को सुनकर समझने की योग्यता प्राप्त हो।
३. हिन्दी में प्रकाशित होनेवाली ऊँची श्रेणी के उपन्यास, नाटक, कहानी, जीवनी आदि की पुस्तकें समझने और उनकी आलोचना करते हुए शुद्ध और मुहावरेदार हिन्दी में अपने विचार प्रकट करने की योग्यता प्राप्त हो।
४. हिन्दी के आधुनिक कवियों की कविताएँ समझने और उनका रसास्वादन करने की शक्ति प्राप्त हो। यदि सूर, तुलसी, मीरा आदि की कविताओं का भी थोड़ा-बहुत अध्ययन करने की योग्यता प्राप्त हो तो अच्छा हो।
५. उर्दू, हिन्दी का दूसरा रूप है जिसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य है। ये शब्द हिन्दी की किताबों में कम पाये जाते हैं। लेकिन बोलचाल में इनका काफ़ी इस्तेमाल होता है। विशारद के विद्यार्थियों को ऐसे शब्दों की जानकारी होनी चाहिए और अगर वे उनका प्रयोग न कर सकते हों तो भी उनकी जानकारी अध्यापकों को हो।
६. शुद्ध मुहावरेदार हिन्दी लिखने या बोलने अथवा किसी विषय पर हिन्दी में चर्चा करने एवं भाषण देने की योग्यता प्राप्त हो।

लेकिन १९३९ तक के प्रचार के अनुभव के आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले भले ही उपर्युक्त पाँच उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हों, मगर अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति में अधिकतर लोग कच्चे ही सिद्ध हुए। अतः हिन्दी अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की योग्यता का स्तर ऊँचा उठाने के लिए सभा ने कई योजनाएँ बनायीं और धीरे-धीरे उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करती रही। निम्नलिखित योजनाएँ मुख्यतः उस सिलसिले में कार्यान्वित हुईं।

पाठ्यक्रम में सुधार:—

सन् १९३६ में सभा का नया संविधान बना। परीक्षा सम्बन्धी बातों में सलाह देने के लिए एक शिक्षा-परिषद भी बनायी गयी। सन् १९३३ में शिक्षा-परिषद् ने यह महसूस किया कि राष्ट्रभाषा और विशारद दोनों परीक्षाओं की श्रेणी में काफ़ी अन्तर है। उसके पाठ्य-क्रम में क्रमबद्धता नहीं है। अतएव दोनों के बीच में एक और परीक्षा 'राष्ट्रभाषा विशारद चुनाव' नाम की रखी गयी। सन् १९३७ में चुनाव को हटाकर राष्ट्रभाषा के स्तर को ऊँचा करने का पाठ्य-क्रम बनाया। राष्ट्रभाषा के लिए तीन पर्चे रखे गये। इसमें उत्तीर्ण विद्यार्थी सीधे 'राष्ट्रभाषा विशारद' परीक्षा में बैठ सकते थे।

सन् १९३९ में इस क्रम में पुनः कुछ परिवर्तन किया गया। 'राष्ट्रभाषा' पुरानी प्रश्न-पत्रवाली परीक्षा बन गयी। 'राष्ट्रभाषा' के बाद 'चुनाव' परीक्षा के स्थान पर 'प्रवेशिका' नाम की परीक्षा चलाने का निश्चय हुआ। 'प्रवेशिका' में उत्तीर्ण होना 'विशारद' में बैठने के लिए अनिवार्य माना गया। 'प्रवेशिका' में दो प्रश्न-पत्र और 'विशारद' में चार प्रश्न-पत्र नियत किये गये।

मौखिक परीक्षा :—

सन् १९३९ तक उच्च-परीक्षार्थियों की वाक्-शक्ति की परीक्षा लेने का कोई क्रम नहीं था। सन् १९३९ में यह बात महसूस हुई कि हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थी हिन्दी बोलने में कच्चे रह जाया करते हैं। इसलिए उनसे हिन्दी में खूब बोलने का अभ्यास कराना आवश्यक समझा गया। तब से प्रवेशिका और विशारद दोनों परीक्षाओं में मौखिक परीक्षा का क्रम रखा गया। मौखिक परीक्षा में बोलने, पुस्तक तथा हस्तलिखित पत्र पढ़ने की परीक्षा ली जाने लगी। भाषा की शुद्धता, भाव, धारा, उच्चारण आदि की दृष्टि से बोलने की शक्ति की जाँच होती थी। इस मौखिक परीक्षा के लिए सभा के अनुभवी कार्यकर्ता नियुक्त किये जाते थे। मौखिक परीक्षा के कारण हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों को हिन्दी बोलने का अभ्यास करने की प्रेरणा मिली। इसका परिणाम भी संतोषजनक रहा।

मातृभाषा की परीक्षा :—

वर्षों के बाद सभा ने यह अनुभव किया कि हिन्दी की उच्च परीक्षाओं में प्रादेशिक भाषाओं के लिए स्थान दिया जाना चाहिए। कई ऐसे विद्यार्थी हिन्दी की उच्च परीक्षाएँ देते थे जो अपनी मातृभाषा का पर्याप्त साहित्यिक ज्ञान नहीं रखते थे। मातृभाषा के प्रति यह उदासीनता हिन्दी के अध्ययन और अध्यापन में बड़ी कठिनाई उपस्थित करती थी। उच्च परीक्षाएँ पास करके स्कूलों में हिन्दी अध्यापक अथवा हिन्दी प्रचारक बननेवालों से यह आशा की जाती थी कि वे अपनी मातृभाषा

की भी पर्याप्त योग्यता रखें। लेकिन बीस वर्षों का अनुभव इस विषय में अत्यंत निराशाजनक था। इस कारण स्कूलों में नियुक्त होनेवाले अध्यापक तथा जनता के बीच में हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में उतरनेवाले हिन्दी प्रचारक, दोनों मातृभाषा की कच्ची योग्यता के कारण आदर के पात्र नहीं बनते थे। कोरे हिन्दी के ज्ञान को लेकर वे दक्षिण के विद्यार्थियों को प्रभावशाली ढँग से हिन्दी पढ़ाने में असमर्थ निकलते थे। मातृभाषा के माध्यम से हिन्दी पढ़ाने के लिए तो मातृभाषा की अच्छी योग्यता अनिवार्य थी। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर ही सभा ने हिन्दी परीक्षाओं में प्रादेशिक भाषाओं को भी स्थान दिया था। "हिन्दी पढ़ने से मातृभाषा को धक्का लगता है, मातृभाषा के प्रति अवज्ञा की भावना पैदा होती है" आदि लोगों की शिकायतें भी इससे कुछ हद तक दूर हुईं। विशारद और प्रवेशिका में प्रादेशिक भाषाओं (तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम् और मराठी इन पाँचों भाषाओं में) से किसी एक को विद्यार्थी चुन सकते हैं। दोनों परीक्षाओं में एक-एक प्रश्न-पत्र ही रहता है। प्रान्तीय भाषाओं की पुस्तकें भी एक विशेष समिति की सलाह पर चुनी जाती हैं। प्रवेशिका परीक्षा एक प्रकार से विशारद की प्रारंभिक (Preliminary) परीक्षा ही समझी जाती थी। उसमें पास होने के पूरे एक वर्ष बाद ही कोई विद्यार्थी विशारद परीक्षा में बैठने का अधिकारी बन सकता था।

विविध कार्य

धूप-कालीन वर्ग १९३७ :—

१९३७ में सभी प्रान्तों में विशेषतः स्कूल के विद्यार्थियों के लिए धूपकालीन (गर्मी की छुट्टियों में) हिन्दी वर्ग चलाने की आयोजना बनायी। सभी केन्द्रों में हज़ारों की तादाद में विद्यार्थियों ने इन वर्गों में भर्त्ती होकर अध्ययन किया। यह कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा।

वार-टेकनीशियनों के लिए हिन्दी—

भारत सरकार द्वारा सन् १९४४ में विश्व महायुद्ध के अवसर पर हिन्दुस्तान के वार-टेकनीशियनों को हिन्दी पढ़ाने की आयोजना हुई। उसे अमल में लाने के लिए सभा ने हिन्दी अध्यापकों को तैयार किया और सरकार की माँग पूरी करने में सहयोग दिया।

ज़बानी हिन्दुस्तानी परीक्षा—

सभा ने 'ज़बानी हिन्दुस्तानी परीक्षा' नामक एक अलग परीक्षा चलाने का आयोजन किया। केवल हिन्दी में बातचीत का अभ्यास कराना ही इस परीक्षा का

उद्देश्य है। ६ हफ्तों का यह कोर्स बहुत ही सफल रहा। कोर्स के पूरे होने पर विद्यार्थियों की मौखिक परीक्षा ली जाती है और उसमें उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। छोटी उम्र के बच्चों में हिन्दी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में इस परीक्षा ने जादू का काम किया है। अब भी इस परीक्षा का क्रम चालू है।

कार्य-पद्धति में परिवर्तन—

सन् १९३९ में सभा का नौवाँ पदवीदान सभारंभ देश के सुप्रसिद्ध काँग्रेसी नेता श्री. एस. सत्यमूर्ति के सभापतित्व में हुआ। बंबई के भूतपूर्व मंत्री श्री. बालगंगाधर खेर ने स्नातकों को दीक्षान्त भाषण दिया था।

हिन्दी प्रचारक सम्मेलन—

श्री. महादेव देसाई की अध्यक्षता में पदवीदान सभारंभ के सिलसिले में दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचारकों का एक विराट सम्मेलन भी हुआ।

इस वर्ष सभा के कार्यों का पर्यवेक्षण करने के लिए कई गण्यमान्य सज्जन सभा में आये। उनमें (१) सर मिरज़ा इसमाइल, दीवान, मैसूर (२) श्रीमति सरोजिनी नायडू, सदस्या, काँग्रेस कार्यकारिणी समिति (३) श्री. भूला भाई देसाई, एम. एल. ए. (४) श्री. आर. के. सिध्वा (५) श्री. लालजी मेहरोत्रा, मेयर, कराची (६) श्री. पुराणिक, अड्वोकेट जनरल, मध्य प्रान्त (७) श्री. ललिताप्रसाद शुक्ल, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय (८) डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी प्रोफ़ेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय (९) श्री. जी. एस. दुभ, आई. सी. एस. संस्थापक व अध्यक्ष, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सभा के कार्यों का निरीक्षण करके उन्होंने बहुत ही हर्ष प्रकट किया।

श्री. स्वामी सत्यदेवजी का भ्रमण—

श्री स्वामी सत्यदेवजी ने हिन्दी प्रचार करने के उद्देश्य से दक्षिण के विभिन्न केन्द्रों में एक मास तक भ्रमण किया। कई सम्मेलनों में आपके स्फूर्तिदायक भाषण हुए। जनता में हिन्दी के प्रति उत्साह पैदा करने में उनका भ्रमण बड़ा सहायक हुआ।

हिन्दुस्तानी वाक्स्पर्धा—

स्कूलों में हिन्दी पढ़नेवाले छात्रों को प्रोत्साहित करने के लिए सभा ने १९४९ में एक हिन्दुस्तानी स्पर्धा चलाई जो पहले तीन फ़ार्म के विद्यार्थियों के लिए ही थी। कुल ७३ स्कूलों में ९०७ छात्रों ने उसमें भाग लिया। प्रथम आनेवाले विद्यार्थियों को २०० रुपये के इनाम दिये गये।

हिन्दुस्तानी संगीत विद्यालय—

सभा ने १९३८ में हिन्दुस्तानी संगीत सिखाने के लिए सभा में विद्यालय खोला। १९३९ जून तक वह चलता रहा। फिर अनिवार्य कारणों से बन्द हो गया।

संगठकों की आयोजना—

इस वर्ष १९३९ में संगठकों की योजना बनी। तदनुसार प्रान्तीय सभाओं ने संगठकों को नियुक्त किया। तमिल और कर्नाटक में एक-एक और आन्ध्र और केरल में दो-दो संगठक नियुक्त हुए।

प्रान्तीय कार्यालय भवन—

प्रान्तीय कार्यालय-भवन-निर्माण योजना के अनुसार आन्ध्र में भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। तमिल और केरल प्रान्तीय सभा के लिए स्थान खरीदने का प्रयत्न हुआ।

हिन्दी प्रचारक-शिविर योजना—

पहले पहल १९३० में कर्नाटक के उत्साही प्रचारक श्री सिद्धनाथ पंत ने एक हिन्दी-प्रचारक-शिविर (Hindi Camp for Hindi Pracharaks) मैसूर में खोलने की आयोजना की थी। पर जब कार्य शुरू हुआ तब कार्यकर्ताओं में मतभेद हो गया। पंतजी चाहते थे कि हर साल अलग-अलग केन्द्रों में शिविर खोला जाय। एक ही केन्द्र में हर साल शिविर चलाने से विभिन्न केन्द्रों के प्रचारकों को उसमें भाग लेने में असुविधा होगी। कुछ कार्यकर्ता चाहते थे कि हमें अब कई हिन्दी अध्यापकों की ज़रूरत है; अतएव अध्यापकों को तैयार करना ही शिविर आयोजना का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। और कुछ लोगों की राय थी कि शिक्षण-संबन्धी शिक्षा शिविर में ही दी जाय तो अच्छा होगा। इस मतभेद के कारण उस शिविर का कार्य सन्तोषजनक नहीं रहा।

१९३१ में पुनः इस विषय पर विचार हुआ और शिविर एक ही आदमी की देख-रेख में सफलतापूर्वक चला। सभा के अनन्य सेवी श्री जम्बुनाथन् के प्रयत्न से ही मैसूर में यह शिविर चला था। तब से लेकर यह कार्यक्रम जारी रहा। प्रतिवर्ष सभा के अधीन विभिन्न प्रान्तों में शिविर की आयोजना कार्यान्वित होती रही।

हिन्दी-कोश-संपादन—

दक्षिण भारत की हिन्दी प्रेमी जनता बहुत दिनों से ऐसे कोश की आवश्यकता महसूस करती आ रही थी जिसमें हिन्दी के तथा व्यवहार में आनेवाले उर्दू के सभी शब्द मिलते हों। इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से सभा ने दक्षिण भारत

की चारों भाषाओं में एक बृहत् हिन्दी कोश तैयार करने की आयोजना बनायी; इसके लिए एक समिति भी बनायी गयी थी। सबसे पहले कन्नडी-अनुवाद निकालने का निश्चय हुआ। शब्द-संग्रह में तथा कोष को सर्वांगपूर्ण बनाने में दक्षिण के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की सहायता एवं सहयोग रहा। लेकिन परिस्थितिवश हिन्दी कोश की यह आयोजना अन्य कई सांकल्पिक आयोजनाओं के ढेर में दब गई।

प्रमाणित प्रचारक योजना:—

सन् १९४० में हिन्दी प्रचारकों को प्रमाणित बनाने की एक नयी योजना की गयी। इस आयोजना से प्रचारकों का संगठन सुदृढ़ करना ही सभा का उद्देश्य था।

इस आयोजना के अनुसार हिन्दी-प्रचारकों का श्रेणी-विभाजन किया गया। विशारद तक की सभी परीक्षाओं के लिए (प्रारंभिक और उच्च) पढ़ाने की योग्यता रखनेवाले प्रचारक प्रथम श्रेणी में तथा अन्य केवल प्रारंभिक परीक्षाओं के लिए (प्राथमिक, मध्यमा, राष्ट्रभाषा और प्रवेशिका) पढ़ाने की योग्यता रखनेवाले दूसरी श्रेणी में प्रमाणित किये जाते हैं। सभा की तरफ से इस श्रेणी का उल्लेख करते हुए उन्हें प्रमाणित प्रचारक-प्रमाण-पत्र भी दिये जाते हैं। प्रमाणित प्रचारक-सूची में भर्ती के क्रम के अनुसार उनके प्रमाण-पत्रों में क्रम-संख्याएँ दी जाती हैं। पत्र-व्यवहार करते समय यह क्रम-संख्या लिखना उनके लिए आवश्यक माना जाता है। इस योजना के अनुसार प्रमाणित बनने के लिए १) शुल्क सहित प्रचारकों को निश्चित आवेदन-पत्र भरकर भेजना पड़ता है। आवेदन-पत्रों में प्रचारकों की उम्र, परीक्षा-योग्यता, सेवा-काल आदि का उल्लेख करना आवश्यक होता है।

इस योजना के अन्तर्गत प्रमाणित बने हुए प्रचारकों को सभा की शिक्षा-परिषद् में चुनाव लड़ने का अवसर दिया जाता है। यह क्रम आज भी जारी है। आज सभा के प्रमाणित प्रचारकों की संख्या सात हजार के लगभग है।

श्री सत्यनारायण जी का वक्तव्य—

सन् १९४० दिसंबर में पूना में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। उसमें दक्षिण के हिन्दी प्रचार के विषय में बड़ी तीव्र चर्चा चली। अधिवेशन के पहले वहाँ का कलुषित वातावरण देखकर लोगों को यह शंका होने लगी थी कि शायद वहाँ सिर-फुड़ौवल की नौबत आ जाएगी।

इस सम्बन्ध में हिन्दी प्रचार के कर्णधार श्री सत्यनारायण जी का वक्तव्य पढ़ने योग्य है। साहित्य सम्मेलन की नीति के सम्बन्ध में श्री सत्यनारायण जी की धारणा क्या थी, यह इस वक्तव्य से प्रकट होगा।

सिर फुड़ौवल की नौबत—

"अधिवेशन के पहले लोगों का यह विश्वास था कि उस सम्मेलन में बहुत

बड़ा कोलाहल मच जायगा और सिर-फुड़ौवल तक की नौबत आ जाएगी। महाराष्ट्र के प्रधान नगर पूना में इस सम्मेलन के होने से भी इस झगड़े की आशंका कम नहीं हुई थी। इस अधिवेशन में भाग लेने का मौका इन पंक्तियों के लेखक को भी मिला था। हमने दोनों दलों के दृष्टिकोण समझने की कोशिश की और इस बात का भी काफ़ी यत्न किया कि यह समझ लें कि आखिर मत-भेद कहाँ है? मत-भेद का कोई स्वरूप हमारे सामने नहीं आया; लेकिन मनोवृत्ति का पता हमको चल गया। इस समय जिन मनोवृत्तियों के द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में अस्तव्यस्तता है, उनका हिन्दी-प्रचार जैसे— हिन्दी साहित्य निर्णय जैसे—रचनात्मक कार्य में भी प्रवेश हो, यह बड़े दुःख की बात है। वहाँ पर जितने सज्जन इकट्ठे हुए थे उनकी भाषा-दृष्टि, उनकी भाषा-नीति, कार्यनीति तथा लक्ष्य में हमको कहीं फर्क नहीं मालूम हुआ। आखिर ये झगड़े किस बात पर चल रहे थे, यह समझना मुश्किल हो गया।

सार्वदेशिक शब्द-संग्रहः—

हिन्दीसाहित्य सम्मेलन का अखिल भारतीयत्व इस बात में सिद्ध हो जाना चाहिए कि वह सारे भारत के लिए आवश्यक सामग्री के बनाने में लगा हुआ है, न कि भारत के सांप्रदायिक तथा प्रान्तीय झगड़ों को सुलझाने में मशगुल है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, अगर राष्ट्रीय साहित्यिकों तथा राष्ट्रीय सेवियों की संस्था है, तो उसे अपने क्षेत्र के दायरे को और भी अच्छी तरह पहचानना चाहिए। हम पूछना चाहते हैं कि क्या अभी तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा के स्वरूप को पहचानने या निश्चित करने के लिए कोई ऐसी योजना बनाई है, जिससे प्रचलन, लोकप्रियता, आवश्यकता और उपयोग के रफ्तार के ख्याल से एक सार्वदेशिक शब्द-संग्रह बने और जिसे शांत तथा साधिकार समझा जा सके एवं जिसके द्वारा राष्ट्र-भाषा के साहित्य के निर्माण में सहायता पहुँचे? अगर ऐसी योजना बनायी हो तो उसका क्या परिणाम हुआ? ऐसे शब्दकोष की बड़ी आवश्यकता है और इसे अनुभवी विद्वानों की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से बनाया जा सकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को सिर्फ़ प्रोपगान्डा तथा प्रोपगान्डिस्टों के संगठन में ही अपना समय नहीं लगाना चाहिए। बेहतर यही होगा कि इससे वह एकदम मुक्त ही रहे।

'हाथ बँटाना नहीं, हस्तक्षेप करना'—

इस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में जो तूफ़ान उठ खड़ा हुआ है, उसका प्रधान कारण यही कि सम्मेलन काँग्रेस की तरह एक अखिल भारतीय संस्था कह-लाना चाहता है। दुःख की बात यह है कि सम्मेलन के कर्णधारों के पास इतना विशाल संगठन स्थापित करने तथा उसे नियंत्रित करने के लिए न तो समय है, न साधनसंपत्ति। सम्मेलन के कार्यक्षेत्र की विशालता की कल्पना करना जितना

आसान है, उतना आसान उस कल्पना को कार्यान्वित करना हो नहीं सकता। फ़िलहाल देश के कुछ प्रान्तों की मनोगति ऐसी है, जिसे देखते हुए सबसे अच्छा यह मालूम होता है कि जिन प्रान्तों में हिन्दी मातृभाषा के तौर पर बोली जाती है, उनका संगठन अलग किया जाय और अहिन्दी प्रान्तों का संगठन सबसे पृथक् कर दिया जाय। हिन्दी प्रान्तों का नेतृत्व हमेशा रहेगा ही। लेकिन इस विभागीकरण से फ़ायदा यह होगा कि हिन्दी प्रान्तवासी अहिन्दीवालों को जो अपने बराबर चलने के लिए घसीट रहे हैं, वह रुक जायगा। और अहिन्दीवाले अपनी-अपनी आवश्यकता और देश की शुद्ध राष्ट्रीयता को ध्यान में रखते हुए हिन्दीवालों का अपने विवेक के अनुसार जहाँ-जहाँ साथ देना हो, देंगे। हिन्दी भाषा-भाषियों के ऊपर कई जिम्मेदारियाँ हैं, उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार में योग देने की अपेक्षा राष्ट्रभाषा का साहित्य निर्माण करने के काम पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। राष्ट्रभाषा प्रचार में ज्यादा से ज्यादा ध्यान वे तब दे सकेंगे जब कि अहिन्दी प्रान्तों में वे स्वयं जाकर बस जाएँगे। इलाहाबाद या बनारस से इन प्रान्तों के कार्यों पर नियंत्रण करने का प्रयत्न करना, हाथ बँटाना नहीं, हस्तक्षेप करना ही कहलाएगा।"[१]

श्री राजाजी का सन्देश—

"देश की मौजूदा हालत में हिन्दुस्तानी क्षेत्र में सभी काम करनेवालों से मैं चन्द शब्द कहना चाहता हूँ। इन कार्यकर्ताओं से जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ, वही खादी के क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिए भी है।

परिस्थिति के तकाज़े से लाचार होकर ही गाँधी जी ने कुछ खास श्रेणी के देशभक्तों को जेल में जाने के लिए कहा है। देश-प्रेम ज़ाहिर करने का जेल जाना ही एक या सबसे बेहतर तरीका नहीं है। जो हमेशा चलनेवाले रचनात्मक काम में लगे हैं, उन्हें अपना काम नहीं छोड़ना चाहिए।

जब जोश की हवा चलने लगती है तो उत्साही लोगों को रचनात्मक काम फ़ीकासा लगने लगता है। जब तक हम अपने निजी फायदे का ख्याल छोड़कर अपना काम करते हैं, तब तक देश की खिदमत ही करते हैं। जब सत्याग्रही कैदी बन जाता है तब सनसनी खतम हो जाती है। यों तो सविनय कानून भंग भी फ़ीका-सा ही है।

इसलिए मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी और खादी के क्षेत्रों के कार्यकर्ता उस मोह से अपने आपको बचावें और अपना-अपना काम करते रहें; बल्कि हो सके तो ज्यादा ज़ोश से करें।"[२]

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
१९-११-४०

---

(१) 'हिन्दी प्रचार समाचार' जनवरी-फरवरी १९४१ पृष्ठ—५९

(२) 'हिन्दी प्रचार समाचार'—१९४० नवम्बर—पृष्ठ ४१७

दो शताब्दियों के कार्य पर एक विहग वीक्षण—

सन् १९४१ तक दो शताब्दियों का हिंदी प्रचार कार्य, व्यापकता और लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत ही सफल रहा। पर गांधीजी इसमें सफलता नहीं मानते थे। उन्होंने सभा के मन्त्री से पूछा था कि आरम्भ से लेकर उस समय तक जिन लोगों ने हिन्दी सीखी, उनका हिन्दी-ज्ञान बनाये रखने के लिए सभा की तरफ से क्या कार्रवाई हुई है? श्री सत्यनारायण जी ने सभा की कार्य-पद्धतियों के सम्बन्ध में सारी बातें गांधीजी को बतायीं। लेकिन गांधीजी को उस स्पष्टीकरण से संतोष नहीं हुआ।

सन् १९१८ से सन् १९४१ तक का कार्य वास्तव में प्रचार के दृष्टिकोण से भले ही महत्वपूर्ण रहा हो, किन्तु स्थायित्व की दृष्टि से उसमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। सवा लाख लोगों का हिन्दी परीक्षाओं में बैठना, परीक्षाओं के लिए तैयारी करना तथा शिक्षा के इस नये क्षेत्र में १२०० प्रचारकों द्वारा हिन्दी के प्रचार-कार्य का संभाला जाना किसी भी शिक्षणसंस्था के लिए गर्व की वस्तु है, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन इस कठोर सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि सभा तब तक हिन्दी के वातावरण को बनाये रखने की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देती रही थी और प्रायः उसके बाद के वर्षों में भी इस दिशा में वह बिलकुल असावधान ही रही है।

दक्षिण में हिन्दी सीखकर एक-दो परीक्षाएँ पास करनेवाले अपने हिन्दी-ज्ञान को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं? हिन्दी भाषा-भाषियों के साथ उनका कोई सम्पर्क ही नहीं होता। उन्हें हिन्दी से काम लेने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में यदि वे अपनी सीखी हुई हिन्दी को थोड़े दिनों में भूल जायें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में हुआ भी वही। नये-नये केन्द्र खुलते थे, नये-नये विद्यार्थी हिन्दी वर्ग में भर्ती होते थे; तो पुराने केन्द्र टूट जाते थे, पुराने विद्यार्थी हिन्दी से संपर्क न रखने के कारण हिन्दी का अपना अल्पज्ञान भूल भी जाते थे। वातावरण के अभाव में किसी भी भाषा का भूल जाना स्वाभाविक बात है। दक्षिण भारत में हिन्दी का स्वाभाविक वातावरण पैदा हो जाएगा, अर्थात् जनता मातृ-भाषा के रूप में हिन्दी बोलेगी, ऐसी आशा करना वांछनीय नहीं है। हाँ, इतना तो अवश्य हो सकता है कि जनता के दैनिक जीवन में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रों में हिन्दी का उपयोग बढ़ाया जा सकता है। हिन्दी के पत्रों के प्रचार, वाचनालयों के संगठन, हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा, राजभाषा के रूप में सरकारी दफ़्तरों में हिन्दी के द्वारा कार्य-संचालन आदि से हिन्दी का स्वाभाविक वातावरण कुछ सीमा तक पैदा किया जा सकता है। हिन्दी का ज्ञान स्थायी बनाने के लिये इसके सिवाय और क्या हो सकता है?

महात्मा गाँधी का निर्देश—

सभा के प्रधान मंत्री श्री सत्यनारायणजी महात्मा गांधी से ता० २७-४-४१ को मिले। दक्षिण के हिन्दी प्रचार की प्रगति का हाल सुनकर गांधीजी ने हर्ष प्रकट किया। उसके बाद दक्षिण के हिन्दीविद्यार्थियों के हिन्दी-ज्ञान को बनाये रखने के लिए उनको निर्देश दिया। गाँधीजी का पत्र यों है:—

"सेवाग्राम

वर्धा सी. पी.।

भाई सत्यनारायण,

काम तो अच्छा चल रहा है। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग दक्षिण प्रान्त में हिन्दी सीखते हैं, उनका संपर्क हिन्दी से रहे, ऐसा प्रबन्ध किया जाना होगा।"[1]

यह सन्देश दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों के लिए अत्यंत महत्व का है। वह उस समय के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि भविष्य के लिए भी मार्ग-दर्शक है और प्रेरणात्मक है।

श्री. सत्यनारायणजी की गिरफ्तारी :—

सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में सरकार ने सभा के मंत्री श्री. सत्यनारायणजी को गिरफ्तार किया। जेल में जाने पर भी वे हिन्दी की सेवा में दत्तचित्त रहे। तत्संबन्धी उनका वक्तव्य विशेष उल्लेखनीय है।

उन्होने यों लिखा है—"ता० २६-९-'४२ को मुझे सरकार गिरफ्तार करके ले गयी। और ता० २०-४-'४४ तक अपने काबू में रखा। अब मैं रिहा हो गया हूँ। फिर हिन्दी प्रचार सभा की सेवा में लग गया हूँ।

पूरे उन्नीस महीने तक मुझे अपने नियंत्रण में रखकर सरकार ने क्या पाया, इसकी मुझे कुछ भी खबर नहीं है। लेकिन इस अर्से में मुझे कई तरह के अनुभव हुए। सन् १९२१ से मैं हिन्दी के काम में लगा हुआ हूँ। इन वर्षों में एक-दो महीनों के लिए भी मैं अपने कार्य से अलग नहीं हुआ। उन्नीस महीने की अवधि से मुझे काफ़ी शारीरिक आराम तो मिला, साथ ही अध्ययन और मनन के लिए काफ़ी अवसर भी मिला है। अपनी तुच्छ शक्ति के अनुसार जेल में हिन्दी और हिन्दी प्रचार सभा की सेवा करने का भी मुझे अवसर मिला"।[2]

१—'हिन्दी-प्रचार समाचार' अप्रैल १९४१

(२) 'हिन्दी प्रचार समाचार' १९४५

प्रकरण ७

हिन्दी विरोधी आन्दोलन

काल्पनिक रूप :—

ज्यों-ज्यों दक्षिण में हिन्दी का प्रचार अधिक व्यापक और मज़बूत होने लगा, त्यों-त्यों कुछ प्रतिक्रियावादी नेताओं के मन में यह शंका उठने लगी कि हिन्दी के प्रचार से दक्षिण की भाषाओं को धक्का लगेगा और उनका विकास बंद हो जाएगा। प्रान्तीय पाठशालाओं में प्रान्तीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के विषय में मतभेद कम दिखाई पड़ा। अतएव कई प्रान्तों में मातृ-भाषा के माध्यम से पढ़ाई की व्यवस्था भी हो गयी। लेकिन हिन्दी के प्रति कुछ लोगों की मनोवृत्ति आज भी कुछ सीमा तक विरोधात्मक ही रहती है। हम यह मान सकते हैं कि अपनी-अपनी भाषा की उन्नति की कामना करना और उसके लिए प्रयत्न करना हर एक व्यक्ति का कर्तव्य है। पर एक राष्ट्र-भाषा के प्रचार से मातृ-भाषा के विकास में बाधा पड़ेगी, उसकी गति अवरुद्ध हो जाएगी, यह कल्पना निराधार है। हिन्दी के ऊपर यह आक्रमण अन्य कारणों से होता हो तो बात दूसरी है। लेकिन राष्ट्र-भाषा सारी प्रान्तीय भाषाओं को दबा देगी, ऊपर उठने ही नहीं देगी, इसके समर्थन में कोई दलील न देकर केवल मातृ-भाषा की आड़ में हिन्दी का विरोध करना देश की उन्नति और एकता में रोड़े अटकाना है, उसे दूसरे शब्दों में देश-द्रोह की प्रवृत्ति कह सकते हैं। दक्षिण भारत में हिन्दी का उपयोग कितना और किस सीमा तक होना चाहिए, इस बात को स्पष्ट न समझने के कारण ही राष्ट्र-भाषा के विरोध में ये लोग आवाज उठाते हैं। यह बात सर्वविदित है कि दक्षिण में हिन्दी प्रचार की नींव महात्मा गाँधीजी ने डाली थी। क्या, महात्मा गाँधीजी से बढ़कर प्रान्तीय भाषा का प्रबल पक्षपाती दूसरा कोई हो सकता है? हिन्दी प्रचार सभा की नीति भी प्रान्तीय भाषाओं के विकास एवं वृद्धि में सहायक रहती है। सभा की उच्च परीक्षाओं में मातृ-भाषा को प्रमुख स्थान देकर सभा ने अपनी नीति का प्रत्यक्ष परिचय भी दिया है। तब हिन्दी के विरोध के पीछे कौन-सी मनोवृत्ति काम कर रही है? उसे हमें पहचान लेना है। जब अंग्रेज़ी अब तक राजभाषा रही, विवश होकर देश के लोगों को अंग्रेज़ी पढ़नी पड़ी और उसके फल स्वरूप हमारी प्रान्तीय भाषाओं की अवनति हुई, तब किसी ने उसका विरोध नहीं किया। १५० वर्षों से अंग्रेज़ी की गोलियाँ गले में उतरती गयीं और मातृ-भाषा गूँगी बनी रही, उसे हम भी सहन करते रहे। सहन नहीं होता, तो करते क्या? इस लंबी

अवधि में भी अंग्रेज़ी हमारे देश की सामान्य भाषा बन नहीं सकी। आज भी हम उसे स्कूलों के पाठ्य-क्रम में उचित स्थान नहीं देते। अंग्रेज़ी के स्तर को और ऊँचा उठाने की व्यर्थ-चेष्टा करते हैं। विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम आज भी अंग्रेज़ी ही है। उसके स्थान पर मातृ-भाषा या राष्ट्र-भाषा को माध्यम बनाने का प्रयत्न ही नहीं करते।

आज हमारा देश स्वतंत्र है। यदि पराधीनता में हमने अंग्रेज़ी पढ़ी हो, उससे कुछ लाभ उठाया हो, तो क्या, इसीलिए उसी पराधीनता के अभिशाप को स्वतंत्र भारतीयों के माथे मढ़ने की इच्छा अब भी हम करते रहें ? हिन्दी को अंग्रेज़ी की तरह प्रान्तीय भाषाओं की प्रतियोगी नहीं समझना चाहिए। हिन्दी के विरोधियों को मालूम होना चाहिए कि राष्ट्र-भाषा के बिना एक राष्ट्र की राष्ट्रीयता की भावना पनप नहीं सकती। हिन्दी भारत की राष्ट्रीयता की आधार-शिला है, उस दृष्टि से उसे देखना हर एक भारतीय का धर्म है।

हिन्दी विरोधियों को दण्ड क्यों दिया गया ? :—

'माडर्न रेव्यू' के सितंबर १९३९ के अंक में संपादकीय नोट में हिन्दी विरोधी दल के प्रति मद्रास की काँग्रेसी सरकार के व्यवहार की निन्दा की गयी थी। उसके उत्तर में मद्रास सरकार के माननीय मंत्री श्री एस. रामनाथन्‌जी ने संपादक को एक पत्र लिखा था। वह पत्र इस पत्रिका के नवंबर के अंक में प्रकाशित हुआ था। उसका अनुवाद नीचे उद्धृत है।

फोर्ट सेंट जार्ज,
मद्रास।
२५ सितंबर १९३७

"सेवा में
श्री संपादक,
माडर्न रेव्यू, कलकत्ता।

प्रिय महाशय,

'माडर्न रेव्यू' के सितंबर अंक के २५ वें पृष्ठ में आपने अपने संपादकीय नोट में जो बातें लिखी हैं, उन पर आश्चर्य प्रकट करते हुए मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। आपका इस तरह सोचना कि सरकार की भाषा संबन्धी नीति के संबन्ध में विरोध प्रकट करने के कारण लोग जेल भेजे जा रहे हैं, विचित्र-सा लगता है। मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि जब लोग स्कूलों के दरवाज़े पर खड़े होकर नादान लड़कों तथा अध्यापकों को स्कूल में प्रवेश करने से रोकने के लिए चिल्लाते हुए पिकेट करते हैं

तब आप सरकार को क्या करने की सलाह देते हैं? मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मद्रास में सरकार के कार्यों का विरोध करने के लिए जो कोई न्यायसंगत मार्ग लिया गया हो, उसमें दखल नहीं दिया गया है। हमारे प्रान्त में सरकार के प्रति एक तरह का बेजिम्मेदार विरोध है जो चुनाव की हार के कारण हुआ था। लेकिन उस हार को नकली बहादुरी और सत्याग्रह की आड़ में छिपाने की कोशिश की जा रही है। उसने सरकार की शराब-बन्दी, किसानों का ऋण-विमोचन और हरिजनों का मन्दिर-प्रवेश आदि हर एक नीति का विरोध किया। आप ज़रूर मानेंगे कि जनता के जिस बहुमत के बल से सरकार कायम हुई है, उस सरकार को उस बहुमत की इच्छा के अनुसार चलना चाहिए और विरोध की परवाह करके अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए।"

आपका
(ह.) एस. रामनाथन्

विरोध का क्रियात्मक रूप :—

जब मद्रास सरकार ने स्कूलों में अनिवार्य रूप से हिन्दी का प्रवेश कराने की नीति अपनायी तो उसके विरोध में तमिलनाडु में एक प्रत्यक्ष आन्दोलन आरंभ हुआ। उसकी लहरें छिन्न-भिन्न रूप में आज भी कहीं-कहीं वहाँ के केन्द्रों में उठ रही हैं। यह 'एन्टी हिन्दी' (Anti-Hindi) आन्दोलन नाम से मशहूर हुआ है। सत्याग्रह करना, जेल जाना, बड़ी सभाएँ कर हिन्दी का विरोध करना ही विरोधियों का कार्यक्रम रहा। इन आन्दोलनकारियों की यह धारणा थी कि हिन्दी के प्रचार से तमिल को धक्का पहुँचेगा और धीरे-धीरे तमिल भाषा का सर्वनाश हो जाएगा।

विभ्रान्ति :—

इस हिन्दी विरोधी मनोवृत्ति की जड़ में मातृ-भाषा प्रेम की प्रेरणा काम कर रही थी अथवा नहीं, इसका हमें पता नहीं था। लेकिन निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह धारणा अत्यंत भ्रमपूर्ण थी। क्योंकि काँग्रेस ने अधिकार-ग्रहण के बाद सबसे पहले यह घोषणा की कि सब पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा होगी। मद्रास प्रान्त के सब स्कूलों में अँग्रेजी को छोड़कर सब विषय मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाये जा रहे थे। डेढ़ सौ बरस की अंग्रेजी गुलामी के चंगुल से प्रान्तीय भाषाओं को बचाकर उसके विकास की आयोजना बनाने का श्रेय काँग्रेसी सरकार के सिवा और किसे दिया जा सकता है? ऐसी काँग्रेसी सरकार को तमिल भाषा का विरोधी कहकर हिन्दी के विरुद्ध आवाज़ उठाना किस विभ्रान्ति की प्रेरणा का फल है?

विरोध की जड़ में :—

हिन्दी विरोधी वस्तुतः काँग्रेस के विरोधी हैं, उन्हीं के द्वारा यह आन्दोलन चलाया जा रहा है, तब यह बात स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य कुछ और ही है। इस आन्दोलन के सभी नेता या तो चुनाव में काँग्रेस से पराजित हुए थे अथवा काँग्रेस विरोधी, काँग्रेस की जीत और उसके पद-ग्रहण से असन्तुष्ट हो गये थे। जब १९१८ से लेकर १९३६ तक शासन-सूत्र जस्टिस पार्टी सँभाल रही थी, तब किसी ने हिन्दी का विरोध नहीं किया। उस काल में कई स्कूलों में हिन्दी अनिवार्य या ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ायी गयी थी। हिन्दी प्रचार सभा को उनसे काफी सहयोग एवं प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ था। इस विरोधी आन्दोलन के समय भी हिन्दी प्रचार सभा तथा उसके विविध कार्यकलापों के प्रति किसी भी केन्द्र में विरोधी आन्दोलन नहीं उठा था। अतएव यह बात स्पष्ट होती है कि हिन्दी का विरोध वास्तव में काँग्रेस-विरोध का दूसरा नाम था। न जाने, इस राजनीति के दाँव-पेंच में हिन्दी को घसीटने की क्या आवश्यकता थी। हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों ने या उनके माँ-बाप ने कहीं भी हिन्दी का विरोध प्रकट नहीं किया। किसी भी शिक्षा-शास्त्री ने भी यह नहीं सुझाया कि शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से भी मातृ-भाषा के साथ हिन्दी सीखना खतरनाक है।

सरकार की हिन्दी नीति :—

काँग्रेसी सरकार ने हिन्दुस्तानी नाम से स्कूलों में हिन्दी पढ़ाने की आज्ञा निकाली थी। अध्यापक को नागरी और फ़ारसी लिपि जानना आवश्यक माना गया। पाठ्य-पुस्तक भी इसके लिए 'हिन्दुस्तानी' नाम से खास लिखवाई गयी थी।

हिन्दी प्रचार सभा की नीतिः—

सभा ने सरकार की नीति का विरोध नहीं किया। नाम के झगड़े में पड़कर हिन्दी प्रचार को धक्का पहुँचाने का उद्देश्य सभा का नहीं था। क्योंकि सभा का यह विचार था कि हिन्दी प्रचारक लोग हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू तीनों को एक ही भाषा के रूप समझते आये हैं; अतएव उनको इसमें विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा।

प्रान्तीय भाषा और हिन्दी

श्रीमती सरोजिनी नायडू के विचारः—

दक्षिण में जब से हिन्दी की जड़ जमने लगी, तब से कुछ लोगों के मन में यह शंका उठने लगी कि हिन्दी प्रचार आन्दोलन से प्रान्तीय भाषाओं को क्षति तो नहीं

पहुँचेगी। सभा तथा अन्य नेताओं के विचार इस सम्बन्ध में समय-समय पर प्रकट होते रहे। वे बार-बार घोषित करते रहे कि हिन्दी के प्रचार से प्रान्तीय भाषा का विकास बन्द नहीं होगा और प्रान्तीय भाषा के प्रति उपेक्षा की दृष्टि रखकर सभा हिन्दी-प्रचार नहीं करती। देश के सुप्रसिद्ध नेता श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री. काका कालेलकर, श्री पट्टाभि सीतारामय्या आदि के विचार इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने योग्य हैं:—

"यह बात मैं कई बार दोहरा चुका हूँ कि हिन्दुस्तान की एकता और आज़ादी के लिए एक ज़बान की सख्त जरूरत है। एक ज़माना था, जब यूरप में तालीम की कमी थी, जब वहाँ कोई कौमी जबान नहीं थी, उस वक्त उन्होंने एक लिंग्वा फ्रांका' बनाया। उसके जरिए इंगलैंड, रूस, स्विट्जरलैंड और स्पेन को मिलाया। उस समय यूरोप की किसी कौम ने उसके विरोध में कोई सत्याग्रह नहीं किया, क्योंकि उस समय उन्हें यूरोप की एक सभ्यता बनानी थी। यूरोप को तरक्की की नदी में बहाना था। उस समय किसी ने नहीं कहा कि फ्रैंच को हम 'लिंग्वा फ्रांका' नहीं मानेंगे। इससे हमारी ज़बान को नुकसान होगा। संगीतमय इटली भाषा के किसी विद्वान् ने यह आवाज नहीं उठायी कि इससे हमारी जबान भर जायेगी। बल्कि उन्होंने समझा कि यह एक काम चलाने की जबान है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय कामों की भाषा है। आज अगर इतनी मुख्तलिफ़ ज़बानों के रहते हुए हिन्दुस्तान में एक कौमी ज़बान फैलायी जा रही है तो क्या यह कोई गुनाह है? सेगाँव के साधू ने इसका प्रचार करने के लिए कहा तो कौन सा गुनाह किया? अगर कॉंग्रेस या महात्मा गाँधी तेलुगु, तमिल वगैरह मादरी ज़बानों को मिटाकर कौमी ज़बान बनाने की बात कहते तो मैं विरोध जरूर करती। सिद्धान्त और उसूल पर मैं हजार बार महात्मा गाँधी से भी लड़ने को तैयार हूँ, गोकि मैं बहुत नाचीज़ हूँ। ऐन्टी-हिन्दी (Anti-Hindi) यह तो राजनैतिक आन्दोलन है जो राजगोपालाचारीजी के सिर पर मारने के लिए एक हथियार का काम दे रहा है। जैसा कि पहले मैंने कहा है, ज़बान में कोई जातीय प्रश्न नहीं है। बंगाल के उलेमा अपने सब धार्मिक और मामूली काम बंगला में करते हैं। बंगाल के मज़दूर, विद्यार्थी, फैशनेबुल लेडीज़ आजकल उन बंगला गीतों को गाती हैं जो एक मुसलमान-नज़रुल इस्लाम की कलम से निकले हुए हैं। बंगाल के प्रसिद्ध एडिटर एकराम खाँ बंगला में लिखते हैं। वे बंगला छोड़कर उर्दू में लिखना पसन्द नहीं करेंगे। क्योंकि उन्हें अपने ख्यालात लाखों आदमियों तक पहुँचाने हैं। उसी तरह सिलोन के मुसलमान तमिल बोलते हैं। काश्मीरी ब्राह्मण तेजबहादुर सप्रू की ज़बान उर्दू है। इसलिए ज़बान किसी एक कौम की चीज नहीं है। ये हिन्दुस्तानी का विरोध करने वाले अपनी नाक कटा

रहे हैं। और भाई तुम अपनी ज़बान लेकर अलग हो जाओगे तो किसका बिगड़ेगा? तरक्की की नदी नहीं बहा पाओगे।"❀

श्री काका कालेलकर के विचारः—

श्री काका कालेलकरजी प्रान्तीय भाषाओं के विकास में ही हिन्दी का विकास देखते हैं। आपके विचार इस संबंध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नीचे लिखे उनके विचार पठनीय हैं।

"राष्ट्र-भाषा हिन्दी केवल राष्ट्र-संगठन और राष्ट्रीय ऐक्य का सन्देश सुनाने नहीं आयी है, किन्तु लोक-सेवा, लोक-जागृति, हृदय-शुद्धि और जीवन-समृद्धि का संदेशा सुनाने वह आयी है। प्रान्तीय भाषाओं के विकास में वह अपना विकास देखती है। प्रान्तीय भाषाओं की प्रतिष्ठा बढ़ाकर वह अपना मिशन परिपूर्ण करना चाहती है। प्रान्तीय साहित्यों के संस्कारों के विनिमय से वह परस्पर परिपुष्टि चाहती है। साम्राज्य की भाषा के आक्रमण को हटाने के लिए सब भारतीय भाषाओं का विराट संगठन करने की उनकी मंशा है। यह कार्य हिन्दी अकेले कभी भी नहीं कर सकती। जब तक प्रान्तीय भाषाएँ समर्थ और संगठित नहीं होगी, तब तक हमारी जनता स्वराज्य के लिए समर्थ नहीं बनेगी। अँग्रेज़ी द्वारा प्रान्तीय साहित्य को पोषण अवश्य मिल सकता है। किन्तु अँग्रेज़ी से प्रान्तीय भाषाओं के चैतन्य का ह्रास ही होता है। हरेक प्रान्त के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवहार के लिए प्रान्तीय भाषा का ही व्यवहार होना चाहिए। किन्तु हम देखते हैं कि हमारे देश में और खास करके दक्षिण में प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञान अँग्रेज़ी में लेकर प्रान्तीय भाषाओं को अपमानित किया है। इस अपमान को धो डालने का कार्य राष्ट्र-भाषा द्वारा प्रान्तीय भाषाओं का संगठन करने से ही हो सकता है।

"यह भी यहाँ साफ करना चाहिए कि हम पहले से मानते आये हैं कि जहाँ अंग्रेजी ने अपना स्थान जमाया है, वहाँ हिन्दी की स्थापना करने से काम नहीं चलेगा। अंग्रेजी ने जहाँ-जहाँ प्रान्तीय भाषाओं का स्थान छीन लिया था, वहाँ-वहाँ उसे हटाकर प्रान्तीय भाषाओं को ही पूर्ण रूप से स्थापित करना चाहिए। और केवल अखिल भारतीय सार्वभौम कामों के लिए और अन्तः प्रान्तीय संगठन के लिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी का व्यवहार करना चाहिए।"[1]

❀ दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के आठवें पदवीदान समारोह पर श्रीमती सरोजिनी नायडू के दिये हुए भाषण से।

हिन्दी प्रचार समाचार १९३९ जनवरी-मार्च)

१. 'हिन्दीप्रचार समाचार' जनवरी व मार्च १९३९।

"राष्ट्र-भाषा-प्रचार का आन्दोलन प्रान्तीय भाषाओं के लिए खतरनाक नहीं है, यह बार-बार सिद्ध करना पड़ता है। इसका मुझे जितना दुःख है, उतना आश्चर्य नहीं। भिन्न-भिन्न समय पर संस्कृत, अरबी, फारसी और अंग्रेजी के नीचे प्रान्तीय भाषाएँ दब गयी हैं कि अब उनमें दास्यमनोभाव अंध-भीति-सी दृढ़ हो गयी है और शास्त्र-भाषा और राजभाषा के सामने पराजित होने के कारण स्वकीय राष्ट्र-भाषा का विरोध करके अपनी सामर्थ्य का परिचय कराने की वृथा चेष्टा कर रही है।

प्रान्तीय भाषा के अभिमानियों को मैं इतना ही कहूँगा कि राष्ट्र-भाषा के प्रचारक हम लोग हिन्दी भाषा-भाषी नहीं हैं। महात्मा गांधी तो गुजराती हैं, गुजराती भाषा की उनकी सेवा असाधारण है। पंजाब में और उत्तर भारत में हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले आद्यसेवक स्वामी दयानंद सरस्वती भी गुजराती थे। हिन्दी भाषा में स्वराज्य का आन्दोलन चलानेवाले राष्ट्रसेवक बाबूराव-पराड़करजी जिन्हें स्वामी सत्यदेवजी ने एकदम 'Father of Hindi Journalist' कहा था, वे एक महाराष्ट्री थे। सारे भारत के लिए नागरी लिपि का ही व्यवहार हो ऐसा आन्दोलन चलाने वाले जस्टिस शारदाचरण मित्र बंगाली थे। मैं अनुभव से कहता हूँ कि आपके प्रधान चक्रवर्ती राजगोपालाचारी तमिल भाषा के कट्टर अभिमानी हैं और हिन्दी प्रचार से कहीं प्रान्तीय भाषा को नुकसान नहीं पहुँचे, इसलिए बड़े जागरूक रहते हैं। गुजरात विद्यापीठ में दिया हुआ उनका व्याख्यान मैं भूल नहीं सकता। वहाँ उन्होंने कहा था, हम हिन्दी अवश्य सीखेंगे। किन्तु आपलोगों को हमारी तमिल थोड़ी सीखनी होगी। तमिल लिपि का भी वे बचाव करते हैं तब उनकी स्वभाषा-भक्ति चरम चोटी तक पहुँचती है। उन्हीं से प्रेरणा पाकर मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पाठ्य-क्रम में तमिल, तेलुगु आदि द्रविड़ भाषाओं को स्थान दिलवाया है।"[1]

डा. पट्टाभि के विचार:—

सुप्रसिद्ध नेता स्व० डा० पट्टाभि सीतारामय्याजी ने हिन्दी विरोधी आन्दोलन की जड़ में राजनैतिक चाल ही देखा था। वे चाहते थे कि देश के रचनात्मक कार्यकर्ता को हिन्दी पढ़नी चाहिए और काँग्रेस-कार्यालय, हरिजन-कार्यालय आदि में हिन्दी जाननेवाले कार्यकर्ता हों। इस सम्बन्ध में नीचे लिखे उनके विचार पठनीय हैं।

"मैं आशा करता हूँ कि आगे चलकर प्रान्तीय आफिसों में, चाहे वे काँग्रेस आफिस हों या हरिजन या खादी-संगठन या राष्ट्रीयशिक्षा संगठन, वहाँ ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत पड़ेगी जो हिन्दी जानने वाले हों और उर्दू अक्षरों में भी लिख सकते हों। आखिर मुझे गहरा अफसोस जाहिर करना पड़ता है, उन लोगों के लिए जो हमारे हिन्दुस्तानी-आन्दोलन के खिलाफ़ गलतफ़हमी फैलाने का बीड़ा

---

१. 'हिन्दी प्रचार समाचार' जनवरी व मार्च १९३९।

उठाये हुए हैं। हमें इस आन्दोलन की जड़ का पूरा पता है और हम उसे खूब समझते भी हैं। जो आज हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के खिलाफ़ हैं—समझ-बूझ लेने पर मित्रों द्वारा इसकी तारीफ़ होगी और प्रोत्साहन मिलेगा।"[1]

हिन्दी की तुलना में अंग्रेज़ी :—

अंग्रेज़ी के सम्बन्ध में देश के सैकड़ों नेताओं ने अपने-अपने गंभीर विचार प्रकट किये। राष्ट्रीय नेताओं में कुछ ऐसे लोग थे जो बिना भाषा सम्बन्धी अध्ययन के अंग्रेजी के महत्व पर मुग्ध थे। वे एक ओर से हिन्दी की आवश्यकता पर जोर देते थे और दूसरी ओर से अंग्रेजी का राग अलापते थे। लेकिन श्री. काका कालेलकर, पं० सुन्दरलाल, महात्मा गाँधी जैसे लोग भाषा की समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही अपने विचार प्रकट करते थे। उनके विचारों की तह में हम उनकी उच्चकोटि की राष्ट्रीय भावना को पा सकते हैं। इस सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण विचार कालेलकरजी और गाँधीजी ने प्रकट किये हैं, नीचे उद्धृत उनके भाषणों के अंशों में प्रस्तुत किये जाते हैं।

श्रीकाका कालेलकर के विचार, अपनी भाषा-माता को घर की दासी नहीं बनाएँगे :—

"दक्षिण के चार आचार्यों ने प्राचीन राष्ट्र-भाषा संस्कृत के सहारे दिग्विजय किया, उसी तरह आप लोगों को भी आज की राष्ट्र-भाषा हिन्दी को अपनाकर स्वराज्य-विजय करना चाहिए।

आप ऐसा न समझें कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य से मुझे द्वेष है। हमारे देश के लाखों युवकों ने, देश-सेवकों ने और भद्र लोगों ने तेल जलाकर और अपना खून सुखाकर जिस भाषा को हस्तगत किया उससे हम अवश्य लाभ उठाएँगे। अंग्रेजी भाषा एक बहादुर, पराक्रमी, संस्कारी और व्यवहार चतुर लोगों की भाषा है। उनका हमारा सम्बन्ध भी सौ बरस से अधिक समय का है। सराहनीय अनुपम भाषा-शक्ति से उन्होंने अपनी जन्म-भाषा को संस्कार-संपन्न और विपुलार्थवाही बनाया है। अंग्रेजों की भाषा-शक्ति, देश-भक्ति से और स्वातंत्र्य-प्रीति से कम नहीं है। संस्कार-शिक्षा देने में अंग्रेज़ी भाषा की सामर्थ्य सामान्य नहीं है। हमारे मन में अंग्रेज़ी का द्वेष नहीं है, किन्तु अंग्रेज़ी के प्रति सद्भाव बढ़ाकर हम स्वभाषा का अपमान कैसे करेंगे? जिस उत्कटता से अंग्रेज़ अपनी जन्म-भाषा को चाहते हैं, उसी उत्कटता से हम अपनी जन्म-भाषा और राष्ट्रभाषा को चाहेंगे और उसी लगन से हम अपनी भाषा की सेवा करेंगे। जो शक्ति और समृद्धि हम अंग्रेजी में पाते

---

१. 'हिन्दी प्रचार समाचार' जनवरी-मार्च १९३९।

हैं, वैसी ही शक्ति और समृद्धि अगर हम अपनी भाषाओं को प्रदान नहीं करेंगे तो हमें लज्जा से मर जाना होगा। अंग्रेज़ी के ऊपर मोहित होकर हम अपनी भाषा-माता को तिरस्कृत नहीं करेंगे, घर की दासी नहीं बनाएँगे।"[1]

गांधीजी के विचार :—

महात्मा गाँधीजी ने भारत की राष्ट्र-भाषा पर विचार प्रकट करते हुए समय-समय पर विभिन्न सम्मेलनों तथा 'यंग इंडिया' के अंकों में अंग्रेज़ी के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। अंग्रेज़ी के समर्थकों की दलीलों का उन्होंने किस तरह खंडन किया है, यह बात उक्त विचारों से पाठक समझ सकते हैं। उनके कुछ भाषणों का एतद्विषयक अंश पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिया जाता है।

"कुछ देशाभिमानी कहते हैं कि यह सवाल ही अज्ञान का सूचक है कि क्या अंग्रेज़ी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए! अंग्रेज़ी राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। हमारे माननीय वाइसराय महोदय ने जो भाषण किया है, उसमें तो उन्होंने सिर्फ़ आशा ही प्रकट की है। उनका उत्साह उन्हें ऊपर जतायी हद तक नहीं ले जाता। वाइसराय साहब मानते हैं कि जिस देश में अंग्रेज़ी भाषा का दिन-ब-दिन फैलाव होगा, वह हमारे घरों में प्रवेश करेगी और अन्त में राष्ट्रीय भाषा की उच्च पदवी प्राप्त करेगी। इस वक्त ऊपर से सोचने पर इस विचार को समर्थन मिलता है। अपने पढ़े-लिखे समाज की हालत को देखते हुए ऐसा आभास होता है कि अंग्रेज़ी के अभाव में हमारा कारबार रुक जाएगा। फिर भी अगर गहरे पैठकर सोचेंगे तो पता चलेगा कि अंग्रेज़ी राष्ट्रीय भाषा नहीं बन सकती, न बननी चाहिए।"

"तो अब हम यह सोचें कि राष्ट्रीय भाषा के क्या लक्षण होने चाहिए।

१. अमलदारी के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
२. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।
३. यह ज़रूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।
४. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
५. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर ज़ोर नहीं देना चाहिए।

अंग्रेज़ी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है।

पहला लक्षण आखिर में देना चाहिए था। लेकिन मैंने उसे पहला स्थान दिया है। क्योंकि ऐसा आभास होता है मानों अंग्रेज़ी भाषा में यह लक्षण है। ज़्यादा विचार

---

१. 'हिन्दी प्रचार समाचार' जनवरी–मार्च १९३९।

करने पर हम देखेंगे कि आज भी अमलदारी के लिए यह भाषा सरल नहीं है। यहाँ के शासन-विधान की कल्पना यह है कि अंग्रेज लोग कम होते जाएँगे और सो भी इस हद तक कि आखिर एक वाइसराय और अंगुलियों पर गिने जानेवाले कुछ अंग्रेज़ अमलदार ही यहाँ रहेंगे। बड़ी तादाद आज भी हिन्दुस्तानियों की ही है और वह बढ़ती ही जाएगी। इन लोगों के लिए हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा के मुकाबले अंग्रेजी मुश्किल है, इस बात को तो सभी कोई कबूल करेंगे।

दूसरे लक्षण पर विचार करने से हमें पता चलता है कि जबतक अंग्रेजी भाषा को हमारा जन-समाज बोलने न लग जाय, जबतक यह मुमकिन न हो, तबतक हमारा धार्मिक व्यवहार अंग्रेज़ी में चल ही नहीं सकता। समाज में अंग्रेज़ी का इस हद तक फैल जाना नामुमकिन मालूम होता है।

तीसरा लक्षण अंग्रेज़ी में हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह भारत के बहुजन समाज की भाषा नहीं।

चौथा लक्षण भी अंग्रेज़ी में नहीं, क्योंकि सारे राष्ट्र के लिए वह उतनी आसान नहीं।

पाँचवें लक्षण का विस्तार करने से हमें पता चलता है कि आज अंग्रेज़ी भाषा को जो सत्ता प्राप्त है, वह क्षणिक है। चिरस्थायी स्थिति तो यह है कि हिन्दुस्तान में जनता के राष्ट्रीय कामों में अंग्रेज़ी भाषा की ज़रूरत कम ही रहेगी। हाँ, अंग्रेज़ी साम्राज्य के राज्य-व्यवहार की (डिप्लोमसी) भाषा होगी। उस व्यवहार के लिए अंग्रेज़ी की ज़रूरत होगी। हम कहीं भी अंग्रेज़ी भाषा का द्वेष नहीं करते। हमारा विचार यही है कि हम उसे उसकी मर्यादा से बाहर बढ़ने नहीं देना चाहते। साम्राज्य की भाषा तो अंग्रेज़ी ही रहेगी और इस कारण हम अपने मालवीयजी, शास्त्रीजी, बैनरजी वगैरह को उसे सीखने के लिए बाध्य करें। और यह विश्वास रखेंगे कि वे दूसरे देशों में हिन्दुस्तान की कीर्ति फैलायेंगे। किन्तु राष्ट्र की भाषा अंग्रेज़ी नहीं हो सकती। अंग्रेज़ी को राष्ट्र-भाषा बनाना देश में 'ऐस्पेरेण्डो' को दाखिल करना है। अंग्रेज़ी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है। 'ऐस्पेरेण्डो' का प्रयास निरे अज्ञान का सूचक होगा।''[1]

(२) अँग्रेजों का अनुकरणीय आदर्शः—

"विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातंत्र्य चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता; क्योंकि उसमें हम योग्य नहीं हैं। प्रसन्नता की बात है कि इन्दौर में सब कार्य हिन्दी में होता है। पर क्षमा कीजिएगा, प्रधानमंत्री साहब का जो पत्र आया है,

---

१. भड़ौंच में १९१७ में हुए दूसरी गुजरात शिक्षा-परिषद के भाषण से उद्धृत। खरीकेल बणी (गुजराती) (ले० म० गाँधी)

वह अँग्रेज़ी में है। इन्दौर की प्रजा यह बात नहीं जानती होगी; पर मैं उसे बतलाता हूँ कि यहाँ अदालतों में प्रजा की अर्जियाँ हिन्दी में ली जाती हैं, पर न्यायाधीशों के फैसले और वकील-बैरिस्टरों की बहस अँग्रेज़ी में होती है। मैं पूछता हूँ कि इन्दौर में ऐसा क्यों होता है ? हाँ यह ठीक है, मैं मानता हूँ कि अँग्रेज़ी राज्य में यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता, पर देशी राज्यों में तो सफल होना चाहिए। शिक्षित-वर्ग जैसा कि माननीय पंडितजी (मालवीयजी) ने अपने पत्र में दिखाया है, अँग्रेज़ी के मोह में फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृ-भाषा से उसे असंतोष हो गया है। पहली माता से जो दूध मिलता है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है और दूसरी माता से शुद्ध दूध मिलता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले; हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अन्धा है, वह देख नहीं सकता; और गुलाम नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अँग्रेज़ी के मोह में फँसे हैं, हमारी प्रजा अज्ञान में डूबी है। सम्मेलन को इस ओर विशेष रूप से ख्याल करना चाहिए। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, काँग्रेस में, प्रान्तीय सभाओं में और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अँग्रेज़ी का एक भी शब्द सुनायी न पड़े। हम अँग्रेज़ी का व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अँग्रेज़ी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अँग्रेज़ सर्वव्यापक न रहेंगे तो अँग्रेज़ी भी सर्वव्यापक न रहेगी। अब हमें अपनी मातृ-भाषा को और नष्ट करके उसका खून नहीं करना चाहिए। जैसे अँग्रेज़ अपनी मादरी ज़बान अँग्रेज़ी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यापार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा बनाने का गौरव प्रदान करें।"[१]

(३) कांग्रेस में अंग्रेजी :—

"सन् १९१५ से मैं, एक के सिवा, काँग्रेस की सभी बैठकों में शामिल हुआ हूँ। उसके कारबार को अंग्रेज़ी के बदले हिन्दुस्तानी में चलाने की उपयोगिता के विचार से मैंने उनका खास तौर से अभ्यास किया है। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों और हज़ारों प्रेक्षकों से इसकी चर्चा की है। लोकमान्य तिलक और श्रीमती बेसेंट सहित सभी लोकसेवकों की अपेक्षा मैं शायद सारे देश में ज़्यादा घूमा-फिरा हूँ, और पढ़े-लिखे व अनपढ़ों को मिलाकर सबसे ज़्यादा लोगों से मिला हूँ। और मैं सोच-समझकर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि राष्ट्र का कारबार चलाने के लिए या विचार विनिमय के लिए हिन्दुस्तानी को छोड़कर दूसरी कोई भाषा शायद ही राष्ट्रीय माध्यम बन सके (हिंदुस्तानी यानी हिन्दी और उर्दू के मिलाप से पैदा होनेवाली भाषा), साथ ही व्यापक अनुभव के

---

(१) इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के सभापति-पद से दिये गये भाषण से उद्धृत—

आधार पर मेरी यह पक्की राय बनी है कि पिछले दो सालों को छोड़कर बाकी सब सालों में कॉंग्रेस का करीब-करीब सारा ही काम अंग्रेजी में चलाने से राष्ट्र को बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। यदि श्रोता श्रीमती बेसेंट को सुनना चाहते थे, वे खूब आये थे, तो इसलिए नहीं ऊबे थे कि उन्हें उनकी बात सुननी ही नहीं थी, या कि उनके दिल में श्रीमती बेसेंट के लिए अनादर था; बल्कि वजह उसकी यह थी कि भाषण के बहुत कीमती और दिलचस्प होते हुए भी वे उसे समझ नहीं पाते थे। जैसे-जैसे राष्ट्रीय भावना जागेगी, राजनीतिक ज्ञान और शिक्षा की भूख खुलेगी और खुलनी भी चाहिए, वैसे-वैसे अंग्रेज़ी में बोलनेवालों के लिए अपने सर्वसाधारण श्रोताओं का ध्यान-पात्र बनना अधिकाधिक कठिन होता जाएगा, फिर भले ही वक्ता कितना ही शक्तिशाली और लोकप्रिय क्यों न हो।

अंग्रेज़ी माध्यम नहीं बन सकती—

"स्व० न्यायमूर्ति कृष्णस्वामी ने अपनी अचूक और सहज बुद्धि से इस बात को ताड़ लिया और मंजूर किया था कि देश के अलग-अलग हिस्सों में आपसी व्यवहार के लिए हिन्दुस्तानी ही एक माध्यम बन सकती है। यह कभी नहीं हो सकता कि हज़ारों लोग अंग्रेज़ी भाषा को अपना माध्यम बनाएँ और अगर यह मुमकिन हो, तो भी चाहने लायक तो कतई नहीं। इसकी सीधी-सादी वजह यह है कि अंग्रेज़ी के ज़रिए मिलनेवाला उच्च और पारिभाषिक ज्ञान आमलोगों तक पहुँच नहीं सकता। यह तो तभी हो सकता है जब इस ज्ञान का प्रसार ऊपर के दरजेवालों में भी किसी देशी भाषा के द्वारा हो। मसलन्, सर जगदीशचन्द्र वसु का बंगला से गुजराती में उल्था करना, हक्सली के अंग्रेज़ी ग्रन्थों को गुजराती में उतारने की अपेक्षा आसान है।"[1]

(४) अंग्रेज़ी की इज्ज़त—

"राजा राममोहन राय ने यह भविष्यवाणी की थी कि एक दिन हिन्दुस्तान अंग्रेज़ी बोलनेवाला देश बन जाएगा, आज इस भविष्यवाणी के ग्रह अच्छे नज़र नहीं आते। हमारे कुछ जाने-माने लोग राष्ट्रभाषा के नाते अंग्रेज़ी की हिमायत करने का उतावला निर्णय कर लेते हैं। आजकल अदालती भाषा के रूप में अंग्रेज़ी की जो इज़्ज़त है, उससे वे ज़रूरत से ज़्यादा प्रभावित हो जाते हैं। लेकिन वे यह देखना भूल जाते हैं कि अंग्रेज़ी की आज की इज़्ज़त न तो हमारे सम्मान को बढ़ानेवाली है, और न यह लोकशाही के सच्चे जोश को पैदा करने में सहायक ही होती है। कुछ सौ अमलदारों या हाकिमों की सहूलियत के लिए करोड़ों लोगों को एक परदेशी भाषा सीखनी पड़ती है। यह बेहूदेपन की हद है। अकसर हमारे पिछले इतिहास से

१. 'यंग इण्डिया—२१-१-१९२०।

उदाहरण लेकर यह साबित किया जाता है कि देश की केन्द्रीय सरकार को मज़बूत बनाने के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की ज़रूरत है। लोगों के लिए सर्वमान्य माध्यम की आवश्यकता के बारे में विवाद की कोई गुंजाइश नहीं। लेकिन अंग्रेज़ी को वह जगह नहीं दी जा सकती।"

अँग्रेज़ी विफल हुई—

"अँग्रेज़ी के हिमायतियों को अपील करनेवाली एक दूसरी बात साम्राज्य में हिन्दुस्तान का स्थान है। सादे शब्दों में इस दलील का सार यह होता है कि जिस साम्राज्य में बारह करोड़ से ज्यादा लोग नहीं हैं, उसमें रहनेवाले दूसरे लोगों के लिए हिन्दुस्तान के तीस करोड़ लोग अपने सर्वमान्य माध्यम के रूप में अँग्रेज़ी को अपनाएँ।

टूटी-फूटी अँग्रेज़ी का दावाः—

"इस प्रश्न का अध्ययन करनेवाले हर एक व्यक्ति के लिए ध्यान रखने लायक पहली बात यह है कि १५ बरस के अँग्रेज़ी राज के बाद भी अँग्रेज़ी भाषा हिन्दुस्तानी की राष्ट्रभाषा का स्थान ग्रहण करने में विफल हुई है। हाँ, इसमें शक नहीं कि एक तरह की टूटी-फूटी अँग्रेज़ी हमारे शहरों में अपना कुछ स्थान बना पायी है। लेकिन इस हकीकत से तो वे लोग ही चौंधिया सकते हैं जो बंबई—कलकत्ते जैसे शहरों में बैठकर हमारे राष्ट्रीय प्रश्नों का अध्ययन करने में लगे हैं। आखिर ऐसे लोग कितने हैं? हिन्दुस्तान की कुल आबादी के २.२ प्रतिशत ही न?

"अँग्रेज़ी के हिमायती एक दूसरी बात यह भी भूल जाते हैं कि हमारी बहुत सी देशी भाषाएँ एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं, और इसलिए एक मद्रास प्रान्त को छोड़ बाकी सब प्रान्तों के लिए राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दी अनुकूल है। हिन्दी के इस लाभ को और हमारी हाल की राष्ट्रीय जागृति को देखते हुए हम अँग्रेज़ी को अपनी राष्ट्रभाषा के रूप में कैसे स्वीकार कर सकते हैं?[1]

(५) कानपुर काँग्रेस (सन् १९२५) में नीचे लिखा प्रस्ताव पास हुआ थाः—

"यह काँग्रेस तय करती है कि (विधान की ३३ वीं धारा को नीचे लिखे अनुसार सुधारा जाय) काँग्रेस का, काँग्रेस महासमिति का काम काज-आम तौर पर हिन्दुस्तानी में चलाया जाएगा। जो वक्ता हिन्दुस्तानी में बोल नहीं सकते, उनके लिए या जब-जब ज़रूरत हो, तब अँग्रेज़ी का या किसी प्रान्तीय भाषा का इस्तेमाल किया जा सकेगा।"

इस प्रस्ताव पर 'यंग इंडिया' और नवजीवन में गाँधीजी ने यों लिखा था।

---

१. 'यंग इंडिया'—२१—५—१९२०
'देशी भाषाओं का पक्ष' लेख से।

अंग्रेज़ी का अत्याचार :—

"हिन्दुस्तानी के उपयोग के बारे में जो प्रस्ताव पास हुआ है, वह लोकमत को बहुत आगे ले जानेवाला है। हमें अब तक अपना काम-काज ज़्यादातर अंग्रेज़ी में करना पड़ता है। यह निस्सन्देह प्रतिनिधियों और कॉंग्रेस की महासमिति के ज़्यादातर सदस्यों पर होनेवाला एक अत्याचार ही है। इस बारे में किसी न किसी दिन हमें आखिरी फैसला करना ही होगा। जब ऐसा होगा तब कुछ वक्त के लिए थोड़ी दिक्कतें पैदा होंगी, थोड़ा असंतोष भी रहेगा।"[1]

(६) सभाओं में श्रोताओं पर अंग्रेज़ी का प्रहार:—

"मालूम होता है कि सभाओं के प्रबन्धकर्ताओं को निरंतर इस बात की याद दिलाते रहने की ज़रूरत है कि जनता से बातें करने की भाषा अंग्रेज़ी नहीं, बल्कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी है। मैंने देखा है कि सन् १९२१ के उल्टे, इस बार इस दौरे में मुझे जो अभिनन्दन-पत्र मिले हैं, वे अधिकांश अंग्रेज़ी में ही हैं। यह स्पष्ट विरोध 'झरिया' में दिखाई पड़ने लगा, जहाँ कोयले की खानों के मज़दूरों की ओर से मुझे अंग्रेजी में मान-पत्र देने की कोशिश की गयी। और वह भी एक ऐसी सभा में, जिसमें हज़ारों आदमी थे, मगर उनमें शायद ५० आदमी ही अंग्रेजी समझ सकते होंगे। अगर वह मान-पत्र हिन्दी में होता, तो बहुत अधिक लोग उसे आसानी से समझ सकते। उस संघ के कार्यकर्ता बंगाली थे। अगर वह मान-पत्र मेरी खातिर अंग्रेज़ी में लिखा गया था तो यह बिलकुल गैर ज़रूरी था। मान-पत्र बंगला में लिखा जा सकता था; और उसका हिन्दी या अंग्रेज़ी अनुवाद तैयार करा लिया जा सकता था। मगर उन श्रोताओं पर अंग्रेज़ी का प्रहार करना उनका अपमान करना था।

अंग्रेज़ी के रोड़े:—

"मैंने द्राविड़ देश के लिए हमेशा छूट दी है और जब कभी उन्होंने चाहा है, अपना भाषण अंग्रेज़ी में ही किया है। मगर मैं यह सोचता हूँ कि अब वह समय आ गया है, जब उन्हें बड़ी सार्वजनिक सभाओं के लिए अंग्रेज़ी का आसरा छोड़ देना चाहिए। सच पूछें तो हिन्दी सीखने से इनकार करके हमारे अंग्रेज़ी नेता ही जनसमूहों में हमारी शीघ्र प्रगति के रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं।[2]"

---

१. 'यंग इण्डिया'।

२. हिन्दी नवजीवन—२०—१—१९२७।

(७) अनुचित प्रेम :—

(छत्रपुर (ज़िला, गंजाम) में दिये गये भाषण से)

"मुझसे यह भी कहा गया था कि आज की सभा में मैं अंग्रेज़ी में ही बोलूँ; किन्तु इसे तो मैं मातृभूमि की दूसरी भाषाओं से द्वेष और अंग्रेज़ी से अनुचित प्रेम का चिन्ह मानता हूँ। मैं अंग्रेज़ी से नफ़रत नहीं करता, पर मैं हिन्दी से अधिक प्रेम करता हूँ।"[1]

(८) हिन्दुस्तानी बोलने की छूट :—

(कराची के व्यापार-उद्योग मंडलों के संघ के वार्षिक उत्सव (सन् १९३१) के अवसर पर दिये गये भाषण से)

"मेरे अंग्रेज़ मित्र मुझे माफ़ करेंगे यदि मैं उनके सामने आपको अपनी बात राष्ट्र-भाषा में ही सुनाऊँ। इस मौके पर मुझे सन् १९१८ की युद्ध-परिषद् याद आती है, जो इसी जगह हुई थी। जब बहुत ज़्यादा चर्चा के बाद मैंने युद्ध-परिषद् में भाग लेना मंजूर किया तो मैंने उनसे प्रार्थना की था कि परिषद् में मुझे हिन्दी या हिन्दुस्तानी में बोलने की छूट दी जाय। मैं जानता हूँ कि इस तरह की प्रार्थना करने की कोई ज़रूरत नहीं थी, फिर भी विनय की दृष्टि से यह आवश्यक था, अन्यथा वाइसराय को आघात पहुँचता। तुरंत ही उन्होंने मेरी प्रार्थना मंजूर की और तब से इस संबन्ध में मेरी हिम्मत अधिक बढ़ी।

बहादुर डच लोगों का आदर्श :—

हिन्दुस्तान को छोड़कर आप दूसरे किसी भी आज़ाद या गुलाम देश में चले जाइए यहाँ जैसी स्थिति तो कहीं भी आपको दिखायी न पड़ेगी। दक्षिण आफ्रिका जैसे नन्हें देश में अंग्रेज़ी और डच भाषा के दुरभिमान में झगड़ा शुरू हुआ और आखिर नतीजा यह हुआ कि अंग्रेज़ी और डच लोगों में समझौता हुआ और दोनों भाषाओं को बराबरी का स्थान दिया गया। बहादुर डच लोग अपनी मातृभाषा छोड़ने को तैयार नहीं थे।"

(९) परदेशी जुए की मोहिनी :—

"कुछ लोग जो अपने मन से सर्वसाधारण का ख्याल ही भुला देते हैं अंग्रेज़ी को हिन्दी की चलनेवाली ही नहीं, बल्कि एकमात्र शक्य राष्ट्रभाषा मानते हैं। परदेशी जुए की मोहिनी न होती तो इस बात की कोई कल्पना भी नहीं करता। दक्षिण भारत की सर्वसाधारण जनता के लिए, जिसे राष्ट्रीय कार्य में ज़्यादा से ज़्यादा हाथ बँटाना होगा।

---

१. हिन्दी नवजीवन–१५–१२–१९२७।

कौनसी भाषा सीखना आसान है— जिस भाषा में अपनी भाषाओं के बहुतेरे शब्द एक-से हैं और जो उन्हें एकदम लगभग सारे उत्तरीय हिन्दुस्तान के संपर्क में लाती है, वह हिन्दी या मुट्ठी भर लोगों द्वारा बोली जानेवाली सब तरह से विदेशी अंग्रेजी ? इस पसंद का सच्चा आधार मनुष्य के स्वराज्य विषयक कल्पना पर निर्भर है। अगर स्वराज्य अंग्रेज़ी बोलनेवाले भारतीयों का, उन्हीं के लिए होनेवाला हो तो निस्सन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्र-भाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखोंमरनेवालों, करोड़ों निरक्षरों, निरक्षर बहनों और दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिए होनेवाला हो तो हिन्दी ही एकमात्र भाषा हो सकती है।"[1]

(१०) अंग्रेज़ी का महत्व :—

ता० २०–४–१९३५ को इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २४ वाँ अधिवेशन हुआ, उसमें सभापति के पद से दिये गये भाषण से उद्धृत :—

"काका साहब ने कुछ लोगों में दूसरी गलतफ़हमी यह देखी कि वे समझते हैं कि हम हिन्दी को अंग्रेज़ी भाषा का स्थान देना चाहते हैं। कुछ तो यहाँ तक समझते हैं कि अंग्रेज़ी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है और बन भी गयी है।

यदि हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले तो कम से कम मुझे तो अच्छा ही लगेगा। क्योंकि अंग्रेज़ी के महत्व को हम अच्छी तरह जानते हैं। आधुनिक ज्ञान की प्राप्ति, आधुनिक साहित्य के अध्ययन, सारे जगत के परिचय, अर्थ-प्राप्ति, राज्याधिकारियों के साथ संपर्क रखने और ऐसे ही अन्य कार्यों के लिए अंग्रेज़ी ज्ञान की आवश्यकता है। इच्छा न रहते हुए भी हमको अंग्रेजी पढ़नी होगी। यही हो भी रहा है। अंग्रेजी अन्तःराष्ट्रीय भाषा है।

आगे बढ़ने देना अनुचित है :—

लेकिन अंग्रेज़ी राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती। आज उसका साम्राज्य-सा जरूर दिखाई देता है। इससे बचने के लिए काफ़ी प्रयत्न करते हुए भी हमारे राष्ट्रीय कार्यों में अंग्रेज़ी ने बहुत स्थान ले रखा है। लेकिन इससे हमें इस भ्रम में कभी न पड़ना चाहिए कि अंग्रेज़ी राष्ट्र-भाषा बन रही है। इसकी परीक्षा प्रत्येक प्रान्त में हम आसानी से कर सकते हैं। बंगाल अथवा दक्षिण भारत को ही लीजिए, जहाँ अंग्रेज़ी का प्रभाव सबसे अधिक है। यदि वहाँ जनता की मारफत हम कुछ भी काम करना चाहते हैं तो वह हिन्दी द्वारा आज भले ही न कर सकें, पर अंग्रेज़ी द्वारा तो कर ही नहीं सकते। हिन्दी के दो-चार शब्दों से हम अपना भाव कुछ तो प्रकट कर ही देंगे। पर अंग्रेज़ी से तो इतना भी नहीं कर सकते। हाँ, यह अवश्य माना जा सकता है कि अब तक हमारे यहाँ एक भी राष्ट्रभाषा नहीं बन पायी है।

---

१. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी म. गाँधी—पृ० ३५

अंग्रेजी राजभाषा है। ऐसा होना स्वाभाविक है। अंग्रेजी का इससे आगे बढ़ना मैं असंभव समझता हूँ। चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय। अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता। हिन्दू-मुसलमान दोनों को मिलाकर करीब २२ करोड़ मनुष्यों की भाषा थोड़े-बहुत हेर-फेर से हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही है। इसलिए उचित और संभव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी और अन्तःराष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो। हिन्दी बोलनेवालों की संख्या करोड़ों की रहेगी, किन्तु अंग्रेज़ी बोलनेवालों की संख्या कुछ लाख से आगे कभी नहीं बढ़ सकेगी। इसका प्रयत्न भी करना जनता के साथ अन्याय करना होगा।

(११) अंग्रेजी वाहन नहीं :—

अखिल भारतीय परिषद् की पहली बैठक जो नागपुर में हुई थी, उसके सभापति-पद से दिये गये भाषण से उद्धृत—

"अंग्रेज़ी भाषा सब प्रान्तों के लिए वाहन या माध्यम नहीं हो सकती। यदि हम सचमुच ही हिन्दुस्तान के साहित्य की वृद्धि चाहते हैं और भिन्न-भिन्न भाषाओं में जो रत्न छिपे पड़े हैं, उनका प्रचार भारतवर्ष के करोड़ों मनुष्यों में करना चाहते हैं तो यह सब हिन्दुस्तानी की मारफ़त ही कर सकते हैं।"

(१२) अंग्रेजी जीविका का अचूक साधन नहीं—

बंगलोर में हिन्दी उपाधि-दान-समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण से—

"कर्नाटकवाले सिंध या संयुक्त प्रान्तवालों के साथ किस तरह अपना संबन्ध कायम कर सकते या उनकी बातें सुन और समझ सकते हैं। हमारे कुछ लोग मानते थे और शायद अब भी मानते होंगे कि अंग्रेज़ी ऐसे माध्यम का काम दे सकती है। अगर यह सवाल हमारे कुछ हज़ार पढ़े-लिखे लोगों का ही होता तो ज़रूर ऐसा हो सकता था। लेकिन मुझे विश्वास है कि इससे हम में से किसी को सन्तोष नहीं होगा। हम और आप चाहते हैं कि करोड़ों लोग अन्तर प्रान्तीय सम्बन्ध स्थापित करें, ऐसा संबन्ध अंग्रेज़ी द्वारा स्थापित हो भी सके तो भी स्पष्ट है कि अभी कई पीढ़ियों तक वे सब अंग्रेज़ी ही सीखें और अंग्रेज़ी जीविका का अचूक और निश्चित साधन तो हरगिज नहीं।"

"मैं आपको समझा चुका हूँ कि अंग्रेज़ी हमारी राष्ट्र-भाषा नहीं बन सकती। अंग्रेज़ी से मुझे नफ़रत नहीं। थोड़े पांडित्य के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय संबन्धों के लिए और पश्चिमी विज्ञान के लिए उसकी ज़रूरत है। लेकिन जब उसे वह स्थान दिया जाता है, जिसके योग्य वह है ही नहीं तो मुझे दुख होता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा प्रयत्न विफल ही हो सकता है। अपनी-अपनी जगह ही सब शोभा देते हैं।"[१]

(१३) काँग्रेस में अंग्रेजी का बहिष्कारः—

"हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो अधिवेशन मद्रास में हुआ था उसमें काँग्रेस को अपना सारा काम हिन्दुस्तानी में करना चाहिए" इस आशय का एक प्रस्ताव पास हुआ था, उसके संबन्ध में गांधीजी से अपने विचार प्रकट किये।

इस प्रस्ताव में काँग्रेस से प्रार्थना की गई है कि वह अन्तरप्रान्तीय काम-काज की भाषा के रूप में अंग्रेजी का व्यवहार छोड़ दे। उसमें कहा गया है कि अंग्रेजी को प्रान्तीय भाषाओं का या हिन्दी का स्थान नहीं देना चाहिये। अगर अंग्रेजी की महत्ता को लेकर यहाँ के लोगों की भाषाओं को निकाल न दिया होता तो प्रान्तीय भाषाएँ आज आश्चर्यजनक रूप में समृद्ध होतीं। अगर इंगलैंड फ्रेंच भाषा को अपने राष्ट्रीय काम-काज की भाषा मान लेता तो आज हमें अंग्रेजी का साहित्य इतना समृद्ध न मिलता। नार्मन विजय के बाद वहाँ फ्रेंच भाषा का ही ज़ोर था, लेकिन उसके बाद लोक-प्रवाह 'विशुद्ध अंग्रेजी' के पक्ष में हो गया। अंग्रेजी साहित्य को आज हम जिस महान् रूप में देखते हैं, वह उसी का फल है।

रूस का आदर्शः—

"विश्वविद्यालयों के अध्यापक अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोल सकते हैं। लेकिन अपनी खुद की मातृभाषा में अपने विचारों को प्रकट नहीं कर सकते। सर चन्द्र-शेखर रमण की सारी खोजें अंग्रेजी ही में हैं। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते, उनके लिए वे मुहरबन्द पुस्तक की तरह है। मगर रूस को देखिए, रूसवालों ने राज्य-क्रान्ति से भी पहले यह निश्चय कर लिया था कि वे अपनी पाठ्य-पुस्तकें (वैज्ञानिक भी) रूसी में लिखवाएँगे। दर असल, इसी से लेनिन के लिए राज्य-क्रान्ति का रास्ता तैयार हुआ। जब तक काँग्रेस यह निश्चय न कर ले कि उसका सारा काम-काज हिन्दी में और उसकी प्रान्तीय संस्थाओं का प्रान्तीय भाषाओं में ही होगा, तब तक वास्तविक रूप में हम जन-संपर्क स्थापित नहीं कर सकते।"[२]

(१४) काँग्रेस का प्रस्ताव :—

काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने गाँधीजी के विचार को मानकर १९३८ में अपनी नीति स्पष्ट करनेवाला प्रस्ताव पास किया था। वह यों है—

---

१. हरिजन सेवक—३-४-३७

२. हरिजन सेवक—१०-४-३७।

"धारा १९ (क)—अखिल भारतीय कॉंग्रेस समिति का काम-काज साधारण रीति से हिन्दुस्तानी में हुआ करेगा। वक्ता यदि हिन्दुस्तानी में न बोल सकें तो, अथवा अध्यक्ष इजाज़त दें तब, अंग्रेज़ी भाषा का या किसी प्रान्तीय भाषा का उपयोग किया जा सकेगा। (ख) प्रान्तीय समिति का काम-काज साधारणतया प्रान्त की भाषा में हुआ करेगा। हिन्दुस्तानी भाषा का उपयोग किया जा सकेगा।"

"कॉंग्रेस की नीति के अनुसार हिन्दुस्तानी वह भाषा है जिसे उत्तर भारत के लोग उपयोग में लाते हैं और जो देवनागरी या उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाती है।"

"दर असल कॉंग्रेस की यह नीति चली आ रही है कि तमाम सभाओं और कॉंग्रेस कमिटियों के काम-काज में हिन्दुस्तानी का उपयोग करने का आग्रह रखा जाय। कार्य-समिति को आशा है कि इस वर्ष के अन्त तक कॉंग्रेसवादी राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी में बोलने का अभ्यास कर लेंगे; जिससे उसके बाद कॉंग्रेस की सभाओं में या कॉंग्रेस कमिटियों के दफ्तरों में अन्तःप्रान्तीय व्यवहार के लिए अंग्रेज़ी का इस्तेमाल करने की ज़रूरत न रहे। अध्यक्ष महोदय, जब ज़रूरी समझेंगे अंग्रेज़ी का उपयोग करने की इजाज़त दे सकेंगे।"

(१५) अंग्रेज़ी सभ्यता की गुलामी :—

और भी गलतफ़हमियाँ" शीर्षक लेख में गाँधीजी ने यों लिखा था—

"आप कहते हैं कि हिन्दी प्रान्तीय भाषाओं के स्थान पर नहीं, बल्कि उनके साथ-साथ सीखी जाय। पर ऐसा हो नहीं रहा है। तमिलनाडु के अधिकांश शिक्षित लोग तमिल के बजाय अंग्रेजी में सोचते हैं और महसूस भी करते हैं। वे तमिल की पूरी उपेक्षा करते हैं। वे अंग्रेज़ी सभ्यता के किस हद तक गुलाम हो चले हैं, यह हम इसी से समझ सकते हैं कि सार्वजनिक सभाओं और दूसरी जगहों में वे गर्व के साथ उच्च-स्वर से कहते हैं कि वे तमिल में न तो बोल सकते हैं और न लिख सकते हैं, पर अंग्रेजी में वे ये दोनों काम धड़ल्ले से कर सकते हैं। उनमें से कुछ लोग हिन्दी का अध्ययन भी तमिल की अपेक्षा अंग्रेज़ी की मदद से अधिक करने में लगे हैं।"

प्रकरण ८

हिन्दी-हिन्दुस्तानीवाद-विवाद

हिन्दी-हिन्दुस्तानी और उर्दू इन तीनों नामों को लेकर राष्ट्र-भाषा के संबन्ध में बहुत दिनों तक वाद-विवाद होता रहा। महात्मा गाँधी हिन्दुस्तानी नाम से राष्ट्र-भाषा का प्रचार करने का उपदेश देते थे। उत्तर के कुछ हिन्दी के पक्षपाती 'हिन्दी' को 'हिन्दुस्तानी' कहना पसन्द नहीं करते थे। कुछ लोग उर्दू को हिन्दुस्तानी मानते थे। इन वाद-विवादों से दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों में भी गलतफ़हमियाँ फैली थीं। उनके बीच में भी सभा-सम्मेलनों में इस नाम-परिवर्तन की समस्या को लेकर काफ़ी चर्चा हुई थी। 'हिन्दी प्रचार सभा' को 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा', 'हिन्दी रीडर' को 'हिन्दुस्तानी रीडर', 'हिन्दी प्रचारक को' 'हिन्दुस्तानी प्रचारक' तथा 'हिन्दी प्रचारक मासिक-पत्र' को 'हिन्दुस्तानी प्रचारक' नाम रखने के पक्ष में ही सभा के संचालकों तथा समर्थकों का एक प्रबल दल और उत्तर के हिन्दी साहित्यकारों, हिन्दी संस्थाओं के संचालकों और हिन्दी के हिमायती नेताओं के पक्ष में दक्षिण के कई प्रचारकों का दूसरा दल, दोनों में खूब गरमागरम चर्चा होती रही। दोनों पक्षों के लोगों की दलीलें समाचार-पत्रों में, पुस्तक रूप में तथा राजनीतिक भाषण-मंचों पर स्थान पाती रहीं।

यह सर्वविदित है कि महात्मा गाँधी दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के जन्मदाता हैं। जब उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानकर दक्षिण में उसके प्रचार की ज़रूरत महसूस की और उसके प्रचार की आयोजना बनायी, तब राष्ट्र-भाषा हिन्दी की व्यापकता और उसके रूप, शैली आदि पर भी अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने गंभीरता पूर्वक विचार किया। उनकी राय में राष्ट्र-भाषा वही है जो हिन्दू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं। हिन्दी और उर्दू में भी वे फ़र्क नहीं मानते थे। हिन्दी की सर्वव्यापकता की दृष्टि से हिन्दू-मुस्लिम एकता के ख्याल से उन्होंने राष्ट्र-भाषा को हिन्दी या उर्दू न कहकर हिन्दुस्तानी कहा और अपनी समझौते की नीति का भी स्पष्टीकरण किया। लेकिन उनकी दलीलों को हिन्दी भाषा के दूसरे साहित्यकारों तथा विद्वानों ने पसन्द नहीं किया। उन्होंने अपनी ज़बर्दस्त दलीलों के बल पर यह साबित करने की चेष्टा की कि हिन्दी और उर्दू अलग-अलग भाषायें हैं और 'हिन्दुस्तानी' नाम की कोई भाषा है ही नहीं। इस वाद-विवाद ने

हिन्दी क्षेत्रों में एक तूफ़ान उठाया। समाचार-पत्रों, हिन्दी सम्मेलनों और चर्चा-सभाओं में तर्क-वितर्क का कांड रचा गया। इन वाद-प्रतिवादों के कारण दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों के बीच में काफ़ी भ्रम फैला। परन्तु दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा उसके कार्यकर्ता जहाँ तक सम्भव था, इन वाद-विवादों के कोलाहल से दूर रहे। सभा महात्मा गाँधी की नीति का समर्थन करने के लिए बाध्य थी। क्योंकि महात्मा गाँधी सभा के आजीवन अध्यक्ष थे। सभा ने जब अपनी नीति हिन्दुस्तानी के पक्ष में बदली तो मतभेद और भी उग्रतर हुआ। पक्ष-विपक्ष में फिर भी दलीलों पर दलीलें दी जाने लगीं। सभा की पाठ्य-पुस्तकों में उर्दू शैली की हिन्दुस्तानी को स्थान मिला। नागरी लिपि के साथ उर्दू लिपि का भी प्रचार होने लगा। 'हिन्दी प्रचार सभा वर्धा' ने भी 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का साथ दिया। श्री काका कालेलकर के नेतृत्व में "सबकी बोली" नामक पत्रिका भी निकलने लगी। विधान के द्वारा भारत की राष्ट्र-भाषा के नाम और रूप के निर्धारण किये जाने तक हिन्दी-हिन्दुस्तानी-उर्दू के वाद-विवाद की आँधी चलती रही। उसके उपरान्त वह ज़रा थम गयी। फिर भी उसके दुष्परिणाम से हिन्दीवाले पूर्णतया मुक्त नहीं हुए हैं। भाषा के रूप, शैली आदि पर यत्र-तत्र आज भी चर्चायें चलती हैं। नाम और रूप के इस भेद को लेकर पक्ष-विपक्ष में जो विचार प्रकट हुए वे न केवल राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि भाषा के इतिहास तथा भाषा-विज्ञान के विषय में भी काफ़ी विवेचनात्मक हैं। उनमें से कुछ प्रमुख लोगों के विचार यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

१. महात्मा गाँधी के विचार :—

अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन का २४ वाँ अधिवेशन इन्दौर में १९३५ अप्रैल को जब सम्पन्न हुआ, तब सभापति-पद से महात्मा गाँधी ने जो भाषण दिया, उसमें हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में उनके विचार प्रकट हुए हैं। भाषण का नीचे लिखा उद्धरण इसका प्रमाण है—

"मैंने अभी हिन्दी-हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया है। सन् १९१८ में जब आपने मुझको यही पद दिया था, तब भी मैंने यही कहा था कि हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसे हिन्दू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं। हिंदुस्तानी और उर्दू में कोई फ़र्क नहीं है। देवनागरी लिपि में लिखी जाने पर वह हिन्दी और अरबी में लिखी जाने पर उर्दू कही जाती है।

× × ×

सन् १९४६ फ़रवरी को वर्धा में 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' की बैठक में गाँधीजी ने जो भाषण दिया था और समाचार-पत्रों में जो रिपोर्ट छपी थी, उससे हिन्दी भाषा-भाषियों को कुछ गलतफ़हमी हुई जिससे उनमें बड़ा असन्तोष फैला था। गाँधीजी ने

उनकी गलतफ़हमी दूर करने के लिए उस भाषण का अंग्रेज़ी सार तैयार कराकर फिर समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ दिया। उसका हिन्दुस्तानी सम्बन्धी भाग यहाँ उद्धृत है—

"हिन्दुस्तानी का प्रचार यह चाहता है कि वह सब लोग जो कि उर्दू लिपि जानते हैं, वह उसके साथ ही नागरी लिपि सीखें। जो नागरी जानते हैं, वह उसके साथ उर्दू लिपि का अभ्यास करें। और जो दोनों में से एक भी नहीं जानते वह दोनों ही सीखें। उन्हें भाषा के दोनों रूप भी जानना चाहिए। बहुत अर्सा नहीं हुआ, उत्तरीय भारत के लोगों की भाषा एक ही थी। वह उर्दू और देवनागरी लिपियों से लिखी जाती थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, दोनों एक दूसरे से जुदा होती गयीं। उर्दू लेखक अरबी और फ़ारसी के कठिन शब्दों का प्रयोग करने लगे और उसी तरह हिन्दी के लेखक संस्कृत शब्दों का। लेकिन एक साधारण ग्रामीण न तो ऊँचे दर्जे की उर्दू समझता है, न उच्च कोटि की हिन्दी। वह तो सीधी-सादी हिन्दी-उर्दू मिली हुई हिन्दुस्तानी समझता है। इसीलिये दोनों भाषाओं के बीच की खाई को और अधिक चौड़ा होने से रोकने के लिये हर एक हिन्दुस्तानी का यह कर्तव्य है कि वह दोनों ही लिपियाँ सीखे और अंदर ही अंदर कहता है कि बहुत देर नहीं है कि जबकि हिन्दी और उर्दू दोनों भाषायें मिलकर एक हो जायेंगी।"[1]

राष्ट्रभाषा पर बोलते हुए गाँधीजी बार-बार 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग करते थे। इस शब्द के कारण हिन्दी, उर्दू की समस्यायें भी उठ खड़ी हुईं। गाँधीजी की व्याख्या में "हिन्दी भाषा वह भाषा है जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फ़ारसी शब्दों से लदी हुई है।"

गाँधीजी हिन्दी की व्याख्या करते हुए आगे कहते हैं—

"हिन्दुओं की बोली से फ़ारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-जमुना के संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी-उर्दू के झगड़े में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपि की कुछ तकलीफ़ ज़रूर है। मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे, हिन्दू बहुत करके नागरी लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए।"[2]

---

१. 'हिन्दुस्तान' १९४६।

२. यह भाषण इन्दौर में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया था। (१९१८)

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी—नवजीवन प्रकाशन पृष्ठ ११।

सन् १९२५ में कानपूर काँग्रेस के अधिवेशन में काँग्रेस में हिन्दुस्तानी के उपयोग के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास हुआ था। उस प्रस्ताव पर गाँधीजी ने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में यों लिखा था—

"हिन्दुस्तानी के उपयोग के बारे में जो प्रस्ताव पास हुआ है, वह लोकमत को बहुत आगे ले जानेवाला है। हमें अब तक अपना काम-काज ज़्यादातर अंग्रेज़ी में करना पड़ता है, यह निस्संदेह प्रतिनिधियों और काँग्रेस की महासमिति के ज़्यादातर सदस्यों पर होनेवाला एक अत्याचार ही है। इस बारे में किसी न किसी दिन हमें आखिरी फैसला करना ही होगा। जब ऐसा होगा तब कुछ वक्त के लिए थोड़ी दिक्क़तें पैदा होंगी, थोड़ा असन्तोष भी रहेगा। लेकिन राष्ट्र के विकास के लिए अच्छा ही होगा कि जितनी जल्दी हो सके, हम अपना काम हिन्दुस्तानी में करने लगें।"[1]

'नवजीवन' में उन्होंने यों लिखा—"जहाँ तक हो सके, काँग्रेस में हिन्दी-उर्दू का इस्तेमाल किया जाय, यह एक महत्व का प्रस्ताव माना जायगा। अगर काँग्रेस के सभी सदस्य इस प्रस्ताव को मानकर चलें, इस पर अमल करें, तो काँग्रेस के काम में गरीबों की दिलचस्पी बढ़ जाय।"[2]

कानपूर काँग्रेस (१९२५) का प्रस्ताव :—

यह काँग्रेस तय करती है कि (विधान की ३३ वीं धारा को नीचे लिखे अनुसार सुधारा जाय।) "काँग्रेस का, काँग्रेस की महासमिति का और कार्यकारिणी समिति का काम-काज आम तौर पर हिन्दुस्तानी में चलाया जायगा। जो वक्ता हिन्दुस्तानी में बोल नहीं सकते, उनके लिए या जब-जब ज़रूरत हो, तब अंग्रेजी या किसी प्रान्तीय भाषा का इस्तेमाल किया जा सकेगा। प्रान्तीय समितियों का काम साधारणतया उन प्रान्तों की भाषाओं में किया जायगा। हिन्दुस्तानी का उपयोग भी किया जा सकता है।"

हिन्दुस्तानी की जीत :—

हिन्दी-हिन्दुस्तानी के झगड़े को गांधीजी बनावटी ही मानते थे। उनका विश्वास था कि इस झगड़े का मूलकारण द्वेष-भाव है। राष्ट्र-कवि 'मुहम्मद इकबाल' की कविता की भाषा में गांधीजी ने 'राष्ट्रभाषा' का असली रूप देखा। इसके सम्बन्ध में इन्होंने अपने एक लेख में जो 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित हुआ था, यों लिखा है—

"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" इकबाल के इस वचन को सुन कर किस हिन्दुस्तानी का दिल नहीं उछलेगा ? अगर न उछले तो मैं उसे कमनसीब समझूँगा। इक़बाल के इस वचन को मैं हिन्दी कहूँ, हिन्दुस्तानी कहूँ या उर्दू ? कौन

---

१. यंग इंडिया ७-१-१९२६।

२. नवजीवन ३-१-१९२६।

कह सकता है कि इसमें राष्ट्रभाषा नहीं भरी पड़ी है ? इसमें मिठास नहीं है, विचार की बुजुर्गी नहीं है ? भले ही इस विचार के साथ आज मैं अकेला होऊँ, यह साफ़ है कि जीत कभी संस्कृतमयी हिन्दी की होनेवाली नहीं है न फ़ारसीमयी उर्दू की। जीत तो हिन्दुस्तानी की ही हो सकती है। जब हम अन्दरूनी द्वेषभाव को भूलेंगे, तब ही हम इस बनावटी झगड़े को भूल जायेंगे, उससे शरमिन्दा होंगे।"[1]

२. जवाहरलाल नेहरू का विचारः—

श्री जवाहरलाल नेहरू भी गांधीजी की तरह हिन्दी और उर्दू को मूलतः एक ही भाषा मानते हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा-भवन के उद्घाटन भाषण में आपने अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया था। उनके भाषण का एक अंश अखबारों से यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"हिन्दी-उर्दू के झगड़े के संबन्ध में आपने आगे चलकर कहा कि इन दोनों भाषाओं में कोई अन्तर नहीं है। सिवाय इसके कि हिन्दी नागरी लिपि में लिखी जाती है और उर्दू फ़ारसी लिपि में। कुछ प्रान्तों में हिन्दी में संस्कृत शब्द अधिक व्यवहार में लाये जाते हैं, और कुछ प्रान्तों में फ़ारसी शब्द अधिकतर व्यवहृत होते हैं। उन्होंने कहा कि स्वयं वे उर्दू-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी का व्यवहार करते हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि हिन्दी-उर्दू को धार्मिक झगड़े का रूप दे डाला गया है।"[2]

नेहरूजी हिन्दी और उर्दू के मूलरूप को एक ही मानते हैं। लेकिन वे 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर 'हिन्दी' शब्द को तर्जीह देते हैं। 'हिन्दी' शब्द 'हिन्द' से बना है और वह 'हिन्दुस्तान' का छोटा रूप है। अतः उस शब्द का इस्तेमाल उनको पसंद है। उनके नीचे लिखे विचार इस सम्बन्ध में यों है—

'हिन्दुस्तानी' के लिए ठीक शब्द 'हिन्दी' होगा, चाहे हम उसे मुल्क के लिए, चाहे संस्कृति के लिए और चाहे अपनी भिन्न परंपराओं के तारीखी सिलसिले के लिए इस्तेमाल करें। यह लफ्ज़ 'हिन्द' से बना है, जो कि 'हिन्दुस्तान' का छोटा रूप है। अब भी 'हिन्दुस्तान' के लिए 'हिन्द' शब्द का आम तौर पर प्रयोग होता है। पश्चिमी एशिया के मुल्कों में, ईरान और टर्की में, ईराक, अफ़गानिस्तान, मिश्र और दूसरी जगहों में हिन्दुस्तान के लिए बराबर 'हिन्द' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है और इन सभी जगहों में हिन्दुस्तानी को 'हिन्दी' कहते हैं। हिन्दी का मज़हब से कोई सम्बन्ध नहीं है और हिन्दुस्तानी मुसलमान और ईसाई उसी तरह से हिन्दी हैं, जिस तरह कि हिन्दू मत को माननेवाला। अमरीका के लोग जो कि

---

१. हरिजन सेवक—२५-१-४८।

२. एड्वान्स अक्तूबर १९३६।

सभी हिन्दुस्तानियों को हिन्दू कहते हैं, बहुत गलती नहीं करते। अगर वह किसी शब्द का प्रयोग करें, तो उनका प्रयोग बिलकुल ठीक होगा। दुर्भाग्य से 'हिन्दी' शब्द हिन्दुस्तान में एक खास लिपि के लिए इस्तेमाल होने लगा है, यह भी संस्कृत की देवनागरी लिपि के लिए। इसलिए इसका व्यापक और स्वाभाविक अर्थ में इस्तेमाल करना कठिन हो गया है। शायद अब आजकल के मुबाहसे खतम हो लें, तो हम फिर इस शब्द का उपयोग उसके मौलिक अर्थ में कर सकें और ज़्यादा संतोषजनक होगा। आज हिन्दुस्तान के रहनेवालों के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का इस्तेमाल होता है और जाहिर है कि वह 'हिन्दुस्तान' से बनाया गया है, लेकिन बोलने में वह बड़ा है और इसके साथ वह ऐतिहासिक और सांस्कृतिक खयाल नहीं जुड़े हुए हैं, जो कि हिन्दी के साथ जुड़े हैं। निश्चय ही प्राचीन काल की हिन्दुस्तानी संस्कृति के लिए हिन्दुस्तानी लफ़्ज़ का इस्तेमाल अटपटा जान पड़ेगा।"[1]

गुजरात विद्यापीठ, अहम्मदाबाद में राष्ट्र-भाषा प्रचारकों की बैठक में श्री जवाहरलालजी ने तारीख ३१-१-५१ को राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में भाषण दिया था। राष्ट्र-भाषा हिन्दी के रूप पर भी उन्होंने अपने भाषण में प्रकाश डाला था। उनके विचार पठनीय हैं। नीचे का उद्धरण उस भाषण का अंश है।

"हिन्दुस्तानी प्रचार के सिलसिले में कई बातें उठती हैं। हिन्दुस्तानी क्या है? उसका रूप क्या है? और उसका प्रचार कैसे हो, इन बातों में आज काफ़ी बहस उठती है। यह बात ठीक है कि उत्तर-प्रदेश में हिन्दी और उर्दू दोनों भाषायें हैं। दोनों भाषाओं के आसान लफ़्ज़ों से हिन्दुस्तानी भाषा बनती है।

उर्दू हमारे देश की भाषा है—

"बाज़ लोग कहते हैं कि उर्दू पाकिस्तान की भाषा है, वह मुसलमान की ज़बान है। मगर यह उनकी गलतफ़हमी है। उर्दू तो हमारे देश की भाषा है, उत्तर-प्रदेश में वह बढ़ी और खासकर यू. पी., बिहार, पंजाब और राजस्थान में चली। उत्तर-प्रदेश के लोग सही उर्दू बोलते हैं। पाकिस्तान वाले सही उर्दू बोल नहीं सकते। हमें अपने दिल से यह ख्याल निकाल देना चाहिए कि उर्दू परदेशी भाषा है। दिल्ली और लखनऊ उर्दू ज़बान के मरकज़ हैं। हाँ, यह बात सही है कि मुगल-राज के ज़माने में उर्दू में फारसी के शब्द अधिक आ गये।

भाषा कैसे बनती है—

"भाषा कैसे बनती है? वह ऊपर से ज़बर्दस्ती से नहीं लादी जा सकती, न वह कानून के ज़रिये बनायी जा सकती है। पढ़ाई से हम उसपर कुछ असर डाल सकते

---

१. 'हिन्दुस्तान की कहानी' पृष्ठ ८१।

हैं। लेकिन आखिर में तो जनता जो भाषा पढ़ती और लिखती है, उसी से भाषा बनती है। बापू ने हिन्दी-हिन्दुस्तानी का सवाल उठाया। देश की शक्ति बढ़ाने के लिए, जनता में जागृति लाने के लिए वे कहते थे कि हमें ऐसी भाषा बनानी है, जो पढ़े-लिखे लोगों की न हो, मगर आमलोगों की हो।

शुद्ध हिन्दी का ढोंग :—

"मैं उत्तरप्रदेश जाता हूँ और वहाँ जो कुछ कहता हूँ, उसे लोग आसानी से समझ लेते हैं। यही सच्ची भाषा है। लेकिन अब वहाँ लजिस्लेचर और पढ़े-लिखे लोगों की ऐसी बोली होने लगी है, जो आसानी से मेरी समझ में नहीं आती। वहाँ अब शुद्ध हिन्दी भाषा बोलने का प्रयत्न हो रहा है। कई लोग समझते हैं कि हिन्दी ऐसी होनी चाहिए जिसमें बाहर के शब्द न आयें। यह गलत तरीका है। अंग्रेज़ी भाषा दुनिया की बड़ी भाषाओं में एक है। वह ताकतवर भाषा है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हर साल उसमें थोड़े नहीं, कई हज़ार नये शब्द बढ़ जाते हैं। मैं अहम्मदाबाद नगर के किले में था, उस वक्त मेरे पास काफ़ी समय था। एक दफ़ा मैं अंग्रेज़ी डिक्श्नरी लेकर बैठ गया और अपने देश के लफ्ज़ों की सूची बनाने लगा। ५०–६० पृष्ठ ही देखे थे कि सैकड़ों की फेहरिस्त हो गयी। हमारे बहुत से शब्दों को लेकर अंग्रेज़ी भाषा ने उन्हें अपने कपड़े पहना दिये हैं। वह भाषा कमज़ोर हो जाती है, जो नये शब्द नहीं लेती। जो भाषा नये शब्द लेकर अपने कपड़े पहनाती है, वह भाषा ज़िन्दा रहती है। भाषा के दरवाजे हमेशा खुले रखना चाहिए।

क्या, भाषा कोई तमाशा है ?—

"हम अंग्रेज़ी भाषा के शब्द क्यों न लें ? 'रेलवे स्टेशन' के लिए महाराष्ट्र में लम्बे-लम्बे शब्द निकाले गये हैं। यह भाषा को मारने की है। क्या, भाषा तमाशा है ? रूसी, चीनी, अरबी, फारसी कोई भी भाषा हो, जिससे हम नये शब्द ले सकें, लेने चाहिए। नये शब्द लेने से भाषा की दौलत बढ़ती है।

सही रूप 'हिन्दुस्तानी' :—

"हमारी भाषा का सही रूप हिन्दुस्तानी है। मुझे संस्कृत से कोई परहेज नहीं। मुझे इसमें कोई रुकावट नहीं कि नये शब्द संस्कृत से आवें। लेकिन वे शब्द नकली रूप से न आने चाहिए। आजकल हिन्दी के ही प्रेमी हिन्दी को हानी पहुँचा रहे हैं। वे ऐसी हिन्दी बनाना चाहते हैं जिसे चंद लोग समझ सकें।

हिन्दुस्तानी प्रचार का काम सब तरह से बहुत ज़रूरी है, क्योंकि वह राष्ट्र की माँग है। राष्ट्रभाषा हमारे राष्ट्र को बाँधती है, उसे मज़बूत करती है। हमें राष्ट्रभाषा

को आम लोगों की भाषा बनाना है, इसलिए उसमें नये शब्द लेनेवाले भाषा की सेवा करते हैं।"[1]

३. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के विचार :—

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी के विचार में हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। केवल शब्दों के अन्तर को वे नगण्य मानते हैं। हिन्दी को वे हिन्दुस्तानी भी कहते हैं, लेकिन उनकी भाषा की शैली से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कृत्रिम शब्दों के उपयोग के पक्ष में नहीं हैं। स्वाभाविक शैली में वे बोलते और लिखते हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के पदवी-दान सम्मेलन में उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये।

"हिन्दी और हिन्दुस्तानी का भेद बताते हुए उन्होंने कहा कि इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। शब्दावली का थोड़ा सा अन्तर हो सकता है, किन्तु किसी भाषा का रूप उसकी शब्दावली की अपेक्षा उसके व्याकरण के ढाँचे पर अधिक निर्भर रहता है। हिन्दी और उर्दू के व्याकरण का ढाँचा एक है। शब्दों का आदान-प्रदान सभी भाषायें करती हैं। हिन्दुस्तानी भी एक सजीव भाषा है, उसमें भी शब्दों का आदान-प्रदान हुआ करता है।"[2]

साहित्य सम्मेलन के काशी अधिवेशन में राष्ट्रभाषा परिषद् के अध्यक्षपद से दिये गये भाषण में श्री राजेन्द्र बाबू ने हिन्दी के रूपभेद पर यों अपने विचार व्यक्त किये।

"राष्ट्रभाषा सारे देश के लिए चाहिए। इसलिए वह ऐसी नहीं होनी चाहिए और न हो सकती है, जिसे हिन्दी या उर्दू जाननेवाले भी न समझें। इन दोनों को हम अलग मान भी लें, तो राष्ट्रभाषा तो ऐसी ही हो सकती है कि जिसको हिन्दी और उर्दूवाले दोनों मान लें। ऐसा नहीं हुआ, तो एक मुश्किल को हल करने में एक दूसरी मुश्किल हम पैदा कर देते हैं। इसलिए हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए यह जरूरी है कि राष्ट्र-भाषा बनने का दावा करते-करते वह अपने रूप को ऐसा न बना लें कि एक दूसरे को ही न पहचान सकें और उत्तर भारत में, जहाँ के लोगों के लिए नयी राष्ट्र-भाषा बनाने की जरूरत नहीं पड़ती, वहाँ भी यह नयी ज़रूरत खड़ी हो जाय। अगर उत्तर की भाषा ही राष्ट्रभाषा होनेवाली है, तो उर्दू और हिन्दी को आपस का झगड़ा इतना तेज़ नहीं बनाना चाहिए कि और भाषाओं के जाननेवाले कह बैठें कि इन दोनों में कोई भी राष्ट्रभाषा के लिए मंजूर नहीं की जा सकती। इसलिए इस विचार से राष्ट्रभाषा का रूप कुछ

---

१. 'हरिजन सेवक' मार्च १९५२।

२. 'हिन्दी प्रचार समाचार' अक्तूबर १९३६।

निर्धारित हो जाता है। वह न तो संस्कृत शब्दों का बहिष्कार कर सकती है और न अरबी-फ़ारसी शब्दों को ही निकाल सकती है। जो शब्द आते हैं, चाहे वह संस्कृत हों, या फारसी, अरबी और दूसरी विदेशी भाषा के भी क्यों न हों, निकाले नहीं जा सकते। हाँ, नये अनगढ़ अप्रचलित शब्दों की भरमार भी अनावश्यक और हानिकर है।"

४. श्री राजगोपालाचारी जी के विचार :—

श्री राजगोपालाचारी ने दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन का प्रमुख नेतृत्व किया है। वे 'दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा' के उपाध्यक्ष रहे हैं। मद्रास प्रान्त के स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश कराने में उनकी जो सेवायें हुईं, चिरस्मरणीय रहेंगी।

मद्रास की विधान सभा के भूतपूर्व सदस्य खान बहादुर खलीफ़ुल्लाह साहब ने हिन्दी का विरोध करते हुए कहा कि उर्दू को ही भारत की राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए। राजाजी उस समय मद्रास के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने हिन्दी के विरोधियों की दलीलों का खण्डन करते हुए कहा :—"सरकार हिन्दी शिक्षा की स्वीकृति आपस में काम चलाने के लिए दे रही है। इसके द्वारा उत्तर और दक्षिण के कार्य में तथा भाव-विनिमय में सुविधा होगी।" उन्होंने मुसलमानों के भ्रम के सम्बन्ध में कहा कि यह बिल्कुल भ्रामक धारणा है कि उर्दू की उत्पत्ति इस्लाम से हुई है। "उर्दू को इस्लाम और हिन्दी को हिन्दू-भाषा मानना बिल्कुल गलत है। अकबर के अर्थसचिव ने उर्दू को बनाया और व्यवहार में लिया। जिस भी लिपि में लिखी जाय, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, इसके नाम से भी ऐसा बोध होता है। अतः ये विरोधी आंदोलन भ्रमात्मक धारणाओं के कारण ही हुआ है।"[1]

'हिन्दी प्रचारकों के ध्यान के लिए' शीर्षक पर श्री राजगोपालाचारी ने ३–२–१९४२ के 'हिन्दी प्रचार समाचार' के अंक में 'हिन्दुस्तानी' शब्द का व्यवहार 'हिन्दी' के बदलने की ओर प्रचारकों का ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने महात्मा गाँधी से विचार-विनिमय करने के बाद ही यह अपील निकाली थी। वह अपील यों है :—'हिन्दी' या 'उर्दू' की तरजीह में 'हिन्दुस्तानी'—

"मैंने देखा है कि कई तरह के प्रयत्न करने पर भी बहुत से लोग हमारी राष्ट्रभाषा को हिन्दुस्तानी के नाम से पुकारने का महत्व नहीं समझ पाये हैं। अभी उसे हिन्दी ही कहा जा रहा है। मैं सभी प्रचारकों तथा मित्रों से यह कह देना चाहता हूँ कि जहाँ कहीं राष्ट्रभाषा का उल्लेख करें, वे 'हिन्दी' या 'उर्दू' की तरजीह में 'हिन्दुस्तानी' ही कहते जायँ। हाँ, जहाँ कहीं शब्दावली या शब्द-संकेत की ओर

---

(१) 'अमृतबाज़ार पत्रिका' २१–३–१९३८।

इशारा या चर्चा हो, वहाँ हिन्दी और उर्दू के बीच का फ़र्क दिखाया जा सकता है। लेकिन जहाँ फर्क दिखाने की आवश्यकता न पड़े, सामान्य शब्द 'हिन्दुस्तानी' का ही विशेष रूप से प्रयोग होना चाहिए।

सभा का नामकरण :—

"महात्माजी से मैंने इस संबन्ध में बातचीत की है। इन्होंने यह इच्छा प्रकट की है कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द को ही ज़्यादा लोकप्रिय बनाना चाहिए। अपनी केन्द्र सभा (द. भा. हिन्दी प्रचार सभा) का नाम ज्यों का त्यों रहेगा; क्योंकि व्यक्तियों व संस्थाओं के नाम इतनी आसानी से परिवर्तित नहीं कर सकते। सभा का नामकरण इस वर्तमान वाद-विवाद से बहुत पहले हो चुका है। अतः वह ज्यों का त्यों ज़ारी रहेगा। लेकिन सभा के सभी प्रचार साहित्य और प्रचार भाषणों में हम ध्यान दें कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द का ही प्रयोग हो। इसे हम अपनी एक महत्त्वपूर्ण नीति समझें।

हमें लिपि के प्रश्न को इसके साथ नहीं जोड़ना चाहिए। नागरी और उर्दू लिपियाँ ज्यों की त्यों ज़ारी रहेंगी। इससे यह भी नहीं समझना चाहिए कि 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग करने में कोई दोष है, यह बहुत ही अच्छा शब्द है। लेकिन अभाग्यवश कुछ सन्देहों और आपत्तियों को दूर करने के लिए यह निश्चय हुआ है कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द का ही प्रयोग हो। यह निश्चय कॉंग्रेस और महात्माजी की राय के अनुसार किया गया है। हमारे उद्देश्य की सिद्धि इस पर वाद-विवाद का तूफ़ान खड़ा करने में नहीं होगी, बल्कि इस 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग करने में ही होगी।"

५. खेर साहब के विचार :—

"राष्ट्रभाषा के नाम के बारे में बहुत वाद-विवाद और चर्चायें हो रही हैं। उसके अन्दर कोई सज्जन धर्म और संस्कृति के सवालों को भी खींच लाते हैं। नाम के सम्बन्ध में बहुत-सी गलतफ़हमियाँ नज़र आती हैं। इसलिए अगर आप मुझे इजाज़त दें, मैं ज़रा विस्तार से विवेचन करना चाहता हूँ। सामान्य जनता में, जिस भाषा में अधिकतर शब्द संस्कृत के दीख पड़ते हैं, उसको 'हिन्दी' कहते हैं और मानते हैं कि हिन्दुओं ने इस भाषा का 'हिन्दी' नामकरण किया, एवं मुसलमानों ने उर्दू का निर्माण किया। उसमें अधिकांश शब्द फ़ारसी या अरबी से लिये जाते हैं। 'हिन्दुस्तानी' उस मिश्रबोली को कहते हैं, जिसको अंग्रेज़ या अन्य विदेशी लोग प्रायः उपयोग में लाते हैं। ये विचार सार्वत्रिक हैं। हिन्दी-उर्दू जैसे भाषा के सवाल पर झगड़ना कुछ ठीक नहीं है।"[1]

---

१. ('द. भा. हि. प्र. सभा' के नवें पदवीदान में दिये गये भाषण से उद्धृत)

सन् १९५१ में पूना के एक हिन्दी सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर उन्होंने अंग्रेज़ी की गुलामी, राष्ट्रभाषा आन्दोलन के महत्त्व तथा राष्ट्रभाषा के रूप पर प्रकाश डालते हुए जो विचार स्पष्ट किये थे, वे अत्यन्त महत्व के हैं। उनके विचार यों हैं:—

"आज हम सब लोग अंग्रेज़ी के गुलाम बन गये हैं। हमारे दिमागों पर उसका इतना गहरा प्रभाव है कि उसके चले जाने की बात सुनते ही हमारा दिल काँप उठता है। मैं इन लोगों को कहीं दोष देना नहीं चाहता। क्योंकि इस भाषा में ज्ञान का भंडार मौजूद है। उसका अध्ययन करना हरेक ज्ञान-देवता के पुजारी का काम है। लेकिन क्या यह बात जरूरी नहीं कि ऐसी एक भाषा हो जिसको आम जनता समझ सके तथा आसानी से बोल सके। आप जानते हैं कि बगैर इस एक भाषा के हमारे सारे लोग प्रेम के सूत्र में नहीं बाँधे जाएँगे, यह कहने में हमें सदैव अभिमान ही रहेगा। हमारे राष्ट्रपिता ने इस आवश्यकता को कितने ही पहले महसूस किया था और उस दृष्टि से राष्ट्रभाषा के आन्दोलन का सूत्रपात किया था। पूज्य गाँधीजी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के नाते स्वीकार किया था, लेकिन वह संस्कृत शब्दों से लदी हिन्दी नहीं थी। उनका यह सदैव आग्रह था कि जब हम सारी जनता के लिए एक भाषा का निर्माण करना चाहते हैं तो वह ज़रूर आसान होनी चाहिए। उसमें किसी तरह की अन्य बातें लाने से मूल बात बिगड़ जाएगी। लेकिन जब हिन्दी शब्द को एक अलग अर्थ प्राप्त हुआ तब पूज्य बापूजी ने हिन्दुस्तानी नाम से उक्त स्वरूप की भाषा का प्रचार करने का आदेश दिया।

पूज्य गाँधीजी ने हिन्दी का जो रूप निर्धारित किया था, उसी राष्ट्रभाषा के स्वरूप को संविधान सभा ने मान्य किया है।"[1]

६—पुरुषोत्तमदास टंडनजी के विचार :—

राष्ट्रभाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में बाबू पुरुषोत्तमदास टंडनजी के विचार भी हिन्दी-उर्दू के झगड़े को दूर करने एवं हिन्दी के सच्चे रूप को समझने के लिए पर्याप्त हैं। वे लिखते हैं :—

"यह अच्छी तरह से ध्यान देने की बात है कि 'हिन्दी' राष्ट्रभाषा क्यों है? इसलिए नहीं कि वह प्रयाग, काशी, लखनऊ, या देहली में बोली जाती है, बल्कि इसलिए कि दूसरी संस्कृतियाँ भी अर्थात् महाराष्ट्र संस्कृति, वंगीय संस्कृति, मद्रासी संस्कृति उस भाषा में अपने स्वरूप को देख सकती हैं। भाषा का संबंध संस्कृति से है और यह अच्छी तरह से विचार करने की बात है, विशेषकर उनके लिए जो राष्ट्रभाषा के प्रश्न का अध्ययन कर रहे हैं और भावी राष्ट्रभाषा का स्वप्न देख रहे हैं कि हम जिस भाषा को राष्ट्रभाषा का स्वरूप देना चाहते हैं, उसमें यह आवश्यक गुण होना

---

१. हिन्दुस्तानी प्रचार–दिसंबर १९५१ पृष्ठ ७२३।

चाहिए कि वह अन्य सब देशी भाषाओं के समीप हो। यहाँ पूना में ही थोड़े दिन हुए मुझसे कहा गया कि यहाँ पर उत्तर-भारतीय कॉंग्रेसी नेता आये और उन्होंने अरबी-फ़ारसी मिश्रित भाषा में जो भाषण दिये, वे लोगों की समझ में नहीं आये। किन्तु मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि मैंने जब भाषण दिया, तो मुझसे यह कहा गया कि तुम्हारी भाषा हम लोगों ने अच्छी तरह समझ ली और अगर यह भाषा राष्ट्रभाषा होने जा रही है, तो हमें कोई डर नहीं है। बात यह है कि कुछ वक्ता हिन्दुस्तानी के नाम पर ऐसी अपरिचित शब्दावली और मुहावरों का प्रयोग करते हैं जिसे हमारे देश के बहुत लोग बिल्कुल नहीं समझ सकते। यह बात केवल महाराष्ट्र-वालों के लिए ही नहीं, बल्कि बंगालियों के लिए, मद्रासियों के लिए और सब अहिन्दी भाषियों के लिए लागू है। हमारी भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसे सब साधारण भारतवासी अपने समीप देख सकें और ग्रहण कर सकें।

शब्द समन्वय :—

बहुत वर्षों से मैं इस बात का हामी रहा हूँ कि हमारी हिन्दी में दूसरी भाषा के शब्दों का समन्वय हो। फ़ारसी और संस्कृत एक ही भाषा से निकली है। फ़ारसी और संस्कृत का झगड़ा हिन्दी और उर्दू में नहीं होना चाहिए। क्योंकि फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का बड़ी आसानी से हमारी भाषा में समन्वय किया जा सकता है! मैंने विश्लेषण आरम्भ किया, तो मुझे मालूम हुआ कि फ़ारसी के साठ वा सत्तर प्रतिशत शब्द संस्कृत शब्दों के समीप हैं। फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का समन्वय होना कोई कठिन समस्या नहीं है। खुसरो ने यह काम किया था, रहीम ने किया था।

पहले पहल हमारी भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द मुसलमानों ने दिया। 'कुरान' का पहला अनुवाद जो हमारी भाषा में हुआ, उसकी भूमिका में अनुवाद की भाषा 'हिन्दी' कही गयी थी। हैदराबाद और दक्षिण में फारसी-अरबी मिश्रित गज़्लों की भाषा को भी पहले 'हिन्दी' ही कहते थे। मैं अपने महाराष्ट्रीय-गुजराती भाइयों से कहता हूँ कि राष्ट्रीयता के लिए आप हिन्दी को अपनाइये। भाषा का भी स्वरूप बदलता रहता है। हमारी भाषा में मराठी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, सबके शब्द आवेंगे और हमारी भाषा इन नये शब्दों से प्रौढ़ होती जायेगी और उसकी शक्ति बढ़ती जायेगी।[1]

७. श्री. सी. एफ. एन्ड्रूस के विचार :—

दीनबन्धु सी. एफ. एन्ड्रूस गाँधीजी के अनन्य आराधक और भारत की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थकों में से थे। भारत में एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया था। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के संबंध में आपने 'The Language

(१) 'हिन्दी प्रचारक'—जून १९४७ (पृष्ठ—२५०)।

Problem of modern India' शीर्षक लेख में जो विचार प्रकट किये हैं, उनका कुछ अंश नीचे उद्धृत है।'—

"With Hindi Speech in India, as commonly used among village people in everyday life, there will have to be great flexibility and willingness to adopt Persian words if Urdu and Hindi are not to drift further apart. Dr. Bhagvan Das of Banaras has admirably shown how simple Persian words may be used as alternatives to those sanskrit forms,. which bear the same meaning and can be made adoptable to everyday conversation to take one very simple example, the word 'Khuda' is known in the villages of Northern India, side by side with the word 'Bhagvan'. A true Lingua—Franca for the whole of India should neither be called Hindi, nor Urdu, nor should it be confined to Northern Indian words. It might well be called 'Hindustani', but it should be as flexible as possible and should find its proper home rather in daily speech than in literary productions."[१]

८—आचार्य विनोबा भावे के विचार:—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के ग्यारहवें उपाधि वितरण समारोह के अवसर पर आचार्य विनोबा भावे जी का भाषण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपने मातृभाषा को पढ़ाई का माध्यम बनाने पर जोर देते हुए अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त होने के लिए लोगों से अपील की। आपने कहा:—

"जब तक अंग्रेजी द्वारा सोचते रहेंगे, तब तक हममें स्वतन्त्र भाव पैदा नहीं होगा। यह गाँधीजी ने देखा। लोग समझते हैं कि अंग्रेजी से ही हमें ज्ञान मिलता है। अगर किसी देश के बारे में जानकारी प्राप्त करनी हो तो हम अंग्रेजी पुस्तक पढ़ना पर्याप्त समझते हैं। अंग्रेजी नेत्र द्वारा ही सभी बातों को देखते हैं और खुद अंधे बनते हैं। अबतक हमने प्रत्यक्ष परिचय नहीं पाया है। अंग्रेजी किताबों द्वारा ही ज्ञानसंपादन करते आये हैं। अंग्रेजी भाषा के कारण हम पुरुषार्थहीन हो गये हैं।

(१) 'Amrita Bazar Patrika' August, 1938

यहाँ, ऐसे मैंने सुना कि दो श्रेणी पढ़ने के बाद बच्चों को अंग्रेजी सिखायी जाती है। वर्धा की शिक्षा-योजना के अनुसार सात बरस की पढ़ाई में अंग्रेजी को बिल्कुल स्थान नहीं दिया है। क्योंकि हम मातृभाषा को पहला स्थान देना चाहते हैं और उसी माध्यम द्वारा सभी विषय पढ़ाना चाहते हैं। अंग्रेज़ी भाषा द्वारा जब हम कोई बात समझते हैं, तो वह अस्पष्ट होती है। मैंने देखा है कि एक अनपढ़ किसान का दिमाग साफ रहता है, पर एक एम. ए. का दिमाग साफ नहीं होता। इसका कारण यह है, एम. ए. जितना विषय सीखता है, सब का सब पराई भाषा के द्वारा सीखता है।"[1]

उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में भी अपने विचार यों व्यक्त किये:—

"आजकल हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू के सम्बन्ध में मुझसे जब कोई पूछता है कि आप हिन्दी को चाहते हैं? अथवा हिन्दुस्तानी या उर्दू को? तो मैं उनसे पूछता हूँ कि आप 'माता' को चाहते हैं या 'माँ' को? मुझे हिन्दुस्तानी और उर्दू में फ़रक नहीं मालूम होता। दाढ़ी बढ़ाने में और उसके हज़ामत करने में जितना फ़रक है उतना ही फ़रक हिन्दी और उर्दू में है—बड़ी दाढ़ी उर्दू है, सफ़ाचट हिन्दी। क्योंकि हम देखते हैं कि दाढ़ी पन्द्रह दिन में बढ़ती है। अंग्रेजी में मिल्टन और वर्ड्सवर्थ की भाषा में जितना फ़रक है, उतना ही फ़रक हिन्दी और उर्दू में है। दो चार उर्दू शब्द या संस्कृत शब्द से भाषा कभी नहीं बदलती। मैं मद्रास में अब जो भाषा बोल रहा हूँ, उसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ। अगर मैं पंजाब में गया, तो उर्दू शब्दों को जो मैं जानता हूँ, इस्तेमाल करूँगा। अतएव आपसे मेरी प्रार्थना है, आप हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू में कुछ भी फ़रक न करें। हिन्दी और उर्दू में जो बैलेंस लाया गया है, वह है हिन्दुस्तानी। आपको मालूम है कि गाँधीजी 'बैलेंस्ड डायट'— Balanced Diet के हिमायती हैं और इसको उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया। आप इन झगड़ों में न पड़िये। जिस झगड़े में कोई अर्थ नहीं, उसमें पड़ने से फ़ायदा ही क्या?"

९. जैनेन्द्रकुमार के विचार:—

'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के कार्य की नीति के सम्बन्ध में श्री जैनेन्द्रकुमार का जो पत्र 'जीवन-साहित्य' में प्रकाशित हुआ, उसका कुछ अंश हिन्दी-हिन्दुस्तानी के झगड़े से सम्बन्ध रखता है। उनके तत्सम्बंधी विचार यों हैं:—

"सम्मेलन" का आग्रह रहा है, और उचित रूप से रह सकता है कि वह तो राष्ट्रभाषा को 'हिन्दी' ही कहेगा। जहाँ तक हिन्दी के साथ राष्ट्रभाषा प्रचार संगत हो, वहाँ तक ही उसको सम्मेलन का बल मिल सकता है, आगे नहीं।

(१) 'हिन्दी प्रचार समाचार'—१९४७

इसके साथ हमें स्वीकार करना चाहिए कि अहिन्दी भाषी प्रान्तों में 'हिन्दुस्तानी' शब्द को निषिद्ध ठहरा कर राष्ट्रभाषा प्रचार का काम निर्विघ्न नहीं फैलाया जा सकता। अर्थात् राष्ट्रभाषा को हिन्दुस्तानी कह सकने के विकल्प की सुविधा राष्ट्रभाषा प्रचारकों के लिए आवश्यक है।"[1]

१०. स्व० श्री पद्मसिंह शर्मा के विचारः—

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा धुरंधर विद्वान् स्व० श्री. पद्मसिंह शर्मा ने 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' नामक पुस्तक में हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी की विश्लेषणात्मक व्याख्या की है। हिन्दी के नाम-भेद से होनेवाले भ्रम को दूर करने की उन्होंने भरपूर चेष्टा की है। हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू के सम्बन्ध में विवेचनात्मक विचार प्रकट करने की योग्यता रखनेवालों में वे अग्रणी थे। उन्होंने साबित किया है कि हिन्दी भाषा एक थी, और एक है; पर हिन्दी और उर्दू के नामभेद से उसके दो जुदा रूप माने गये। उनके विचार पठनीय हैं:—

"शैलीभेद से ठेठ हिन्दी, शुद्ध हिन्दी और खिचड़ी हिन्दी इत्यादि भाषा के कुछ अटपटे नाम और भी घेर लिये गये हैं, जिनका उल्लेख कुछ लेखकों ने किया है, पर इनका अन्तर्भाव इन्हीं पूर्वोक्त नामों में निहित होता है। हमारी हिन्दी भाषा एक थी और एक है, पर हिन्दी और उर्दू के नाम-भेद से उसके जुदा-जुदा रूप माने जाने लगे। उसके उपासकों ने अपनी-अपनी रुचि और संस्कृति के अनुसार उसकी विभिन्न आकार-प्रकार की दो मूर्तियाँ बनाकर खड़ी कर दी हैं। भाषा देश को एकता के सूत्र में बाँधने का जातीयता का कारण होती है, लेकिन दुर्भाग्य से यहाँ उलटी बात हो रही है। एक ही भाषा, मिथ्या नामभेद के कारण भयंकर संप्रदाय-भेद का कारण बन रही है। संसार में और कहीं ऐसा अनोखा उदाहरण ढूँढ़े भी नहीं मिलेगा। यह जितने आश्चर्य की बात है, उतने ही दुर्भाग्य और दुःख की भी। नाम-भेद के कारण भाषा में भेद कैसे पड़ गया—हिन्दी और उर्दू को जुदा-जुदा करने वाले कारणों पर ठंडे दिल से विचार करने की, और हो सके तो इन्हें दूर करने की बड़ी जरूरत है।"[1]

११—श्री सम्पूर्णानन्द जी के विचारः—

"आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी प्रान्तीयता, ऐतिहासिक महत्व, आत्मीय गौरव आदि बातों को विशुद्ध आत्माभिमान के चरणों पर चढ़ा दें। राष्ट्रीय एकता के लिए, पारस्परिक व्यवहार के लिए, अन्तर्प्रान्तीय कार्यव्यापार के लिए और स्वतंत्र हिन्दुस्तान की सर्वांगी रचना के लिए भी एक राष्ट्रभाषा का होना अनिवार्य है। हिन्दी को हमने राष्ट्रभाषा मान लिया है।

---

(१) 'हिन्दी प्रचार समाचार' जनवरी १९४२ पृ० १४।

२—'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी'—एकेडमी १९३२।

हिन्दी केवल अपनी सरलता, मधुरता, ओजस्विता आदि से ही भारत को मोहित नहीं करती, प्रत्युत उसका विशाल साहित्य भी अपने गौरव की ओर हमें संकेत देता है। हम उसके साहित्य से भी अनुराग करते हैं। हम जब उसके कबीर, तुलसी, सूर, जायसी आदि के काव्यों का अवगाहन करते हैं, हम जब प्रेमचन्द, प्रसाद, मैथिलीशरण की कृतियों का अवलोकन करते हैं, तब हमें अपनी मातृभाषा का गौरव स्मृत होता है, हम उसके रस में आकंठ डूबकर भावमग्न हो जाते हैं, उनमें हमें अपने ही प्रवाह, अपनी ही संस्कृति, अपनी अमूल्य निधियों के उज्वल दर्शन होते हैं। हृदय के इस राग का सम्बल 'हिन्दुस्तानी' कहाँ से जुटा सकेगी ?

भारत की अखंडोपासना का यह अत्यंत नाजुक समय उपस्थित हुआ है। देश की सर्वांगीण उन्नति में राष्ट्रभाषा का पद वही प्राप्त कर सकती है, जिसमें उच्च शिक्षण-विज्ञान की परिभाषा, व्यापार की व्यापकता, एक सामान्य भारतीय साहित्य के माध्यम की क्षमता मौजूद हो; जो अपने प्रकृत रूप में परदेशीपन की गंध से दूर और एक अखंड, आन्तरिक तथा बाहरी व्यापक समसूत्रता अपनी परम्परा में रखती आयी हो, जो सुनने, समझने और बोलने, लिखने में सिर्फ सरल ही न हो, हमारी रागात्मक-प्रियता भी प्राप्त करती हो और जो हमसे अपनेपन का नाता भी जोड़ती हो वही भारत की अखंडोपासना में राष्ट्रभाषा का पद पा सकती है और वह गुण हिन्दी को छोड़ कर हिन्दुस्तानी किस बूते पर प्राप्त कर सकेगी !"[१]

१२—श्री कन्हैयालाल मुन्शी के विचारः—

श्री. के. एम. मुन्शीजी संस्कृत निष्ठ-भाषा के बड़े समर्थक हैं। उदयपुर में साहित्य सम्मेलन के तीसवें अधिवेशन में सभापति-पद से उनका जो भाषण हुआ था, उसके नीचे उद्धृत अंश से हिन्दी के पक्ष में उनकी ज़बरदस्त दलीलों की जानकारी हो सकती है।

"उन्नीस सौ इकतीस की जनगणना को ध्यान में लें तो ३४,९८,८८,००० मनुष्य हिन्दी और बर्मा में हिन्दी और बर्मी भाषा बोलते थे। इनमें से २५,३७,१२,००० संस्कृत-कुल की भाषाओं को व्यवहार में लाते थे। ४,३७,१८,००० संस्कृत-प्रधान द्राविड़ी भाषा को काम में लाते थे। इस वर्ष की गणना को लें तो एक सौ भारतवासियों में—

(१) ९९ प्रतिशत भारतीय भाषाएँ बोलते हैं।
(२) ३५ प्रतिशत की भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी है।
(३) ३४ प्रतिशत की भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी के साथ सम्बन्ध रखती है।
(४) १३ प्रतिशत संस्कृत-प्रधान भाषाएँ बोलते हैं।

१—'हिन्दी प्रचारक' जनवरी-फरवरी १९४१ (पृष्ठ ४७)

(५) ६ प्रतिशत-प्रचुर भाषाएँ बोलते हैं।
(६) ३३ प्रतिशत की भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।
(७) २७ प्रतिशत की भाषा देवनागरी के किसी स्वरूप में लिखी जाती है।
(८) २० प्रतिशत की भाषा द्राविड़ी लिपि में लिखी जाती है।

इन आंकड़ों की हकीकत देखते हुए जो भाषा संस्कृत प्रधान हो, वही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

हिन्दी की प्राचीन राष्ट्रभाषाओं की अखण्ड पीढ़ी में हिन्दी उतर आती है। इसकी शब्द-समृद्धि ८८ प्रतिशत बोलनेवालों के लिए बहुत कुछ परिचित है। इनके बोलनेवाले तथा सरलता से बोल सकने वाले उनहत्तर प्रतिशत हैं।

फलतः हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, वह तो राष्ट्रभाषा है ही।

हिन्दी राष्ट्रभाषा को आज समस्त भारत स्वीकार कर रहा है। ऐतिहासिक कारणों से यह भाषा ही राष्ट्रभाषा होने के लिए निर्मित हुई है।

१. इसका बाज़ारू स्वरूप हिन्दुस्तानी समस्त भारत में समझी जा सकती है। इसी रूप में प्रान्त-प्रान्त में वह जुदा-जुदा रूप लेती है। इस व्यवहारू भाषा का मूल असली अपभ्रंश में है। इसकी गढ़न दिल्लीप्रदेश में होने के कारण यह हिन्दू-मुसलमानों के व्यवहार का साधन है।
२. उत्तर भारत की समस्त भाषाओं की एकता जैसे सन् १८०० से पूर्व ब्रजभाषा में प्रतिबिंबित थी, वैसी ही आज इसमें प्रतिबिंबित है।
३. इसमें नैसर्गिक लक्षण हैं। संस्कृत की समृद्धि होने के कारण यह हिन्द की संस्कृत प्रचुर भाषाओं का संगम हो सकती है। द्राविड़ भाषा बोलने वाले भी इसे सरलता से स्वीकार कर सकते हैं।
४. नागरी लिपि हिन्द में प्रतिशत ६० के लिए परिचित है। इसलिए इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने में कम से कम प्रयत्न की ज़रूरत पड़ती है।
रामँमोहन राय ने बंगाली गद्य की नींव डाली, इसकी अभिवृद्धि हुई। बंकिम और रवीन्द्र ने इसे अपूर्व लालित्य से भरा—संस्कृत की समृद्धि से।

मराठी लो, कन्नड़ लो, तेलुगु लो, मलयालम लो—अरे तमिल भी लो, संस्कृत की शक्ति बिना इनमें समृद्धि और सरलता आ ही नहीं सकती। यह कोई नई बात नहीं। यदि मैं विकास प्राप्त करता हूँ तो अपनी शक्तियों के प्रताप से ही। इसी प्रकार भारतीय भाषा विकास पाये, संस्कृत की मदद से ही—दूसरा कोई मार्ग नहीं।

हिन्दी, संस्कृत-बिना समृद्ध नहीं हो सकती।

× × ×

पर महात्माजी मानते हैं कि आज हिन्दी-उर्दू का समन्वय शक्य है और इष्ट भी है। यदि महात्माजी अशक्य को शक्य बना सकें तो हमें उसका स्वागत करना

ही होगा। मेरे जीवनकाल में यदि यह चमत्कार हो जाय तो मैं जीवन धन्य समझूँ।[1]

१३. डॉ० ताराचन्द के विचार—

सन् १९४४ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बत्तीसवें वार्षिक अधिवेशन में श्री गोस्वामी गणेशदत्त, श्री कन्हैयालाल मुन्शी, सर मिर्ज़ा इस्माइल (दीवान, जयपुर) श्री पोद्दार, श्री माखनलाल चतुर्वेदी आदि के भाषण हुए। अधिकांश लोगों ने संस्कृत-मयी हिन्दी का समर्थन किया था। उनके भाषणों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० ताराचन्द ने अपनी 'हिन्दुस्तानी-नीति' के पक्ष में कुछ दलीलें पेश की थीं। डॉ० ताराचन्द 'हिन्दुस्तानी' के हिमायती हैं। महात्मा गाँधी जी भी उनके 'हिन्दुस्तानी' संबन्धी विचारों को मानते थे। डॉ. साहब ने सम्मेलन के भाषणों की व्यंगात्मक टीका-टिप्पणी करते हुए यों अपनी दलीलें पेश कीं—

"सम्मेलन की कार्रवाई का आरम्भ सर मिर्ज़ा इस्माईल की तकरीर से हुआ। उनकी तकरीर का स्वर कोमल और मध्यम था। उन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों के साथ अपनी सहानुभूति ज़ाहिर की, लेकिन एक ऐसी भाषा की जरूरत बताई जो हिन्दू-मुसलमान दोनों को प्यारी हो। अफ़सोस की बात है कि सर मिर्ज़ा की आवाज़ सम्मेलन के घनघोर गरजते बादलों में अनसुनी गूंज की तरह समा गई। हाँ, पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने उन्हें चेतावनी दे दी कि हो न हो, आखिरकार हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा मानना पड़ेगा।

चेतावनी के बाद भाषणों का समुन्दर उबल पड़ा। सम्मेलन के अखाड़े में पहल-वान अपने कर्तब दिखाने लगे। लेकिन सब भाषणों में एक राग की अलाप सुनाई दी।

× × ×

हिन्दी को संस्कृतमयी बनाने की सभी भाषणों में उत्तेजना दी गई। श्री कन्हैया-लाल मुन्शी जिनका नाम उनकी विचारधारा को उलहना देता है, संस्कृतीयता के बड़े हामी हैं। उनकी दलील बड़ी रोचक है, लेकिन संदेह को दूर करनेवाली नहीं।

× × ×

मुन्शीजी की सख्त भूल है, अगर वह यह समझते हैं कि हिन्दी स्वभाव से संस्कृतनिष्ठ है। हिन्दी की धुनियाँ और ग्रामरी क़ायदे संस्कृत से बहुत दूर हैं। हिन्दी ही नहीं बिहारी, नैपाली, बंगाली, असामी, उड़िया, मराठी, गुजराती, राजस्थानी की धुनियाँ और ग्रामर संस्कृत से कोसों दूर चली गई हैं। द्राविड़ भाषाओं का तो कहना ही क्या है। एक बात ज़रूर है। सम्प्रदायी खींचतान ने पुरानी बीती रस्मों-रीतियों में दोबारा जान डालने का रुजहान पैदा कर दिया है। हिन्दी को संस्कृतनुमा बनाने

---

(१) श्रीमती कमलादेवी गर्ग—'हिन्दी ही क्यों'-पृष्ठ १०५–१०८

का मौलान (प्रवृत्ति) बढ़ रहा है। हिन्दुस्तान की सभी भाषाओं में लिखनेवालों की निगाहें आगे नहीं देखतीं, पीछे तकती हैं। इसका नतीजा तो यह होता मालूम होता है कि जैसे यू. पी. में हिन्दी-उर्दू का झगड़ा चल रहा है, वैसे ही झगड़े बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी में चलने लगेंगे। हिन्दुओं की बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी अलग होगी, मुसलमानों की अलग।

× × ×

लेकिन हाथी के दाँत दिखाने के और हैं, खाने के और। इन सब उसूलों और दलीलों की आड़ में जो असलियत है वह कुछ और ही है। मि० मुन्शी ने उसे भी खोल कर कह दिया है। वह कहते हैं, "हमें एक पल के लिए भी न भूलना चाहिए कि हिन्दी-उर्दू का सवाल जो विशेष रूप से देश के सामने है, भाषा का सवाल नहीं है। वह तो सम्प्रदायी समस्या है, जिसे भाषा के सवाल का रूप दे दिया गया है।" इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ बनाने का कारण भाषा और साहित्य का सुधार नहीं, सम्प्रदायी झगड़े में अपनी माँग को कड़ और ऊँचा बनाना है ताकि फैसले के वक्त मोल-तोल करने में फ़ायदा रहे। यह निराली मतक (तर्क शास्त्र) है। हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े को चुकाने के लिए यह नीति बतलाई जाती है कि झगड़े को खूब तेज़ करो, फ़र्कों को खूब बढ़ाओ, सम्प्रदायी भावों को कट्टर से कट्टर, सम्प्रदायी संगठन को मज़बूत से मज़बूत बनाओ। बीज-बोओ कांटों के और आशा करो फल-फूलों की! यह सरासर भ्रम है, उन्माद है, निरर्थक चेष्टा है। (१)

१४—बालकृष्ण शर्मा—'नवीन' के विचारः—

श्री नवीन जी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्के समर्थक थे। गाँधीजी की हिन्दुस्तानी नीति का उन्होंने विनम्र शब्दों में घोर विरोध किया है। उनका विचार था कि 'हमारे मुसलमान भाइयों की भाषा संबन्धी नीति इस बात का एक और प्रमाण है कि उनका मनोभाव अभारतीय है। अतः भारतीय मुसलमानों की इस अराष्ट्रीय अथवा अभारतीय प्रवृत्ति के अस्तित्व को स्वीकृत करके ही हमें आगे की भाषा संबन्धी नीति का निर्णय करना होगा।' उनके विचार यों हैं—

"प्रश्न उठता है कि यह विरोध पुनः क्यों उठ खड़ा हुआ? इसका उत्तर भी स्पष्ट है। पहले महात्मा गाँधी ने हिन्दी को ही भारत की राष्ट्रभाषा उद्घोषित किया था और अहिन्दी प्रान्तों में—मद्रास, बंगाल, आसाम, सिन्ध आदि में उसके प्रचार के लिए प्रयत्न भी किये थे। इसके परिणामस्वरूप मुसलमान सशंकित हो उठे और उन्होंने अपरोक्षतः महात्मा गाँधी तथा काँग्रेस पर यह दोष लगाना आरंभ कर दिया

---

(१) श्रीमती कमलादेवी गर्ग,—'हिन्दी ही क्यों'-पृष्ठ ९५, ९७, १०१, १०२ (साप्ताहिक भारत)

कि वे भारतीय मुसलमानों की भाषा को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील हैं तथा यहाँ के मुसलमानों पर हिन्दी उनकी इच्छा के विरुद्ध लादी जा रही है। इन आक्षेपों का उद्देश्य सफल हुआ और तुरन्त ही भाषा की एक सर्वमान्य संज्ञा का अन्वेषण होने लगा और उस प्रकार उर्दू की सहायता से 'हिन्दुस्तानी' राष्ट्रीय-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। अनेक काँग्रेसजन इस नाम को समन्वयपूर्ण मानते हैं। किन्तु यह भ्रांतिपूर्ण धारणा है। वह भाषा जिसे पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आज़ाद तथा आचार्य नरेन्द्रदेव अ० भा० राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशनों में बोलते हैं, विरुद्ध प्रांजल उर्दू है। इसीको 'हिन्दुस्तानी' भी कहा जा सकता है जो कि वास्तव में उर्दू का ही एक अन्य नाम है।

× × × ×

हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी को थोपने के प्रयत्न का कड़ा विरोध किया जायगा। इसलिए काँग्रेस को या तो भाषा सम्बन्धी वाद-विवाद में ही नहीं पड़ना चाहिए अथवा उसे साहसपूर्वक हिन्दी को अपनाना चाहिए।

× × × ×

गाँधी मेरे जीवन में और मेरे सदृश लक्षावधिजनों के जीवन में क्या रहा है और क्या है—यह मैं क्या बताऊँ? जो महामानव अनायास ही मेरे हृदय-सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो गया है, जिसे मैं अपना मुक्ति-मंत्रदाता मानता हूँ, जिसे मेरी भावना एवं मेरी बुद्धि युगावतार के रूप में स्वीकृत कर चुकी है, जिसके चरणानुगमन करने का यत्किंचित् प्रयास जीवन-सफलता का सन्तोष प्रदान करता है, उस महापुरुष के विचार से सहमत न हो सकना मेरे लिए कष्टप्रद अवश्य है। किन्तु आज इस भाषा विषयक नीति के संबन्ध में मैं गाँधी का विरोध करने के लिए विवश हूँ। मैं समझता हूँ कि गाँधी 'हिन्दुस्तानी' का उद्घोष करके देश को भ्रान्त दिशा की ओर ले जा रहा है।"[1]

१५—वियोगी हरि के विचारः—

श्री वियोगी हरि जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३४ वें अधिवेशन के अध्यक्ष-पद से जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने गाँधी जी की 'हिन्दुस्तानी' नीति के विरोध में यह विचार व्यक्त किये। उनके विचार में 'हिन्दुस्तानी-भाषा' एक कृत्रिम भाषा है। इस कृत्रिम भाषा की समस्या को राजनीतिक रूप दे कर हिन्दू-मुसलमानों के बीच वैमनस्य पैदा करना देश के लिए मंगलकारी नहीं है। रेडियो की भाषा पर भी उन्होंने आपत्ति उठायी थी। उनके विचार यों हैं:—

---

(१) श्रीमती कमलादेवी गर्ग—'हिन्दी ही क्यों' पृष्ठ—११४, ११५, १२२।

"अच्छा तो यह होगा कि हिन्दी और उर्दू को अपने-अपने रास्ते बढ़ने और फैलने दिया जाय। समन्वय का मैं भी विरोधी नहीं, प्रेमी हूँ। किन्तु जिस प्रयत्न द्वारा हमारी भाषा की प्रकृति का अंग-भंग होता हो, उसे असुन्दर और विषम बनाया जाता हो, उस प्रयत्न को चाहे जो नाम दिया जाये, पर उसे समन्वय या सामंजस्य का प्रयत्न नहीं कहा जा सकता। राजनीतिक और साम्प्रदायिक प्रश्न हमारी भाषा पर दबाव नहीं डाल सकते।

× × ×

राष्ट्र की भावनाओं को जगाने और एक छोर से दूसरे छोर तक फैलाने में हिन्दी का सबसे अधिक हाथ रहा है। फिर हिन्दी को किसी सम्प्रदाय की भाषा कहने का कौन साहस करेगा? कल की हिन्दुस्तानी से भी उसे कोई खटका नहीं।

× × ×

रेडियो की वर्तमान हिन्दीघातक नीति का अन्त तुरन्त होना चाहिए।"[1]

हिन्दी के रूप के बारे में सभा का दृष्टिकोण :—

दक्षिण में हिन्दी प्रचार जब ज़ोर पकड़ने लगा, तब हिन्दी प्रचारकों के सामने यह समस्या उठ खड़ी हुई कि भविष्य में राष्ट्रभाषा का कैसा रूप होगा और हम किस प्रकार की भाषा का प्रचार करें। इस प्रश्न के समाधान में दो प्रकार की विचार धारायें प्रकट हुई। एक धारा शुद्ध हिन्दी मानी संस्कृत गर्भित हिन्दीवालों की और दूसरी धारा जनसाधारण की हिन्दी यानी किसानों, मज़दूरों और व्यापारियों की हिन्दी की रही। साहित्य भाषा जो संस्कृत निष्ठ है, उसे राष्ट्रभाषा के रूप में मानने को कई प्रचारक तैयार नहीं थे। राजनीति के क्षेत्र में भी इस प्रश्न को लेकर नेतालोग काफ़ी बहस कर रहे थे। कुछ लोगों का यह मत था कि यों तो हिन्दी भाषी प्रान्तों में अब भी अवधी, मैथिली, ब्रज, राजस्थानी, खड़ी बोली उर्दू आदि का बखेड़ा है ही। तब अहिन्दी प्रान्तों में भी राष्ट्रभाषा, साहित्यिक भाषा, शुद्ध हिन्दी, हिन्दुस्तानी, कामचलाऊ हिन्दी, जनसाधारण की बोली आदि के नाम का झगड़ा क्यों खड़ा किया जाय?

हिन्दी प्रचार सभा का दृष्टिकोण इस दिशा में स्पष्ट रहा। सभा राष्ट्रभाषा का प्रचार केवल राजनीतिक उद्देश्य से कर रही थी। साधारण जनता के अर्थ में मज़दूर, किसान, व्यापारी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी आते हैं। अतः राष्ट्रभाषा का प्रचार उन्हीं को दृष्टि में रखकर किया जाय, यही सभा के कार्यकर्ताओं का उद्देश्य था। वे ऐसी भाषा को राष्ट्रभाषा मानते थे, जिसमें फ़ारसी, अरबी और संस्कृत के प्रचलित

---

(१) श्रीमती कमलादेवी गर्ग—'हिन्दी ही क्यों' पृष्ठ—१०९, १११।

शब्द हों, जो हिन्दू तथा मुसलमान बिना किसी कठिनाई के, समझ सकें। उसी भाषा को साहित्य तथा राजनीति के क्षेत्र में स्थान मिलना चाहिए। अर्थात् बोलचाल की भाषा के अनुरूप ही साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, विद्वान आदि अपनी भाषा का रूप बदलें।

सभा की विवशता—

सन् १९४६ में सभा की समिति की बैठक में यह निर्णय हुआ था कि सभा का नाम 'हिन्दी प्रचार सभा' से बदल कर 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' रखा जाय। सभा रजिस्टर्ड संस्था होने के कारण तुरन्त ही इस निर्णय पर कारंवाई न हो सकी। लेकिन करीब सन् १९४० से सभा अपने प्रचार के साधनों में 'हिन्दुस्तानी' शब्द का व्यवहार करती रही। लेकिन सभा आरम्भ से लेकर हिन्दी की जिस शैली का उपयोग करती आयी, उसमें ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ।

नागरी लिपि के साथ उर्दू लिपि का भी प्रचार करने का प्रश्न उठा। सभा को विवश होकर उर्दू लिपि का प्रचार करना पड़ा। सभाने अपने पाठ्यक्रम में दोनों लिपियों को स्थान दिया। लेकिन सभा ने विद्यार्थियों की सुविधा का ख्याल करके उर्दू लिपि का नियम बहुत ही ढीला रखा था। 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा', वर्धा ने अपनी परीक्षाओं में उर्दू और नागरी दोनों को अनिवार्य स्थान दिया था। उसके मुकाबले में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की नीति इस मामले में अधिक उदार कही जा सकती है।

सभा की नीति—

हिन्दी प्रचार सभा की दृष्टि में हिन्दी प्रचार का कार्य न तो प्रादेशिक था न वह सांप्रदायिक था। राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित राष्ट्र संगठन के निमित्त ही दक्षिण में इस महत्वपूर्ण कार्य का आरंभ हुआ था। इसलिए हिन्दी प्रचार का क्षेत्र उस समय इतना स्वच्छ, इतना खुला हुआ था कि उसमें प्रान्त, सम्प्रदाय या स्वभाषा की दूषित वायु से किसी का दम छूट नहीं सकता था। दक्षिणवासियों ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाया था। सभी प्रान्तों में सभा का कार्य-क्रम, नीति और कार्यपद्धति एक सी रही। लेकिन सभा ने अनुभव किया कि अहिन्दी प्रान्तों के लोगों का हिन्दी प्रचार क्षेत्र में एक संगठित और सुव्यवस्थित कार्य-प्रणाली के अनुसार एकीकरण तथा उस संगठित शक्ति का केन्द्रीकरण बहुत ही श्रमसाध्य कार्य है। सभा की नीति और प्रयत्न इस दिशा में अत्यन्त सराहनीय रहे हैं।

हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ताओं में कोई भी ऐसा न देखा गया जिसने प्रान्तीयता अथवा सांप्रदायिकता के संकीर्ण दायरे में रहकर काम किया हो। सभी

हिन्दी प्रचारक यह भली-भाँति समझते थे कि प्रत्येक प्रान्त की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं और न्यूनाधिक मात्रा में अपने-अपने घरेलू झगड़े भी होते हैं। पर अपने पारिवारिक या प्रान्तीय झगड़े को दूर करने के लिए दूसरे प्रान्तवालों को उसमें घसीट लेना उचित नहीं है। हिन्दी-उर्दू के झगड़े के संबन्ध में सभा का दृष्टिकोण बड़ा ही निष्पक्ष रहा। उत्तर के हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों तक सीमित झगड़ा परिस्थितिवश दक्षिण के हिन्दी प्रचार-क्षेत्र की शुद्ध वायु को भी दूषित करने लगा। वह अन्त में एक राष्ट्रीय झगड़े के रूप में परिवर्तित हो गया। सभा इस विषय में बहुत ही सतर्क रही। इस हिन्दी-उर्दू झगड़े को दक्षिण के अहिन्दी प्रान्तों तक फैलने से रोकने एवं यहाँ के हिन्दी प्रचार के स्वच्छन्द वातावरण को कलुषित करने से अपने को बचाये रखने की पूरी-पूरी चेष्टा करती रही।

प्रकरण ९

राष्ट्रभाषा का नामकरण

और

लिपि-समस्या

सन् १९४० से राष्ट्रभाषा के नामकरण तथा राष्ट्रलिपि की समस्या को लेकर हिन्दी–हिन्दुस्तानी के समर्थकों में काफ़ी वाद-विवाद होने लगा। राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दुस्तानी होना चाहिए अथवा हिन्दी, यही विवाद का मुख्य विषय था। हिन्दी प्रचार सभा ने अपने कार्यकर्ताओं को हिन्दुस्तानी के नाम से राष्ट्रभाषा का प्रचार करने का आदेश दिया था, क्योंकि राष्ट्रभाषा आंदोलन के जन्मदाता गाँधीजी ने स्वयं यह महसूस किया था कि आगे हिन्दुस्तानी के नाम से ही राष्ट्रभाषा का प्रचार होना चाहिए। इसी कारण उन्होंने वर्धा में 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' की स्थापना की थी। उनकी इच्छा थी कि हिन्दुस्तानी की शैली ऐसी हो कि सारे उत्तर के शहरों और गाँवों के रहनेवाले उसे समझ सकें, लिपियाँ उसकी फ़ारसी और नागरी दोनों रहें। पहले ही से राष्ट्रभाषा के स्वरूप और शैली के संबन्ध में उनकी यही कल्पना थी। लेकिन परिस्थिति से विवश होकर उन्हें अपने विचार को स्पष्ट करने, राष्ट्रभाषा-का निर्धारण करने एवं कार्य का दिग्दर्शन कराने की आवश्यकता मालूम पड़ी। अतः यह निश्चय हुआ कि राष्ट्रभाषा के प्रचार की बागडोर 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' अपने हाथ में ले और समूचे भारत में उसके प्रचार का उत्तरदायित्व ग्रहण करे।

'सभा' ने पिछले वर्षों में प्रचार का कार्य नागरी लिपि के जरिये किया था। फ़ारसी लिपि का प्रचार राष्ट्र-लिपि के रूप में करने का सभा ने कोई प्रयत्न नहीं किया था। गाँधीजी के निर्देश के अनुसार 'सभा' राष्ट्रभाषा के स्वरूप और शैली के अतिरिक्त राष्ट्रलिपि के रूप में नागरी के साथ फ़ारसी लिपि का भी प्रचार करने के लिए मजबूर हुई।

फ़ारसी लिपि पर गाँधीजी के विचार :—

फ़ारसी लिपि के प्रचार के लिए ये दलीलें दी गयीं कि अब तक हिन्दी-प्रचार और हिन्दी-साहित्य का क्षेत्र संकुचित रहा। अतएव राष्ट्र के एक बड़े हिस्से को अछूता रखकर ही अभी तक का प्रचार और साहित्य-सृजन का कार्य हुआ है। फ़ारसी लिपि में राष्ट्र भाषा हिन्दुस्तानी का जो साहित्य छिपा पड़ा है, वह काफी उन्नत है। उसे बाहर निकालकर लोकप्रिय बनाने का काम भी हिन्दी-प्रचारकों को करना

चाहिए, उसे अपनाने से राष्ट्रभाषा की पूँजी बढ़ेगी, उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने से राष्ट्रसेवा अधूरी रहेगी। इस दिशा में कार्य पहले ही होना चाहिए था।

गाँधीजी नागरी लिपि को ही प्रधानता देते थे, पर मुसलमानों के लिए वैकल्पिक रूप में फारसी लिपि में लिखने की छूट देने के पक्ष में थे। जो हिन्दू फ़ारसी लिपि में लिखना चाहते हैं उनको भी उसमें लिखने की आज़ादी होनी चाहिए, यह भी उनका कथन था। हिन्दू-मुसलमानों के बीच की शंका-दृष्टि दूर करना ही उनका उद्देश्य था। उन्होंने इस सम्बन्ध में सन् १९१७ में भड़ौंच में हुए 'गुजरात शिक्षा परिषद्' के अधिवेशन में सभापति-पद से जो भाषण दिया था, उसका निम्न-लिखित अंश ध्यान देने लायक है'—

"अब रहा सवाल लिपि का। फ़िलहाल मुसलमान लड़के ज़रूर ही उर्दू लिपि में लिखेंगे। हिन्दू ज़्यादातर देवनागरी में लिखेंगे। 'ज्यादातर' शब्द का प्रयोग मैं इसलिए कर रहा हूँ कि हज़ारों हिन्दू आज भी अपनी हिन्दी उर्दू लिपि में लिखते हैं और कुछ तो ऐसे हैं, जो देवनागरी लिपि जानते भी नहीं। आखिर जब हिन्दू और मुसलमानों के बीच शंका की थोड़ी भी दृष्टि न रहेगी, जब अविश्वास के कारण दूर हो चुकेंगे, तब जिस लिपि में शक्ति होगी, वह लिपि ज्यादा लिखी जायगी और वह राष्ट्रीय लिपि बनेगी।"[1]

उर्दू मुसलमानों की राष्ट्रभाषा है—

सन् १९१८ में इन्दौर के साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में भी गाँधीजी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों का प्रचार होना चाहिए। इस संबंध में आपने अपने विचार यों व्यक्त किये—

"मुसलमान भाई उर्दू लिपि में ही लिखेंगे। हिन्दू बहुत करके नागरी लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों लिपियों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को दोनों लिपियों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। उसमें कुछ कठिनाई नहीं है। अंत में जिस लिपि में ज्यादा सरलता होगी, उसकी विजय होगी।"[2]

सामान्य लिपि—

गाँधीजी भारत की सारी भाषाओं के लिए नागरी लिपि को ही मान्यता देते थे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों को एक दूसरे के अधिक निकट लाने में देवनागरी को ही भारत की सामान्य लिपि के रूप में स्वीकार करने पर उन्होंने ज़ोर दिया। सन् १९३५ में उन्होंने 'नवजीवन' में इस संबन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये थे—

---

(१) **'सच्ची शिक्षा'—महात्मागाँधी (नवजीवन प्रकाशन) १९४७ का भड़ौंच का भाषण।**

(२) **सन् १९१८ में इन्दौर साहित्य सम्मेलन के भाषण से।**

"सचमुच मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिए एक ही लिपि का होना फायदेमन्द है और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है। इसमें शक नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम पागलपन, सुधार के मार्ग में एक महान विघ्न है। पर इसके पहले कि देवनागरी भारत की एकमात्र लिपि हो जाय। हमें हिन्दू भारत को इस कल्पना के पक्ष में कर लेना चाहिए कि तमाम संस्कृतजन्य और द्रविड़ भाषाओं के लिए एक ही लिपि हो। यदि तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामों के लिए इन सब लिपियों के स्थान पर देवनागरी का उपयोग होने लग जाय, तो वह एक भारी प्रगति होगी। उससे हिन्दू-भारत सुदृढ़ हो जायगा और भिन्न-भिन्न प्रान्त एक दूसरे के अधिक निकट आजायेंगे।"[1]

इसी विषय पर गाँधीजी ने सन् १९३५ के 'हरिजन सेवक' में और भी विशद रूप में अपने विचार प्रकट किये थे। उनका कहना था कि देश की विभिन्न प्रान्तीय लिपियों के स्थान पर देवनागरी लिपि देश की सामान्य लिपि के रूप में स्वीकृत हो जाने से कई लिपियाँ सीखने की कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। उनके विचारों का नीचे उद्धृत अंश बहुत ही महत्वपूर्ण है—

"हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रान्तीय लिपियाँ सीखने का व्यर्थ कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ी, उड़िया और बंगाली इन छः लिपियों को सीखने में दिमाग खपाने को उनसे कहा जाय! अगर आज कोई प्रान्तीय भाषायें सीखना चाहें, और प्रान्तीय भाषा-भाषी हिन्दी पढ़ना चाहें, तो लिपियों का यह अभेद्य प्रतिबन्ध ही उसके मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है। किसी को भूलकर भी यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि यह लिपि-सुधार प्रान्तीय भाषाओं के महत्व को कम कर देगा।[2]

उर्दू या रोमन लिपि संपूर्ण नहीं—

सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी को महत्व देते हुए गाँधीजी ने भारतीय साहित्यपरिषद् के मद्रासवाले दूसरे अधिवेशन में रोमन और उर्दू लिपि को असंपूर्ण बताया। 'अतएव उनके विचार में, उनमें से कोई भी लिपि देश की सामान्य लिपि बनने के योग्य नहीं है। उनके विचार इस संबन्ध में यों हैं—

"...लेकिन इसके साथ एक सर्वमान्य लिपि का होना आवश्यक है। तमिलनाडु में ऐसा करना कुछ मुश्किल नहीं है। क्योंकि इस सीधी-सादी बात पर ध्यान दीजिये कि नब्बे फीसदी से भी ज़्यादा हमारे देशवासी अशिक्षित हैं। हमें नये सिरे से उनकी शिक्षा शुरू करनी होगी, तब सामान्य लिपि के द्वारा ही हम 'उन्हें शिक्षित बनाने की

---

(१) 'नवजीवन' २१-७-१९२७.

(२) 'हरिजन सेवक' १०-५-१९३५.

शुरुआत क्यों न करें ? कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हम भी यूरोप की रोमन लिपि को ग्रहण कर लें। लेकिन फिर वाद-विवाद के बाद यह विचार बन चुका है कि हमारी सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है और कोई नहीं। उर्दू को उसका प्रतिस्पर्धी बताया जाता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि उर्दू या रोमन किसी में भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मकता नहीं है, जैसी देवनागरी में है।"[१]

रोमन लिपि सामान्य लिपि नहीं होनी चाहिए—

रोमन लिपि के समर्थकों की दलीलों का खोखलापन दिखाते हुए गाँधीजी ने उनसे कहा कि यह भारत की सामान्य लिपि बनने के उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वह वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक नहीं है। अतः विशेषतः भारतीय भाषाओं के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। लेकिन रोमन लिपि के प्रेमी उससे बाज़ नहीं आते थे। तब फिर भी रोमन लिपि सम्बन्धी अपना मत नीचे लिखे शब्दों में गाँधीजी ने स्पष्ट किया—

"रोमन लिपि न तो हिन्दुस्तान की सामान्य लिपि हो सकती है और न होनी चाहिए। यह हमसरी तो फ़ारसी और देवनागरी के बीच ही हो सकती है और उसके अपने मौलिक गुणों को अलग रख दें, तो भी देवनागरी ही सारे हिन्दुस्तान की सामान्य लिपि होनी चाहिए, क्योंकि विविध प्रान्तों में प्रचलित ज़्यादातर लिपियाँ मूलतः देवनागरी से ही निकली हैं।"[२]

अलग-अलग लिपि-समूह की व्यवस्थाः—

पं० जवाहरलाल नेहरू ने अंग्रेज़ी में हिन्दुस्तानी और लिपि संबंधी समस्या पर एक पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने अपने मौलिक विचार प्रकट किये हैं। उनके विचारों का संग्रह गाँधीजी ने 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित किया था। नीचे उद्धृत अंश से पाठक उनके विचार इस सम्बन्ध में जान सकते हैं—

"रोमन लिपि में अनेक लाभ होते हुए भी कम से कम फिलहाल तो अपनी देशी भाषाओं के लिए उसका प्रयोग हमारे लिए संभव नहीं है। इन लिपियों की व्यवस्था इस तरह होनी चाहिए। देवनागरी, बंगला, मराठी और गुजराती के योग से बनी एक लिपि; उर्दू और सिंधी के लिए एक लिपि; और अगर दक्षिण भारतीय भाषाओं की विभिन्न लिपियों को देवनागरी के समीप नहीं लाया जा सकता हो, तो दक्षिणी भाषाओं के लिए एक लिपि।[३]

विज्ञान तथा भावना में रोमन लिपि अपर्याप्तः—

जब असम में कुछ जातियों को देवनागरी की जगह रोमन लिपि में शिक्षा

१—'हरिजन सेवक' ३-४-३७.

२—'हरिजन सेवक' ३—७—३७.

३—'हरिजन सेवक' ४—९—३७.

देने की आयोजना बनी, तो गाँधीजी ने रोमन लिपि का विरोध करते हुए सन् १९३७ के 'हरिजन सेवक' में लिखा था कि रोमन लिपि वैज्ञानिक और राष्ट्रीय नहीं है। रोमन लिपि की ताईद देनेवाले अंधे अंग्रेजी भक्तों की आँखें खोलने में गाँधीजी के निम्नलिखित विचार सहायक होंगे—

"मुझे मालूम हुआ है कि असल में कुछ जातियों को देवनागरी लिपि की जगह रोमन लिपि में लिखना-पढ़ना सिखाया जा रहा है। मैं अपनी राय जाहिर कर ही चुका हूँ कि अगर हिन्दुस्तान में सर्वमान्य हो सकनेवाली लिपि है तो वह देवनागरी ही है, भले ही उसमें सुधार की गुंजाइश हो या न हो। शुद्ध वैज्ञानिक और राष्ट्रीय दृष्टि से जबतक मुसलमान भाई अपनी राजी से देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करते, तब तक उर्दू या फारसी लिपि जरूर जारी रहेगी। इन दो लिपियों के साथ रोमन लिपि का मेल नहीं बैठता। रोमन लिपि के समर्थक तो इन दोनों लिपियों को रद्द कर देने की राय देंगे, किन्तु विज्ञान तथा भावना दोनों दृष्टियों से रोमन लिपि नहीं चल सकती।"[1]

रोमन लिपि निरी भाररूप है—

देवनागरी लिपि को सर्वमान्य बताने के प्रबल कारणों को व्यक्त करते हुए गाँधीजी ने कहा कि करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए देवनागरी का सीखना आसान है, क्योंकि अधिकांश प्रान्तीय लिपियाँ देवनागरी से ही निकली हैं। रोमन लिपि का सीखना गाँधीजी के विचार में सच्ची लोकजागृति के रास्ते में बाधा उपस्थित करना था। उन्होंने यों लिखा था—

"रोमन लिपि का मुख्य लाभ इतना ही है कि छापने और टाइप करने में यह लिपि आसान पड़ती है। किन्तु करोड़ों मनुष्यों को इसे सीखने में जो मेहनत पड़ती है, उसे देखते हुए इस लाभ का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं। लाखों-करोड़ों को तो देवनागरी में या अपने-अपने प्रान्त की लिपि में ही लिखा हुआ, अपने यहाँ का साहित्य पढ़ना है। इसीलिए उन्हें रोमन लिपि जरा भी सहायता नहीं पहुँचा सकती। करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए देवनागरी का सीखना आसान है, क्योंकि अधिकांश प्रान्तीय लिपियाँ देवनागरी से निकली हैं। मैंने मुसलमानों का समावेश जान-बूझकर किया है। मसलन बंगाल के मुसलमानों की मादरी जबान बंगाली है और तमिलनाडु के मुसलमानों की तमिल। उर्दू-प्रचार के बर्तमान आंदोलन का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि हिन्दुस्तान भर के मुसलमान अपनी-अपनी प्रान्तीय मातृभाषा के अलावा उर्दू भी सीखेंगे। किन्हीं भी परिस्थितियों

---

(१) 'हरिजन सेवक' १८-२-३९.

में कुरान शरीफ़ पढ़ने के लिए उन्हें अरबी तो सीखनी ही पड़ेगी। मगर करोड़ों हिन्दू-मुसलमानों के लिए रोमन लिपि का प्रयोजन तो अंग्रेजी सीखने के सिवा कुछ भी नहीं। इसी तरह हिन्दुओं को अपने धर्म-ग्रन्थ मूल भाषा में पढ़ने के लिए देवनागरी सीखने की जरूरत पड़ती है और वे उसे सीखते ही हैं। इस तरह देवनागरी लिपि को सर्वमान्य बनाने के पीछे दृढ़ कारण है। अगर हम रोमन लिपि को दाखिल करेंगे तो वह निरी भाररूप ही साबित होगी और कभी लोकप्रिय नहीं बनेगी। सच्ची लोक-जागृति जब हो जायगी, तब इस प्रकार के भाररूप दबाव रह ही नहीं सकते। और जनजागृति तो बहुत जल्दी आनेवाली है। फिर भी लाखों-करोड़ों को जगाने में वक्त लगेगा। जागृति तो ऐसी कोई चीज है नहीं, जो साँचे में ढालकर बनायी जा सकती है। देश के कार्यकर्ता तो केवल लोगों की मनोवृत्ति की पेशबीनी करके उसके आने में जल्दी कर सकते हैं।" ['हरिजन सेवक' से]

अफ्रिका का अनुभवः—

गाँधीजी ने अफ्रिका के अपने अनुभवों के आधार पर यह सिद्ध किया कि देवनागरी लिपि के व्यवहार से विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक संबंधों को स्थापित करने में सुविधा और सुगमता होगी। उन्होंने अपने अनुभव के संबंध में ५-८-३९ के 'हरिजन सेवक' में यों लिखा थाः—

"मैं भी बरसों से एक लिपि का प्रतिपादन कर रहा हूँ। मुझे याद है कि दक्षिण अफ्रिका में गुजरातियों के साथ भारत संबंधी पत्र-व्यवहार में एक हद तक मैंने देवनागरी लिपि का व्यवहार भी शुरू कर दिया था। इसमें शक नहीं कि ऐसा करने से विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्धों में बहुत सुबिधा हो जायगी और विभिन्न भाषाओं के सीखने में आज के बनिस्बत कहीं ज्यादा आसानी होगी।"

कहाँ जापान, कहाँ हम ?ः—

गाँधीजी ने जापान के लड़कों के मातृभाषा प्रेम का आदर्श हमारे सामने रखते हुए 'हिन्दू विश्व-विद्यालय', काशी के दीक्षान्त भाषण (सन् १९४२) में अंग्रेजी में सब विषय पढ़ाने की मूर्खता पर प्रकाश डाला है। उनके भाषण का नीचे उद्धृत अंश हमारे शिक्षा-शास्त्रियों के लिए शिक्षाप्रद है।

"जापान की कुछ बातें सचमुच हमारे लिए अनुकरणीय हैं। जापान के लड़कों और लड़कियों ने यूरोप वालों से जो कुछ पाया है, सो अपनी मातृभाषा जापानी के जरिये पाया है; अंग्रेजी के जरिये नहीं। जापानी लिपि बहुत कठिन है, फिर भी जापानियों ने रोमन लिपि को कभी नहीं अपनाया। उनकी सारी तालीम जापानी लिपि और जापानी जबान में दी जाती है। जो चुने हुए जापानी पश्चिमी देशों में खास किस्म की तालीम के लिए भेजे जाते हैं, वे भी जब आवश्यक ज्ञान पाकर

लौटते हैं, तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियों को जापानी भाषा के जरिये ही देते हैं। अगर वे ऐसा न करते और देश में आकर दूसरे देशों जैसे स्कूल और कालेज अपने यहाँ भी बना लेते और अपनी भाषा को तिलाँजलि देकर अंग्रेजी में सब कुछ पढ़ाने लगते, तो उससे बढ़कर बेवकूफी और क्या होती ?"[1]

अंग्रेजी के प्रभुत्व का सबूतः—

उक्त दीक्षान्त भाषण के सिलसिले में गाँधीजी ने अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व का एक प्रत्यक्ष, किंतु हास्यास्पद उदाहरण दिखाते हुए भारतीयों की दासता की मनोवृत्ति पर निम्नलिखित शब्द कहे—

"एक और बात मैंने देखी। रास्ते में विश्व-विद्यालय का विशाल प्रवेश द्वार पड़ा। उस पर नजर गयी तो देखा, नागरी लिपि में 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' इतने छोटे हरूफों में लिखा है कि ऐनक लगाने पर भी वे नहीं पढ़े जाते। पर अंग्रेजी में Benares Hindu University ने तीन चौथाई से भी ज्यादा जगह घेर रखी थी। अगर दरवाजे पर फारसी में, नागरी में या हिन्दुस्तान की दूसरी किसी लिपि में कुछ लिखा जाता, तो मैं उसे समझ सकता था। लेकिन अंग्रेजी में उसका वहाँ लिखा जाना भी हम पर जमे हुए अंग्रेजी जबान के साम्राज्य का एक सबूत है।[2]

रोमन लिपि का सुझाव उसकी खूबी के कारण नहीं:—

गाँधीजी कहते थे कि यद्यपि रोमन लिपि का साम्राज्य हिन्दुस्तान में फैला हुआ है, तो भी वह भारतीय लिपियों की जगह लेने में असमर्थ है। रोमन लिपि का सुझाव यदि गाँधीजी ने दिया हो, तो वह केवल समझौते के रूप में किया है; न कि रोमन लिपि की विशिष्टता के कारण। इस पर उन्होंने सन् १९४२ के 'हरिजनसेवक' में भी अपने विचार यों स्पष्ट किये:—

"रोमन लिपि ने हिन्दुस्तान में अपने पैर जमा लिये हैं। लेकिन वह हिन्दुस्तानी लिपियों की जगह नहीं ले सकती। रोमन लिपि का सुझाव अपनी खूबी के लिए नहीं, बल्कि बतौर समझौते के लिए किया गया है। उसके पक्ष में, सिवाय इसके कि वह सारी पश्चिमी दुनियाँ में फैली हुई है, और कोई दलील नहीं। रोमन लिपि का अपना एक महान् और अद्वितीय स्थान है। उससे ज्यादा ऊँचे स्थान की आकांक्षा उसे नहीं रखनी चाहिए।[3]

---

(१) 'हरिजन सेवक' १–२–४२।
(२) 'हरिजन सेवक' १-२-४२।
(३) 'हरिजन सेवक १२-४-४२।

उर्दू को रोमन लिपि में लिखने का कारणः—

गाँधीजी नागरी लिपि को भारत की सामान्य लिपि के रूप में सर्वमान्य बनाना चाहते थे। अतएव, वे समय-समय पर नागरी के ज़बर्दस्त समर्थक बनकर अपने विचार भाषणों और लेखों द्वारा व्यक्त करते रहे। लेकिन अंग्रेजी तथा अंग्रेजी हुकूमत के कट्टर अनुयायियों ने रोमन लिपि की महत्ता की प्रशंसा करते हुए उसके प्रचार का ढिंढोरा पीटना शुरू कर दिया, तो गाँधीजी से न रहा गया। उन्होंने खुल्लमखुल्ला उसका विरोध किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने उग्र विचार २१-४-१९४६ के 'हरिजन सेवक' में यों व्यक्त किये—

"नये विचारों को समझने की मेरी पूरी तैयारी के रहते हुए भी नागरी और उर्दू लिपि के बजाय रोमन वर्णमाला को फैलाने के लिए लोगों को उकसाने का क्या खास कारण हो सकता है, सो मैं नहीं समझ पाया हूँ। यह सही है कि हिन्दुस्तानी फौज में रोमन वर्णमाला बहुत ज्यादा इस्तेमाल की जाती है। मुझे ऐसी आशा करनी चाहिए कि अगर हिन्दुस्तानी फौज में देश-प्रेम की भावना भरी है, तो वह नागरी और उर्दू दोनों लिपियों को सीखने में एतराज न करेगी। आखिरकार हिन्दुस्तानी जनता के इतने बड़े समुद्र में हिन्दुस्तानी सिपाही एक बूँद ही तो है। उसे अंग्रेजी तरीके को खत्म कर देना चाहिए। नागरी या उर्दू अक्षरों को सीखने में अंग्रेज अफ़सरों की सुस्ती ही शायद उर्दू को रोमन लिपि में लिखने का कारण हो।

श्री काका कालेलकर का पत्र और गाँधीजी का उत्तरः—

श्री काका कालेलकर ने अपने एक पत्र में गाँधीजी से पूछा कि "यदि 'यूनियन' के मुसलमान यूनियन के वफ़ादार रहेंगे, तो क्या वे हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिन्दी-उर्दू दोनों ही सीखेंगे?" गाँधीजी ने उत्तर में यों लिखा कि 'काका साहब जो कुछ कहना चाहते हैं, वह नयी बात नहीं है। लेकिन आज़ाद हिन्द में यह बात यूनियन को ज्यादा जोरों से लागू होती है। अगर यूनियन के मुसल्मान हिन्दुस्तान की तरफ वफ़ादारी रखते हैं, और हिन्दुस्तान में खुशी से रहना चाहते हैं, तो उनको दोनों लिपियाँ सीखनी चाहिए।[१]

पाकिस्तान की बुराई की नकल न करें—

जब गाँधीजी नागरी लिपि के साथ उर्दू लिपि के प्रचार का समर्थन करने लगे तो कुछ सांप्रदायिक मनोवृत्ति वाले गाँधीजी की इस नीति का विरोध करने लगे। जब भारत का विभाजन हुआ तो हिन्दुओं की ओर से उर्दू लिपि का घोर विरोध शुरू हुआ। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने अपने पाठ्यक्रम में उर्दू लिपि सिखाने की जो नीति अपनायी, उसका भी दक्षिण के हिन्दी कार्यकर्ताओं ने प्रत्यक्ष

---

(१) 'हरिजन सेवक' ५-१०-४७।

रूप में, नहीं तो परोक्ष रूप में विरोध करना शुरू कर दिया था। गाँधीजी जिसके आजीवन अध्यक्ष हों, वह संस्था गाँधीजी के खिलाफ कैसे जा सकती थी? सभा अपनी नीति पर अटल रही। लेकिन इस उर्दू-नीति को लेकर उत्तर भारत में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। गाँधीजी, जो जीवन भर हिन्दू-मुस्लिम एकता के अनन्य आराधक रहे, लोगों के गुस्से से क्योंकर डरते? उर्दू के बहिष्कार की नीति का विरोध करते हुए उन्होंने अन्त में जो विचार इन भाषा-मूलक समस्याओं पर प्रकट किये, वे बहुत ही महत्व के हैं। उनके विचार यों हैं—

"मेरे विचार बदल नहीं सकते, खासकर हमारे इतिहास के इस अनोखे मौके पर। आखिर में मुझे यह कहना है कि जो लोग गुस्से में आकर उर्दू लिपि का बहिष्कार करते हैं, वे यूनियन के मुसलमानों की ख्वामख्वाह बेअदबी करते हैं। उनकी आँखों में ये मुसलमान आज परदेशी हो गये हैं। यह तो पाकिस्तान के बुरे तरीकों की नकल हुई, वह भी बढ़ा-चढ़ाकर। मेरी हरएक हिन्दुस्तानी से यह माँग है कि वह पाकिस्तान की बुराई की नकल करने से इनकार करें।"[1]

लिपि-समस्या पर सभा की नीतिः—

गाँधीजी के आदेशानुसार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने अपनी पाठ्य-पद्धति में उर्दू और नागरी दोनों लिपियों को सिखाने का क्रम शुरू किया। लेकिन दक्षिण भारत के लिए यह समस्या उत्तर के प्रान्तों की अपेक्षा अधिक कठिन प्रतीत हुई। उत्तर में तो सब कहीं न्यूनाधिक मात्रा में नागरी और उर्दू लिपि का प्रचलन है। पर दक्षिण के लोगों के लिए अपनी-अपनी प्रान्तीय लिपियों के अतिरिक्त अंग्रेजी के लिए रोमन लिपि, हिन्दी के लिए नागरी लिपि तथा फारसी लिपि सीखना बड़ा भाररूप प्रतीत हुआ। अब तक नागरी लिपि सीखने में लोगों को बड़ी कठिनाई नहीं मालूम पड़ी। लेकिन जब उर्दू लिपि भी सीखने के लिए कहा गया तो किसी-किसी कोने से विरोध की आवाज सुनायी दी। फिर भी सभा धीरे-धीरे उर्दू लिपि का प्रचार भी करने लगी। सभा को इसमें संपूर्ण सफलता तो नहीं प्राप्त हुई। हाँ, इतना तो जरूर हुआ कि हिन्दी प्रचारकों और विद्यार्थियों ने फारसी लिपि का नाम-मात्र ज्ञान प्राप्त किया। पढ़ने-लिखने की पर्याप्त योग्यता पाने के लिए उर्दू लिपि का अधिकतर लोगों ने विशेष अध्ययन या अभ्यास नहीं किया। सन् १९४७ की परीक्षाओं में करीब तीन हजार विद्यार्थी उर्दू लेकर बैठे थे। पाठ्यपुस्तकें भी समय पर विद्यार्थियों को प्राप्त नहीं हुईं। फिर भी इतनी संख्या में विद्यार्थियों ने उर्दू का परचा लिखकर उर्दू लिपि का स्वागत किया और देश के लिए त्यागवृत्ति का परिचय दिया।

---

(१) 'हरिजन सेवक' १८-१-४८।

उर्दू लिपि का प्रचार बढ़ाने के लिए 'नयी हिन्दुस्तानी' नाम की एक परीक्षा चलाने का सभा ने निश्चय किया। उर्दू और नागरी दोनों लिपियाँ उसके लिए अनिवार्य कर दी गयीं। लेकिन इन सबके होते हुए भी, इसमें सभा पूर्णतया सफल न हो सकी।

सभा ने उपर्युक्त नीति को अपनाते हुए दोनों लिपियों में हिन्दी प्रचार करने के लिए हिन्दी प्रचारकों को प्रेरित किया। सभा के संचालकों ने फ़ारसी लिपि के पक्ष में अपनी यह राय प्रचारकों के सामने रखी।

"नागरी लिपि के जरिये सारे देश में राष्ट्रभाषा का जो प्रचार हुआ है, वह स्तुत्य है। जो साहित्य छपा है, वह भी प्रशंसनीय है। लेकिन इस प्रचार व साहित्य ने राष्ट्रभाषा के क्षेत्र के एक बड़े हिस्से को अछूता ही छोड़ रखा है और वह फ़ारसी लिपि में छिपा पड़ा है। उसे भी बाहर निकालने, लोकप्रिय बनाने और बढ़ाने का काम भी राष्ट्रभाषा के प्रचारकों का ही होना चाहिए। राष्ट्रभाषा का यह साहित्य जो साधारणतया उर्दू के नाम से मशहूर है, नगण्य नहीं है और हाल का भी नहीं है, काफ़ी पुराना है। उसे भी अपनाने से राष्ट्रभाषा की पूँजी बढ़ेगी, घटेगी नहीं। उसकी उपेक्षा की दृष्टि से देखने से राष्ट्रसेवा अधूरी रहेगी और राष्ट्रहित भी पूरा नहीं सधेगा। इस दिशा में कार्य पहले ही शुरू होना चाहिए था, देर से ही सही, अब तो शुरू होना ही चाहिए। क्या, राष्ट्रभाषा के प्रचारक इस दृष्टिकोण को सही-सही समझने का प्रयत्न करेंगे? यह कतई न समझा जाय कि नये दृष्टिकोण से हमारे कार्य के रूप में या ध्येय में परिवर्तन होनेवाला है। इस नये दृष्टिकोण से हम अपने विचारों को सही, और उद्देश्य को संपूर्ण बनाते हैं। दक्षिण में कम से कम राष्ट्रभाषा के स्वरूप और शैली के सम्बन्ध में कोई गलती नहीं हुई। 'हिन्दुस्तानी' नाम का भी प्रचार काफी हुआ। फारसी लिपि के प्रचार में कुछ कसर अवश्य रह गयी। अब इसे दूर करने का भी काम शुरू होना चाहिए। इस काम पर प्रचारकों को ही पहले-पहल ध्यान देना चाहिए।"[1]

---

(१) 'हिन्दी प्रचारक'—दिसम्बर १९४४ (संपादकीय टिप्पणी)।

प्रकरण १०

हिन्दी प्रचार सभा का रजत-जयन्ती-उत्सव-१९४६

सभा की रजतजयन्ती का उत्सव दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण घटना है। दक्षिण में हिन्दी प्रचार का आरंभ सन् १९१८ में हुआ। उस दृष्टि से सन् १९४३ में रजतजयन्ती का उत्सव मनाना चाहिए था। लेकिन प्रतिकूल राजनैतिक परिस्थितियों के कारण जयन्ती-समारोह स्थगित रहा। सभा के आजीवन अध्यक्ष महात्मा गाँधी, उसके उपाध्यक्ष पट्टाभि सीतारामय्याजी, प्रधान मन्त्री सत्यनारायण जी और सभा के अन्यान्य पचासों हितचिन्तक नेता उन दिनों ब्रिटिश नौकरशाही के जेलों में बन्द थे। अतएव जयन्ती समारोह स्थगित रखना पड़ा। सभा अनुकूल और उपर्युक्त समय की प्रतीक्षा में रही। अन्त में सन् १९४६ में सभा की इच्छा पूरी हुई। महात्मा गाँधी की उपस्थिति में जयन्ती-उत्सव धूम-धाम से मनाया गया।

जयन्ती-उत्सव में भाग लेने के लिए दक्षिण में महात्मा गाँधी जी के आने का समाचार पाकर दक्षिण की जनता फूली न समायी। बरहमपुर से लेकर बेलगाँव तक और कन्याकुमारी से लेकर हैदराबाद तक के हिन्दी प्रचार क्षेत्र में उत्साह की लहर उठी। हिन्दी प्रेमी तथा हिन्दी के कार्यकर्ता इस उत्सव को सफल बनाने के प्रयत्न में जी जान से लग गये। उसके आयोजन, संगठन और संचालन में दक्षिण के हिन्दी-सेवियों ने जिस कार्यदक्षता तथा सेवावृत्ति का परिचय दिया, उसकी जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। उत्सव की सफलता का पूरा श्रेय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा को है।

तीन प्रमुख कार्यः—

इस उत्सव के अवसर पर तीन प्रकार के कार्य संपन्न करने की आयोजना बनी। एक तो राष्ट्रभाषा के प्रचार को और भी मजबूत और व्यापक बनाने के लिए पाँच लाख रुपये की निधि का संचय, दूसरा इस अवसर पर महात्मा गाँधी की नयी नीति के अनुसार पचीस हज़ार विद्यार्थियों को एकत्र करना और-तीसरा सारे दक्षिण में उत्सवों का ऐसा व्यापक आयोजन करना था जिससे सभा की नींव मज़बूत हो तथा भावी कार्यक्रम में सुगमता तथा जनता का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हो सके।

निधि-संचय और गाँधीजी का सिद्धान्तः—

गाँधीजी ने सभा को सलाह दी कि सारे भारत के भिन्न-भिन्न केन्द्रों से धन-संग्रह किया जाय। उत्तर भारत तथा मद्रास नगर से तीन लाख रुपये तथा दक्षिण के प्रान्तों से प्रत्येक प्रान्त से ५० हज़ार के हिसाब से दो लाख रुपये वसूल करने का उनका आदेश था। लेकिन सभा की इच्छा थी कि दक्षिण में फैले हुए हज़ारों गरीब प्रचारकों की सहायता के लिए एक और संरक्षण-निधि की भी आयोजना बनायी जाय। क्योंकि प्रचारकों की आर्थिक कठिनाइयों को यथा साध्य दूर करने तथा उनके कार्य को स्थायी बनाने के लिए यह निधि अत्यंत आवश्यक थी। किन्तु गाँधीजी का स्वावलंबन-सिद्धान्त संरक्षण-निधि के लिए अनुकूल न था। उनका यह सिद्धान्त था कि प्रचारकों का कार्य स्वावलंबी हो। उन्होंने कहा कि जो प्रचारक जिस जनता की सेवा कर रहा है, वह जनता उस प्रचारक की सहायता करेगी। इस संबन्ध में सभा के मंत्री श्री सत्यनारायणजी ने गाँधी जी से सादर अनुरोध किया कि प्रचारकों की स्थिति सुधारने के लिए इस प्रकार की निधि की नितान्त आवश्यकता है। लेकिन गाँधीजी से जिस दिन सत्यनारायणजी ने इस संबन्ध में परामर्श लिया उस दिन गाँधीजी मौन-व्रत रखे हुए थे। अतः उन्होंने अपने विचार लिपिबद्ध करके दिये उनके विचार यों थे:—

महाबलेश्वर,
५-६-१९४५

"सत्यनारायणजी को,

व्यक्तिगत स्वावलंब, अगर समझे हो तो, सामाजिक या संस्था के बारे में समझना चाहिए। अगर व्यक्ति माने कि वह शुद्ध मेहनत करे तो उसे रोटी मिल जायेगी, तो ऐसे ही संस्था को होगा। अर्थात् वह सेवा करे तो रोटी बगैर माँगे घर में आएगी। याने, सब खर्च मिल जायगा। बास्तव में यह खर्च पड़ोसियों से मिलना चाहिए। अगर नहीं मिले तो समझना चाहिए कि उस सेवा की वहाँ दरकार नहीं है। ऐसा हो सकता है, जैसा धर्मान्ध प्रदेश में अन्धकार नाबूद करना। इसका खर्च सुधारणा करनेवाले ही निकालेंगे। नियम तो वही लागू होगा। सुधारक आरंभ में भूखों मरेंगे, कुछ मर भी जायँ, उसका निभाव ईश्वर किसी न किसी तरह करेगा, ऐसा विश्वास रखना चाहिए। इसमें से पूरी बात नहीं समझे हो तो हम वार्तालाप करेंगे। उससे आगे नहीं जायेंगे। लेकिन चाहोगे तो वार्तालाप करूँगा, मुझे प्रिय यही है।

बापू के आशीर्वाद

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति जो जनता की सेवा करना चाहता है, वह अपने कार्य को स्वावलंबी बनाये। संस्था का भी यही आदर्श होना चाहिये।

गाँधीजी के विचारों का यह प्रभाव पड़ा कि सभा के निधि-पालकों ने संरक्षण-निधि का विचार छोड़ दिया। यह समझा गया कि 'प्रचारकों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कोई निधि, चाहे वह कितनी भी बड़ी क्यों न हो, नाकाफ़ी ही होगी। अत: उसे सुधारने का अच्छा तरीका यही है कि सभा, सारे दक्षिण में अपने कार्य का ऐसा अच्छा संगठन करे कि जनता कर्यकर्ताओं की सेवाओं के अनुपात में उन्हें आवश्यक आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिए स्वयं तैयार हो जाय।

गाँधीजी का मद्रास-आगमन—जनवरी १९४६:—

गाँधीजी ता० १९ जनवरी १९४६ की शाम को कलकत्ता से मद्रास रवाना हुए और ता० २० को वाल्टेयर पहुँचे। आन्ध्र के सुप्रसिद्ध नेता श्री. टी. प्रकाशम्, काला वेंकटराव आदि ने आन्ध्र देश की ओर से गाँधीजी का स्वागत किया। रास्ते में जहाँ-जहाँ गाड़ी रुकी, आन्ध्र की जनता द्वारा उनका स्वागत हुआ। उन्होंने लोगों से हिन्दुस्तानी प्रचार और हरिजनोद्धार के लिए रुपये की थैलियाँ स्वीकार कीं।

ता० २१ को गाँधीजी ने मद्रास नगर में पदार्पण किया। सेंट्रल स्टेशन तथा सड़कों के अनियंत्रित जनसमूह से उनको बचाने के लिए हिन्दी प्रचार सभा की प्रार्थना के अनुसार रेलवे के अधिकारियों ने उन्हें आम्बत्तूर स्टेशन पर उतारने की व्यवस्था की थी। ठीक समय पर गाड़ी स्टेशन पर पहुँची। जयन्ती-समारोह-समिति के अध्यक्ष श्री गोपालस्वामी अय्यंगार, श्री राजगोपालचारी, श्री. कामराज नाड़ार, सभा के प्रधान मंत्री श्री. मो. सत्यनारायण तथा अन्य गण्यमान्य नेताओं ने स्टेशन पर गाँधीजी का स्वागत किया। वहाँ से मोटर में ठीक पाँच बजे शाम को गाँधीजी सभा-भवन में पहुँचे। सभा के अहाते में तथा सड़क पर जमा हुए हज़ारों लोगों को गाँधीजी ने दर्शन दिये।

गाँधीजी के दल में कई प्रमुख व्यक्ति शामिल थे। श्री ठक्कर बाप्पा, श्री. जे. सी. कुमरप्पा, श्री. भरतन कुमरप्पा, श्री. प्यारेलाल, श्रीमती. राजकुमारी अमृत कौर, डॉ. सुशीला नय्यार, श्रीमती सुशीलाबाई पै, श्रीमती प्रभावती, श्रीजयप्रकाश नारायण, श्री. कनु गाँधी, श्री. आभा गाँधी, श्री. काका कालेलकर, श्री. नरहरि भाई पारीख, श्री. कृष्णदासजी जाजू, श्री. श्रीमन्नारायण, श्री. भाई धोत्रे, श्री. अण्णा साहेब सहस्रबुद्धे, श्री. सुधीर घोष, श्री. अमृतलाल नानावटी, श्रीमती सरोजिनी नानावटी, श्री. अमतुल सलाम, श्रीमती अमृतकुमारी वर्मा, श्री. कमलनयन बजाज, श्रीमती जानकी देवी बजाज, श्री. रामकृष्ण बजाज, श्री. सत्यनारायण बजाज आदि के नाम उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं।

गाँधीजी बारह दिन (ता० २१ जनवरी से १ फरवरी १९४६ तक) मद्रास में रहे। उनकी दैनिक प्रार्थना में लाखों लोग शामिल हुए। उनकी उपस्थिति में कई

सम्मेलन हुए। सैकड़ों आदमी उनसे व्यक्तिगत रूप में मिले। पचासों राष्ट्रीय तथा गैर-राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने उनसे मुलाकात कर आशीर्वाद पाये।

माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजी से भेंटः—

उन दिनों माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजी रोगग्रस्त होकर अस्पताल में पड़े हुए थे। गाँधी ने वहाँ जाकर उनसे भेंट की।

अपने परिवार के बीचः—

गाँधीजी के विचार में सभा के सभी कार्यकर्ता उनके 'निजी परिवार' के ही सदस्य थे। उन्होंने ता० ३० जनवरी को सबेरे सभा के कार्यकर्ताओं तथा उनके परिवार के लोगों को अपने आवास-स्थान में बुलवाया। गाँधीजी ने कहा—'अब तक तो मैं बाहर के लोगों से मिल रहा था, लेकिन अब मैं अपने ही परिवार के लोगों से मिलकर बातें करूँगा।' गाँधीजी को सभा के वहाँ उपस्थित सभी कार्यकर्ताओं तथा उनके परिवारजनों का अलग-अलग परिचय कराया गया।

हिन्दी प्रचार में वर्णभेद नहींः—

वहाँ उपस्थित एक हिन्दी कार्यकर्ता ने गाँधीजी से प्रश्न किया कि यदि सभा अपने अच्छे कार्यकर्ताओं को स्कूलों और कालेजों में नियुक्त होने देगी तो क्या, उससे राष्ट्र का हित होगा? गाँधीजी ने उत्तर दिया—"मुझसे कोई भी हिन्दुस्तानी सीखने आवे तो मैं उसे किसी प्रकार के वर्ण-भेद या श्रेणी-भेद का फ़र्क किये बिना हिन्दुस्तानी पढ़ाऊँगा। अगर कल लार्ड वेवल हिन्दुस्तानी सीखना चाहेंगे तो मैं अपना सबसे अच्छा कार्यकर्ता उस काम पर नियुक्त करूँगा।"

सभा के नामपरिवर्तन की सलाहः—

गाँधीजी ने सभा का नाम 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' कर देने का अनुरोध किया। लेकिन वैधानिक कठिनाई के सम्बन्ध में उन्होंने दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि विधान में परिवर्तन करने का अध्यक्ष को पूरा अधिकार है।

रोमन लिपि में गुलामी और कंगालेपनः—

गाँधीजी ने लिपि समस्या पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार यों व्यक्त किये। "जहाँ तक दो लिपियों के बदले रोमन लिपि लेने की बात है, मेरा तो विश्वास है कि हमें हर चीज़ अपनी ही लेनी चाहिए। रोमन को अपनाकर हम अपनी गुलामी और कंगालेपन का ही प्रदर्शन करेंगे। अगर हमारी लिपियाँ मज़बूत नहीं हैं तो उन्हें सुधारें।"

हिन्दुस्तानी शैली:—

गाँधीजी ने हिन्दुस्तानी शैली पर विचार यों प्रगट किये:—

'तुम्हें हिन्दी, उर्दू दोनों शैलियों और नागरी फ़ारसी लिपि पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए। उत्तर भारत के प्रचारकों को विशेषतः दक्षिण की भाषाओं में बोलने और लिखने पढ़ने का भी अभ्यास कर लेना चाहिए।'

तारीफ़ के लायक:—

रजतजयन्ती के उत्सव की सुव्यवस्था देखकर गाँधी जी बहुत ही प्रसन्न हुए। मुख्यतः हज़ारों प्रतिनिधियों के भोजन, निवास आदि की व्यवस्था करना कठिन था। लेकिन मद्रास के व्यापारियों ने भोजन की व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया और उसके निर्वाह में कोई बात उठा नहीं रखी। इस संबन्ध में जयन्ती उत्सव के पश्चात् गाँधीजी ने उन उदार व्यापारियों का अभिनन्दन करते हुए पत्र लिखा कि दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की रजतजयन्ती के मौके पर मद्रास के व्यापारियों ने शिबिर में सब प्रतिनिधियों के खाने-पीने का इंतज़ाम अपने हाथ में ले लिया था। ता० २३ जनवरी से लेकर ता० १ फरवरी तक यह काम उन्होंने बहुत अच्छी तरह चलाया। ५००० लोगों को खिलाना छोटी बात नहीं। भोजन अच्छा था और सफ़ाई का काफ़ी ख्याल रखा जाता था। सभा को अपनी तरफ़ से एक पैसा भी नहीं खर्च करना पड़ा। ऐसी संस्था के लिए यह बड़ी बात है। मद्रास के व्यापारी बधाई के योग्य हैं कि उन्होंने यह शुभ कार्य खुशी और प्रेम के साथ अपने सिर लिया।

समारोह-समितियाँ:—

हिन्दी प्रचार सभा ने रजतजयन्ती समारोह समिति के अधीन विविध कार्यों के सफल संचालन के लिए कई उपसमितियाँ भी बनायीं। उनमें धन-संग्रह, प्रदर्शिनी भोजन-व्यवस्था, वैद्यक, साफ-सफाई, ट्रैन्सपोर्ट, सेवादल, मनोरंजन-कार्य, निवास, सजावट, अग्नि-निवारण, प्रार्थना आदि के लिए जो समितियाँ बनीं वे प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त उत्सव के सिलसिले में होनेवाले समस्त सम्मेलनों की व्यवस्था, रजत-जयन्ती-ग्रन्थ-निर्माण आदि के लिए अलग-अलग समितियाँ बनायीं गयी थीं।

जयन्ती उत्सव को सफल बनाने में इन सभी समितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। कई तरह की कठिनाइयों और विघ्नों के होते हुए भी इन समितियों ने अपने कर्तव्य-निर्वाह में कोई कसर नहीं की।

धन-संग्रह:—

धन-संग्रह का कार्य सबसे मुख्य था। एक तो ५ लाख की जयन्ती-निधि संचय करने की बात थी। दूसरे उत्सव का खर्च निभाने के लिए स्वागत-समिति के सदस्य बनाने का कार्य था। इन कार्यों में सभा को आशातीत सफलता मिली।

भोजन-प्रबन्ध—

यह कार्य बड़ा कठिन और उत्तरदायित्व का था। हज़ारों प्रतिनिधियों के भोजन की व्यवस्था; वह भी लगातार दस-बारह दिनों के लिए करना वास्तव में अत्यंत दुष्कर कार्य था। लेकिन इस कार्य को मद्रास नगर के प्रमुख व्यापारियों ने बड़े उत्साह और दक्षता के साथ निभाया, जिसका अभिनन्दन गाँधीजी तक ने किया। अन्दाज़न ५०,००० लोगों ने भोजनालय में भोजन किया।

महत्वपूर्ण अन्नदान :—

नीडामंगलम् के मिरासदार श्री. सन्तान रामस्वामी ओडेयार ने रजत-जयन्ती की भोजन-प्रबन्ध-समिति की आवश्यकता भर चावल अपनी तथा अपने मित्रों की ओर से देने-दिलाने की उदारता दिखायी। कोयंबत्तूर, चित्तूर, नीलगिरि आदि स्थानों से भी भोजनालय के लिए स्थानीय सज्जनों ने आवश्यकतानुसार फल, सब्ज़ियाँ, तरकारियाँ आदि भेज कर भोजन की व्यवस्था में सहायता पहुँचायी थी।

निवास-व्यवस्था :—

हजारों प्रतिनिधियों के आवास-निवास की व्यवस्था में मद्रास सरकार तथा मद्रास नगरपालिका का पूरा सहयोग सभा को प्राप्त हुआ। त्यागरायनगर के सैकड़ों सज्जनों ने प्रतिनिधियों के ठहरने के लिए अपने-अपने मकानों में काफ़ी सुविधाएँ प्रदान की थीं। महात्मा गाँधी के ठहरने के लिए विशेष सुविधा आवश्यक थी। भीड़-भाड़ से उन्हें बचाये रखना जरूरी था। उसके लिए सभा-भवन के बगलवाले मकान के मालिक श्री. सुब्बरामय्यर ने अपना पूरा मकान गाँधीजी के ठहरने के लिए देकर अपने को कृतार्थ माना।

हिन्दुस्तानी नगर :—

हिन्दुस्तानी नगर जो जयन्ती-उत्सव के लिए तात्कालिक रूप में बाँसों और नारियल के पत्तों का बना था, बड़ा विशाल और काफी सुविधाजनक था। हजारों लोगों के ठहरने की व्यवस्था के अतिरिक्त, सम्मेलन, भोजनालय, स्नानागार, प्रदर्शिनी आदि सभी की व्यवस्था हिन्दुस्तानी नगर के अन्दर ही की गयी थी।

सजावट :—

'हिन्दुस्तानी नगर' के प्रवेश द्वार 'कस्तूरबा', 'जमनालाल बजाज' आदि नामों से अलंकृत थे। फाटक का निर्माण अत्यन्त आकर्षक और कलात्मक हुआ था। प्रदर्शिनी-भवन, प्रार्थना-मंडप, सम्मेलन-मंच आदि की सजावट चित्ताकर्षक थी। 'जैमिनी स्टुडियो' के मालिक श्री. एस. एस. वासन ने सजावट के लिए १०,००० रुपये तक खर्च किये थे। उनके सहयोगी श्री. वी. एन. के चारी ने भी इस कार्य में सहायता पहुँचायी थी।

सफाई :—

मद्रास नगरपालिका के आरोग्य-विभाग के द्वारा 'हिन्दुस्तानी नगर' की सफ़ाई का बड़ा अच्छा प्रबन्ध हुआ।

चिकित्सा :—

रोगियों की सेवा-सुश्रूषा के लिए एक अस्पताल खुला था। स्थानीय मेडिकल-कालेज के छात्र-छात्राओं के सहयोग से अस्पताल बहुत ही उपयोगी रहा।

प्रदर्शिनी :—

प्रदर्शिनी का नाम 'सेवाग्राम-निर्माण-कार्यक्रम-प्रदर्शिनी' रखा गया था। अठारह रचनात्मक कार्य-क्रमों की शिक्षाप्रद और आकर्षक प्रदर्शिनी भारत के राजनैतिक इतिहास में अपने ढंग की अकेली मानी जा सकती है। उस प्रदर्शिनी के संचालकों को तमिलनाडु चर्खा संघ, ग्रामोद्योग, नयी तालीम, हरिजन इंडस्ट्रियल स्कूल, विद्यार्थी-काँग्रेस आदि का हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ।

सम्मेलन-महोत्सव :—

जयन्ती उत्सव को सम्मेलनों का एक महोत्सव कहने में जरा भी अत्युक्ति नहीं है। सभा के १३ वें पदवीदान समारोह के अतिरिक्त मुख्यतः तेरहवाँ हिन्दी प्रचारक सम्मेलन, रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन, हरिजन सम्मेलन, महिला व बालक सम्मेलन, काँग्रेस कार्यकर्ता सम्मेलन, विद्यार्थी सम्मेलन, मज़दूर सम्मेलन, साहित्य-कलाकार सम्मेलन, नयी-तालीम-प्रमाणपत्र वितरणोत्सव, चरखा 'राली' तथा सूत कातने की स्पर्धा आदि सम्मेलन-महोत्सव के कार्य-क्रमों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। राष्ट्र-निर्माण के गुरुतर कार्य में लगे हुए लाखों कार्यकर्ताओं तथा उनके नेताओं को मार्ग दर्शन देने तथा उनमें स्फूर्ति तथा अदम्य उत्साह भरने में इन सम्मेलनों की देन अमर है।

सभा का तेरहवाँ पदवीदान समारोह :—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का तेरहवाँ पदवीदान सम्मेलन ता० २७ जनवरी १९४६ को महात्मा गाँधीजी की अध्यक्षता में सुसंपन्न हुआ। श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर ने दीक्षान्त भाषण दिया।

अंग्रेज़ी तालीम से नुकसान :—

श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर ने अपने दीक्षान्त भाषण में भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली से होनेवाले नुकसान पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार पर ज़ोर दिया। प्रान्तीय भाषा, नागरी-फारसी लिपि, हिन्दी-उर्दू झगड़ा आदि सामयिक

विषयों पर उन्होंने अपने विश्लेषणात्मक विचार प्रकट किये। उन्होंने अंग्रेज़ी तालीम की बुराइयों पर यों प्रकाश डाला :—

"जो तालीम हमें अंग्रेज़ी के राज में मिलती आयी है वह बिलकुल गलत रही है और उसने हमें काफ़ी नुक़सान भी पहुँचाया है। हमारी प्रान्तीय भाषाएँ आगे नहीं बढ़ सकीं और स्कूल और कालेजों में अंग्रेज़ी लाज़मी हो गयी। मोटे तौर पर राष्ट्रभाषा के न बढ़ने का यही सबब है। सल्तनतों का अपने पाँव जमाने के लिए यह भी एक तरीका होता है कि वे अपनी सभ्यता की छाप अभागे मुल्कों पर लगावें जिन्हें वे अपने कब्ज़े में रखना चाहती हैं।"

अंग्रेज़ी कौमी ज़बान नहीं बन सकती :—

भाषण में उन्होंने भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिए अंग्रेज़ी की अयोग्यता तथा हिन्दी की योग्यता पर भी यों अपने विचार व्यक्त किये—

"अंग्रेजी आम जनता के लिए कौमी ज़बान नहीं बन सकती। राष्ट्रभाषा या कौमी ज़बान तो वही हो सकती है जिसे लोग सबसे ज़्यादा तादाद में बोलते और समझते हों। यह ज़बान हिन्दुस्तानी है, जिसे उत्तर में हिन्दू, मुसलमान सब बोलते हैं और जो नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाती है।"

हिन्दी का विरोध क्यों ? :—

राष्ट्रभाषा हिन्दी को अनिवार्य रूप से स्कूलों में पढ़ाने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए आपने कहा—"कितने सालों से हमें अंग्रेज़ी लाज़मी तौर पर सीखनी पड़ी और हमने खुशी से सीखी। फिर कौमी ज़बान को लाज़मी बनाने में हमारी तरफ़ से क्यों विरोध होना चाहिए ? विरोध अगर कहीं हो तो उसकी वजह सिर्फ नासमझी और हम में देश-प्रेम की कमी होगी।"

राष्ट्रभाषा दो लिपियों में :—

पदवीदान समारोह के अध्यक्ष-पद से दिये हुए गाँधीजी के भाषण में हिन्दुस्तानी नीति, लिपि-समस्या आदि पर विवेचनात्मक विचार व्यक्त हुए। राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी न होकर हिन्दुस्तानी रखा जाय और फारसी और नागरी दोनों लिपियों में लिखी जाय, इस सिद्धांत के वे आरंभ से ही प्रबल समर्थक थे। अतः उन्होंने उन्हीं विचारों को यहाँ और भी निश्चित रूप से प्रकट किया।

वे यों बोले :—

"हिन्दी और उर्दू का झगड़ा फिज़ूल है। वे दोनों भाषाएँ एक ही हैं। हमारी राष्ट्रभाषा का नाम अब हिन्दी न रहकर हिन्दुस्तानी रहेगा। हमारी राष्ट्रभाषा एक लिपि नहीं, किन्तु दो लिपियों में लिखी जायगी।"

परीक्षाओं में उर्दू-पर्चा :—

दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार में लगे हुए हिन्दी कार्यकर्ताओं का (तेरहवाँ) सम्मेलन ता० २६ जनवरी १९४६ को हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा देश के महान नेता पं. सुन्दरलाल के सभापतित्व में हुआ। श्री काका कालेलकर ने सम्मेलन का उद्घाटन भाषण दिया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री. सुमित्रानंदन पंत ने भी सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख रहे।

१. हिन्दी भाषा और उर्दू नागरी-लिपियों के संबन्ध में गाँधीजी की नीति का समर्थन।
२. सभा का नाम परिवर्तन—'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' कर देना।
३. सभा की परीक्षाओं में उर्दू का पर्चा अनिवार्य बनाना।

उत्सव के अनोखे दृश्य:—

रजतजयन्ती के सिलसिले में मद्रास जैसे बड़े नगर में गाँधीजी की बारह दिन की उपस्थिति सारे दक्षिण भारतियों के लिए आकर्षण की वस्तु बनी। सारी जनता मद्रास शहर की ओर खिंच गयी। मद्रास नगर बारह दिन के लिए दक्षिण भारतियों का तीर्थ-स्थान बन गया। नगरपालिका को इसकी कल्पना भी नहीं थी कि नगर में इतनी बड़ी भीड़ हो जाएगी। वाहनों के आवागमन, खाने-पीने की व्यवस्था, नगर की सफ़ाई, पानी के प्रबन्ध आदि में अधिकारियों ने अपनी पूरी शक्ति लगायी।

हिन्दी का व्रत :—

गाँधीजी ने रजत-जयन्ती के सिलसिले में जितने भी सम्मेलन हुए, सभी में हिन्दी में ही बोलने का अटल व्रत रखा, जिसका दक्षिण के लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। हिन्दुस्तानी की नीति के संबन्ध में उन्होंने अपने दृष्टिकोण का परिचय भी दिया।

सभा के कार्य-कलापों पर ध्यान देते हुए भावी कार्यक्रम में आवश्यक सुधार लाने के लिए गाँधीजी ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये जो अत्यन्त महत्व के हैं।

१. सभा के कम से कम मुख्य कार्यकर्ताओं को दक्षिण की चारों भाषाएँ जाननी चाहिए। इन भाषाओं का समझना, लिखना और बोलना उनके लिए आवश्यक है।

२. सभा की कार्यवाही में अंग्रेज़ी का पूरा बहिष्कार होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में अंग्रेज़ी का उपयोग नहीं किया जाय और सारी कार्रवाई औचित्य के अनुसार हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाओं में की जाय।

३. हिन्दुस्तानी के साथ-साथ प्रान्तीय भाषाओं का उपभोग करना और प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति के लिए काम करना सभा का कर्तव्य होना चाहिए।

४. सारे दक्षिण भारत के लोगों के बीच में इस वक्त अंग्रेज़ी का जो बोलबाला है, उसे कम करके उसके स्थान पर हिन्दुस्तानी को बैठाने का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए आवश्यक योजनाएँ बनायी जाय और जितनी जल्दी हो सके, इसमें सफलता प्राप्त करने की कोशिश की जाय।

५. राष्ट्रीय कार्यों में हिन्दुस्तानी के समुचित प्रवेश के साथ-साथ हिन्दुस्तानी के असली-स्वरूप के संबन्ध में भी सभा को मौलिक प्रयत्न करना चाहिए। इस संबन्ध में महात्माजी ने आशा रखी कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, सारे हिन्दुस्तान के सामने ऐसा आदर्श रखे, जिससे लोग उत्तर-दक्षिण कहना छोड़कर दक्षिण-उत्तर कहने लग जायँ और तद्द्वारा कार्य विस्तार तथा मौलिक विचारों के प्रचार में दक्षिण, उत्तर की अपेक्षा ज़्यादा प्रधानता पाए।

६. जहाँ सभा कार्य-विस्तार, प्रचार-विस्तार तथा कार्य की बहुलता पर जो विशेष ध्यान दे रही है वहाँ इसके साथ-साथ ठोस कार्य, ठोस कार्यकर्ता तथा ठोस साहित्य-निर्माण की तरफ़ भी सभा को ध्यान देना चाहिए। सभा की सारी ताकत, विस्तार में लगाकर, खतम हो जाती हो तो कुछ बचाकर ठोस कार्य में भी लगाना आवश्यक है। तुरंत इस ओर सभा को अभिमुख होना चाहिए।

७. सभा को मौलिक साहित्य के निर्माण में हिन्दुस्तानी लिखने, बोलने और उसकी उन्नति करने में भी दक्षिण भारत के कार्यकर्ता, अपनी कार्य-पद्धति की मदद से स्वावलँबी हों।

८. नागरी तथा फ़ारसी लिपि के द्वारा हिन्दुस्तानी का प्रचार किया जाय, इसके लिए सभी मौलिक उपायों से जितना कार्य बढ़ सके, बढ़ाया जाय।

९. स्त्रियों के बीच में व्यापक रूप से कार्य करने के लिए प्रचारिकाओं की वृद्धि की जाय।

१०. सभा का नाम यथा शीघ्र 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' के रूप में बदल दिया जाय।

११. हिन्दुस्तानी का सही-सही उच्चारण तथा लहजे की तरफ़ ज्यादा ध्यान दिया जाय और उसकी तरक्की के लिए आवश्यक साधन काम में लाये जायँ।

१२. हिन्दुस्तानी प्रचारक जहाँ कहीं हों, वैयक्तिक रूप से रचनात्मक कार्यक्रम के किसी दूसरे अंश में भी, हो सके तो भाग लिया करें।

रजत जयन्ती उत्सव की तैयारी और व्यवस्था :—

जयन्ती समारोह की व्यवस्था के लिए सभा ने सभा के प्रमुख कार्यकर्ताओं, पदाधिकारियों की एक समारोह समिति बनायी थी। उत्सव के संचालन के लिए विभिन्न कार्यों के अनुसार अलग-अलग समितियाँ भी बनायी गयी थीं।

सम्मेलनों की कार्रवाई :—

"सभा की रजत-जयन्ती का उत्सव एक अभूतपूर्व उत्सव था। लगातार सन् १९४६ जनवरी २४ से ३१ तक सभा का अहाता और उसके आसपास की चप्पा-चप्पा भूमि, जयंती–उत्सव में शामिल होने के लिए आये हुए हज़ारों अतिथियों और प्रेक्षक से भरी हुई थी। 'हिन्दुस्तानी नगर' को तो एक महासागर की उपमा ही सोह सकती थी। विभिन्न भाषाएँ बोलनेवाले दक्षिण के सारे देश के स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े तथा जवान सब अपने रंग-बिरंगे पहनावों के साथ झुंड के झुंड नदी-प्रवाह की तरह सभी दिशाओं से आकर 'हिन्दुस्तानी नगर' के अथाह सागर में आ मिलते थे। हिन्दुस्तान की आत्मा उसकी राष्ट्रीय भावना के प्रतीक और उसकी महत्वाकांक्षाओं के प्रतितिधि गाँधीजी जहाँ मौजूद हों, वहाँ अगर लाखों की संख्या में लोग पहुँच जाएँ तो उसमें आश्चर्य ही क्या ? गाँधीजी के दर्शन की अभिलाषा हर एक भारतीय के मन में होना स्वाभाविक था। इस कारण रोज़ शाम को गाँधीजी की प्रार्थना का विशेष प्रबन्ध किया गया था जिसमें हर कोई शामिल हो सकता था। राष्ट्र-निर्माण के कार्य में लगे हुए विभिन्न प्रकार के कार्यकर्ताओं को गाँधीजी के दर्शन से ही संतोष नहीं हो सकता था। वे उनसे नया संदेश और दिशा-दर्शन के इच्छुक थे। सभा को इसका अंदाज़ था और इसीलिए सभा ने अपने प्रधान कार्य-क्रम जैसे रजत-जयन्ती समारंभ, पदवीदान समारंभ और प्रचारक सम्मेलन के साम रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन, हरिजन सम्मेलन, अध्यापक और विद्यार्थी सम्मेलन, महिलाओं और बालकों का सम्मेलन, मज़दूर सम्मेलन, साहित्य कलाकार सम्मेलन, काँग्रेस कार्यकर्ता सम्मेलन आदि का समावेश अपने कार्य-क्रम में विशेष रूप से किया था।"

सम्मेलनों का क्रम :—

रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन (ता० २४ से २८ जनवरी तक)

रजत-जयन्ती के अवसर पर दक्षिण भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सम्मेलन आयोजित करने के दो प्रधान उद्देश्य थे। एक तो यह था कि महात्मा गाँधीजी से भावी कार्यक्रम के लिए मार्गदर्शन और कार्य के लिए प्रेरणा मिले। दूसरा उद्देश्य यह था कि दक्षिण के तमाम कार्यकर्ताओं को परस्पर परिचय प्राप्त करने एवं विचार-विनिमय करने का अवसर मिले। इस सम्मेलन के संयोजक दक्षिण के सुप्रसिद्ध नेता श्री. जी. रामचन्द्रन् थे। यह सम्मेलन पाँच दिन तक ज़ारी रहा। दक्षिण के इतिहास में यह सम्मेलन अपने ढंग का अद्वितीय रहा। दक्षिण के चारों प्रान्तों के रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने इसमें बड़े उत्साह के साथ भाग लिया था। गाँधीजी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न विषयों पर चर्चा करने और उनके संबन्ध में उनके बहुमूल्य निर्देशों को जानने की सुविधा इस सम्मेलन में सबको प्राप्त हुई।

हरिजन सम्मेलन :—(२६-१-४६)

महात्मा गाँधीजी की उपस्थिति में हरिजनों का एक विराट सम्मेलन हुआ। दस हजार से अधिक हरिजनों ने सम्मेलन में भाग लिया।

महिला व बालक सम्मेलन :—

करीब बीस हज़ार माताएँ, बहनें और बच्चे इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। स्त्रियों की तरफ़ से दस हज़ार रुपये की थैली हिन्दी प्रचार के लिए गाँधीजी को भेंट दी गयी।

काँग्रेसी कार्यकर्त्ता सम्मेलन :—

दक्षिण के काँग्रेसी कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध नेता श्री कामरान नाडार (वर्तमान मुख्यमंत्री, मद्रास राज्य) की अध्यक्षता में हुआ। हज़ारों कार्यकर्त्ताओं ने इसमें भाग लिया। कार्यकर्ताओं को गाँधीजी से कई विषयों पर प्रश्न करके अपने सन्देहों का निवारण करने के लिए अवसर दिया गया। यह सम्मेलन बड़ा स्फूर्तिदायक रहा।

विद्यार्थी सम्मेलन :—(३०-१-१९४६)

करीब बीस हजार विद्यार्थियों का एक बृहत् सम्मेलन दक्षिण भारत के इतिहास में अभूतपूर्व और बहुत ही विशिष्ट रहा है। विद्यार्थियों ने आठ हजार रुपये की थैली गाँधीजी को भेंट दी। गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में विद्यार्थियों के सहयोग की आवश्यकता बतायी। राष्ट्र-निर्माण के विविध कार्यों में विद्यार्थियों की सेवाओं का महत्व समझाते हुए, उन्होंने विद्यार्थियों में एक नयी चेतना भरने का प्रयत्न किया। सम्मेलन का कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा।

साहित्य-कलाकार सम्मेलन :—(३०-१-१९४६)

राष्ट्र की सेवा के कार्य में अपनी प्रतिभा और कलाशक्ति से योगदान देने वाले साहित्यकारों और कलाकारों को गाँधीजी की उपस्थिति में एकत्र होने, एक दूसरे से परिचित होने तथा साहित्य, कला आदि विषयों पर विचार-विनिमय करने के उद्देश्य से यह आयोजित हुआ था। दक्षिण की चार भाषाओं तथा उत्तर भारत की भाषाओं के साहित्यिक लोगों ने इसमें भाग लिया था। गाँधीजी ने साहित्यकारों तथा कलाकारों से कहा कि "साहित्य और कला मानव की उन्नति के लिए उपयोग में आनी चाहिए। दोनों का मानव ने निर्माण किया है और उसी की उन्नति के लिए उनका उपयोग होना चाहिए। कला हमारे लिए हैं, कला के लिए हम नहीं हैं। आज के साहित्यकारों और कलाकारों को चाहिए कि वे अपनी कला को स्वातंत्र्य-प्राप्ति का एक बलिष्ठ साधन बनावें।"

नयी तालीम प्रमाण-पत्र- वितरणोत्सव :—(२९-१-१९४६)

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की तमिलनाडु शाखा के तत्वावधान में तिरुंचनगोड़ में जो नयी तालीन-शिबिर चला था, उसमें ट्रेनिंग पाये हुए शिक्षकों को गाँधीजी ने प्रमाण-पत्र दिये।

अन्य प्रान्तों में उत्सव :—

दक्षिण के चारों प्रान्तों में ता० ६ जनवरी १९४६ से लेकर १३ जनवरी तक सभा की रजत जयन्ती मनायी गयी।

मदुरा, ट्रिची, कोयंबत्तूर, एरनाकुलम्, कालिकट, ट्रिवेंड्रम, मैसूर, बंगलोर, धारवाड़, बेज़वाड़ा, राजमहेन्द्री, काकिनाड़ा आदि सैकड़ों केन्द्रों में विविध कार्यक्रमों के साथ जयन्ती का उत्सव धूमधाम से मनाया गया।[1]

विशेष सेवा-पुरस्कारः—

रजत-जयन्ती के अवसर पर चारों प्रान्तों के सर्वप्रमुख कार्यकर्ताओं को उनकी विशेष सेवाओं के उपलक्ष्य में पुरस्कार देने की घोषणा की गयी थी। तदनुसार पुरस्कार प्राप्त कार्यकर्ता तथा उनकी सेवाओं का परिचय नीचे दिया जाता है।

विशेष योग्यता — **कार्यकर्ता**

अच्छे संगठकः—

श्री. वे. आंजनेय शर्मा (आन्ध्र)
" वा. मु. कृष्णस्वामी (तमिल)
" सी. जी. गोपालकृष्णन् (केरल)
" हिरण्मय (कर्नाटक)
" एम. पी. गणपति (मद्रास)

सफल शिक्षकः—

श्री. पेय्येटि वेंकटसुब्बाराव (आन्ध्र)
" टी. एस. रामकृष्णन् (तमिल)
" ए. वासुमेनोन (केरल)
" काटपाटि श्रीनिवास शेणै (कर्नाटक)
" सुन्दरकृष्णमाचारी (मद्रास)

---

१. रजतजयंती-विवरण के आधार पर संग्रहीत (द० भा० हि० प्रचार सभा)

अधिक परीक्षार्थी तैयार करने वाले—

श्री. यलमंचिलि वेंकटेश्वर राव (आन्ध्र)
" ए. कैलासम् (तमिल)
" के. वासुदेवन् पिल्लै (केरल)
" ना. नागप्पा (कर्नाटक)
" गो. ह. शास्त्री (मद्रास)

साहित्य सेवकः—

श्री. रामानन्द शर्मा (आन्ध्र)
" अ. रामय्यर (तमिल)
" पी. के. नारायणन् नायर (केरल)
" एस. आर. शास्त्री (मद्रास)

धन-संग्रह के सहायकः—

श्री. चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा (आन्ध्र)
" ए. पी. वेंकटाचारी (तमिल)
" आर. कृष्णय्यर (केरल)
" पी. ब्रह्मैया (मद्रास)

हिन्दी कवि व लेखकः—

श्री. वारणासि राममूर्ति (आन्ध्र)
" ए. श्रीनिवास राघवन् (तमिल)
" पं० नारायणदेव (केरल)

सफल लेखक व अनुवादकः—

श्रीमती मोंगटि माणिक्यांबा देवी (आन्ध्र)
" रंगनायकी (तमिल)
श्री. एन. वेंकटेश्वरय्यर (केरल)
" गुरुनाथ जोशी (कर्नाटक)
" का. श्री. श्रीनिवासाचार्य (मद्रास)

अच्छे वक्ताः—

श्री. एस. वि. शिवराम शर्मा (आन्ध्र)
" एस. सदाशिवन् (तमिल)
" पी. के. केशवन् नायर (केरल)
" का. म. शिवराम शर्मा (मद्रास)

अच्छे अभिनेता:—

श्री. अटलूरि रामाराव (आन्ध्र)
" डाक्टर महालिंगम् (तमिल)
" सी. आर. नाणप्पा (केरल)
" वेंकटाचल शर्मा (कर्नाटक)
" रामाराव (मद्रास)

हिन्दी-सेवक:—

श्री. रायन रामुलु (आन्ध्र)
" सरदार वेदरत्नम् पिल्लै (तमिल)
श्रीमती टी. जे. भवानी अम्मा (केरल)
श्री. के. संपद्गिरि राव (कर्नाटक)
" के. संजीव कामत (मद्रास)

प्रकरण ११

अखिल भारतीय कॉंग्रेस समिति का सर्क्यूलर—१९४७.

अखिल भारतीय कॉंग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने रचनात्मक कार्य के रूप में हिन्दुस्तानी प्रचार को सर्वव्यापक बनाने की आयोजना बनायी। उसे कार्यान्वित करने के लिए एक विशेष समिति बनी। केंद्रीय कार्यालय में विभिन्न क्षेत्रों के कार्य संचालन के लिए एक अलग विभाग खुला। देश की सभी कॉंग्रेस कमेटियों के पास एक सर्क्यूलर भेजकर हिन्दुस्तानी प्रचार का कार्य सफलता पूर्वक चलाने के लिए आदेश दिया गया।

हिन्दुस्तानी प्रचार सम्बन्धी निर्देश की रूपरेखाः—

उद्देश्य—हमारा उद्देश्य होना चाहिए कि हिन्दुस्तानी को भारत की सामान्य भाषा अर्थात् भारत के लोगों के राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार का माध्यम बनाना। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के लिए आज अंग्रेजी भाषा इस जरूरत को बहुत कुछ पूरा कर देती है, पर भवी भारत में इस रूप में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अँग्रेजी अपना स्थान बनाये रखेगी, पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसे हिन्दुस्तानी के आगे सिर झुकाना पड़ेगा।

प्रान्तीय या प्रादेशिक क्षेत्र में विश्वविद्यालयों तक में प्रान्तीय या प्रादेशिक भाषा का ही बोलबाला रहेगा और उसे विकास का पूरा स्वतंत्र क्षेत्र मिलेगा। इस प्रकार हिन्दुस्तानी का अँग्रेजी से संघर्ष होगा, किसी प्रान्तीय या प्रादेशिक भाषा से कभी नहीं। भारत के उन लोगों के लिए हिन्दुस्तानी का अच्छा ज्ञान आवश्यक होगा, जो अंतप्रान्तीय और राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में काम करना चाहेंगे। दूसरे सब लोगों के लिए प्रान्तीय या प्रादेशिक भाषा का ज्ञान आवश्यक होगा और हिन्दुस्तानी की मामूली जानकारी जिससे मामूली बातचीत समझ में आ सके, काफ़ी होगी। संयुक्त प्रान्त, बिहार, पंजाब और सिंध में रहने वाले भारतीयों का बहुत बड़ा भाग हिन्दुस्तानी या उससे बहुत मिलती-जुलती भाषा बोलता और समझता है। मराठी और गुजराती भाषाओं ने हिन्दुस्तानी कोष के बहुत से शब्द अपना लिये हैं। इसलिए हिन्दुस्तानी प्रचार का मुख्य प्रश्न दक्षिण भारत, आसाम, बंगाल और उड़ीसा में है।

मान (दरजा)—साधारण उद्देश्य और मुख्य प्रश्न ऊपर बताया जा चुका। अब एक शब्द मान के विषय में। स्कूलों में हिन्दुस्तानी के ज्ञान का साधारण न्यूनतम

मान होना चाहिए, हिन्दुस्तानी की चौथी किताब पढ़ने और समझने की योग्यता। पढ़ाने का तरीका ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी भाषा बोलने की अपेक्षा अधिक समझ सकें और लिखने की अपेक्षा अधिक पढ़ सकें।

लिपि—शिक्षकों के लिए नागरी और फ़ारसी दोनों लिपियाँ सीखना और जानना आवश्यक हो सकता है, पर विद्यार्थियों के लिए वैकल्पिक।

साधन और एजेन्सियाँ:—

(क) काँग्रेस कमिटियाँ और काँग्रेस जन।

(ख) गैर-सरकारी, गैर-काँग्रेसी एजेन्सियाँ। उदाहरणार्थ—मद्रास की 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा'

(ग) विभिन्न प्रान्तों की सरकारें।

इन एजेन्सियों की मारफ़त हिन्दुस्तानी प्रचार का काम करना है।

(१) अब तक काँग्रेस कमिटियों ने, कुछ को छोड़कर, हिन्दुस्तानी प्रचार-कार्य प्रत्यक्ष रूप से हाथ में नहीं लिया है। अब से काँग्रेस कमिटियों को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि काँग्रेस का प्रत्येक पदाधिकारी हिन्दुस्तानी जानता हो या सीखे और हिन्दुस्तानी सिखाने के लिए अच्छा हो कि काँग्रेस दफ्तर में ही वर्ग चलें।

(२) काँग्रेस कमेटियाँ इसकी ओर ध्यान देंगी कि गैर-सरकारी और गैर-काँग्रेसी एजेन्सियों को यह काम करने के लिए हर तरह से मदद दी जाय।

(३) प्रान्तीय सरकारें यह कर सकती हैं कि प्रारम्भिक और माध्यमिक स्कूलों में हिन्दुस्तानी की पढ़ाई शुरू की जाय। इस विषय में 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा' ने पाँच, छः और सातवीं कक्षाओं के लिए जो पाठ्यक्रम तैयार किया है, वह आदर्श माना जा सकता है।

(४) काँग्रेस कमिटियाँ सरकारी अधिकारियों और शिक्षा संस्थाओं के मैनेजरों को हिस्दुस्तानी के ज्ञान के प्रचार की आवश्यकता बतायेंगे।

(५) विश्वविद्यालय एक विषय के रूप में विशेषतः भाषाओं के वर्ग में हिन्दुस्तानी पढ़ाने की व्यवस्था कर सकते हैं। हिन्दुस्तानी उन भाषाओं में एक होनी चाहिए, जो विद्यार्थी मैट्रिक्युलेशन या एन्ट्रेन्स परीक्षाओं में, जब तक ये परीक्षायें बनी हैं, ले सकें।

(६) शिक्षकों के सब ट्रेनिंग कालेजों के लिए हिन्दुस्तानी अनिवार्य विषय बना दी जा सकती है, जिससे हिन्दुस्तानी के काफ़ी शिक्षक मिल सकें।

(७) सरकारें सब गैर-सरकारी और कांग्रेसी संस्थाओं को हिन्दुस्तानी प्रचार का काम करने के लिए अच्छी आर्थिक सहायता देकर हिन्दुस्तानी प्रचार को प्रोत्साहन भी दे सकती हैं।

(८) सरकारें यह निश्चय कर सकती हैं कि मामलतदार या तहसीलदार से बड़े सब सरकारी अफ़सरों को हिन्दुस्तानी की कामचलाऊ जानकारी होनी चाहिए।"[१]

काँग्रेस की उदासीनता—

राष्ट्रीय महासभा (Indian Natinal Congqres) ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के सम्बन्ध में कई अधिवेशनों में प्रस्ताव पास किये। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा काँग्रेसी कार्यकर्ताओं के बीच में उन प्रयत्नों पर अमल करने की चेष्टा नहीं हुई। काँग्रेसी नेताओं और अन्य कार्यकर्ताओं का 'हिन्दी प्रचार आंदोलन' कांग्रेसी अधिवेशनों में प्रस्ताव पास करने तक में सीमित रहा! महात्मा गाँधी बार-बार कहते और लिखते रहे कि काँग्रेसी लोगों को हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। लेकिन उनके भाषणों और लेखों का प्रभाव काँग्रेसी नेताओं पर कम पड़ा। इस सम्बन्ध में सभा के मुखपत्र 'हिन्दी प्रचारक' के सितम्बर अंक में 'काँग्रेस और हिन्दी' शीर्षक लेख 'स्वयंभू', बम्बई ने लिखा था। उसका सारांश भी है—

"हमारी राष्ट्रीय महासभा, (काँग्रेस) ने अब तक इस देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के बारे में गंभीर विचार नहीं किया और न कोई निश्चित पथप्रदर्शन ही किया। महात्मा गाँधी ने अपनी दूरदर्शिता और कार्यकुशलता से काँग्रेस को हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। उन्होंने मद्रास प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करना काँग्रेसी लोगों का मुख्य कार्य बताया। कुछ बंगालियों ने भी गाँधीजी के स्वर में स्वर मिलाकर उसका समर्थन किया। काँग्रेसी अधिवेशनों में केवल दिखाने के लिए कुछ इने-गिने लोगों के हिन्दी भाषण होते रहे। मद्रासी प्रतिनिधियों को उनके हिन्दी भाषण-प्रहारों का शिकार भी होना पड़ा। इसके अलावा काँग्रेसी लोगों की ओर से हिन्दी प्रचार आंदोलन के लिए कुछ ठोस कार्य हुआ, या नहीं, इसका किसी को पता नहीं है। काँग्रेस का तमाम अंतर्प्रान्तीय पत्र-व्यवहार हिन्दी में होता रहा। मराठी, गुजराती, बंगाली तथा मद्रासी नेताओं ने अंग्रेजी ही में भाषण देने में गौरव की बात समझी।"[१]

श्री स्वयंभू के लेख में सत्य का अंश अधिक है। दक्षिण के काँग्रेसी नेताओं में आज भी ऐसे दो-चार व्यक्ति नहीं मिलेंगे, जो हिन्दी में अपने विचार प्रकट करने की योग्यता रखते हों। ऐसी स्थिति में यह कथन सर्वथा सत्य है कि काँग्रेस अथवा काँग्रेसी नेता लोग विशेषतः दक्षिणी नेता हिन्दी की ओर आज तक बिलकुल उदासीन ही रहे हैं। समय-समय पर काँग्रेसी अधिवेशनों में जो प्रस्ताव पास होते रहे

---

(१) 'हिन्दी प्रचार समाचार' १९४७ जुलाई-अगस्त।

(२) हिन्दी प्रचारक—सितम्बर ४७

और हिन्दी के प्रचार के लिए जो काँग्रेसी आदेश-निर्देश जारी किये गये, उन सबका क्या हुआ, अभी तक अज्ञात है।

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् की स्थापना :—

संविधान के अनुच्छेद ३५१ के निर्णय को पूरा-पूरा मानकर राजभाषा हिन्दी के प्रचार और विकास में सरकार की मदद करने के लिए सन् १९४६ नवम्बर में अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् की स्थापना हुई। इसकी आयोजना निम्न-लिखित प्रकार है—निर्देश :—संविधान में भाषा के रूप-निर्माण और प्रचार के लिए निम्न-लिखित उपबंध स्वीकृत हुआ—"हिन्दी भाषा की प्रचार-वृद्धि करना, उसका विकास करना; ताकि वह भारत के सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए, तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।" [अनुच्छेद ३५१—भा. सं.]

संविधान के इस निर्णय को पूरा-पूरा मानकर राजभाषा हिन्दी के प्रचार और विकास में सरकार की मदद कर सकें—ऐसी एक अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस प्रतीति को एक साकार रूप देने की चेष्टा भी की गयी। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप सन् १९४६ नवम्बर तारीख २ को देश भर में हिन्दी प्रचार करनेवाली संस्थाओं के प्रतिनिधियों और संसद के सदस्यों तथा हिन्दी के विद्वानों का एक सम्मेलन राजेन्द्रबाबू की अध्यक्षता में संपन्न हुआ और अखिल भारतीय परिषद् की स्थापना हुई। माननीय डॉ० राजेन्द्रप्रसाद उसके संस्थापक-संरक्षक हैं और श्री ग. व. मावलंकर अध्यक्ष, श्री गोविन्दवल्लभ पंत व श्री रंगनाथ दिवाकर उपाध्यक्ष हैं। श्री शंकरराव देव और श्री मो. सत्यनारायण परिषद् के मंत्री हैं। इस परिषद् की आवश्यकता तथा व्यापकता से प्रभावित होकर उत्कल, आन्ध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, आसाम, दिल्ली प्रदेश तथा काश्मीर प्रदेशों की हि. प्र. संस्थायें अ. भा. हि. परिषद् से सम्बद्ध हुईं।

समन्वय योजनाः—

परिषद् ने इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया, कि अहिन्दी प्रदेशों में काम करनेवाली हिन्दी प्रचार संस्थाओं के कार्य में समन्वय और एकरूपता लाना समयोचित और जरूरी है। इस जरूरी कार्य को संपन्न बनाने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों के सब प्रमुख हिन्दीप्रचार संस्थाओं के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाने का निश्चय परिषद् ने किया। उसका पहला सम्मेलन सन् १९५० सितम्बर में

बम्बई में तथा दूसरा सम्मेलन मार्च सन् १९५१ में नयी दिल्ली में हुआ। दिल्ली के सम्मेलन को केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के सचिव डा० ताराचंद जी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। इस सम्मेलन में अहिन्दी प्रदेशों में काम करनेवाली प्राचीन संस्थाओं ने भाग लिया था।

इस सम्मेलन की सिफ़ारिशों के आधार पर भावी कार्य-क्रम-योजना बनाने के लिए राष्ट्रपति के समक्ष राजभवन में सन् १९५१ जून में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें केन्द्रीय शिक्षा-समिति बनायी गयी।

शिक्षण व प्रकाशनः—

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् अपनी सम्बद्ध संस्थाओं के सहयोग से परिषद् की नियमावली धारा—४ (ख) के अनुसार हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए विद्यालय चलाना, अध्यापकों को तैयार करना तथा उपाधियाँ देना आदि कार्यों के साथ-साथ तेलुगु, तमिल, कन्नड़ व मलयालम् आदि अन्य प्रान्तीय भाषाओं को हिन्दी के माध्यम से सीखने के लिए उपर्युक्त पुस्तकें नागरी लिपि में प्रकाशित करना आदि कार्य भी आरंभ किया।

परीक्षा समितिः—

परीक्षाओं के संचालन के लिए एक परीक्षा-समिति बनायी गयी। इस समिति के सदस्य श्री मो. सत्यनारायण, श्री. गो. प. नेने, श्री. रजनीकान्त चक्रवर्ती, श्री. एस. महालिंगम्, श्री देवदूत विद्यार्थी, श्री जेठालाल जोशी, तथा श्री. अनसूया प्रसाद पाठक हैं।

परीक्षायें :—

इस योजना के अनुसार परिषद् की तरफ़ से पाँच परीक्षायें चलायी जायँगी—(१) भारतीय हिन्दी-परिचय, (२) प्रवेश, (३) प्रबोध, (४) विशारद, (५) भारतीय हिन्दी-पारंगत। इन में प्रथम चार परीक्षायें प्रादेशिक क्षेत्र में तथा 'पारंगत' परीक्षा अखिल भारतीय रूप में चलायी जायँगी। 'पारंगत' परीक्षा की पढ़ाई के लिए यह आवश्यक समझा गया कि विद्यालय एक ऐसी जगह पर चलाया जाय, जहाँ उसके लिए साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अनुकूल वातावरण प्राप्त हो। 'आगरा' उपयुक्त माना गया। वहाँ विद्यालय चलाने की व्यवस्था की गयी।

आगरा में संचालित विद्यालय को मदद पहुँचाने के लिए परिषद् से सम्बद्ध ग्यारह संस्थाएँ चुनी गयीं। इन संस्थाओं ने अपने अपने क्षेत्रों से छात्रवृत्ति देकर आगरा विद्यालय में अध्ययनार्थ छात्र-छात्राओं को भेजने की स्वीकृति दी। अल्पकाल में इस परिषद् ने देशभर में व्यापक रूप से कार्य करने की इस आयोजना में काफ़ी सफ़लता पायी। केन्द्र सरकार तथा इससे सम्बद्ध संस्थाओं के सहयोग एवं सहायता के बल

पर हिन्दी भाषा की देशव्यापक वृद्धि और विकास में यह परिषद् महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगी, इसमें सन्देह नहीं।

सभा के संगठन की मंडल योजना—१९५३

सभा की ओर से संगठन का काम आन्ध्र, तमिलनाड्डु, केरल तथा कर्नाटक की प्रादेशिक शाखाओं की ओर से होता रहा। दिन-ब-दिन काम बढ़ता ही गया और हिन्दी जब से राजभाषा के गौरवपूर्ण पद पर आरूढ़ हुई है, तबसे हिन्दी की लोकप्रियता नित्यप्रति बढ़ती भी गयी। तब सभा ने यह आवश्यक समझा कि उसके वर्तमान विशाल संगठन को और भी अधिक लोकोपयोगी, सुगठित और सुसम्बद्ध बनाने के लिए सभा के कार्य और क्षेत्र का थोड़ा और विकेंद्रीकरण किया जाय। इस विचार के समूचे कार्यक्षेत्र को (सन् १९५३ मार्च से) पंद्रह मंडलों में विभाजित किया गया। हर एक मंडल का विभाजन इस तरह किया गया कि उसके अंतर्गत तीन या चार जिले आ सकें, जिनकी कुल आबादी ५० लाख से ७० लाख की हो और एक ही संगठक अपने कार्यक्षेत्र में हर कहीं आसानी से पहुँच सके और वहाँ के कार्य की देखभाल कर सके। इन मंडलों का विभाजन यों किया गया[१]।

क्र० सं०	मंडल	मंडल का दफ्तर
१.	पूर्वीय आन्ध्र	वाल्टेर
२.	मध्य आन्ध्र	विजयवाड़ा
३.	दक्षिण आन्ध्र	अनन्तपुर
४.	उत्तर तमिलनाड	वेल्लूर
५.	मध्य तमिलनाड	तिरुच्चि
६.	दक्षिण तमिलनाड़	मदुरा
७.	दक्षिण केरल	तिरुवनंतपुरम्
८.	मध्य केरल	त्रिपूणित्तुरा
९.	उत्तर केरल	कोषिक्कोड
१०.	उत्तर मैसूर और कूर्ग	मैसूर
११.	पूर्व मैसूर	बंगलूर
१२.	उत्तर कर्णाटक	गुलबर्गा
१३.	पश्चिम कर्णाटक	धारवाड़
१४.	तेलंगाना	हैदराबाद
१५.	मद्रास	मद्रास

(१) आधार—'हिन्दी प्रचार समाचार' मई ५३

इन मंडलों के संगठन का कार्यभार सभा के अनुभवी कार्यकर्ताओं को सौंपा गया। ये संगठक अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत स्कूल के अधिकारियों, हिन्दी प्रचारकों और नेताओं से संपर्क स्थापित करेंगे। और सभा के कार्य का उन्हें परिचय देते रहेंगे। स्थानीय साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं से सम्पर्क बढ़ाना भी इन संगठकों का कार्य है। स्कूलों में कार्य करनेवाले हिन्दी अध्यापकों और जनता में हिन्दी प्रचार करनेवाले प्रचारकों को ये संगठक आवश्यक मदद पहुँचाते रहें। मंडल के अंतर्गत हिन्दी प्रचार केन्द्रों की कार्यप्रणाली में एकता लाने का प्रयत्न भी इनका कार्य है। इसके अतिरिक्त हिन्दी प्रचार कार्य को और भी अधिक मजबूत और स्थिर करने के लिए विभिन्न कार्यकर्ताओं के बीच परिचय बढ़ाने तथा आपस में विचार-विनिमय होने के लिए वे आवश्यक योजना बनाते रहें। संगठक शिक्षाधिकारियों से मिलकर शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी के प्रवेश सम्बन्धी विभिन्न प्रश्नों पर उनसे विचार-विनिमय करते रहें। इस सम्बन्ध में समय-समय पर सभा की नीति का भी वे अधिकारियों को परिचय देते रहें। संगठकों का यह भी मुख्य कार्य है कि राजभाषा हिन्दी के आन्दोलन को और भी अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय बनाने के लिए संगठक अन्यान्य क्षेत्रों में उसके प्रवेश के लिए आवश्यक कार्यवाही करें। प्रादेशिक भाषाओं को उनके यथोचित स्थान पर आसीन करने के लिए और राजभाषा के साथ प्रादेशिक भाषाओं के विकास के लिए भरसक सहायता पहुँचाते रहें।

राजभाषा हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं में किसी प्रकार की आपसी स्पर्धा नहीं है। वे एक दूसरे की सहायता से दोनों के विकास का प्रयत्न करेंगी। उनके बीच संघर्ष पैदा करना उन दोनों भाषाओं के विकास में विघातक स्थापित होगा। राजभाषा हिन्दी के प्रचार में इस नयी नीति का प्रचार करना हमारे संगठकों की सबसे बड़ी जिम्मेवारी है।

मण्डल[1]	जनसंख्या (लाखों में)	साक्षर (लाखों में)	हिन्दी जाननेवाले (लाखों में)	हिन्दी प्रचारक	१९५५ के परीक्षार्थी (हज़ारों में)
१. पूर्व आन्ध्र	६५.८	७.९	१.९	३२३	५
२. मध्य आन्ध्र	७२.८	१३.४	४.०२	८७७	६
३. दक्षिण आन्ध्र	६४.६	९.१	२.१	२१३	६
४. उत्तर तमिलनाडु	१०८.४	१६.८	१.९२	२२१	३
५. मध्य तमिलनाडु	९५.२	१८.६	४.०६	३७४	५
६. दक्षिण तमिलनाडु	७४.१	१६.४	३.००	३६४	४
७. दक्षिण केरल	५०.०	३०.०	५.८६	५११	५
८. मध्य केरल	४२.०	२८.०	५.२८	३०६	२
९. उत्तर केरल	४८.१	१४.८	३.०८	३३४	२
१०. उत्तर मैसूर व कुर्ग	५०.०	१२.५	१.६१	२०२	७
११. पूर्व मैसूर	५१.४	१२.८	२.४६	२४४	७
१२. पश्चिम कर्नाटक	६७.०	१३.४	४.७४	४६९	२६
१३. उत्तर कर्नाटक	६०.०	१०.०	१.०६	१३	१
१४. तेलंगाना	८०.०	१३.३	१.३६	८१	१
१५. मद्रास शहर	१४.२	४.३	१.७५	३०७	४
कुल जोड़—	९४३.६	२२१.३	४४.२९	४८३९	८८

भाषावार प्रान्त और भाषामूलक समस्याएँ:—

भारत आज दो खंडों में विभाजित है। भारत से पाकिस्तान के अलग हो जाने पर भी जनसंख्या की दृष्टि से यह देश अमरीका और रूस दोनों से बड़ा है। भारत की जनसंख्या अमरीका और रूस दोनों की मिली हुई आबादी से भी बड़ी है। सन् १९५१ की मनुष्य गणना के अनुसार हमारे देश की आबादी छत्तीस करोड़ से ऊपर थी। भारत का कुल रक़बा एक करोड़, बाईस लाख, सत्रह हजार, दो सौ (१, २२, १७, २००) वर्गमील है।

हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या सांप्रदायिकता की है। इस समस्या को लेकर हिन्दू व मुसलमानों में बड़ा संघर्ष हुआ था। फलतः पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में भारतवर्ष बँट गया, फिर भी इस समस्या को हम पूर्णतया हल नहीं कर पाये हैं।

१ 'हिन्दी प्रचारक का इतिहास' (आन्ध्र)

सांप्रदायिक-समस्या के बाद इस देश की सबसे बड़ी विषम समस्या भाषा-मूलक है। विधान के अनुसार हमारे देश की चौदह राष्ट्रभाषायें हैं। उनमें से हिन्दी को ही राजभाषा का पद प्राप्त हुआ है। संविधान ने भारत की प्रादेशिक भाषाओं तथा राजभाषा के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके उपयोग एवं विकास की सीमा भी निर्धारित की है।

यों तो भाषा विचार-विनिमय का एक साधन मात्र है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य और मनुष्य के बीच पारस्परिक सम्बन्ध बना रहता है। पारिवारिक, सामूहिक, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय जीवन की सीमा को छोड़कर आर्थिक, व्यापारिक तथा राजनीतिक क्षेत्र तक के कार्यों में एक भाषा का उपयोग अनिवार्य माना जाता है। यदि हमारे देश में सबकी समझ में आनेवाली अथवा सबसे बोली जानेवाली एक भाषा होती तो हमारी आज की यह समस्या इतनी विषम नहीं बनती। बड़ा देश होने के कारण हमारे देश में भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले रहते हैं। उनका अपनी-अपनी भाषा में बोलना और उन भाषाओं के विकास की ओर प्रवृत्त होना कोई असाधारण अथवा अस्वाभाविक बात नहीं। लेकिन एक बड़े राष्ट्र में लोग अपनी-अपनी भाषाओं की संकुचित सीमा में रहें और उन्हें अन्य लोगों से संपर्क न रखना पड़े यह असम्भव है। तब समूचे राष्ट्र के लिए एक सामान्य भाषा होनी चाहिए, यह बात निर्विवाद है। इसी को दृष्टि में रखकर ही सामान्य भाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार करने का प्रयत्न शुरू किया गया था, लेकिन स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी हमें इस प्रयत्न में सम्पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

आज यह देखकर किसी भी राष्ट्रभाषा प्रेमी को दुःख हुए बिना नहीं रहेगा कि भारत की यह भाषासमस्या अत्यन्त जटिल होती जा रही है। दक्षिण की प्रादेशिक भाषाओं (तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम्) का हिन्दी के साथ विरोध; और हिन्दी की पड़ोसी भाषाओं (मराठी, गुजराती, बँगला, पंजाबी) और हिन्दी के बीच में संघर्ष हो रहा है।

भाषावार प्रान्त का प्रथम प्रस्ताव—

कांग्रेस ने पहले पहल अपने कलकत्ते के अधिवेशन में श्रीमती बेसेंट की अध्यक्षता में १९१७ में हुआ था, भाषावार प्रान्तों की स्थापना के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किया था। तब तो भाषावार सिद्धान्त के अनुसार अलग-अलग प्रादेशिक काँग्रेस समितियाँ भी बनी थीं।

भाषावार प्रान्त के बनने पर सभी प्रान्तवाले अपनी-अपनी भाषा का उपयोग और विकास अधिक मात्रा में करेंगे, यह आशा की जाती थी। परन्तु हम देखते हैं कि आज भी सभी प्रान्तों में अंग्रेज़ी ही हुकूमत कर रही है। अपनी-अपनी भाषा की

वृद्धि या समृद्धि की बात ही दूर रही, सब प्रान्तवाले अपने पुराने मालिकों की भाषा अंग्रेज़ी की वृद्धि में दत्तचित्त दिखायी देते हैं। यह दासता की मनोवृत्ति जब तक दूर नहीं होगी, भारत में किसी भी भाषा का उद्धार नहीं होगा।

दक्षिण भारत की भाषा-समस्याएँ—

दक्षिण भारत में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा भाषा-मूलक समस्याएँ अधिक मालूम पड़ती हैं। यहाँ तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम् के आधार पर भाषावार प्रान्त बने हुए हैं। हर एक प्रान्त ने अपनी अपनी सरहदों और प्रमुख शहरों को लेकर झगड़ा किया था। आज भी सीमा-प्रदेशों, नगर-स्थावर संपत्तियों, नदियों, वनों आदि का झगड़ा संपूर्णतया मिटा नहीं है। इन झगड़ों को मिटाने में देश के लोग सरगर्मी से प्रयत्न कर रहे हैं।

हिन्दी और प्रान्तीय भाषाएँ—

ज्यों-ज्यों दक्षिण में हिन्दी का प्रचार अधिक व्यापक और मज़बूत होता गया, कुछ प्रतिक्रियावादी नेताओं के मन में यह शंका उठती गयी कि हिन्दी के प्रचार से दक्षिण की भाषाओं को धक्का लगेगा और उनका विकास बंद हो जायगा। प्रान्तीय पाठ-शालाओं में प्रान्तीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के विषय में मतभेद कम दिखायी पड़ा। अतएव कई प्रान्तों में मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाई की व्यवस्था भी हो गयी। लेकिन हिन्दी के प्रति कुछ लोगों की मनोवृत्ति आज भी कुछ सीमा तक विरोधात्मक ही रही। अपनी-अपनी भाषा की उन्नति की कामना करना और उसके लिए प्रयत्न करना हर एक व्यक्ति का कर्तव्य है। पर एक राष्ट्रभाषा के प्रचार से मातृभाषा के विकास में बाधा पड़ेगी, उसकी गति अवरुद्ध हो जायगी, यह कल्पना निराधार है। हिन्दी के ऊपर यह आक्रमण अन्य कारणों से होता हो, तो बात दूसरी है, लेकिन राष्ट्रभाषा सारी प्रान्तीय भाषाओं को दबा देगी, ऊपर उठने ही नहीं देगी। इसके समर्थन में कोई दलील न देकर केवल मातृभाषा की आड़ में हिन्दी का विरोध करना देश की उन्नति और एकता में रोड़े अटकाना है। उसे दूसरे शब्दों में देशद्रोह की प्रवृत्ति कह सकते हैं। दक्षिण भारत में हिन्दी का उपयोग कितना और किस सीमा तक होना चाहिए, इस बात को स्पष्ट न समझने के कारण ही राष्ट्र-भाषा के विरोध में ये लोग आवाज़ उठाते हैं। यह बात सर्वविदित है कि दक्षिण में हिन्दी प्रचार की नींव महात्मा गाँधी ने डाली थी। क्या, गाँधीजी से बढ़कर प्रान्तीय भाषा का प्रबल पक्षपाती दूसरा कोई हो सकता है? हिन्दी प्रचार-सभा की भी नीति प्रान्तीय भाषाओं के विकास एवं वृद्धि में सहायक रहती है। सभा की उच्च परीक्षाओं में मातृभाषा को प्रमुख स्थान देकर सभा ने अपनी नीति का प्रत्यक्ष परिचय भी दिया है। तब हिन्दी के विरोध के पीछे कौन-सी मनोवृत्ति काम कर रही है, उसे हमें

पहचान लेना है। जब अंग्रेज़ी राजभाषा बनी, विवश होकर देश के लोगों को अंग्रेज़ी पढ़नी पड़ी और उसके फलस्वरूप हमारी प्रान्तीय भाषाओं की अवनति हुई। तब किसी ने उसका विरोध नहीं किया। पिछली दो शताब्दियों से अंग्रेज़ी की गोलियाँ गले में उतरती गयीं और मातृभाषा गूँगी बनी रही, उसको हम सहन करते रहे। सहन नहीं होता, तो करते क्या ? इस लम्बी अवधि में भी अंग्रेज़ी हमारे देश की सामान्य भाषा नहीं बन सकी। आज भी हम उसे स्कूलों के पाठ्यक्रम में समुचित स्थान दे नहीं पाये हैं। अंग्रेज़ी के स्तर को और ऊँचा उठाने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं। विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम आज भी अंग्रेजी ही है, उसके स्थान पर मातृभाषा या राष्ट्रभाषा को माध्यम बनाने की ओर हम ज़ोर से कदम नहीं उठा सके हैं।

आज हमारा देश स्वतंत्र है, यदि पराधीनता में हमने अंग्रेज़ी पढ़ी हो, उससे कुछ लाभ उठाया हो, तो क्या इसीलिए उसी पराधीनता के अभिशाप को स्वतंत्र भारतीयों के मत्थे मढ़ने की चेष्टा करना कहाँ तक न्यायसंगत है ? हिन्दी अंग्रेज़ी की तरह प्रान्तीय भाषाओं के साथ प्रतियोगिता नहीं करेगी। हिन्दी के विरोधियों को मालूम होना चाहिए कि राष्ट्रभाषा के बिना एक राष्ट्र की, राष्ट्रीयता की भावना पनप नहीं सकती। हिन्दी, भारत की राष्ट्रीयता की भावना की आधार-शिला है, भावनात्मक एकता उसी में निहित है, उस दृष्टि से उसे देखना हर एक भारतीय का धर्म है।

भाषामूलक समस्याओं पर जब हम विचार करते हैं, तब हमें यह बात माननी पड़ती है कि हमारा देश बहुभाषा-भाषी होने के कारण सब प्रादेशिक भाषाओं को मिटाकर उन्हें एक भाषा-भाषी बनाना असंभव है। लेकिन इसके साथ ही साथ यह भी सोचना पड़ेगा कि अपनी प्रादेशिक भाषा के प्रेम के आवेश में पड़कर एक प्रान्त के लोगों को अन्य प्रान्त की भाषा के प्रति विरोध होना भी देश के लिए अत्यन्त हानिकारक होगा। देश के लिए जब तक एक सामान्य भाषा न होगी, तब तक देश की एकता को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न स्थगित कर रखना भी वांछनीय नहीं होगा।

प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति हम इसीलिए चाहते हैं कि हम अपने-अपने प्रान्तों में अंग्रेजी के स्थान पर प्रशासनिक कार्यों में अपनी भाषा का व्यवहार कर सकें। अतः प्रत्येक भारतीय को चाहिए कि वह अपनी भाषा की प्रगति की स्वाभाविक कामना करते हुए भी अन्य भाषाओं के प्रति सहानुभूति रखे। जब तक भारत की सभी भाषाओं के प्रति हमारा दृष्टिकोण विशाल नहीं बनेगा, तब तक भावात्मक एकता की आधार-शिला पक्की न होगी।

नाना जातियों और उपजातियों में विभक्त, विभिन्न प्रान्तों में रहनेवाली, विभिन्न भाषा-भाषी भारतीय जनता को एकता के स्वर्ण-सूत्र में बाँधने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक है। विभिन्न प्रान्तों के लोगों में परस्पर मैत्री और दृढ़-

परिचय प्राप्त करने के लिए प्रत्येक प्रान्त के लोग अपनी भाषा के अतिरिक्त एक और भाषा भी सीखें, यह भी आवश्यक माना गया है। ऐसी हालत में हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त के लोगों के लिए भी यह अनिवार्य हो जाता है कि वे भी किसी अन्य प्रादेशिक भाषा को अवश्य सीखें। मुख्यतः दक्षिण की अहिन्दी प्रान्तों की—भाषा सीखना ही उनके लिए अधिक आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि उत्तर की अहिन्दी भाषाओं से उनका निकटतम सम्पर्क रहता है और इसीलिए उन भाषाओं का कामचलाऊ ज्ञान उन्हें आप ही आप प्राप्त हो जाता है।

प्रादेशिक विधान-सभाओं में उस प्रदेश के बहुभाषा-भाषी सदस्य रहते हैं। यदि वे सभी अपनी-अपनी मातृभाषा में बोलना चाहते हों; तो सभा की कार्रवाई कैसे चल सकती है ? हर एक सदस्य के लिए उस प्रदेश की सभी भाषाएँ सीखना असंभव है। ऐसी स्थिति में यही संभव हो सकता है कि एक प्रान्त के अल्पसंख्यक लोग, बहुसंख्यक लोगों की भाषा सीखें। प्रादेशिक भाषाओं के साथ उनकी सहायता एवं सहयोग के साथ देश की राजभाषा भी बने, यही संविधान का सिद्धान्त है।

१९४२ तक सभा राष्ट्रभाषा के प्रचार में उपलब्ध साधनों से काम लेती रही। लेकिन शिक्षण-संस्थाओं को चलाना, प्रान्तीय भाषा का प्रचार करना, प्रान्तीय साहित्य के निर्माण तथा प्रचार में योगदान सभा के कार्यक्रम में शामिल न था। १९४२ से सभा ने इस दिशा में भी अपना कार्यक्रम आरंभ किया है।

हिन्दी परीक्षाओं का विकास-क्रम

'प्राथमिक'; 'प्रवेशिका'—

पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी-प्रचार-सभा की तरफ से सबसे पहले सन् १९२२ में 'प्राथमिक' और 'प्रवेशिका' नाम की दो परीक्षाएँ चलायी गयी थीं। कुछ समय के बाद 'प्रवेशिका' का नाम 'मध्यमा' कर दिया गया और मध्यमा के बाद 'प्रवेशिका' नाम की परीक्षा चलायी जाने लगी। प्राथमिक का एक प्रश्न-पत्र, प्रवेशिका (बाद की मध्यमा) और राष्ट्रभाषा के दो-दो प्रश्न-पत्र रखे गये थे। उन दिनों राष्ट्रभाषा का स्तर काफी ऊँचा था।

'तुलसीरामायण'—

'राष्ट्रभाषा' के बाद कुछ समय तक 'तुलसीरामायण' नाम की एक विशेष परीक्षा भी चलायी जाती थी। 'रामचरितमानस' ही उसकी प्रधान पाठ्य-पुस्तक थी। वह परीक्षा लोकप्रिय नहीं बन सकी। अतः शीघ्र ही उसे बंद करना पड़ा।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से सम्बन्ध-विच्छेद होने तक परीक्षाओं के प्रमाण-पत्रों पर साहित्य सम्मेलन के अधिकारियों के भी हस्ताक्षर रहते थे।

'प्रचारक'—

प्रचारकों को तैयार करने के लिए सभा ने जो प्रचारक विद्यालय सन् १९२२ में ईरोड़ और राजमहेन्द्री में और बाद को सन् १९२५ में मद्रास में चलाये थे, उनमें कम से कम सभा की 'मध्यमा'—तक की योग्यता रखनेवाले विद्यार्थी लिये जाते थे। पढ़ाई पूरी होने पर साहित्य-सम्मेलन की तरफ से 'हिन्दी-प्रचारक' नाम की परीक्षा चलायी गयी थी। प्रमाणपत्र में साहित्य-सम्मेलन के परीक्षाधिकारियों तथा प्रचारक विद्यालय के प्रधान अध्यापक तथा सभा के संचालक के हस्ताक्षर रहते थे। प्रचारक परीक्षा के पाठ्यक्रम में भाषाशिक्षण सम्बन्धी कोई विषय शामिल न था। प्राचीन पद्य-साहित्य की पुस्तकों की भरमार से पाठ्यक्रम बड़ा बोझिल रहता था। गद्य अथवा आधुनिक कविता की पुस्तकें उन दिनों सन् १९३० तक काफी परिमाण में नहीं प्रकाशित हुई थीं।

सन् १९३० में हिन्दी-प्रचारक परीक्षा के पाठ्यक्रम में कुछ संशोधन हुआ। उसमें साहित्य के साथ शिक्षण-कला का प्रश्न-पत्र जोड़ा गया। सन् १९४५ तक यही स्थिति रही। जब स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई जारी हुई तो हिन्दी अध्यापकों के लिए समुचित रीति से प्रशिक्षित करने की आवश्यकता पड़ी। सरकार ने उसके लिए सभा को बाध्य कर दिया। अतएव सन् १९४६ में 'हिन्दी प्रचारक' परीक्षा के दो खंड—साहित्य और प्रशिक्षण—कर दिये गये। साहित्य-खंड में उत्तीर्ण होने पर 'प्रवीण' की उपाधि दी जाने लगी। लेकिन प्रचारक उपाधि के लिए 'प्रवीण' के साथ शिक्षण-कला सम्बन्धी परीक्षा में भी उत्तीर्ण होना अनिवार्य बनाया गया। प्रशिक्षण सम्बन्धी विषयों में, कालेजों की B. T. अथवा B. E. d. परीक्षा के स्तर के शिक्षणकला-सिद्धान्त, बालमनोविज्ञान, भाषाविज्ञान, तुलनात्मक व्याकरण आदि शामिल किये गये। पढ़ाने की योग्यता बढ़ाने के लिए 'अमली वर्ग' चलाना भी अनिवार्य बनाया गया। मौखिक परीक्षा का क्रम भी रखा गया। इन दिनों यही क्रम चालू है।

'राष्ट्रभाषा विशारद'—

सन् १९३० में सभा ने उच्च परीक्षा का नाम 'राष्ट्रभाषा-विशारद' रखा। हिन्दी-प्रचारक विद्यालय में भर्ती होनेवालों के लिए 'राष्ट्रभाषा-विशारद-उपाधि' परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य माना गया। 'राष्ट्रभाषा-विशारद' को सबसे बड़ी उपाधि-परीक्षा बनाने से उसका स्तर भी काफी ऊँचा कर दिया गया। इसमें उत्तीर्ण लोगों को प्रमाण-पत्र देने के लिए 'उपाधि-वितरण-समारोह' का आयोजन हुआ। सन् १९३१ में पहली बार 'उपाधि-वितरण समारोह' मद्रास में सुसम्पन्न हुआ था। आचार्य काका कालेलकरजी ने पदवीदान भाषण दिया था। विशारद के प्रमाण-पत्रों में सभा के संस्थापक, परीक्षामन्त्री तथा सभा के आजीवन अध्यक्ष महात्मा गाँधी के हस्ताक्षर रहते थे। सन् १९३१ से

१९६० तक प्रतिवर्ष सभा के समारोह-सम्मेलन होते रहे हैं। इनमें देश के यशस्वी नेताओं तथा सुप्रसिद्ध विद्वानों ने अभिभाषण दिये हैं। अभिभाषण कर्ताओं के नाम अन्यत्र दिये गये हैं।

सन् १९३६ में जब सभा का नया विधान बना, तब उसमें परीक्षा-सम्बन्धी बातों में आवश्यक सलाह देने के लिए शिक्षा-परिषद का संगठन किया गया। प्रचारकों द्वारा परिषद के सदस्यों का चुनाव होता था। आज भी वह क्रम जारी है।

'राष्ट्रभाषा चुनाव'—

सन् १९३३ में 'राष्ट्रभाषा' और 'राष्ट्रभाषा-विशारद' के बीच में 'राष्ट्रभाषा चुनाव' नाम की एक और परीक्षा चलाना आवश्यक समझा गया। क्योंकि 'राष्ट्रभाषा' और 'विशारद' परीक्षाओं के स्तर में काफ़ी अन्तर था। इस चुनाव परीक्षा में एक ही परचा था। सन् १९३७ तक यह परीक्षा चलती रही। उसके बाद 'राष्ट्रभाषा' परीक्षा का स्तर ऊँचा करके चुनाव परीक्षा को हटाया गया। सब 'राष्ट्रभाषा' के तीन प्रश्न-पत्र रखे गये। इसमें उत्तीर्ण होने पर ही सीधे 'राष्ट्रभाषा-विशारद' परीक्षा देने की अनुमति दी जाती थी।

नयी 'प्रवेशिका'—

सन् १९३९ में इस क्रम को पुनः तोड़ा गया और 'राष्ट्रभाषा' परीक्षा के बाद 'प्रवेशिका' नाम की परीक्षा रखी गयी। उसमें दो परचे थे और मौखिक परीक्षा भी अनिवार्य रखी गयी। प्रवेशिका के तीनों परचों और मौखिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही छात्रों को 'विशारद' में बैठने का अधिकार दिया जाने लगा। 'राष्ट्रभाषा-विशारद' में चार प्रश्न-पत्र रखे गये और उसमें भी मौखिक परीक्षा का क्रम शुरू हुआ।

'विशेष योग्यता'—

इस वर्ष से 'राष्ट्रभाषा-विशारद' के बाद 'विशेष-योग्यता' नाम की एक और साहित्यिक परीक्षा चलाने का निश्चय हुआ था। इसके लिए तीन प्रश्न-पत्र थे। प्राचीन पद्य, आधुनिक पद्य और उर्दू साहित्य। इन तीनों में उत्तीर्ण होने पर 'विशेष-योग्यता' का उल्लेख उनके विशारद-प्रमाणपत्र में किया जाता था। 'हिन्दी-प्रचारक' प्रशिक्षण-सनद पाने के लिए यह 'विशेष-योग्यता' परीक्षा पास करना लाज़िमी कर दिया गया। 'राष्ट्रभाषा', 'प्रवेशिका' और 'विशारद' परीक्षाओं के पाठ्यक्रम से प्राचीन पद्य-भाग को बिलकुल निकाल कर उसके स्थान पर खड़ी बोली का पद्य-भाग बढ़ाने का भी निश्चय हुआ था।

महात्मा गाँधी के निर्देशानुसार सन् १९४५ में जब हिन्दी का 'हिन्दुस्तानी' नाम से प्रचार होने लगा तब हिन्दी पढ़नेवालों को नागरी लिपि के साथ उर्दू लिपि भी सिखाने का प्रबन्ध किया गया। तदनुसार सभा ने सभी प्रारम्भिक परीक्षाओं में उर्दू-लिपि के प्रश्न-पत्र वैकल्पिक रूप में रख दिये। १९४७ से 'प्रवेशिका' और 'विशारद' के लिए भी १५ अंक का एक-एक प्रश्न-पत्र शामिल किया गया।

प्रादेशिक भाषा—

सन् १९४८ में सभा की उच्च परीक्षाओं में प्रादेशिक भाषा का एक प्रश्न-पत्र जोड़ना अनिवार्य समझा गया। तदनुसार 'प्रवेशिका' और 'विशारद' दोनों में प्रादेशिक भाषा का प्रश्न-पत्र जोड़ दिया गया। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम् और मराठी, इन पाँचों भाषाओं में से किसी एक को परीक्षार्थी चुन सकते हैं। 'प्रवेशिका' में उत्तीर्ण होने के बाद 'विशारद' में बैठने के लिए एक वर्ष की अवधि अनिवार्य समझी गयी है।

'राष्ट्रभाषा प्रवीण'—

विशारद के बाद 'राष्ट्रभाषा प्रवीण' नाम की एक और उपाधि-परीक्षा भी इसी वर्ष (१९४८) से चलाने का निश्चय हुआ। इसके चार खण्ड किये गये। प्राचीन साहित्य, आधुनिक साहित्य, उर्दू-साहित्य और प्रादेशिक भाषा व सामान्य ज्ञान, ये ही चार भाग थे।

सन् १९४९ में 'प्रवीण' परीक्षा के छः खण्ड बनाये गये। प्राचीन पद्य, आधुनिक पद्य, उर्दू-साहित्य, प्रादेशिक भाषा, समाज-विज्ञान और भाषा-विज्ञान, ये ही छः विषय थे। 'विशेष योग्यता' परीक्षा इस समय बन्द की गयी। क्योंकि उसके तीनों खण्ड प्रवीण में शामिल थे। 'प्रवीण' के उर्दू-साहित्य में उर्दू लिपि में जवाब लिखने के तीन प्रश्न अनिवार्य थे। लेकिन सन् १९५३ में वे ऐच्छिक बनाये गये। 'प्रवीण' के छओं खण्डों में उत्तीर्ण होना 'प्रचारक' सनद पाने के लिए अनिवार्य माना गया।

विशारद–'पूर्वार्द्ध' और 'उत्तरार्द्ध'—

'प्रवेशिका' परीक्षा में उत्तीर्ण होने के एक वर्ष बाद 'विशारद' में बैठनेवाले परीक्षार्थियों की हिन्दी योग्यता काफी सन्तोषजनक नहीं होती थी। अतएव पुनः यह आवश्यक समझा गया कि 'विशारद' के दो खण्ड—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—कर दिये जायँ। पूर्वार्द्ध में दो प्रश्न-पत्र तथा प्रादेशिक भाषा का एक प्रश्न-पत्र और उत्तरार्द्ध में तीन प्रश्न-पत्र तथा मौखिक परीक्षा का क्रम शुरू किया गया। अब यही क्रम चलता है।

'प्रवीण' का स्तर काफी ऊँचा है। इसलिए यह जरूरी समझा गया कि उक्त परीक्षाओं में प्राइवेट तौर पर बैठना रोका जाय, और निश्चित अवधि तक सभा के

किसी मान्यता-प्राप्त विद्यालय में अध्ययन करने के लिए परीक्षार्थियों को बाध्य किया जाय। लेकिन पीछे चलकर 'विशारद' पास करके कम से कम दो वर्ष स्कूल में पढ़ाने का अनुभव रखनेवाले अध्यापकों अथवा 'विशारद' उत्तीर्ण हुए, दो वर्ष पूरे करनेवाले लोगों को भी प्राइवेट तौर पर प्रवीण में बैठने की अनुमति दी जाने लगी।

परीक्षा-संचालन'—

परीक्षाएँ सभी केन्द्रों के हाईस्कूलों अथवा कालेजों में चलायी जाती हैं। परीक्षा के निरीक्षण का कार्य वहाँ के अध्यापकों द्वारा ही सँभाला जाता है। स्कूलों या कालेजों के प्रधान अध्यापक या प्रिन्सिपल ही परीक्षाओं के व्यवस्थापक नियुक्त होते हैं।

इन दिनों सभा की सभी परीक्षाएँ बहुत ही लोकप्रिय हो गयी हैं। आरम्भ से लेकर १९६१ तक के परीक्षार्थियों और केन्द्रों की संख्या नीचे दिये हुए आँकड़ों से ज्ञात हो सकती है।

वर्ष	केन्द्र	परीक्षार्थियों की संख्या	
		प्रारंभिक	उच्च
१९२२ से ३० तक	७३	९,११६	३२
१९३१ से ३५ तक	३९४	३०,७१०	२,१६६
१९३६ से ४० तक	५७८	७०,९८७	४,१५२
१९४१ से ४५ तक	५२८	६५,१६२	५,०२२
१९४६ से ४९ तक	६४५	१,७६,६२१	१५,३३८
१९५०	७४०	७८,६९७	११,५४७
१९५१	८२२	७८,५७८	१६,१७०
१९५२	८९५	७७,५८८	१५,३३८
१९५३	८३२	७५,५४९	१२,९४९
१९५४	९७३	७१,३९०	१५,५२२
१९५५	१०६४	८१,३२५	१६,८९६
१९५६	१२२३	९८,५५७	१६,९१३
१९५७	१२३१	९०,७२९	१८,११३
१९५८	१२७५	१,०४,५७८	१९,०३४
१९५९	१३०२	१,१६,७०१	२०,८५६
१९६०	१३२६	१,१५,८५९	२३,०४५
१९६१	१३५०	१,१४,८८०	२२,८७२
		१४,५७,०२७	२,३६,२२४
		कुल परीक्षार्थियों की संख्या	१६,९३,२५१

प्रान्तीय सभा द्वारा परीक्षा-संचालन—

सभा के निर्णयानुसार सन् १९४८ में 'आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ' ने अपने प्रदेश में प्रारम्भिक परीक्षाएँ प्राथमिक, मध्यमा और राष्ट्रभाषा चलाने का भार स्वयं अपने ऊपर उठा लिया। कर्नाटक प्रान्तीय सभा ने भी १९५४ में उसी रीति को अपनाया। अब सन् १९५९ से केरल प्रान्तीय सभा भी प्रारम्भिक परीक्षाएँ चलाने का भार स्वयं सँभालने लगी है। इस आयोजन से प्रारम्भिक परीक्षाओं के संचालन में काफी सुविधा पैदा हो गयी है। पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र, उत्तर पुस्तकों की जाँच, प्रमाण-पत्र आदि के कार्यों का नियन्त्रण केन्द्रीय सभा कर रही है।

जाँच का कार्य—

परीक्षाओं की उत्तर-पुस्तकों की जाँच बहुत ही योग्य, अनुभवी लोगों की अलग-अलग परीक्षक-समिति द्वारा होती है। प्रवीण प्रचारक जैसी उच्च परीक्षाओं की हर पुस्तक की जाँच विश्वविद्यालय की एम. ए. परीक्षा की जाँच के नमूने पर दो-दो परीक्षकों द्वारा करायी जाती है। परीक्षाफल परीक्षक-समिति की बैठक में स्वीकृत होने के बाद ही प्रकाशित किया जाता है।

परीक्षा मन्त्री—

श्री पं० हृषीकेश शर्मा, श्री मो. सत्यनारायण, श्री अवधनन्दन, श्री रघुवरदयालु मिश्र और श्री एस. महालिंगम् परीक्षा-मन्त्री के पद पर काम करते रहे हैं। इन दिनों श्री एन. वेंकिटेश्वर परीक्षा-मंत्री के पद पर कार्य कर रहे हैं।

सरकारी मान्यता—

'राष्ट्रभाषा विशारद', 'प्रवीण' तथा 'प्रचारक' परीक्षाओं को सरकारी मान्यता प्राप्त हुई है। आन्ध्र, मद्रास, केरल और मैसूर के स्कूलों में उक्त परीक्षाओं की योग्यता रखनेवाले, अध्यापक नियुक्त हो सकते हैं।

हिन्दीप्रचारक विद्यालय—

दक्षिण में हिन्दी अध्यापक को तैयार करने के लिए पहले-पहल ईरोड् (तमिल) और राजमहेन्द्री (आन्ध्र) में सन् १९२२–२३ में हिन्दी प्रचारक विद्यालय खुले थे। उसके बाद १९२५ में सभी प्रान्तों के विद्यार्थियों को एक ही केन्द्रीय विद्यालय (मद्रास) में प्रशिक्षित करने की व्यवस्था हुई। उक्त विद्यालयों में श्री अवधनन्दन, श्री देवदूत विद्यार्थी, श्री पं० हृषीकेश शर्मा, श्री. क. म. शिवराम शर्मा, श्री रामानन्द शर्मा, आदि ने प्रमुख रूप से अध्यापन का कार्य किया था।

सन् १९३० से केन्द्रीय प्रचारक विद्यालय मद्रास में चलने लगा। चारों प्रान्तों के इन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करके सैकड़ों 'प्रचारक' तैयार हुए। दक्षिण के कई

प्रमुख प्रचारक—श्री. एस. आर. शास्त्री, श्री सिद्धनाथ पंत, श्री पी. के. केशवन् नायर, श्री के. वी. नायर, श्री पी. के. नारायणन् नायर, श्री चन्द्रहासन्, श्री. सी. जी. गोपालकृष्णन्, श्री जी. एन. नायर, श्री. पी. जी. वासुदेव, श्री हिरण्मय, श्री. टी. एस. रामकृष्णन्, श्री. जी. सुब्रह्मण्यम्, श्री. पी. नारायण, श्री. सी. जी. अब्रहाम, श्री. स्व. राघवाचारी, श्री नारायणचार, श्री लजपतिराय आदि इस केन्द्रीय विद्यालय के स्नातक हैं।

सन् १९३३ में केन्द्रीय विद्यालय (मद्रास) के अतिरिक्त दक्षिण के चारों प्रान्तों में भी प्रचारकों को तैयार करने के लिए विद्यालय खोले गये। श्री रघुवरदयालु मिश्र (तमिलनाडु), श्री. भालचन्द्र आपटे (आन्ध्र), श्री रामानन्द शर्मा (कर्नाटक), से और ए. चन्द्रहासन्(केरल), उन विद्यालयों के प्रधान अध्यापक रहे। सन् १९३३ सभी प्रान्तों के विभिन्न केन्द्रों में इस प्रकार के विद्यालय चल रहे हैं। जिनमें हजारों युवक-युवतियों ने हिन्दी की शिक्षा पायी है और अब भी पा रहे हैं।

उन सभी विद्यालयों में सैकड़ों अध्यापकों ने काम किया है। सन् १९३८ से वर्षों तक उनमें निम्नलिखित प्रचारक प्रमुख रूप से अध्यापन का कार्य करते रहे हैं—

श्री भालचन्द्र आपटे, श्री रामानन्द शर्मा, श्री व्रजनन्दन शर्मा, श्री पी. नारायण, श्री क. म. शिवराम शर्मा, श्री तेजनारायण लाल, श्री श्रीकंठमूर्ति, श्री टी. पी. वीरराघव, श्री के. आर. विश्वनाथन्, श्री नामक्कल कृष्णन्, श्री सोमनाथन्, श्री सोमनाथ, श्री यलमचिलि वेंकिटेश्वर राव, श्री बोयपाटी नागेश्वर राव, श्री चिर्रावूरि सुब्रह्मण्यम्, श्री राघवेंद्र राव, श्री चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा, श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा, श्री. सी. आर. नाणप्पा, श्री नारायणदेव, श्री चन्द्रमौली, श्री. टी. एस. रामकृष्णन् श्री. सी. जी. गोपालकृष्णन्, श्री एन. वेंकिटेश्वर, श्री नारायण दत्त, श्री जी. सुब्रह्मण्यम्, श्री कटील गणपति शर्मा, श्री सी. एन. गोविन्दन्, श्री धर्मराजन्, श्री सत्येन्द्रन् और श्री वेंकिटाचारी।

प्रकरण १२

दक्षिण के स्कूलों और कालेजों में हिन्दी का प्रवेश

जब दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का कार्य आरंभ किया गया, तब स्कूलों और कालेजों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। जनता में हिन्दी का प्रचार करना ही उस समय सभा का एकमात्र लक्ष्य था। सरकार की नीति भी हिन्दी को पाठ्यक्रम में शामिल करने के बिलकुल विरुद्ध थी। कांग्रेसी लोगों को छोड़कर कोई भी हिन्दी का समर्थन नहीं करता था। खास करके दक्षिण में जहाँ अँग्रेजी का आधिपत्य था, हिन्दी केवल 'तुर्कभाषा' अथवा 'गुसाईं भाषा' के नाम से अवहेलित होती थी। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को हिन्दी की आवश्यकता बता कर उस ओर आकृष्ट करना दुष्कर था। क्योंकि वे सब के सब अँग्रेजी तथा अँग्रेज सरकार के अनन्य उपासक थे। ऐसी हालत में हिन्दी जैसी एक अज्ञात भाषा को स्कूलों में पाठ्यविषय बनाना कैसे सम्भव था? हिन्दी-प्रचार-सभा भी इस दिशा में कुछ वर्ष तक विवश रही। जब धीरे-धीरे राजनैतिक गति-विधि बदलने लगी तो सभा ने भी इस दिशा में कदम बढ़ाने की चेष्टा की। जनता में जैसे-जैसे हिन्दी जोर पकड़ती गई, देश के हितैषी काँग्रेसी नेता भी राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति के अन्तर्गत हिन्दी की पढ़ाई पर भी ज़ोर देते गये। आज की तरह उनमें भी ऐसे लोग काफी थे जिनके सिर पर अँग्रेजी-भूत सवार था और जो अपनी मातृभाषा में बोलने में हेठी समझते थे। लेकिन सम्मेलनों में प्रस्ताव पास करने, सरकार को प्रार्थना-पत्र भेजने अथवा प्रतिनिधि-संघ के द्वारा अधिकारियों के सामने हिन्दी की माँग पेश कराने के अतिरिक्त और कुछ कार्य हो ही नहीं सकता था। आरम्भ में उन प्रस्तावों या प्रार्थना-पत्रों का कोई परिणाम नहीं निकलता था। सभा अपनी असफलता पर चिन्तित नहीं हुई। इस दिशा में उसने अपना प्रयत्न जारी रखा।

अभिनन्दनीय कार्य—

तमिलनाडु में उन दिनों श्री स्व. रघुवरदयालु मिश्र हिन्दी-प्रचार कर रहे थे। वे शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारियों के दरवाजे बार-बार खटखटाते रहे। कोई लाभ नहीं हुआ। फिर भी वे अपने प्रयत्न में अटल रहे। उन दिनों, मद्रास में जस्टिस पार्टी शासन-सूत्र सँभाल रही थी। शिक्षा विभाग के मन्त्री माननीय श्री ए. पी. पत्रो थे। श्री मिश्रजी ने उनसे मिलकर स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने का

प्रयत्न किया। श्री पत्रो हिन्दी के कट्टर दुश्मन थे। उन्होंने कहा "जब तक मैं शिक्षा-मन्त्री रहूँगा, तब तक हिन्दी को स्कूलों में प्रविष्ट होने नहीं दूँगा। यदि कोई स्कूल हिन्दी को स्थान देने का प्रयत्न करें तो मैं उनकी मान्यता रद्द कर दूँगा।"[1]

श्री पत्रो का उत्तर उस समय के सरकारी अधिकारियों की हिन्दी विरोधी मनोवृत्ति का स्पष्ट प्रमाण है।

कोचिन के स्कूलों में हिन्दी—

पहले इस बात का उल्लेख किया गया है कि सन् १९२८ में कोचिन राज्य के हाईस्कूलों में हिन्दी प्रविष्ट हुई। स्व० श्री इग्नेशियस के अथक प्रयत्न से सन् १९२८ में कोचिन की धारासभा में हाईस्कूलों में ऐच्छिक विषय के तौर पर हिन्दी को स्थान देने का प्रस्ताव पास हुआ। उन दिनों, वहाँ शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर स्व० श्री. सी. मत्ताई थे। वे हिन्दी के पक्षपाती थे। उन्होंने उस प्रस्ताव पर जल्दी ही अमल किया। तदनुसार वटक्कांचेरी, एरनाकुलम्, कुन्नमकुलम् आदि केन्द्रों के हाईस्कूलों में पाँचवें फार्म में S. S. L. C. के लिए ऐच्छिक विषय के रूप में हिन्दी की पढ़ाई शुरू हुई। सन् १९३१ तक वहाँ के ग्यारह स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश हो गया। उसी वर्ष विवेकोदयम् हाईस्कूल, ट्रिच्चूर में पहले फारम से लेकर छठें फारम तक में हिन्दी अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ाई जाने लगी। स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री. वी. के. कृष्णमेनन्, हिन्दी के बड़े हितैषी थे। सन् १९२९ में रुद्रविलास लोवर सेकेंडरी स्कूल, एरनाकुलम् में भी हिन्दी की अनिवार्य पढ़ाई शुरू की गई थी।

'सी' ग्रूप में हिन्दी—

जब मद्रास में जस्टिस पार्टी का मन्त्री-मण्डल बदल गया और उसके स्थान पर 'इन्डिपेन्डेन्ट पार्टी' का मन्त्री-मण्डल कायम हुआ, तब हिन्दी प्रचार सभा ने फिर एकबार डट कर प्रयत्न किया। श्री. डा. वी. सुब्रह्मण्यम् उस समय मुख्य मन्त्री थे। शिक्षा-विभाग उनके अधीन था। सभा के प्रतिनिधि उनसे मिले और स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान देने की प्रार्थना की। प्रार्थना मंजूर हुई। शीघ्र ही 'सी' ग्रूप में हिन्दी स्थान पा सकी। 'सी' ग्रूप में हिन्दी के प्रविष्ट होने से विशेष लाभ नहीं हुआ। क्योंकि उस विभाग में गणित, विज्ञान, इतिहास, हिन्दी आदि में से कोई एक विषय पढ़ना आवश्यक था। विद्यार्थी स्वभावतः गणित, विज्ञान की ओर अधिक आकृष्ट थे। उन विषयों के मुकाबले में हिन्दी उन्हें कम महत्वपूर्ण मालूम पड़ती थी। श्री एस. आर. शास्त्री भी स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने के श्रेय के अधिकारी

---

(१) दक्षिण के स्कूल-कालेजों में हिन्दी, पृष्ठ-२७

एस. आर. शास्त्री

(हिन्दी प्रचार का इतिहास)

हैं। इन दिनों वे हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास के प्रधानमन्त्री हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में जो शब्द 'हिन्दी-प्रचार के इतिहास' में लिखे हैं वे ज्यों के त्यों नीचे उद्धृत हैं।

"एस. एस. एल. सी. के 'सी' ग्रूप में एक कोने में हिन्दी का नाम भी 'Foreign Languages' (विदेशी भाषाएँ) के बाद जोड़ा गया। इंजील की सूक्ति हमें याद आई—'ओन स्टेप एनफ़ फ़ार मी' (One step enough for me)। हम थोड़ा संतुष्ट हुए। कम से कम हमें स्कूलों में पैर रखने का स्थान तो मिल गया था।"

'सी' ग्रूप में हिन्दी को स्थान प्राप्त होने मात्र से श्री शास्त्रीजी और उनके साथी संतृप्त नहीं हुए। क्योंकि 'सी' ग्रूप में हिन्दी का स्थान सन्तोषजनक नहीं था। उन्होंने लिखा है—

'लेकिन हमलोग 'सी' ग्रूप हिन्दी से संतुष्ट न रह सके। सौ में एक विद्यार्थी भी 'सी' ग्रूप में हिन्दी न लेता था। अक्लमन्द लोग गणित या विज्ञान लेते थे। 'सी' ग्रूप में किसी एक विषय—गणित, विज्ञान, इतिहास, बहीखाता या कोई एक भाषा का लेना पर्याप्त था।'

इस बीच में सेलम नगर के मुनिसिपल हाईस्कूल में हिन्दी अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ाने की व्यवस्था हुई। श्री. सी. राजगोपालाचारी जी के प्रभाव से ही ऐसा हो सका था। आन्ध्र देश का नेल्लूर नगर उन दिनों हिन्दी-प्रचार का एक प्रमुख केन्द्र था, जिसका उल्लेख 'आन्ध्र में हिन्दी-प्रचार' प्रकरण में किया गया है।

आन्ध्र में—

स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने का प्रयत्न सबसे पहले नेल्लूर में हुआ। सन् १९३० जनवरी के 'हिन्दी-प्रचारक' मासिकपत्रिका में इस सम्बन्ध में यों लिखा गया था—

"राष्ट्र में आन्दोलन जोर-शोर का था। फलतः हिन्दी-प्रचार-कार्य की भी एक बड़ी ऊँची लहर उठी जिससे जिले के कई युवक इस कार्य में शामिल हो गये। सन् १९२२ में म्युनिसिपालिटी भी अपनी पाठशालाओं में हिन्दी पढ़ाने लगी और सभा को मासिक ३० रुपये की आर्थिक सहायता भी देती थी। सन् १९२२ सितंबर में श्री मोटूरी सत्यनारायण जी; श्री रामभरोसे जी की सहायता के लिए नेल्लूर में नियुक्त किये गये। इन दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों से नेल्लूर जिला आन्ध्र देश के अन्य स्थानों से आगे बढ़ा।"[१]

---

(१) 'हिन्दी प्रचारक'–जनवरी १९३०–पृष्ठ २४

सरकारी विरोध—

नेल्लूर की म्युनिसिपालिटी की हिन्दी-नीति का सरकार ने विरोध किया। अतएव सन् १९२२ में हिन्दी की पढ़ाई शुरू करके सन् १९२३ में म्युनिसिपालिटी को उसे बन्द करना पड़ा। सन् १९२८ में पुनः उन स्कूलों में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हुई। सन् १९३० से अनिवार्य विषय के रूप में वहाँ हिन्दी को स्थान प्राप्त हुआ। इसका श्रेय वहाँ की म्युनिसिपालिटी के हिन्दी प्रेमी सदस्य श्री वेन्नेलकंटि राघवय्याजी, वकील को है।

सन् १९२८ में नेल्लूर जिला-बोर्ड के हिन्दी हितैषी सदस्यों ने यह प्रस्ताव पास किया कि बोर्ड के चार हाईस्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई शुरू की जाय। उस बोर्ड के अध्यक्ष श्री. आ. सु. कृष्ण राव जी हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। लेकिन बाद को जब चुनाव हुआ तो दक्षिण के सुप्रसिद्ध अब्राह्मण-दल के नेता श्री. बी. रामचन्द्र रेड्डी जी अध्यक्ष चुने गये, इस कारण पहला प्रस्ताव कुछ विलम्ब से ही अमल में आ सका। सन् १९२९ के आरम्भ में बोर्ड के स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई जारी की गयी।

राष्ट्रीय शिक्षणालयों में हिन्दी—

आन्ध्र के तथा अन्य प्रान्तों के राष्ट्रीय शिक्षणालयों में सन् १९१९-२० के बीच में हिन्दी की पढ़ाई आरम्भ की गई थी। उन दिनों हिन्दी के सामान्य ज्ञान के बिना राष्ट्रीय शिक्षा अधूरी समझी जाती थी। श्री पट्टाभि सीतारामय्या तथा श्री हनुमन्त राव जी की सेवाएँ इस कार्य में बड़ी मूल्यवान रहीं। आन्ध्र देश की कई राष्ट्रीय संस्थाओं ने हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान दिया। नेशनल कालेज, मुसलिपटम् में हिन्दी अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ाई जाने लगी थी। इस सम्बन्ध में 'हिन्दी-प्रचारक' पत्रिका के अगस्त १९३१ के अंक में यों लिखा है—

"Almost all the National institutions of South India have made Hindi teaching a part and parcel of their Curriculam. National education is now definitely considered incomplete without Hindi. It was the *National College, Masulipatam which first in 1919 made provision for compulsory instruction in Hindi*, through the instrumentality of Dr. Pattabhi Seetharamayya and late Mr. K. Hanumantha Rao. This example was followed by every other national institution of Andhra-desh."

इस प्रकार अनिवार्य रूप में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था करनेवाली संस्थाएँ निम्नलिखित हैं।

१. नेशनल कालेज	मुसलिपटम्	आन्ध्र
२. शारदा निकेतन	गुंटूर	"
३. नेशनल हाईस्कूल	एल्लूर	"
४. सनातन विद्यालय	राजमहेन्द्री	"
५. वैश्य सेवा संघम्	"	"
६. बालिका हिन्दी पाठशाला	काकिनाड़ा	"
७. नेशनल स्कूल	कल्लिडैकुरुच्ची	तमिल
८. नेशनल हाईस्कूल	बेंगलोर	कर्नाटक
९. विवेकोदयम् हाईस्कूल	ट्रिच्चूर	केरल
१०. शबरी आश्रम	ओलवकोट	"

सरकारी विरोध का दूसरा नमूना—

सन् १९३० फरवरी में बेजवाड़ा (विजयवाड़ा) म्युनिसिपालिटी के अध्यक्ष श्री ए. कालेश्वर राव को मद्रास सरकार के सचिव श्री हिल्टन ब्राऊन साहब ने हिन्दी, कताई और राष्ट्रीय संगीत को पाठ्यक्रम में शामिल करने के सम्बन्ध में जो पत्र लिखा, उसका नीचे उद्धृत अंश इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि सरकार हिन्दी की पढ़ाई को केवल राष्ट्रीय कारणों से पाठ्यक्रम से हटाना चाहती थी। पत्र का उक्त अंश यों हैं—

"The Chairman, Municipal Council Bezwada, is informed that the question of his interference with the internal administration of the Municipal Schools was taken up by Government at the instance of higher educational authorities. They have considered his reply carefully and definitely of opinion that the various acts now called in question were dictated more by political consideration than by desire on his part to further the interests either of the Schools or of their pupils. They do not however, propose to take any action in the matter at this stage beyond expressing

their disapproval of the Chairman's action and their administration of educational institutions."[1]

मदुरा में—

सन् १९२८-१९२९ में मदुरा कालेज, सौराष्ट्र-हाईस्कूल तथा सेतुपति हाईस्कूल में हिन्दी का प्रवेश हो गया। उन संस्थाओं के अधिकारी तथा प्रधान अध्यापक हिन्दी के समर्थक थे, अतएव वहाँ हिन्दी के प्रविष्ट होने में कठिनाइयाँ नहीं हुईं। उसके बाद कुंभकोणम् के टाउन-हाईस्कूल में भी हिन्दी को 'सी' ग्रूप में स्थान प्राप्त हुआ।

विरुद्नगर में—

सन् १९३१ में स्थानीय क्षत्रिय पाठशाला हाइस्कूल के अधिकारियों ने पहले, दूसरे और तीसरे फार्मों में अनिवार्य विषय के रूप में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था की।

प्रगति-पथ पर सर टी. विजयराघवाचारी और राजाजी—

सन् १९२८ में हिन्दू हाईस्कूल ट्रिप्लिकेन में हुए एक बड़े सार्वजनिक सम्मेलन में सर टी. विजयराघवाचारी जी ने स्कूलों में हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा पर ज़ोर देते हुए भाषण दिया था। मद्रास के सुप्रसिद्ध वकील श्री अल्लाड़ी कृष्णस्वामी-अय्यर, आरोग्यस्वामी मुदलियार, श्री पी. सी. राय, श्री एस. श्रीनिवास अय्यंगार (काँग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष), श्री एस. सत्यमूर्ति, श्री डा. पी. सुब्बरायन आदि ने स्कूलों में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने के संबन्ध में अपने विचार प्रकट किये।

सर. टी. विजयराघवाचारी हिन्दी के प्रबल समर्थकों में थे। उन्होंने हिन्दी की पढ़ाई स्कूलों और विश्वविद्यालयों में अनिवार्य कराने में सराहनीय सहयोग दिया था। उन्होंने एक प्रभावशाली भाषण में हिन्दी की अनिवार्यता पर ज़ोर देते हुए उसे पाठ्यक्रम में शामिल करने की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया। उनके भाषण के संबन्ध में 'हिन्दी प्रचारक' में जो रिपोर्ट छपी उसका सारांश यों है—

"Speaking on 'The place of Hindi in Indian Education' on Agust 8, 1928 Sir T. Vijaya-Raghavacharya M. B. E., is reported to have been observed that about 200 millions of people in India understood Hindi and it was the third of the great languages of the world.

('हिन्दू' अँग्रेजी पत्र में प्रकाशित)

(१) 'हिन्दी प्रचारक' १९३१

Considering the number of people speaking it and that Hindi should be made compulsory in all Schools, Colleges and Universities."[१]

उनके भाषण का अच्छा प्रभाव पड़ा। दक्षिण के नेताओं और विशेषतः अंग्रेजी के अनन्य आराधकों का ध्यान हिन्दी की ओर खिंच गया। श्री राजगोपालाचारीजी ने उनके भाषण की प्रतिलिपियाँ शिक्षण-शास्त्रियों तथा राजनैतिक नेताओं के बीच में वितरण करा कर उनकी राय इस सम्बन्ध में जानने की चेष्टा की। सुप्रसिद्ध शिक्षणाचार्योंने एकमत होकर हिन्दी की पढ़ाई की आवश्यकता बतायी। श्री राजाजी ने कई स्थानों में भ्रमण कर के स्कूलों और कालेजों में आयोजित सम्मेलनों में भाषण दिये। इस सम्बन्ध में सभा ने अपनी पत्रिका 'हिन्दी प्रचारक' की संपादकीय टिप्पणी में यों लिखा था—

"The speech that was delivered by Sir T. Vijaya Raghavacharya has been made a neucleus in this direction. Sir C. Rajagopalachari circulated the speech among the educationists and politicians and collected their opinions on the compulsory instruction of Hindi in Schools and Colleges. Eminent educationists are almost unanimous on the subject....In addition to this, Sri. C. Rajagopalachari addressed meetings of school and College teachers in several places that were convened special for the purpose where resolutions were passed urging the compulsory instruction of Hindi."[२]

सर. टी. विजयराघवाचारी जी के विचार—

कोयम्बतूर हिन्दुस्तानी ट्रेनिंग इन्स्टिट्यूट के दूसरे सत्र का उद्घाटन ता० १९-६-३९ को स्थानीय वाई. एम. सी. ए. हॉल में मनाया गया। सर टी. विजयराघवाचारी जी ने अपने भाषण में स्कूलों में हिन्दी को समुचित स्थान देने के संबन्ध में जो विचार प्रकट किये, वे विशेष महत्व के हैं। उनके भाषण का सारांश यह है :—

"मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि स्कूलों में हिन्दुस्तानी के प्रवेश के बारे में इतना झगड़ा हो रहा है। १९२८ में जब कि मैं पब्लिक सर्विस कमिशन का

(१) हिन्दी प्रचारक—१९३१ जनवरी।

(२) हिन्दी प्रचारक—अगस्त १९३१

सदस्य था, तब शिक्षा का पाठ्यक्रम कैसा है तथा सरकारी नौकरी के लिए कहाँ तक उपयुक्त है, इसकी परीक्षा करने के लिए मद्रास आया था। इस सिलसिले में कुछ स्कूलों की भी परीक्षा मुझे लेनी पड़ी, तब मैंने एक सार्वजनिक भाषण दिया था, जिसमें इस बात पर जोर दिया था कि हिन्दुस्तानी की ओर लोग स्वेच्छा से नहीं बढ़ते और इस लिये यह बहुत जरूरी हो गया है कि प्राथमिक दर्जों में ही नहीं, बल्कि कालेजों में भी हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाय। इस पर 'हिन्दू' ने एक नोट लिखा था कि यह बहुत ही अच्छी सलाह है। "मद्रास-मेइल' ने भी कहा था कि हिन्दुस्तानी पढ़ाई अनिवार्य बना दी जाय। यद्यपि मैं उसके बाद दो हफ्ते तक मद्रास में रहा, कहीं से भी इस बात का खण्डन नहीं सुनाई पड़ा। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने उस भाषण की हजारों प्रतियाँ अंग्रेजी और तमिल में छापकर भारत के कोने-कोने में बाँट दीं।"

'तरकारी में भी राजनीति है'—

श्री विजयराघवाचारी ने राष्ट्रभाषा की समस्या का रूप प्रस्तुत करते हुए आपस में लड़नेवालों की निन्दा की और उनकी दलीलों की पोल खोलने की चेष्टा करते हुए अपनी मनोरंजक शैली में यों कहा—

"उस समय हिन्दुस्तानी केवल एक साहित्यिक समस्या थी; उसमें राजनीति का आभास नहीं था। **राजनीति, जिस विषय से चाहे आसानी से संबन्ध बना सकती है। कल अगर आप जाकर कह दें कि बैंगन अच्छी तरकारी है तो उसमें भी राजनीति घुस जायगी। उसके बाद लोग यह कहते पाए जायँगे कि वह तमिल लोगों का खाद्य पदार्थ है; आन्ध्रों का नहीं। कुछ लोग यह भी कहेंगे कि वह दक्षिण भारतीयों का खाद्य है; उत्तर भारतीयों का नहीं। उसके बाद वे लोग बैंगन की जातियों की उत्पत्ति आदि बातों का रिसर्च करने लग जाएँगे।**

एक बड़ी भूल—

जातियों की उत्पत्ति के बारे में छान-बीन करना बिलकुल बेकार है। राष्ट्रीय एकता यदि चाहिए तो एक आम-ज़बान की बड़ी जरूरत है। मद्रासी लोगों को उत्तर भारतीय भाषा सीखनी चाहिए, क्योंकि वे काफ़ी संख्या में उत्तर भारत में पाये जाते हैं। संकीर्ण प्रान्तीयता उनके लिए उचित नहीं। हमसे पहले मुसलमान लोगों ने इस बात की जरूरत समझी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भाषा यदि होनी हो तो उसका एकमात्र मार्ग यही है कि वह ज़बान ऐसी रहे कि दोनों को पसन्द आवे। यही कारण है कि उत्तर में हिन्दुस्तानी आम-ज़बान

बन गयी। जो लोग यह सोचते हैं कि मद्रास मंत्री-मण्डल लोगों को तंग करने के लिए हिन्दुस्तानी ज़बरदस्ती सिखा रहा है वे लोग बड़ी भूल कर रहे हैं।

प्रान्तीय भाषाओं को दबाने की भावना नहीं—

"हिन्दुस्तानी को अनिवार्य बनाते समय मंत्री-मण्डल के मन में यह भावना बिलकुल न थी कि वह तमिळ, तेळुगु और मलयालम को दबायें। आप इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि मद्रासियों का दिमाग इतना कमजोर हो गया है कि वह और एक भाषा सीख नहीं सकते और उसके सीखने के पहले ही अपनी मातृ-माषा भूल जायँगे। हिन्दुस्तानी दुनियाँ की प्रधान भाषाओं में दूसरा नम्बर पाती है। भारत भर में यह मानी हुई बात है कि मद्रासी लोगों ने अँग्रेज़ी को अपना लिया है, यदि ये लोग उच्चारण आदि बातों में इतनी निराली ज़बान को कब्जे में कर सकते तो हिन्दुस्तानी को क्यों नहीं कर सकते? मुझे इस बात का बिलकुल शक नहीं कि अगले २५ वर्षों के अन्दर बंबई और कलकत्ते में जैसे कालेजों में हिन्दी को पढ़ाई अनिवार्य बना दी जायगी वैसे ही मद्रास में हिन्दी की पढ़ाई होगी। वह जबान जो बाईस करोड़ लोगों से बोली जाती है, बेशक दो करोड़ लोगों से सीखी जानी चाहिए। हम सब भारतीय हैं और यह जरूरी है कि हम उसकी आमज़बान को जानें।

आर्य-द्राविड़ सिद्धांत तो, एक भाषा-वैज्ञानिक (Philologist) की कल्पना मात्र है। कोई भी जाति अपनी उत्पत्ति के बारे में ठीक-ठीक नहीं जान सकती। इन सब बातों को साबित करने के लिए कहीं कोई रिकार्ड्स भी है? यद्यपि वे यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि वे भिन्न-भिन्न जाति के हैं तो भी वे एक ज़बान बोलते हैं। वे सब लोग इस बात से संतुष्ट रह जावें कि वे सब भारतीय हैं। उन्होंने इस बात की आशा की कि १९४१ की मर्दुमशुमारी में दक्षिण भारत के ज्यादा से ज्यादा लोग अपनी जाति बताने से इनकार करेंगे। जितनी जल्दी हम ये सब बातें भूल जायेंगे देश के लिए उतना ही अच्छा है।

मेरी राय में मद्रास सरकार को तो, इटली सरकार के जैसे, ऐसा एक नियम बना देना चाहिए जिसके अनुसार हर एक लड़के को अपनी ज़बान के अलावा तीन और भाषायें सीखना अनिवार्य हो जाय।"[1]

श्री सत्यमूर्ति की जीत—

मद्रास के सुप्रसिद्ध नेता श्री एस. सत्यमूर्ति स्कूलों के पाठ्यक्रम के 'ए' ग्रूप में हिन्दी को स्थान दिलाने की वर्षों से कोशिश कर रहे थे। वैसे तो 'सी' ग्रूप में हिन्दी पहिले ही प्रविष्ट हो चुकी थी। 'ए' ग्रूप में हिन्दी को शामिल कराने के लिए

---

(१) हिन्दी प्रचार समाचार–१९३९ जून–पृष्ठ १७९

श्री सत्यमूर्ति मद्रास सरकार से लगातार लड़ते रहे। आखिर उनकी जीत हुई। उन्होंने स्वयं उस सम्बन्ध में एक वक्तव्य में यों लिखा था—

"The Academic Council of the University of Madras has passed some important decisions at its last meeting, which require careful consideration by the public. The inclusion of 'Hindi' as one of the second languages under group A in spite of powerful opposition, is a step in the right direction. But the mere inclusion will not advance the study of Hindi, unless parents and guardians and teachers alike co-operate to make the study of Hindi as a second-language, more and more popular among the students.

This is a reform which is long overdue. There is no educational or academical argument against it....It was a misfortune that the proposition was opposed by some enthusiasts for English who cannot sympathise with India becoming self-respecting and self sufficient in education."[1]

उक्त वक्तव्य से श्री सत्यमूर्ति जी की राष्ट्रीयता की उग्र भावना प्रकट होती है। हिन्दी प्रचार सभा ने श्री सत्यमूर्ति का अभिनन्दन करते हुए इस सम्बन्ध में अपनी पत्रिका में एक संपादकीय नोट लिखा था, जो विशेष महत्व का है। वह यों है—

श्रेय के पात्र—

"आन्दोलन और लोकमत में गजब की ताकत होती है और धैर्य के फल भी बड़े मधुर एवं हितकारी होते हैं। पिछले वर्षों के हिन्दी आन्दोलन ने मद्रास सरकार के शिक्षा-विभाग को यहाँ के लोगों की हिन्दी सीखने की प्रबल इच्छा के आगे झुकने के लिए लाचार कर दिया है। अब हिन्दी पाठ्यक्रम में 'सी' ग्रूप से खिसक कर 'ए' ग्रूप में आ बेठी है। इस महान् प्रयत्न में सफलता पाने का सारा श्रेय श्री सत्यमूर्तिजी को है। मद्रास विश्वविद्यालय की शिक्षा-परिषद में आप ही हिन्दी के हितों की रक्षा के लिए अपनी ज़ोरदार आवाज़ में लड़ते हैं, विरोधियों की ओर से प्रबल विरोध होने पर भी सत्यमूर्ति जी की ही जीत होती है।"[2]

---

(१) हिन्दी प्रचारक–सितम्बर १९३३

(२) हिन्दी प्रचारक–सितम्बर १९३३

उन दिनों आन्ध्र, कर्नाटक तथा केरल में भी इस सिलसिले में प्रयत्न जारी था। धीरे-धीरे सन् १९३३ तक वहाँ के स्कूलों में भी हिन्दी का वैकल्पिक विषय के रूप में प्रवेश हो गया। कहीं-कहीं अनिवार्य विषय के तौर पर हिन्दी पढ़ाई जाने लगी थी। केरल में श्री देवदूत जी तथा मैसूर में पं० सिद्धनाथ पंत का प्रयत्न इस दिशा में सराहनीय है। बेंगलोर नॅशनल हाईस्कूल में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था हुई। श्री संपतगिरि राव, एम. ए., एल. टी. प्रधान अध्यापक का हार्दिक सहयोग इस विषय में अत्यन्त सहायक रहा। सभा के अधिकारियों का प्रयत्न इस दिशा में जारी रहा। पं० हरिहर शर्मा, श्री विद्यासागर पाण्डेय तथा श्री संजीव कामत के नाम इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं। सभा के प्रतिनिधि शिक्षा के उच्च अधिकारियों से बार--बार मिलते रहे। लेकिन सब प्रयत्न निष्फल हुआ। अन्त में जस्टिस पार्टी के सुप्रसिद्ध नेता श्री कुमारस्वामि रेड्डी जब शिक्षा-मंत्री बने, तब उन्होंने एस. एस. एल. सी. के भाषा-ग्रूप में हिन्दी को स्थान दिया। इस तरह विद्यार्थियों को द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी लेने की सुविधा प्राप्त हुई। लेकिन इस सुविधा से फ़ायदा उठानेवाले स्कूलों की संख्या बहुत ही कम थी। इन स्कूलों में से सर्वप्रथम स्थान मद्रास क्रिश्चियन कालेज स्कूल को दिया जा सकता है। उस स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री कुरुविला जेकब बड़े हिन्दी प्रेमी थे। इसलिए उन्होंने सबसे पहले अपने स्कूल में हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में स्थान दिया था।

सन् १९३७ तक दक्षिण के सभी प्रान्तों में सैकड़ों स्कूलों में हिन्दी प्रविष्ट हो चुकी थी। लेकिन अनिवार्य रूप से हिन्दी को स्थान दिलाने का प्रयत्न तब भी जारी था। अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में हिन्दी को रखने के लिए अधिकारी वर्ग तैयार नहीं था। जनता की ओर से ज़बरदस्त माँग भी नहीं हुई। कांग्रेसी नेताओं के सिवाय हिन्दी के पक्ष में बोलनेवाले भी उस समय नहीं थे।

काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल और हिन्दी—

सन् १९३४ में तमिलनाडु के चिंगलपेट ज़िला बोर्ड तथा आन्ध्र देश के कृष्णा-ज़िला बोर्ड ने अपने-अपने अधीनस्थ हाईस्कूलों में हिन्दी को पाठ्यविषय बनाया। सन् १९३८ में मद्रास में काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल कायम हुआ। श्री राजगोपालाचारी जी मुख्य मन्त्री बने। स्व. डॉ. पी. सुब्बरायन (भूतपूर्व राज्यपाल बिहार राज्य) शिक्षा-मन्त्री हुए। राजाजी ने स्कूलों में पहले फारम से तीसरे फारम तक हिन्दी अनिवार्य रूप में पढ़ाने का आर्डर निकाला। अध्यापकों की कमी के कारण आरम्भ में १२५ स्कूलों में ही हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था हो सकी थी। दूसरे वर्ष और सौ स्कूलों में ही हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था करने का निर्णय हुआ। उस समय मद्रास प्रान्त

में ९०० स्कूल थे। धीरे-धीरे सभी स्कूलों में हिन्दी प्रवेश पाने लगी। लेकिन बीच में ऐसी दुर्घटना घटी कि हिन्दी आगे न बढ़ सकी।

दूसरे विश्वमहायुद्ध का प्रभाव—

दूसरे विश्वमहायुद्ध के अवसर पर ब्रिटिश अधिकारियों और काँग्रेसी नेताओं में मत-भेद हुआ। देश का राजनीतिक वातावरण कलुषित था। काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया। उसके अनन्तर सन् १९४० मार्च में मद्रास सरकार ने हिन्दी को ऐच्छिक बनाने की विज्ञप्ति निकाली। सन् १९३८ में काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल के निर्णयानुसार २२५ हाईस्कूलों में हिन्दी अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ायी जाने लगी थी। किन्तु इस परिवर्तित नीति से हिन्दी प्रेमियों तथा हिन्दी विद्यार्थियों को बड़ी निराशा हुई। हिन्दी-प्रचार की प्रगति में सरकार की यह नीति अत्यन्त बाधक सिद्ध हुई।

काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल के इस्तीफा देने के कारण देश के शासन की बागडोर गवर्नरों के हाथ आ गयी। चार-पाँच वर्ष तक यही दशा बनी रही। स्कूलों में हिन्दी की गति अवरुद्ध रही। इस विषम परिस्थिति के कारण सन् १९४३ में आन्ध्र के गुंटूर, कृष्णा तथा तमिलनाडु के मदुरा, तिरुनेलवेली और चिंगलपेट के ज़िला-बोर्डों के अधिकारियों ने अपने स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई बन्द करने का प्रस्ताव पास किया। हिन्दी प्रेमी जनता ने इसका प्रतिवाद किया। फलतः कृष्णा और गुंटूर के ज़िला-बोर्डों ने उस प्रस्ताव पर अमल नहीं किया। अन्य बोर्डों ने जनता की आवाज़ पर ध्यान नहीं दिया।

सरकारी नीति—

स्कूलों के पाठ्यक्रम से हिन्दी को समुचित स्थान न देने के सम्बन्ध में सरकारी नीति की आलोचना करते हुए हिन्दी-प्रचार-सभा ने सन् १९४१ जून के हिन्दी-प्रचार-समाचार में एक सम्पादकीय नोट लिखा था। सरकार की यह हिन्दी नीति सभा की दृष्टि में अत्यन्त अनुपयोगी और बेबुनियाद थी। उस नोट का सारांश यही है—

अनुपयोगी नीति—

"वर्तमान समय में हिन्दी के प्रति सरकार की नीति बड़ी अनुपयोगी सिद्ध हो रही है। १९२७ में पहले पहल मद्रास के सरकारी पाठ्यक्रम में हिन्दी को प्रवेश मिला था। शिक्षा-विभाग के उस समय के मन्त्री ने 'सी' ग्रूप में अर्थात् ऐच्छिक रूप में हिन्दी को स्थान दिया था। १९३८ में जब काँग्रेस ने पद-ग्रहण किया तो उसे हाईस्कूल के निचले फारमों में अनिवार्य बनाया। इस बीच में कुछ उत्साही हिन्दी-प्रेमियों के प्रयत्न के फलस्वरूप सिर्फ गैर-हिन्दी भाषा-भाषी दक्षिणी विद्यार्थियों के

लाभार्थ हिन्दी को 'ए' ग्रूप में भी स्थान मिला। इस तरह हिन्दी को तीन तरह के स्थान मिले। कॉंग्रेस सरकार के इस्तीफा देने के बाद सरकार ने हिन्दी वर्गों में शामिल होने या न होने की छूट विद्यार्थियों को दी। अब सरकार का विचार है कि पहले, दूसरे और तीसरे फारम में हिन्दी पढ़ने के बाद विद्यार्थी चौथे फारम में भी पढ़ें तथा पाँचवें फारम में हिन्दी ऐच्छिक तौर पर लें और स्कूल फाइनल में हिन्दी लेकर बैठें।

बेकार योजना—

हिन्दी की यह ऐच्छिक नीति किसी काम की नहीं है। यह नीति न शिक्षा-विधान की दृष्टि से लाभदायक है, न विद्यार्थियों के उपयोग की दृष्टि से। यद्यपि इन चौदह वर्षों से सौ दो-सौ विद्यार्थी प्रति वर्ष हिन्दी लेकर स्कूल फाइनल में बैठते हैं, फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इससे किसी को कोई विशेष लाभ हुआ है। एक तो, दो ही वर्षों में अर्थात् पांचवीं व छठवीं कक्षाओं में हिन्दी का अध्ययन कर परीक्षा देनी पड़ती है और दूसरे, परीक्षा में पास करने के बाद कालेज में जानेवाले विद्यार्थियों को निराश होना पड़ता है; क्योंकि कालेज में भी वे दूसरा कोई विषय नहीं ले सकते। इस तरह ऐच्छिक हिन्दी की सारी योजना बेकार हो जाती है। यह कहा जा सकता है कि आगे पहले फार्म से लगातार स्कूल फाइनल तक हिन्दी पढ़ाई जाय तो हिन्दी की अच्छी जानकारी हो जायगी। लेकिन कालेज में जाने की इच्छा रखनेवाले कोई विद्यार्थी छः वर्ष स्कूल में हिन्दी सीखकर कालेज में भी क्यों हिन्दी पढ़ना चाहेंगे ?

बहाना मात्र—

हिन्दी के लिए सबसे अच्छा स्थान तो यही है कि वह कम-से-कम ३ वर्ष तक, हो सके तो ४ वर्ष तक अर्थात् पहले फारम से चौथे फारम तक एक अतिरिक्त अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ायी जाय, प्रान्तीय भाषा के स्थान पर नहीं, बल्कि उसके साथ-साथ पढ़ायी जाय। किसी विषय के बदले या कुछ विषयों के समुदाय में एक बनाकर उसे पढ़ाना, उसे राष्ट्र भाषा मानकर पढ़ाना नहीं, बल्कि एक प्रान्तीय भाषा के तौर पर पढ़ाना ही कहा जायगा। अगर हिन्दी की सच्ची आवश्यकता को हम महसूस करते हैं और उसे समूचे राष्ट्र की अन्तर-प्रान्तीय भाषा बनाना चाहते हैं तो सच्चे दिल से ही इस प्रश्न पर विचार करना होगा। कुछ लोगों का अब भी यह कहना है कि एक तीसरी भाषा का अनिवार्य रूप में पढ़ाया जाना विद्यार्थियों के ऊपर बड़ा बोझा साबित होगा। यह कथन बिलकुल बे-बुनियाद है, इसके कई प्रमाण मिल सकते हैं। अगर दूर न जाना हो तो पड़ोसी प्रान्त बम्बई में ही इसका प्रमाण मिल सकता है। बम्बई प्रान्त में अंग्रेजी तथा प्रान्तीय भाषा के अलावा मेट्रिकुलेशन तक एक तीसरी भाषा अनिवार्य

रूप से पढ़नी पड़ती है। वर्षों से यह हो रहा है। किसी ने एक भी शब्द इसके सम्बन्ध में नहीं कहा। बम्बई प्रान्त में इन भाषाओं के अलावा काँग्रेस सरकार ने हिन्दी भी अनिवार्य कर दी है।

अँग्रेजी का गढ़—

मुश्किल यह है कि मद्रास प्रान्त के शिक्षा-शास्त्री और तथाकथित राजनीतिज्ञ वही पुरानी बातें दुहरा रहे हैं। आधुनिक परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी जैसी और एको भाषा को अविवार्य बनाने से अँग्रेजी की प्रधानता कम हो जायगी और साथ ही मद्रास की यह पुरानी कीर्ति की मद्रास के लोग अच्छी अँग्रेजी जानते हैं, नष्ट ह जायगी। ये सज्जन अब भी मद्रास को अँग्रेजी का गढ़ बनाये रखना चाहते हैं। गत वर्षों के परीक्षा फल देखने से मालूम होगा कि पंजाब व इलाहाबाद की यूनिवर्सिटियाँ मद्रास से काफ़ी आगे बढ़ गयी हैं। जब हमारे देश की नौकरियाँ और ओहदे प्रान्त-प्रान्त व सम्प्रदाय के अनुसार बँट रहे हैं; तब अँग्रेजी की अधिक व कम योग्यता का क्या सवाल ? वह समय भी शीघ्र आ जायगा जब कि अँग्रेजी को हमारे पाठ्य-क्रम में स्थान ढूँढ़ना पड़े।

लज्जा की बात—

जब से प्रान्तीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया है तब से कुछ अँग्रेजी भक्तों ने चिल्लाना शुरू कर दिया है कि अँग्रेजी का स्तर घट गया है। कहीं-कहीं इसके लिए आन्दोलन भी शुरू हुआ है कि शिक्षा का माध्यम फिर से अँग्रेजी हो। यह बड़ी लज्जा की बात है कि जिन स्कूलों में अँग्रेजी माध्यम है, वे ज्यादा लोकप्रिय होते जा रहे हैं। शिक्षित सज्जन उन स्कूलों में ही अपने बच्चों को शिक्षा दिलाना पसन्द करते हैं। **सच्ची बात यह है कि हम लोग राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-शिक्षण व राष्ट्रभाषा के नाम रटना भर सीख गये हैं। हम उन्हें अपने जीवन के अविभाज्य अंग नहीं बना सके हैं।** इनका स्पष्ट रूप तथा स्थान जब तक निश्चित कर अमल में नहीं लाया जायगा, तब तक इन शब्दों के हम महज़ प्रचारक रहेंगे, तत्वों के नहीं।"[1]

हिन्दी या दस्तकारी—

सन् १९४५ के बाद फिर से काँग्रेस मन्त्रि-मण्डल कायम हुआ तो श्री अविनाशिलिंगम् चेट्टियार शिक्षा-मन्त्री बने। उन्होंने हिन्दी को स्कूलों के पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय बनाया। लगभग सभी स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई शुरू की गयी।

---

(१) हिन्दी प्रचार समाचार—१९४१ जून, पृष्ठ—२२१

लेकिन तमिलनाडु में कहीं-कहीं लोग हिन्दी की इस नीति से आशंका प्रकट करने लगे। फिर जब १९४८ में काँग्रेसी मन्त्रि-मण्डल में परिवर्तन हुआ तो श्री के. माधव मेनन शिक्षा-मन्त्री हुए। उन्होंने हिन्दी विरोधी लोगों को खुश करने के लिए हिन्दी को केवल ऐच्छिक विषय बना दिया। दस्तकारी के स्थान पर हिन्दी (अर्थात् दस्तकारी या हिन्दी) की यह विचित्र नीति थी। दक्षिण के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन पर कुठार-घात करने वाले सर्वप्रथम काँग्रेसी मन्त्री श्री माधव मेनन थे। हिन्दी-प्रेमियों की आशाओं पर उन्होंने पानी फेर दिया। S. S. L. C. परीक्षा के लिए हिन्दी-विषय को मान्यता न देने की यह बेढंगी नीति आज भी मद्रास सरकार कायम रखती है। वर्तमान नीति के अनुसार कोई भी विद्यार्थी चाहे तो एस. एस. एल. सी. तक हिन्दी पढ़ सकता है, लेकिन एस. एस. एल. सी. के लिए हिन्दी में उत्तीर्णता अनिवार्य नहीं है। हाल ही में मद्रास सरकार के शिक्षा-मन्त्री माननीय भक्तवत्सलम् ने मद्रास के एस. एस. एल. सी. के पाठ्य-विषयों में से हिन्दी की मान्यता को रद्द करके हिन्दी के प्रति कट्टर विरोधी नीति का परिचय दिया है। हिन्दी का इतना अपमान अँग्रेज़ी सरकार ने भी नहीं किया था। लेकिन अब मद्रास की काँग्रेसी सरकार खुद राजभाषा हिन्दी के प्रति यह नीति बरतने लगी है, तो फिर चारा ही क्या है!

आन्ध्र, केरल तथा मैसूर के हाईस्कूलों में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। मैसूर तथा केरल में एस. एस. एल. सी. पास करने के लिए हिन्दी में भी पास अंक पाना अनिवार्य है।

यद्यपि दक्षिण के स्कूलों में हिन्दी प्रविष्ट हुई है तो भी हफ़्ते में दो या तीन पीरियड हिन्दी की पढ़ाई के लिए नियत हैं जो बिलकुल अपर्याप्त हैं। अँग्रेज़ी को सप्ताह में जितने घंटे नियत हैं कम से कम उतने हिन्दी को भी दिये जायँ तो हिन्दी का स्तर ऊँचा होगा। अन्यथा हिन्दी का स्तर ऊँचा हो ही नहीं सकेगा।

कालेजों में हिन्दी—

सन् १९३४ से मद्रास यूनिवर्सिटी ने कालेज के बी. ए. के. पाठ्यक्रम में ग्रूप v के पार्ट III में भाषाओं में स्थान दिया। पार्ट II में पहले ही हिन्दी रखी गयी थी। उसके बाद B. A. (Hons) और M.A. कोर्स में हिन्दी को स्थान दिया गया। इस संबन्ध में सभा ने यूनिवर्सिटी को धन्यवाद देते हुए यों लिखा थाः—

"The Madras University is again to be thanked for its decision to make provision for Hindi as a Co-ordinate language under Group V of B. A. (Hons) and M. A course.

We earnestly hope that the University will erelong give a place to it and alot an independent place to Hindi under Group IX of the above examinations and allow the condidates to appear for the examination privately as no College in this presidency offers instruction in Hindi M. A. Course."

सभा के कुछ उत्साही नवयुवक प्रचारकों ने स्कूलों की दिशा में प्रयत्न करना स्थगित रखा और वे कालेजों में हिन्दी का प्रवेश कराने की ओर प्रवृत्त हुए। उनमें श्री. एस. आर. शास्त्री (वर्तमान प्रधान-मन्त्री, दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा) और श्री. ए. चन्द्रहासन् (वर्तमान प्रिन्सिपल महाराजास् कॉलेज, एरनाकुलम्) ये दोनों व्यक्ति इस प्रयत्न में सफल-मनोरथ हुए। उस समय मद्रास विश्वविद्यालय के सेनेट, अकादमिक कौंसिल तथा सिंडिकेट के सदस्यों में सर्वश्री सत्यमूर्ति, रामदास पंतुलु तथा के. भाष्यम् का प्रमुख स्थान था। वे सुप्रसिद्ध कॉंग्रेसी नेता थे। श्री शास्त्री तथा श्री चन्द्रहासन् उन लोगों से मिले और एक प्रस्ताव इस विषय का पेश करने का अनुरोध किया। प्रथम बार तो इसमें सफलता नहीं मिली। परन्तु बाद को मेट्रिक, इंटर तथा बी. ए. के कोर्स में हिन्दी को स्थान मिल ही गया। इसके बाद सन् १९३२ में मद्रास विश्वविद्यालय के एम. ए. कोर्स में भी हिन्दी को स्थान प्राप्त हो गया। श्री नागप्पा (अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, मैसूर यूनिवर्सिटी) के अथक परिश्रम के फल-स्वरूप मैसूर के कॉलेजों में हिन्दी का प्रवेश हुआ। आन्ध्र में भी अनुकूल वातावरण था। श्री. सी. आर. रेड्डी उस समय आन्ध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। वे हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे। उन्होंने आन्ध्र विश्वविद्यालय में भी B. Com. के कोर्स में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाया। इंटर और बी. ए. के पाठ्यक्रम में भी हिन्दी को ऐच्छिक भाषा के रूप में स्थान दिया। इस नियम का सबसे प्रथम लाभ उठानेवाला वी. आर. कालेज, नेल्लूर है।

वी. आर. कॉलेज नेल्लूर—

आन्ध्र विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कॉलेजों में सन् १९२८ में हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला। वी. आर. कॉलेज, नेल्लूर की इन्टर के पाठ्यक्रम में हिन्दी ऐच्छिक भाषा के रूप में रखी गयी और करीब ३५ विद्यार्थी हिन्दी लेकर अध्ययन करते थे। विश्वविद्यालय तथा कॉलेज के अधिकारियों का हिन्दी-प्रेम इस दिशा में बहुत ही सहायक रहा।

मद्रास—

मद्रास यूनिवर्सिटी में वर्षों पहले ही इन्टरमीडियट व बी. ए. के लिए पार्ट II में हिन्दी को स्थान मिला था, पर उचित प्रोत्साहन के अभाव में, कालेजों में इने-गिने

विद्यार्थी ही हिन्दी लिया करते थे, अब भी वही हाल है। दक्षिण में योग्य हिन्दी अध्यापकों की सृष्टि में इस विद्यालय का हाथ प्रबल रहा है। निश्चित आयु पार करने पर कोई भी उनकी विद्वान परीक्षा में शामिल हो पाता था, और हिन्दी साहित्य भी उस परीक्षा का विषय, संभवतः दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा की प्रेरणा के फलस्वरूप स्वीकृत था। वैसे तो वह विश्वविद्यालय भारतीय भाषाओं में विद्वान परीक्षा पहले से ही चलाता था। यद्यपि वह अपनी प्रान्तीय भाषाओं के ही विकास पर दत्तचित्त रहता आया है। उस दिशा में वह जो-जो प्रोत्साहन देता रहा, वह हिन्दी के पक्ष में भी लागू हुआ। इस प्रकार खानगी तौर पर पढ़नेवाले वयःप्राप्त तथा अध्यापकों में कई उनकी परीक्षाओं में बैठने लगे और कालक्रम में हिन्दी में बी. ओ. एल. तथा एम. ए. होते चले। इतर भाषाओं में इन उपाधियों के लिए उस विश्वविद्यालय से संबद्ध सभी कालेजों में पढ़ाई होती रहती है, पर हिन्दी के लिए अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ है। वहाँ उपभाषा के तोर पर हिन्दी लेकर विद्यार्थी परीक्षा दे सकते हैं। एक-दो साल पहले तक हिन्दी उपाधि परीक्षाएँ खानगी तौर पर पढ़नेवालों के लिए चलती थीं, वे भी अब बन्द हो गयी हैं। अतः यह कहना पड़ता है कि वहाँ विश्वविद्यालय के स्तर पर भी राजनीतिक स्तर की ही जैसी हिन्दी-विमुखता प्रकट हुई है।

केरल—

भारत का जो भूभाग आजकल केरल कहलाता है, उसमें स्वातन्त्र्य पूर्वकाल के मद्रास प्रान्त का मलबार वाला प्रदेश तथा देशी राज्यों में कोचिन व ट्रावनकोर वाला प्रदेश शामिल है। भारत के स्वतन्त्र होने के पहले ही ट्रावनकोर वाले केरल प्रदेश में सन् १९४० में तत्कालीन दीवान सर सी. पी. रामस्वामी अय्यर की प्रेरणा से इधर का विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था। उसके कुछ काल बाद से ही ट्रिवेंद्रम् के एक प्रचारक स्व. के. एन. परमेश्वर पणिक्कर के अथक प्रयत्न के फलस्वरूप यूनिवर्सिटी कॉलेज में हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था हो गई थी। विश्वविद्यालय के इन्टरमीडियट तथा डिग्री-परीक्षाओं के पार्ट II के अन्तर्गत हिन्दी को स्थान दिया गया और कॉलेजों में उपभाषा के रूप में हिन्दी लेकर पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। सन् १९४६ में स्व. पणिक्कर के दिवंगत होने पर जो श्री (अब डाक्टर) के. भास्करन् नायर हिन्दी विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए, उनके प्रोत्साहन से हिन्दी लेकर इन्टरमीडियट पास अनेक विद्यार्थी हिन्दी लेकर बी ए. होने के लिए भी लालायित हो उठे तो विश्वविद्यालय को सन् १९४९ में अपने अधीन कॉलेज में वह पाठ्यक्रम चालू करना पड़ा और सन् १९५१ में प्रथमतः इस विद्यालय के हिन्दी उपाधिधारियों के उत्साही दल ने हिन्दी-प्रचार को बल देने का उद्यम किया। इस सम्बन्ध में यह

प्रस्ताव है कि तब तक एतत्प्रदेशीय किसी भी विद्यालय के पदाधिकारियों ने इस दिशा में कदम उठाने की नहीं सोची थी। पर इसके तुरन्त बाद ही, मद्रास विश्व-विद्यालय से अनुबद्ध एरनाकुलम् महाराजास् कॉलेज में भी, वहाँ के भारतीय भाषा विभागाध्यक्ष, दक्षिण के प्रथम हिन्दी एम० ए० उपाधिधारी श्री ए० चन्द्रहासन् ने, हिन्दी बी० ए० का कोर्स चालू कर दिया। उसके बाद तो केरल प्रदेश भर के ट्रावनकोर तथा मद्रास विद्यालय से अनुबद्ध अन्यान्य कॉलेजों में भी हिन्दी, एक पाठ्यविषय के रूप में प्रविष्ट हो गयी। सन् १९५० में राज्यपुनर्गठन के बाद जब ट्रावनकोर विश्वविद्यालय, 'केरल विश्वविद्यालय' हो गया, कोच्चिन-मलाबार के अन्य कॉलेज भी इसी से अनुबद्ध हुए और अनुकूल परिस्थिति में उन सभी कॉलेजों में हिन्दी लेने वालों की संख्या अधिकाधिक बढ़ती चली। अब केरल के चालीस के करीब कॉलेजों में अन्यान्य वर्गों में हिन्दी लेकर पढ़नेवालों की संख्या बेशक अन्य तीनों दक्षिणी प्रदेशों के कॉलेजी हिन्दी विद्यार्थियों की संख्या से कहीं अधिक रहती है। जब इस प्रकार केरल में हिन्दी उपाधिधारी बढ़ते गये, उनमें कई उत्साही युवक हिन्दी-साहित्य की उच्चतम उपाधियों तक की व्यवस्था अपने ही विश्वविद्यालय में चाहने लगे, उत्तर के विश्वविद्यालय ऐसे विद्यार्थियों के लिए अपने द्वार किसी न किसी बहाने बन्द करने की सोचने लगे, तभी सन् १९५७ में यूनिव-सिटी कॉलेज में हिन्दी एम० ए० के लिए व्यवस्था हुई और सन् १९५९ में १५ परीक्षार्थी परीक्षा में शामिल हुए। तदनन्तर इस विश्वविद्यालय से अनुबद्ध दो और कॉलेजों में भी एम० ए० कोर्स चलने लगा और अब पचास से अधिक एम० ए० उपाधिधारी हर साल कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हो रहे हैं। केरल विश्व-विद्यालय, कॉलेजों के अन्यान्य वर्गों में यथोचित स्थान हिन्दी को दिलाने में अगुवा रहा है। अलावा इसके खानगी तौर पर पढ़नेवाले जोशीले युवकों के लिए भी हिन्दी विद्वान परीक्षा भी सन् १९५० से चलायी जाने लगी है, जिससे सैकड़ों हिन्दी-प्रेमी फ़ायदा उठा पाये हैं। शोध-विभाग में भी अब बीसों प्रतिभाशाली नव-युवक योग्य निर्देशकों के निरीक्षण में एम० लिट् तथा पी० एचडी० के लिए प्रयत्नशील हैं।

मैसूर—

मैसूर तथा वेंकटेश्वर विद्यालय के अधीनस्थ कॉलेजों का हाल थोड़ा-बहुत केरल का जैसा ही है, पर वहाँ हिन्दी लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या अधिक नहीं होती। मैसूर विश्वविद्यालय में श्री नागप्पा के प्रयत्न से पहले से ही हिन्दी को उचित स्थान प्राप्त है। अभी हाल में स्थापित कर्नाटक विश्वविद्यालय में भी हिन्दी का प्रवेश हो पाया है। वहाँ हिन्दी में एक डिप्लोमा-परीक्षा भी चलती है और हिन्दी अध्यापकों

को शिक्षणकलाभिज्ञ करने की व्यवस्था भी कर दी गयी है। आन्ध्र विश्वविद्यालय तथा उसमानिया विश्वविद्यालय में भी हिन्दी को समुचित स्थान प्राप्त हुआ है। इनमें मैसूर, वेंकटेश्वर तथा उसमानिया विश्वविद्यालयों में हिन्दी-साहित्य में शोधकार्य की भी व्यवस्था हुई है। दक्षिण की अण्णामलै यूनिवर्सिटी की स्थिति बड़ी विलक्षण है। वहाँ संभवतः विद्यार्थियों के ज़ोर ही की वजह पार्ट II मात्र में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हुई है। वहाँ के अधिकारियों की नीति हिन्दी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं दीखती।

प्रकरण १३

संविधान-सभा का निर्णय-१९४९

देश के लिए संविधान बनाने के लिए जो संविधान-सभा बनायी गयी थी, उसने १४ सितम्बर १९४९ को बड़ी बहस के बाद देवनागरि लिपि में हिन्दी को भारतीय संघ की राजभाषा के तौर पर स्वीकार किया। लेकिन जहाँ तक अंकों का सवाल था, उसने भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप, अर्थात् अँग्रेज़ी के व्यवहृत रूप को स्वीकार किया। दक्षिण भारत के तमिल, तेलुगु, केरल और कर्नाटक प्रदेशों की भाषाओं में इन्हीं अंकों का व्यवहार होता है। संसद के दक्षिण भारतीय सदस्यों ने जहाँ हिन्दी को राजभाषा बनाने के प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया, वहाँ अँग्रेज़ी अंक स्वीकार किये जाने पर भी बहुत जोर दिया। अँग्रेज़ी अंक स्वीकार किये जाने के पक्ष में कई फायदे भी बतलाये गये।

हिन्दी को राजभाषा स्वीकार करने के साथ-साथ यह भी शर्त रखी गयी कि १५ वर्ष तक अँग्रेज़ी राजकाज के काम में लायी जायगी, जब तक कि राष्ट्रपति विशेष राजकीय प्रयोजनों में राजभाषा को व्यवहृत करने की स्वीकृति न दें।

संविधान में भाषा के रूप-निर्णय और प्रचार के लिए निम्नलिखित उपबन्ध स्वीकृत हुआ—

"हिन्दी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।"

(अनुच्छेद ३५१—भारतीय संविधान) संविधान की आठवीं अनुसूची में नीचे लिखी भाषाएँ रखी गयीं —

(१) असमिया, (२) बंगाली, (३) उड़िया, (४) तेलुगु, (५) तमिल, (६) कन्नड़, (७) मलयालम्, (८) मराठी, (९) गुजराती, (१०) पंजाबी, (११) कश्मीरी, (१२) संस्कृत, (१३) उर्दू और (१४) हिन्दी।

आधार—

हिन्दुस्तानी प्रचार—१९५१ अक्तूबर—पृष्ठ ६१८

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् की स्थापना १९५१—

अब इसकी आवश्यकता समझी गयी है कि एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था की स्थापना की जाय जो संविधान के निर्णय को पूरा-पूरा मानकर राजभाषा हिन्दी के प्रचार और विकास में सरकार की मदद करे। फलस्वरूप २ नवम्बर १९४९ को अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी-प्रचार का काम करनेवाली संस्थाओं के प्रतिनिधियों, संसद् के सदस्यों और हिन्दी विद्वानों का एक सम्मेलन डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में हुआ और अखिल भारतीय हिन्दी-परिषद् की स्थापना की गयी। निम्नलिखित संस्थाएँ परिषद् से सम्बद्ध हो गयीं—१. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा, मद्रास; २. पूर्व भारत राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा, कलकत्ता; ३. उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा, कटक; ४. आन्ध्रराष्ट्र हिन्दी-प्रचार-संघ, विजयवाड़ा; ५. तमिलनाडु हिन्दी-प्रचार-सभा, तिरुचिराप्पल्ली; ६. कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार-सभा, धारवाड़; ७. केरल प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार-सभा, त्रिपूणित्तुरा; ८. महाराष्ट्र-राष्ट्रभाषा-सभा, पूना; ९. असम राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, गुहावाटी और १०. भारतीय हिन्दी-परिषद, दिल्ली प्रदेश, नयी दिल्ली। बाद को भारतीय हिन्दी-परिषद, काश्मीर प्रदेश भी सम्बद्ध हो गयी और कुछ औरों की सम्बद्धता विचाराधीन रखी गयी।

सरकार का निश्चय—

परिषद ने अहिन्दी प्रदेशों में काम करनेवाली संस्थाओं के कार्य में समन्वय, और एकरूपता पैदा करने के उद्देश्य से सब प्रमुख संस्थाओं के प्रतिनिधियों के दो सम्मेलन किये। पहला सम्मेलन सितम्बर १९५० में बम्बई में हुआ और दूसरा मार्च १९५१ में नयी दिल्ली में। दूसरा सम्मेलन करने में केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-मंत्रालय से पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। शिक्षा-मंत्रालय के सचिव डाक्टर ताराचन्द ने सम्मेलन में सदारत की। सम्मेलन को अहिन्दी प्रदेशों में काम करनेवाली २५ संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हुआ।

उक्त सम्मेलन की सिफ़ारिशों के आधार पर शिक्षा-मंत्रालय ने भावी कार्य-योजना बनाने के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा; हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा और अखिल भारतीय हिन्दी परिषद, नयी दिल्ली के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन राष्ट्रपति के समक्ष 'गवर्नमेन्ट हाउस' में ता. १३ और १४ जून १९५१ को किया। उसमें निम्नलिखित प्रतिनिधि उपस्थित हुए।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन—श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, श्री सीताराम चतुर्वेदी, श्री मौलीचन्द्र शर्मा और श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा—श्री काका साहेब कालेलकर, श्री अमृतलाल नानावटी और श्री मगन भाई देसाई।

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद्—माननीय श्री रंगनाथ दिवाकर, श्री शंकरराव देव और श्री मो. सत्यनारायण।

उक्त सम्मेलन में निश्चय हुआ कि अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी प्रचार कार्य को बढ़ाने के उद्देश्य से आवश्यक उपाय करने के लिए एक केन्द्रीय हिन्दी शिक्षा-समिति और दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और उत्तर भारत के अहिन्दी प्रदेशों के लिए अलग-अलग क्षेत्रीय शिक्षा-समितियाँ बनायी जायँ। केन्द्रीय शिक्षा-समिति में हिन्दी प्रचार का काम करनेवाली संस्थाओं के प्रतिनिधि और चार क्षेत्रीय समितियों के प्रतिनिधि, कुल ११ सदस्य होंगे।

क्षेत्रीय समितियों में, क्षेत्र में हिन्दी प्रचार का काम करनेवाली संस्थाओं के प्रतिनिधि, क्षेत्र के राज्यों के प्रतिनिधि और केन्द्रीय समिति के कुछ प्रतिनिधि होंगे। हर क्षेत्रीय समिति में सदस्यों की संख्या ज़्यादा से ज्यादा १५ और कम से कम ९ होगी।

क्षेत्रीय समितियों में निम्नलिखित प्रकार क्षेत्र शामिल किये जायेंगे—

उत्तर क्षेत्रीय समिति—जम्मू और काश्मीर, पंजाबी भाषी पंजाब, पे. प. सू. और सिन्धी भाषाभाषी समुदाय

पूर्व क्षेत्रीय समिति—बंगाली, आसामी और उड़िया भाषी क्षेत्र।

दक्षिण क्षेत्रीय समिति—तमिल, तेलुगु, कन्नड़, और मलयालम् भाषाभाषी क्षेत्र।

पश्चिमी क्षेत्रीय समिति—मराठी और गुजराती भाषाभाषी क्षेत्र।

ता. १४ अगस्त १९५१ को संसद में शिक्षा-मन्त्री माननीय मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को १५ वर्ष के अन्दर राजभाषा के तौर पर काम में लाने के उपयुक्त बनाने के लिए भारत सरकार के सामने निम्नलिखित कार्य करने के प्रस्ताव हैं—

१. हिन्दी में वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों का कोश तैयार करना जिसमें प्रशासकीय और सामाजिक विज्ञानों के शब्द तथा सरकार के भिन्न-भिन्न विभागों के लिए उपयोगी शब्द होंगे।

२. केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के लिए एक हिन्दी विद्यालय खोलना।

३. केन्द्र में हिन्दी पुस्तकों के एक सुसम्पन्न पुस्तकालय की स्थापना करना।

४. अहिन्दी भाषियों में हिन्दी का प्रचार करने के लिए एक हिन्दी शिक्षा समिति की स्थापना करना तथा हिन्दी साहित्य की संवृद्धि को प्रोत्साहन देना।

शिक्षा विभाग के इस निश्चय से राष्ट्रभाषा के प्रेमियों और कार्यकर्ताओं को बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ। और हर प्रदेश के लोगों में हिन्दी सीखने का उत्साह बढ़ा। किसी-किसी प्रदेश में हिन्दी परीक्षाओं में बैठनेवालों की संख्या एक लाख तक पहुँची। आशा की गयी थी कि सरकार से इस कार्य में आवश्यक सहायता मिलने पर १५ वर्ष के पहले भी ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है। राज्य-कार्य में हिन्दी का व्यवहार अधिकाधिक होने लगेगा और धीरे-धीरे आज़ाद सरकार का काम संपूर्णतः राजभाषा हिन्दी में ही हो जायगा।

अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् की स्थापना के अवसर पर अध्यक्ष-पद से डा० राजेन्द्र प्रसाद् ने कहा था; "केन्द्रीय सरकार हिन्दी के प्रचार में हर तरह की सहायता करेगी। साथ ही प्रान्तीय सरकारों को भी इस काम में हर तरह की मदद देनी चाहिए। मगर यह हिन्दी प्रचार का जो कार्य है, वह सिर्फ़ सरकार के अकेले करने से नहीं होगा। इसमें जनता को भी हर तरह से सहायता देनी होगी। सरकार के ही ऊपर इसे नहीं छोड़ना होगा। सब मिलकर इस भाषा की उन्नति के लिए कोशिश करें।"[1]

जो होना था सो नहीं हुआ—

राष्ट्रनिर्माण की नींव मज़बूत करने के लिए हिन्दी को राजभाषा का पद दिया गया था। जब संविधान के द्वारा हिन्दी राजभाषा घोषित हुई, तो सोचा गया था कि भाषा संबन्धी वाद-विवाद सदा के लिए मिट गया और राजभाषा का स्वरूप तथा सामाजिक निर्माण का आधार भी व्यक्त हुआ है। हिन्दी हितैषी यह सोच कर फूले न समाये कि हिन्दी भारत की प्रतिनिधि भाषा बन कर संसार की सम्मानित भाषाओं में स्थान पा सकेगी। लेकिन सरकार का कदम इस दिशा में मन्द पड़ गया। पन्द्रह वर्ष की अवधि में जो कार्य पूरा करना था, उसके अनुपात में कार्य नहीं हो सका। सरकारी कर्मचारियों के लिए कोई निश्चित अवधि नहीं निर्धारित हुई जब तक वे हिन्दी का अच्छा व्यावहारिक ज्ञान अवश्य प्राप्त करें। पढ़ाई का माध्यम पूर्णतः प्रादेशिक भाषा नहीं बन सका। अब भी अधिकांश विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी ही माध्यम रहती है। कहीं कहीं तो हाइस्कूलों में भी मातृभाषा का माध्यम छोड़ कर अंग्रेजी माध्यम बनायी जा रही है।

केन्द्र सरकार के अधीन रेल, तार, टेलिफोन, सेना, रेडियो, वार्तावितरण आदि के जो विभाग हैं उनके कर्मचारियों को निश्चित अवधि तक हिन्दी की पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर लेना अनिवार्य नहीं बनाया गया है। हिन्दी के माध्यम से पढ़ाने के लिए विज्ञान तथा तकनी की विषयों की पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में नहीं लिखी गयीं। पारि-

---

(१) हिन्दुस्तानी प्रचार—१९५१ अक्तूबर पृष्ठ ६२१

भाषिक शब्दावली का निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। हिन्दी प्रान्तों तथा अहिन्दी प्रान्तों के शिक्षा-शास्त्रियों के विचार शिक्षा-पद्धति में हिन्दी के स्थान के सम्बन्ध में अब भी मेल नहीं खाते। अंग्रेजी का राग अलापनेवाले राष्ट्रीय नेता, सरकारी कर्मचारी तथा शिक्षा-शास्त्री इस मार्ग में बाधा डाल रहे हैं। उनका विश्वास है कि अंग्रेज़ी के माध्यम से ही शिक्षा पूर्ण हो सकती है।

दिशा-दर्शन—

सन् १९५१ में कर्नाटक प्रान्त के तुमकूर केन्द्र में हिन्दी प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव के अवसर पर श्री० बी० जी० खेर साहब ने जो भाषण दिया, उससे हमें हिन्दी के उज्वल भविष्य की रूप-रेखा मिलती है। भावी कार्य-पद्धति के दिशा-दर्शन के रूप में उनके विचार बड़े ही उत्कृष्ट हैं। उक्त भाषण के कुछ महत्वपूर्ण उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

"हमारे विधान का यह आदेश है कि 'भारतीय संघ का यह फ़र्ज होगा कि वह हिन्दी के प्रचार को बढ़ावे और उसका ऐसा विकास करे कि वह भारत की मिली-जुली संस्कृति के सारे तत्वों के लिए विचारों को ज़ाहिर करने का उपयुक्त माध्यम बन सके। संघ का यह भी फ़र्ज होगा कि वह हिन्दी की मूल प्रकृति में किसी तरह का हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी या सूची ४ में दी गयी देश की दूसरी भाषाओं के रूपों, शैलियों और शब्द-प्रयोगों को पचाकर और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ सबसे पहले संस्कृत से और बाद में दूसरी भाषाओं से शब्द लेकर उसके शब्द-भण्डार को समृद्ध बनावे।"

हमें विधान के इस महत्वपूर्ण विशेष आदेश को जहाँ तक बने जल्दी ही व्यवहार में लाना है और देखना है कि देश का हर एक पुरुष, स्त्री और बच्चा राष्ट्रभाषा को समझने और उसमें बातचीत करने लायक हो गया है।

रोज़मर्रे की जिन्दगी में समान-भाषा के महत्व को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बताया जा सकता। अपनी एक उम्दा पुस्तक 'लेंग्वेज इन हिस्टरी एण्ड पालिटिक्स' (इतिहास और राजनीति में भाषाएँ) में श्री ए. सी. बुल्नर कहते हैं—

'जब तक शिक्षा का सम्बन्ध कुछ ही लोगों से होता है, तब तक शिक्षित लोगों की साहित्यिक भाषा आमजनता की भाषा से बिलकुल भिन्न होती है। जब शिक्षा फैलती है और ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचती है, जिनका संपूर्ण जीवन साहित्य में नहीं लगा है, तब एक मृत-भाषा या विदेशी भाषा विचारों को प्रकट करने का सन्तोषप्रद माध्यम नहीं रह जाती; जब कि एक राष्ट्रीय साहित्यिक भाषा नित्य के जीवन की भाषा पर बहुत बड़ा प्रभाव डाल सकती है।'

सौभाग्य से, जैसा कि मैंने कहा है, विधान की व्यवस्था के कारण हमारी

राष्ट्रभाषा के बारे में नाम और लिपि का विवाद अब खतम हो गया है। लेकिन एक दूसरा खतरा भी है, जिससे हमें सावधान रहना चाहिए।

हमारी राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी स्वीकार किया गया है, इसलिए कुछ हिन्दी-भाषी प्रान्त राष्ट्रभाषा के नाते अपनी विशेष छापवाली हिन्दी सारे देश पर लादने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन एक अंश कभी संपूर्ण का स्थान नहीं ले सकता। इन मित्रों को समझना चाहिए कि विधान में जिस हिन्दी का विचार किया गया है वह धीरे-धीरे बढ़ेगी और विकास करेगी; और वह उत्तरप्रदेश या बिहार या मध्य-प्रदेश की हिन्दी नहीं हो सकती। ये सब राष्ट्रभाषा के निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लेंगे, लेकिन वे खुद "राष्ट्रभाषा' नहीं हैं। इस भेद को स्पष्ट करने के लिए महात्मा गाँधी ने राष्ट्रभाषा का हिन्दी-हिन्दुस्तानी या हिन्दुस्तानी नाम सुझाया था। चूँकि ये दोनों शब्द अलग-अलग अर्थ बनाते थे, यह बड़े सौभाग्य की बात है कि अब हमने उसका एक समान नाम हिन्दी स्वीकार कर लिया है।

मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के पदवीदान समारंभ में मुझे सन् १९३९ में इस विषय पर बोलने का मौका मिला था। उस वक्त हिन्दी-उर्दू नाम के विवाद का जिक्र करते हुए मैंने श्री वाजपेयी का यह कथन उद्धृत किया था। यहाँ फिर से उसे उद्धृत करने की इजाजत लेता हूँ—

"लम्बे अर्से तक हिन्दू नागरी लिपि में लिखा करते और मुसलमान फारसी लिपि में लिखा करते थे। लेकिन धीरे-धीरे मुसलमानी हिन्दी, हिन्दू हिन्दी से अलग पड़ने लगी। अमीर खुसरो या इन्शा या नाजिर ने जब हिन्दी में लिखा—भले ही उसकी लिपि फारसी थी—तो उनकी आँखें हिन्दुस्तान पर ही लगी हुई थीं। इसलिए उनका साहित्य विदेशी विचारों और कल्पनाओं से नहीं भरा है। लेकिन दूसरे मुसलमान लेखक जो सेमटिक (अरबी) वातावरण में पले थे या खुदा सेमटिक प्रभाववाले फ़ारसी या तुर्क लोगों के वंशज थे, स्वभावतः अपने काव्य में सेमटिक विचार लाये और इस तरह हिन्दू हिन्दी और मुसलमानी हिन्दी का जन्म हुआ। मुसलमानी हिन्दी का ही दूसरा नाम उर्दू है।"

यह बड़े महत्व की चीज़ है। यह बताती है कि हमारी राष्ट्रभाषा धीरे-धीरे किस तरह विकास करेगी। अपनी बोलचाल और साहित्य की समान-भाषा के विकास में हम सबको हाथ बँटाना चाहिए, लेकिन इसके पहले यह जरूरी है कि हम अपनी प्रादेशिक भाषाओं में निपुणता प्राप्त करें।

ऐसे भी लोग हैं जो यह सुझाते हैं कि हमें अपनी प्रादेशिक भाषाओं को खतम कर देना चाहिए। यह आत्मघाती प्रयत्न होगा।

हममें से हर एक का फ़र्ज़ है कि वह अपनी मातृभाषा का अध्ययन करें, जो हमारे प्रारंभिक शिक्षण का माध्यम होनी चाहिए। राज्य को इसके लिए काफ़ी

सुविधाएँ अपनी प्रजा को देनी चाहिए। लेकिन अपनी प्रादेशिक भाषाओं के विकास के उत्साह और जोश में यह नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्र के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है। हमारे यहाँ कुदरती प्रदेशों, धर्मों, जलवायु, रीति-रिवाजों और पोशाकों की विविधता है; दूसरी भी कई बातें हमें एक-दूसरे से अलग करनेवाली है। लेकिन इस सारी विविधता में भी एक प्रकार की एकता व्याप्त है। अगर यह एकता चली जाय तो विविधता भारी संकट का रूप ले लेगी; और हमें उसे टालना चाहिए। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है हर एक प्रादेशिक भाषा फूलनी-फलनी चाहिए। लेकिन साथ ही साथ हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारे राष्ट्र की राष्ट्रभाषा हिन्दी—जो बड़े शहरों में हमारे जवानों और बूढ़ों, गरीबों और अमीरों तथा अधिकारियों और व्यापारियों को और देहातों में मेहनतकश किसानों को आपस में जोड़नेवाली कड़ी है—विकास करे और मजबूत बने। ब्रिटिश हुकूमत में अंग्रेज़ी हमारे देश की एक समान भाषा थी। लेकिन उसके ७ से ११ वर्ष के लम्बे अध्ययन के बाद भी कितने लोग उसे समझते या बोल सकते थे? हिन्दी हमारी अपनी भाषा है और हमारी ज्यादातर प्रादेशिक भाषाओं से गहरा सम्बन्ध रखती है। उसे कम-ज्यादा हम सब जानते हैं। थोड़े ही समय में हम उसमें निपुणता प्राप्त कर सकते हैं। अंग्रेजी के अध्ययन का भी अपना अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। ऐसे लोग उसका अध्ययन करते रहेंगे, जिनके लिए उसका ज्ञान जरूरी और अनिवार्य है। लेकिन वह हम सबकी समान भाषा नहीं बन सकती। और सब उसका अध्ययन नहीं कर सकते, न कर सकेंगे।

इस बात का यद्यपि हमें गर्व है कि हमारी राष्ट्र-भाषा का दुनियाँ में दूसरा नंबर है, फिर भी हम इतने से सन्तुष्ट नहीं रह सकते। हमारा आदर्श अपनी इस राष्ट्र-भाषा को समृद्ध बनाने का और उसका दर्जा ज्यादा ऊँचा उठाने का होना चाहिए।

अगर उसे जीवित भाषा बनना है तो हमें बिना सोचे-विचारे फारसी या संस्कृत के गैर-ज़रूरी शब्द उसमें ठूँसने की वृत्ति से बचना चाहिए।

अगर विधान के मंशा के मुताबिक हिन्दी को समर्थ और समृद्ध राष्ट्र-भाषा बनना है तो उसे आम जनता की भाषा बनना चाहिए। इसलिए वह भारत की सारी प्राचीन और आज की प्रचलित भाषाओं से बिना रुकावट के शब्द लेगी और जरूरत पड़ने पर गणित और विज्ञान जैसे विषयों के लिए विदेशी भाषाओं के शब्द भी लेगी। उसे स्वाभाविक ढंग से अपना विकास करना चाहिए और इन सारी भाषाओं की समृद्धि और तेज का अपने में समावेश करना चाहिए।

सरलता किसी भाषा का अलंकार है। उसका हमें गर्व होना चाहिए। वह हर तरह से लाभदायक है।

अगर हम चाहते हैं कि हिन्दी भारत के सारे नागरिकों को एक समान भाषा

के सम्बन्ध से ज्यादा नजदीक लावे, तो वह ऐसी होनी चाहिए जिसे हर कोई थोड़े से थोड़े समय में आसानी से सीख सके और जो आसानी से बोली और समझी जा सके।

हमें अपनी शिक्षण-संस्थाओं में, हमारे स्कूलों में, कालेजों में और विश्वविद्यालयों में राष्ट्र-भाषा के अध्ययन का प्रबन्ध करना चाहिए। शिक्षा-शास्त्रियों का कहना है कि १० साल के भीतर के बच्चे कई भाषाएँ बड़ी आसानी से सीख सकते हैं। अपने सीमित अनुभव में मैं यह बात देख चुका हूँ। स्विट्जरलैण्ड में हर एक को तीन भाषाएँ सीखनी होती हैं—फ्रेंच, जर्मन और इटालियन और जिन्हें जरूरत होती है वे अंग्रेजी का भी अध्ययन करते हैं। इसलिए किसी बच्चे के लिए जिसे मातृ-भाषा के जरिये ही शिक्षा दी जायगी, हिन्दी और एक या दो प्रादेशिक भाषाएँ सीखना कठिन नहीं होना चाहिए। ऊँचे दर्जे में प्राचीन भाषाएँ और अंग्रेजी भी पढ़ी जा सकती है।

जब हिन्दी शासन-प्रबन्ध, अदालतों, धारा-सभाओं और व्यापारी पीढ़ियों में अँग्रेज़ी का स्थान लेगी, तब बिचारों को जाहिर करने के लिए अत्यन्त समर्थ माध्यम के रूप में उसका स्वाभाविक विकास होगा। लेकिन यह अपने आप नहीं हो जाएगा। इस ध्येय को जल्दी से जल्दी पूरा करने के लिए जाग्रत प्रयत्न करना चाहिए। अपना राज-कारोबार राष्ट्रभाषा में चलाने के लिए राष्ट्र १० या २० साल तक ठहर नहीं सकता। और फिर अँग्रेजी को इतना बड़ा वेग मिला हुआ है कि बहुत-से शिक्षित लोग अँग्रेज़ी के बिना काम चलाने की कल्पना मात्र से डर जाते हैं। अगर हम सब कमर कस लें तो इस ध्येय को सिद्ध करना कठिन नहीं है। अगर अपने जीवन के व्यवहार के लिए किसी स्वतंत्र राष्ट्र को किसी विदेशी भाषा पर निर्भर रहना पड़े तो वह किस तरह आज़ादी से रह सकता है, सोच सकता है और अपना पूर्ण विकास कर सकता है?

एक समान-राष्ट्रभाषा का निर्माण और विकास करना हमारे देश के पुनर्निर्माण का ही एक जरूरी अंग है। हमारे विधान ने सामाजिक न्याय को हमारे राष्ट्रीय कारोबार की नींव माना है। महात्मा गाँधी ने हमें एकता और सच्चे सुख का रास्ता बताया है, जिस पर चलना बड़ा कठिन है। लेकिन अगर हमें लड़ाई, होड़, लालच और जातीय अभिमान पर विजय पाना है, जो मानवता को आज दूषित कर रही हैं, तो हमारे उद्धार का एकमात्र उपाय यही है कि हम उनके बताए हुए रचनात्मक कार्यक्रम पर पूरी तरह अमल करें।[1]

---

(१) हिन्दुस्तानी प्रचार–१९५१ अगस्त–पृष्ठ ४९९

मद्रास नगर में हिन्दी प्रचार—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के सदर मुकाम मद्रास के प्रत्येक मुहल्ले में आरंभ से लेकर हिन्दी प्रचार का कार्य होता रहा है। सभा की देख-रेख में सन् १९५१ में सभी मुहल्लों के कार्यों का संगठन करने के लिए छः फ़िर्का कार्यालयों की स्थापना निम्नलिखित मुहल्लों में की गई और हर एक फ़िर्के का कार्य फ़िर्का प्रबन्धक के द्वारा सँभाला जाने लगा।

मुहल्ले का नाम —

१. जार्ज टाउन व पार्क टाउन।
२. तिरुवल्लिक्केणी, चिंताद्रिपेट, माउंट रोड, मिर्ज़ापेट, चेप्पाक, पुदुप्पाक्कम।
३. मैलापूर, अड्यार, रायपेटा, गोपालपुरम, आलवारपेट, श्रीरामनगर, सान्-थोम।
४. पुरशवाक्कम, एग्मोर, कीलपाक, अमिंजिकरै, चेट्पट, चूलै।
५. पेरंबूर, ओट्टेरी, पाट्टालम, बेसिन ब्रिज, सेंबियम्, अगरम्, अयनावरम्, व्यासरपाडी।
६. त्यागरायनगर, पश्चिम माम्बलम्, कोडम्बाक्कम्, आदम्बाक्कम्, नुंगम्बाक्कम्।

श्री. के. एस. कृष्णमूर्ति, श्री. आर. एस. सुब्बाराव, श्री नामक्कल कृष्णन् और श्री. एस. पी. गणपति फ़िर्का संगठक नियुक्त हुए। श्री टी. पी. वीर राघवन्, श्री के. आर. विश्वनाथन् तथा श्री. एस. आर. शास्त्री ने नगर-मंत्री के पद पर इन फ़िर्का समितियों का कार्य-संचालन किया। नगर में हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को मज़बूत बनाने के लिए सैकड़ों हिन्दी प्रेमियों ने अपना सक्रिय योगदान दिया है। नाटक प्रदर्शन, हिन्दी-वाक्-स्पर्धा, आदि का समय-समय पर आयोजन होता रहा है। सांस्कृतिक सप्ताह के रूप में नगर भर में 'हिन्दी-सप्ताह' भी मनाया गया है। प्रत्येक मुहल्ले में हिन्दी विद्यालय स्थापित है, जिनमें हजारों विद्यार्थी हिन्दी का अध्ययन करते रहते हैं।

साहित्यानुशीलन समिति—

विद्यार्थियों और हिन्दी प्रचारकों में साहित्यिक रुचि बढ़ाने के लिए 'साहित्यानुशीलन समिति' नाम की एक संस्था कायम हुई है। श्री रामानन्द शर्मा जी उसके संस्थापक हैं। श्री कामाक्षी राव, कटील गणपति शर्मा, सुन्दर कृष्णमाचारी आदि शहर के कार्य की प्रगति में सक्रिय भाग ले रहे हैं। नगर समिति के अध्यक्ष की हैसियत से श्री. एन. सुन्दर अय्यर की हिन्दी सेवाएँ महत्वपूर्ण रही हैं। श्रीमती अंबुजम्माल, श्रीमती इन्दिरा रामदुरै आदि की सेवाएँ भी मद्रास नगर के हिन्दी आन्दोलन में सहायक रही हैं। मद्रास नगर की सबसे अधिक लोकप्रिय संस्था आज हिन्दी-प्रचार सभा है। नगर के हिन्दी प्रचार कार्य की दिनों दिन वृद्धि होती रहती है।

राज-भाषा आयोग—

संविधान के अनुसार १९५५ जून में राष्ट्रपति ने राज-भाषा आयोग नियुक्त कर दिया। श्री बालगंगाधर खेर उसके अध्यक्ष नियुक्त हुए थे। आयोग को यह आदेश दिया गया था कि वह देश भर में भ्रमण करके देश के विद्वानों, शिक्षण-शास्त्रियों, सरकारी अधिकारियों तथा राजनैतिक नेताओं के विचार जान लें और उन विचारों के आधार पर संविधान में उल्लिखित राज-भाषा सम्बन्धी धाराओं का समन्वय करके उसे सफल तथा सूक्ष्म रूप से कार्यान्वित करने का सुगम कार्यक्रम सुझावें। इस सिलसिले में उठनेवाली अन्य समस्याओं का उचित हल सुझाने का भी अधिकार आयोग को दिया गया था। देश के बीस सुप्रसिद्ध नेता; हिन्दी सेवी और विद्वान लोग उसके सदस्य नियुक्त हुए। उन बीस सदस्यों में नीचे लिखे लोगों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

१. श्री अनन्तशयनम् अय्यंगार (उपाध्यक्ष)
२. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
३. डॉ. अमरनाथ झा
४. डॉ. सुनीत कुमार चटर्जी
५. डॉ. अबीद हुसैन
६. डॉ. बाबूराम सक्सेना
७. कविवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
८. मो. सत्यनारायण
९. ए. के. राजा
१०. पी. सुब्बरायन्

प्रकरण १४

दक्षिण के चारों प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार

आन्ध्र

तेलुगु भाषा—

आन्ध्र की भाषा तेलुगु है। ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम एक ही द्राविड़ भाषा की अलग-अलग अविकसित बोलियाँ थीं। छठी शताब्दी से इनका विकास होने लगा। तेलुगु भी इनमें एक विकसित भाषा है।

तेलुगु भाषा-भाषी करीब पाँच करोड़ से अधिक हैं। तेलुगु मीठी भाषा है। इसे 'इटालियन आफ़ दि ईस्ट' (Italian of the East) कहा जाता है। इसका साहित्य दसवीं शताब्दी के बाद हमें मिलता है।

तेलुगु, तेनुगु, आन्ध्र, ये तीन शब्द पर्यायवाची हैं। तेनुगु-तेलुगु 'आन्ध्र' शब्द के परवर्ती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से आन्ध्र शब्द करीब ढाई हज़ार साल का पुराना है। यह कहना कठिन है कि 'आन्ध्र' शब्द का सम्बन्ध भाषा के साथ है या किसी जाति या स्थान या राजवंश के साथ। वर्तमान आन्ध्र का दूसरा नाम तेलुगु देश भी है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह शब्द 'त्रिलिंग' से बना है। इस 'त्रिलिंग' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछों का मत है कि प्राचीन काल में आन्ध्र देश उत्तर कलिंग, दक्षिण कलिंग और मध्य कलिंग से जाना जाता था। ये तीन कलिंग मिलकर 'त्रि कलिंग' बना और कालान्तर में 'त्रिलिंग', बाद को 'तैलंग' और कालान्तर में 'तेलुगु' बना है। दूसरों की राय है कि पूर्व में द्राक्षाराम, दक्षिण में कालहस्ति और पश्चिम में श्रीशैलम् नामक तीन शिवलिंगों के तीन प्रसिद्ध शैव तीर्थों के बीच यह देश स्थित है, अतएव इन तीन शिवलिंगों के बीच के प्रदेश का नाम त्रिलिंग पड़ा और बाद को तेलुगु में परिवर्तित हुआ है।

तेलुगु भाषा बहुत प्राचीन है। यह संस्कृत गर्भित है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो मत प्रबल हैं। कई विद्वान तेलुगु को द्राविड़ भाषा परिवार का अंग मानते हैं और कुछ विद्वानों का मत है कि यह आर्य परिवार की भाषा है।

लिपि—

तेलुगु लिपि प्राचीन ब्राह्मी की दक्षिणी शाखा का रूपान्तर मात्र है। इसका कन्नड़ लिपि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। तीसरी-चौथी सदी के पूर्व इन दोनों की एक ही लिपि रही होगी, ऐसा भी कहा जाता है। इसकी वर्णमाला वैज्ञानिक है। इसके ५६ अक्षर हैं। इसके शब्द स्वरान्त हैं। यह संगीतात्मक भाषा है। विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने के कारण व्यावहारिक तेलुगु में कहीं-कहीं कुछ अन्तर है।

तेलुगु में साहित्य की रचना सन् १०५० ई० के करीब आरम्भ हुई। महाकवि नन्नय भट्टारक का 'संस्कृत भारत' का काव्यानुवाद इस साहित्य की सर्वप्रथम सर्वांग सुन्दर रचना है। ये व्याकरण के भी आचार्य थे। तेलुगु का प्राचीन साहित्य बहुत ही पुष्ट और उन्नत है। आधुनिक तेलुगु साहित्य की सभी शाखाएँ सुसमृद्ध तथा प्रगतिशील हैं। आज आन्ध्र राज्य में एक विश्वविद्यालय है, ४५ कालेज, ६०० से ऊपर हाईस्कूल और ३७०० से ऊपर प्रारम्भिक-पाठशालाएँ हैं। वहाँ की साक्षरता १९.३ प्रतिशत है।

आन्ध्र के सर्वप्रथम हिन्दी नाट्याचार्य स्व० ईमनि लक्ष्मण स्वामी द्वारा हिन्दी-प्रचार

आन्ध्र में वर्षों पूर्व स्व० लक्ष्मण स्वामी के द्वारा हिन्दी भाषा का प्रचार हुआ था। श्री लक्ष्मण स्वामी एक उच्चकोटि के नाट्याचार्य थे। उनके सम्बन्ध में श्री तोपल्लिराम ब्रह्मशास्त्री, मंछलीपटम का, १९३३ अक्तूबर के 'हिन्दी-प्रचारक' में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका निम्नलिखित उद्धृत अंश दक्षिण के हिन्दी प्रचार से सम्बन्ध रखता है।

"जब कि आन्ध्र देश में हिन्दी भाषा का नामोनिशान भी नहीं था; उस समय स्व० लक्ष्मण शास्त्रीजी ने आन्ध्र देश के जनसाधारण में नाटकों द्वारा हिन्दी भाषा का प्रचार किया। संवत् १८८० में धारवाड़ से एक नाटक कंपनी हमारे यहाँ खेल दिखाने आयी। उसकी देखा-देखी आपको भी हिन्दी नाटक खेलने का शौक हुआ। इसलिये आप संवत् १८८२ में यहाँ के नेशनल थियेटर के मेंबर बन गये। इसके पहले इस थियेटरवाले तेलुगु के नाटक खेलते थे। पर आपके मेंबर बनने के बाद आपने उस कंपनी के मेंबरों को हिन्दी सिखायी। उस समय इस शहर में सोमावधूत नामक एक योगी रहते थे। आप उनके शिष्य बन गये। सोमावधूत ने भी हिन्दी सिखाने में आपकी अच्छी सहायता की थी। तभी से मेंबरों की सहायता से आप हिन्दी नाटक खेलने लगे। आपने हिन्दी में 'पेशवा नारायणराव की फाँसी', 'अलि-बाबा-चालीस चोर', 'विश्वामित्र-तपोभंग', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'शिवाजी' आदि नाटक खेले थे। वे रंगमंच पर अनुपम कौशल दिखाकर प्रेक्षकों को आनन्द-सागर में डुबोते थे।

कुछ लोगों का अभिप्राय यह है कि आपकी भाषा आजकल की भाषा की तरह नहीं थी। उस समय सब लोगों के हिन्दी को अच्छी तरह न समझ सकने के कारण आप हिन्दी भाषा में बहुत से संस्कृत शब्द मिलाकर बोलते थे और संस्कृत समास का प्रयोग भी करते थे। आप देश-भक्त भी थे। जब वंग-भंग आन्दोलन अर्थात् 'वंदे-मातरम्-आन्दोलन' शुरू हुआ तब लक्ष्मणस्वामी जी लोगों की भीड़ में हिन्दी भाषा में देश-भक्ति के बारे में व्याख्यान देते थे और खासकर मुसलमानों की भीड़ में उर्दू में व्याख्यान देते थे। आप स्वयं हिन्दी में नाटक लिखकर खेलते थे। आपका देहान्त सन् १९१२ में हुआ था।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि आन्ध्र की जनता बहुत पहले से ही हिन्दी की ओर आकृष्ट हुई थी।

सभा की ओर से कार्यारंभ—

सन् १९१८-१९ से हिन्दी प्रचार-सभा, मद्रास की तरफ से आन्ध्र देश में हिन्दी का प्रचार संगठित रूप से आरंभ हुआ। हैदराबाद रियासत के संपर्क से वहाँ की जनता में पहले ही से हिन्दी और उर्दू का थोड़ी बहुत मात्रा में प्रचलन हो चुका था। हिन्दी और उर्दू के सैकड़ों शब्द भी तेलुगु में घुल-मिल गये थे। मद्रास में हिन्दी-प्रचार के आरम्भ होने के लगभग एक वर्ष बाद याने सन् १९१९-२० में उत्तर से जो नवयुवक हिन्दी-प्रचारार्थ आन्ध्र में आये, उनमें सर्वश्री अवधनन्दन, रामानन्द शर्मा, हृषीकेश शर्मा, रामगोपाल शर्मा और रामभरोसे श्रीवास्तव के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। तेलुगु के माध्यम से हिन्दी पढ़ाने में ये लोग बिलकुल असमर्थ थे। बाद को इनमें से कुछों ने तेलुगु सीखी। आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी-प्रचारकों की माँगें आने लगीं। लेकिन पर्याप्त संख्या में हिन्दी प्रचारक न होने की वजह से उनकी माँगें पूरी न हो सकीं। अध्यापकों के अभाव की पूर्ति करने के उद्देश्य से आन्ध्र के कुछ नवयुवक हिन्दी पढ़ने के लिए उत्तर गये। साहित्य-सम्मेलन की ओर से उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था हुई। निश्चित समय तक अध्ययन पूरा करके वे वापस आये और भिन्न-भिन्न केन्द्रों में हिन्दी-प्रचार करने लगे। उनमें सर्व-प्रमुख स्व. जंध्याल शिवन्न शास्त्री, स्व. पीसपाटि वेंकट सुब्बराव, स्व. मुडुंबी नरसिंहा-चार्युलु, मल्लादि वेंकट सीतारामांजनेयुलु, दम्मालपाटि रामकृष्ण शास्त्री, मोड़िचर्ल वेंकटेश्वर राव, राजा मिट्टदोड्डि नरसिंह राव आदि हैं। इनके कार्यों के संचालन तथा संगठन के लिए सन् १९२० में आन्ध्र-शाखा कार्यालय नेल्लूर में खुला। श्री. रामभरोसे श्रीवास्तव कार्यालय के सर्वप्रथम संचालक बने।

---

१ 'हिन्दी-प्रचारक'—अक्तूबर १९३३

मछलीपटम—

'हिन्दी-प्रचारक' के दिसम्बर १९३० के अंक में श्री. उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या के लिखे 'कार्य-विवरण' से पता लगता है कि मछलीपटम में सन् १९१८ से ही हिन्दी-प्रचार का कार्य आरंभ हो चुका था। आपके लिखे विवरण का नीचे लिखा अंश इसका स्पष्ट प्रमाण है। आपने लिखा है—

"मछलीपटम एक महत्वपूर्ण इतिहास-प्रसिद्ध एक पुराना शहर है। यह साधारणतः सब आन्दोलनों का अड्डा कहा जा सकता है। सन् १८८१ ई० में जब कि भारत राष्ट्रीय महासभा (Indian National Kongress) का जन्म भी न हुआ था, तब धारवाड़ के एक 'हिन्दी-नाटक-मंडल' ने यहाँ आकर हिन्दी-नाटक खेले, उनका प्रभाव उस समय के आन्ध्र युवकों पर पड़ा, जिससे प्रेरित होकर इन्होंने यहाँ "मत्स्यपुरी देशीय नाटक समाज' (The National Theatre, Masuli Patam) नामक एक हिन्दी-नाटक मंडली की स्थापना की थी। अतः करीब ५० वर्ष के पहले से ही इस शहर के लोगों में हिन्दी भाषा के प्रति आदर भाव है और उस समय से ही हिन्दी समझनेवाले और बोलने वाले कुछ लोग पाये जाते हैं।"[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि सन् १८८१ से वहाँ पर हिन्दी का प्रचार आरंभ हो चुका था, लेकिन किसी राष्ट्रीय उद्देश्य की प्रेरणा से राष्ट्र-भाषा के रूप में लोगों ने हिन्दी नहीं पढ़ी थी। राष्ट्र-भाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार सन् १९१८ में ही शुरू हुआ था। आगे के विवरण में उसका यों उल्लेख है—

"जब महात्मा गाँधीजी ने तथा देश के अन्य नेताओं ने सारे भारतवर्ष के लिए एक भाषा की आवश्यकता महसूस की और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया, तब कर्मवीर महात्मा गाँधीजी ने सन् १९१८ नवम्बर महीने में श्रीमान् हृषीकेश शर्मा जी को मछलीपटम में हिन्दी-प्रचार करने भेजा था। आन्ध्र-जातीय-कलाशाला में राष्ट्रभाषा हिन्दी की आवश्यकता समझकर आन्ध्र प्रान्त भर में पहले-पहल अपनी विद्याप्रणाली में उसे स्थान दिया। श्री हृषीकेश शर्मा जी ने २२ नवम्बर १९१८ में कलाशाला में हिन्दी का प्रचार-कार्य शुरू किया था।

"श्री हृषीकेश शर्मा जी के निरन्तर परिश्रम के कारण लोगों में हिन्दी के प्रति अपूर्व आदर और प्रेम बढ़ा।"[2]

इससे पता चलता है कि वहाँ पर १९१८ से बड़े जोरों पर हिन्दी-प्रचार-कार्य होने लगा। श्री हृषीकेश शर्मा जी के अतिरिक्त श्रीयुत मल्लादि आंजनेयुलु, श्री. बन्दा वेंकटेश्वर रावजी, श्री. रामगोपाल शर्माजी, श्री. उन्नवराजगोपाल कृष्णय्या,

---

(१) 'हिन्दी-प्रचारक'—दिसम्बर १९३०

(२) 'हिन्दी-प्रचारक' दिसम्बर—१९३०

श्री. वेंकटप्पय्या, श्री चल्लालक्ष्मी नारायण शास्त्रीजी आदि वहाँ हिन्दी का प्रचार बड़ी सफलता के साथ करते थे। वहाँ की कलाशाला, कन्यका परमेश्वरी मन्दिर, टाउन हॉल आदि में हिन्दी-वर्ग चलते थे। शहर में दो पुस्तकालय भी खुले थे जिनमें हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ मँगायी जाती थीं। आन्ध्र में नेल्लूर की तरह मछलीपटम केन्द्र भी उन दिनों हिन्दी के प्रचार में अग्रणी रहता था।

काकिनाड़ा —

काकिनाड़ा भी हिन्दी के प्रचार में उन दिनों एक प्रशस्त केन्द्र रहा है। वहाँ का 'हिन्दी-कुटीर', 'बालिका हिन्दी पाठशाला' भी हिन्दी-प्रचार के इतिहास में गणनीय स्थान रखती है।

काँग्रेस का काकिनाड़ा अधिवेशन और हिन्दी —

सन् १९२३ के काँग्रेस के काकिनाड़ा अधिवेशन में आन्ध्र के हिन्दी प्रचारकों को स्वयंसेवक बनकर अपनी सेवाएँ अर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आन्ध्र के सुप्रसिद्ध नेता स्व० देशभक्त कोंडा वेंकटप्पय्या उस अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। अपना स्वागत-भाषण उन्होंने हिन्दी में ही दिया जिसकी महात्मा-गाँधीजी तक ने बड़ी तारीफ की थी। इस अधिवेशन के सिलसिले में वहाँ एक हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन भी हुआ जिसका अध्यक्ष-पद स्व० जमनालाल बजाज ने ग्रहण किया था। सम्मेलन में हिन्दी-प्रचार-संबन्धी कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए थे। इस अधिवेशन के फलस्वरूप जनता हिन्दी-प्रचार की ओर पूर्वाधिक आकृष्ट हुई।

महत्वपूर्ण कार्य —

श्रीमती दुर्गाबाई की उन दिनों की हिन्दी-सेवाएँ अनन्य हैं। १९२४ से लेकर कस्तूरी देवी-बालिका-पाठशाला काकिनाड़ा में वे हिन्दी-प्रचार कर रही थीं। आप सत्याग्रह आन्दोलन में गिरफ्तार होकर वेल्लूर जेल में गयीं। वहाँ आपने सभी कैदियों को हिन्दी पढ़ाई थी।

नेल्लूर —

हिन्दी-प्रचार के उस आरंभिक काल में नेल्लूर केन्द्र में जो कार्य हुआ, वह विशेष उल्लेखनीय है। स्व० श्री दिगुमूर्तिहनुमन्तराव जी ने हिन्दी-प्रचार के लिए क्षेत्र तैयार किया था। इस संबन्ध में 'हिन्दी-प्रचारक' के (जनवरी-१९३०) अंक में जो विवरण प्रकाशित हुआ था, उसका नीचे उद्धृत अंश पठनीय है।

यहाँ पर १९१९-२० में हिन्दी-प्रचार, संयुक्त प्रान्त निवासी श्रीराम भरोसे जी ने दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार सभा की तरफ से शुरू किया। इसके पहले स्व० दिगुमूर्त्ति हनुमन्तरावजी ने कार्य के लिए क्षेत्र तैयार कर रखा था। नेल्लूर शहर के साथ

साथ आसपास के गूडूर, कावली, अल्लूर, कोरटूर आदि अन्य जगहों पर भी अपने विद्यार्थियों द्वारा हिन्दी की शिक्षा दिलवाते थे। १९२२ में म्यूनिसिपालिटी भी सब पाठशालाओं में हिन्दी पढ़ाने लगी। १९२१ सितम्बर में श्री मो. सत्यनारायण जी, रामभरोसे जी की सहायता के लिए नेल्लूर में नियुक्त किये गये। इन दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों से नेल्लूर जिला आन्ध्र देश के अन्य स्थानों से आगे बढ़ा।"[1]

ऊपर के उद्धृत विवरण से प्रकट है कि उन दिनों नेल्लूर और आस-पास के केन्द्रों में हिन्दी का प्रचार बड़ी तीव्रगति से होने लगा था। नेल्लूर में उन दिनों एक हिन्दी-पुस्तकालय खुला, जिसका हिन्दी विद्यार्थियों ने पूरा-पूरा फायदा उठाया।

म्यूनिसिपल हाईस्कूलों में हिन्दी—

सन् १९२४ से आन्ध्र देश में हिन्दी का प्रचार और भी विस्तृत और संगठित रूप में होने लगा। उन दिनों काँग्रेसी नेता जो नगरपालिका के अध्यक्ष बनते थे, हिन्दी-प्रचार के लिए काफी प्रोत्साहन देते थे। उनके प्रोत्साहन से विजयवाड़ा, गुंटूर, नेल्लूर आदि शहरों के म्यूनिसिपल हाईस्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था हुई। इसके बाद धीरे-धीरे जिला-बोर्डों के स्कूलों में भी हिन्दी का प्रवेश होने लगा।

नेल्लूर-कालेज में हिन्दी —

मद्रास यूनिवर्सिटी ने कई वर्ष पहले ही अपने पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिया था; लेकिन आन्ध्र विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कालेजों में ही पहले यह अमल में लाया गया था। १९३८ से नेल्लूर के कालेज में इंटरमीडियट कक्षा में हिन्दी की ऐच्छिक विषय के तौर पर पढ़ाई शुरू हुई। कालेज में उस समय भट्टाराम वेंकट-सुब्बय्या शर्मा जी काम कर रहे थे।

प्रचारक विद्यालय राजमहेन्द्रवरम् (राजमहेन्द्री) —

हिन्दी शिक्षकों को तैयार करने के लिए सन् १९२२ में राजमहेन्द्रवरम् में एक हिन्दी-प्रचारक विद्यालय खोला गया जिसके अध्यापक श्री. हृषीकेश शर्मा तथा श्री. रामानन्द शर्मा थे। यह विद्यालय बहुत ही सफल रहा। कई युवक हिन्दी की अच्छी योग्यता पाकर हिन्दी-प्रचारक बने जिनमें सर्वश्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, एस. वी. शिवराम शर्मा, भट्टारम वेंकट सुब्रय्या, उन्नव वेंकटप्पय्या, जंध्याल राममूर्ति, इरगतरपु रामसोमयाजुलु आदि सर्वप्रमुख हैं। आन्ध्र के इसी केन्द्र में सबसे पहले हिन्दी का प्रचार आरंभ हुआ था। इस केन्द्र के हिन्दी-प्रचार के आदिकाल पर प्रकाश डालते हुए श्री. क. म. शिवराम शर्मा जी ने जो प्रारम्भकाल में वहाँ प्रचार कार्य करते थे, अपने संस्मरण में यों लिखा था—

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक'—जनवरी अंक १९३० 'नेल्लूर जिले में हिन्दी-प्रचार का संक्षिप्त विवरण' से।

"राजमहेन्द्रवरम् के लोगों ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को बड़े प्रेम से अपनाया। जगह-जगह पर हिन्दी-वर्ग खुले। एक महीने भर के अन्दर करीब सौ विद्यार्थी हिन्दी सीखने लगे। इन दिनों हिन्दी पढ़ाने के लिए उपयुक्त कोई किताब नहीं थी। स्वामी सत्यदेव जी ने जो कि श्री देवदास जी गाँधी के बाद हिन्दी का प्रचार करने मद्रास पधारे थे—एक हिन्दी की किताब प्रकाशित की थी। वही वर्गों में पढ़ायी जाती थी और अकसर उसके बाद लोग इण्डियन प्रेस की बाल-रामायण पढ़ाते थे। मैं भी यही करने लगा।

हमलोगों के प्रयाग से लौटने के कुछ दिन पहले ही स्वामी सत्यदेवजी उत्तरभारत चले गये। कुछ समय बाद प्रचार का काम श्री. हरिहरशर्माजी को सौंपकर देवदासजी भी जाने लगे। जाने के पहले अन्य जगहों के हिन्दी-प्रचार के कार्य का परिचय प्राप्त करने के लिये दक्षिण-भारत के हिन्दी-प्रचार केन्द्रों में भ्रमण किया। इसी सिलसिले में आप राजमहेन्द्रवरम् भी आये। लोगों ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया।

राजमहेंद्रवरम में हिन्दी प्रचार का श्रीगणेश करने का श्रेय श्री. दासु दामोदरराव जी को है। हिन्दी के काम में प्रसिद्ध नेता स्व० श्री. न्यापति सुब्बरावजी की मदद मिलती थी। तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री. चिलकमूर्ति लक्ष्मीनृसिंहजी का पूरा सहयोग मिला था। लेकिन सबसे ज़्यादा दिलचस्पी लेनेवाले और मदद पहुँचानेवाले थे त्यागमूर्ति देश-भक्त स्वर्गीय ब्रह्म लोस्युल सुब्रह्मण्यमणि।[१]

आरंभ के प्रमुख केन्द्र—

सन् १९१८ से १९३० तक आन्ध्र के सैकड़ों केन्द्रों में हिन्दी का प्रचार कार्य जोर-शोर से होने लगा था। उनमें राजमंड्री, काकिनाडा, मछलीपट्टणम, विजयवाड़ा, मदनपल्लि, नेल्लूर, तेनाली, गुँटूर, गुड़िवाडा, अनन्तपुर, गूडूर, भीमवरम, सिकदराबाद आदि सर्वप्रमुख रहे। सन् १९३० के बाद धीरे-धीरे हज़ारों केन्द्रों में हिन्दी की जड़ जमने लगी। उन दिनों आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार केन्द्रों के हिन्दी-प्रचारकों की संख्या अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बहुत बड़ी थी।

आन्ध्र शाखा हिन्दी-प्रचार-सभा—

सभा की आन्ध्रशाखा का उद्घाटन १-६-१९३२ को श्री. अछेपल्लि रामशेषय्या जी के द्वारा हुआ। स्थानीय हिन्दी-प्रेमी सज्जनों में श्री. जयन्तिपुरम् के राजा साहब, श्री. डॉ० पं० सीताराम शर्माजी L. M. P., 4. C. P. & S, श्री. शिइल

---

१. हिन्दी-प्रचार के कुछ संस्मरण—'अल्प विराम' हिन्दी-प्रचार-समाचार—१९४१ दिसम्बर पृ० ५४२।

'हिन्दी-प्रचारक'—पृ० १९३२ जून, पृष्ठ १९१।

काम्भोट्लु B. A., B. L. हाईकोर्ट वकील तथा श्री. य. शेषगिरि रावजी. B. A., L. T. आदि थे। प्रचारकों में श्री. मो. सत्यनारायण जी, श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या जी, श्री. कूचिभोटूल हनुमन्तरावजी तथा श्री. पिं. लाजपतरायजी आदि प्रमुख थे।

श्री. रामशेषय्याजी ने अपने उद्घाटन-भाषण में यों कहा था—"इस कार्यालय के द्वारा आन्ध्र देश में हिन्दी का प्रचार खूब होगा। आन्ध्र देश में ऐसे कार्यालय के रहने की बड़ी ही ज़रूरत मुझे महसूस होती थी। आज वह पूरी हुई। आन्ध्र कार्यालय के लिए आन्ध्र देश से ही धन वसूल हो, हम धन के लिए बाहर मुँह न ताकें।"

कृष्णा पुष्करम्—

सन् १९३२ में कृष्ण पुष्करम् के अवसर पर आन्ध्र देशीय हिन्दी-प्रचार सम्मेलन के अष्टम अधिवेशन में, जो श्रीमती दुर्गाबाई (श्रीमती. देशमुख) की अध्यक्षता में हुआ था, निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। "आन्ध्र देश में हिन्दी-प्रचार को बढ़ाने और उसे सुचारु रूप से चलाने के उद्देश्य से एक आन्ध्र-प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार समिति स्थापित की जाय।" इसको कार्यान्वित करने के लिए श्री. देशभक्त कोंडा वेंकटप्पय्याजी, श्री. देशोद्धारक विश्वदाता नागेश्वर रावजी, श्री. रामदास पन्तुलुजी, गोल्लपूडि सीताराम शास्त्री जी, श्री. राजा जयन्तिपुरम् आदि सदस्यों की एक समिति बनायी गयी। समिति के संयोजक श्री. पी. वें. सुब्बारावजी तथा श्री. भालचन्द्र आपटेजी मनोनीत हुए। हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन में भी जो दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के प्रधान मंत्री पं. हरिहर शर्माजी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ था, आन्ध्र प्रान्त में एक स्वतंत्र सभा स्थापित करने के संबन्ध में प्रस्ताव पास हुआ था।

सन् १९३३ दिसंबर मास में जब गाँधीजी हरिजन-यात्रा के सिलसिले में विजयवाड़ा आये तो श्री. नागेश्वर रावजी के नेतृत्व में श्रीमती दुर्गाबाई, श्री. ओ. वेंकटेश्वर शर्मा, श्री. पी. वें. सुब्बराव जी तथा श्री. भालचन्द्र आपटे का निवेदन-संघ गाँधीजी से मिला और आन्ध्र के लिए एक अलग स्वतंत्र संस्था की मांग पेश की। गाँधीजी ने उनकी माँग मंजूर की और दूसरे वर्ष श्री. काका कालेलकर जी को दक्षिण के हिन्दी-प्रचार कार्य का निरीक्षण करने के लिए भेजा। काकाजी ने दक्षिण के चारों प्रान्तों में सभा की संबन्ध-शाखाएँ स्थापित करने की सलाह दी।

आन्ध्र में हिन्दी-प्रचार का काम मज़बूत और व्यापक बनाने के लिए आन्ध्र के नेताओं की एक बैठक ता० ६-३-१९३५ को बेज़वाड़ा में श्री. काका कालेलकरजी की उपस्थिति में बुलायी गयी थी। चर्चा के बाद कार्य-संचालन के लिए नीचे लिखे

नेताओं की एक समिति बनायी गयी। श्री. कोंडा वेंकटप्पय्या, श्री. पट्टाभि सीतारामय्या, श्री. ए. कालेश्वर राव, श्री. जी. सीताराम शास्त्री, श्री. डी. नारायण राव और के. मधुसूदन राव समिति के सदस्य रहे।

आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी-प्रचार संघ—

श्री. काका कालेलकरजी ने सभा के पुराने संविधान को संशोधित किया। उस परिवर्तित संविधान के अनुसार सन् १९३६ में 'आन्ध्र-राष्ट्र हिन्दी-प्रचार संघ' की स्थापना हुई। स्व. श्री. देशभक्त कोंडा. वेंकटप्पय्या जी अनेक आजीवन अध्यक्ष चुने गये। श्री. स्व. पीसपाटी सुब्बारावजी संघ के मंत्री नियुक्त हुए।

सन् १९४१ में श्री. पीसपाटी सुब्बाराव जी की आकस्मिक मृत्यु हुई। आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के इस सच्चे, स्वार्थत्यागी कार्यकर्त्ता के आकस्मिक देह-वियोग से वहाँ के कार्य को बड़ा धक्का लगा। उसकी क्षति पूर्ति अभी तक नहीं हुई है।

उनके स्थान पर १९४१ में श्री. उन्नवराजगोपालकृष्णय्या मंत्री नियुक्त हुए। तब से १९५७ तक वे ही इस कार्य को बड़ी सफलता के साथ संभालते रहे। श्री गोपालरेड्डी इस समय संघ के अध्यक्ष हैं।

अन्य प्रान्तों का अगुआ—

आन्ध्र में आरंभ से ही हिन्दी प्रचार के लिए अनुकूल वातावरण रहा। वहाँ के उत्साही, देशप्रेमी कार्यकर्त्ताओं के निरन्तर प्रयत्न के फलस्वरूप वहाँ दक्षिण के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा हिन्दी का प्रचार अधिक व्यापक और लोकप्रिय बन सका। हिन्दी-भाषी-प्रान्तों के निकट-संपर्क के कारण आन्ध्र की जनता के हिन्दी में व्यावहारिक ज्ञान स्थायी हो सका है। वहाँ के प्रचार-कार्य की प्रगति में हिन्दी-महासभाएँ, हिन्दी-प्रचारक-सम्मेलन, हिन्दी-नाटक-प्रदर्शन, हिन्दी-प्रेमी-मंडलियाँ, 'हिन्दी-प्रचार-सप्ताह' आदि प्रमुख साधन रहे हैं। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से आन्ध्र राज्य आरंभ से ही दक्षिण के अन्य राज्यों के लिए पथप्रदर्शक रहता है।

हिन्दी महा-सभाएँ—

सन् १९२१ से प्रायः हर साल आन्ध्र में हिन्दी महासभाएँ होती रहती हैं। हिन्दी-प्रचार-क्षेत्र में काम करनेवाले सभी कार्यकर्त्ताओं को एकत्र होकर विचार-विनिमय करने और भावी कार्य-क्रम बनाने का सुयोग इन महासभाओं के अवसर पर प्राप्त होता है। कार्यकर्त्ताओं में नयी स्फूर्त्ति पैदा करना ही इन वार्षिक सम्मेलनों का प्रमुख उद्देश्य रहता है।

सन् १९३६ तक ये सम्मेलन आन्ध्र काँग्रेस के अधिवेशनों के साथ ही चलते थे। सन् १९३६ से ये अलग चलाने का क्रम आरंभ हुआ। हिन्दी वाक्स्पर्धाएँ,

नाटक-प्रदर्शन, पत्र-पत्रिका प्रदर्शिनी आदि इन सम्मेलनों के कार्यक्रम के मुख्य अंग हैं। प्रतिवर्ष विभिन्न केन्द्रों में सम्मेलन का आयोजन किया जाता है। इन सम्मेलनों का सन् १९२१ से १९५६ तक का क्रम यों रहा है।

[1]वर्ष	स्थल	अध्यक्ष
१९२१	गुंटूर	श्री काजीसाहब
१९२२	चित्तूर	" गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तम राव
१९२३	बेज़वाड़ा	" सूरि नरसिंहम् पंतुलु
१९२४	गुँटूर	" डॉ. भोगराजु पट्टाभि सीतारामय्या
१९२५	नंद्याल	" स्व. श्रीमती आनीबेसेंट
१९२६	एलूर	" डॉ. भो. पट्टाभि सीतारामय्या
१९३१	गुँटूर	" रामचन्द्रनि वामन नायक
१९३३	बेज़वाड़ा	" श्रीमती दुर्गाबायम्मा (श्रीमती देशमुख)
१९३७	एलूर	" श्री. मदनमोहन विद्यासागर
१९३८	काकिनाड़ा	" दुग्गिराल बलराम कृष्णय्या
१९३९	तेनाली	" स्वामी वेंकटाचलं श्रेष्ठी
१९४०	अनंतपुर	" मोटूरि सत्यनारायण
१९४१	कडपा	" चेंगलवराय रेड्डी
१९४३	नंद्याल	" गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तम राव
१९४४	पेनुगोंड़ा	" बेज़वाडा गोपाल रेड्डी
१९४५	राजमहेन्द्री	" भो० पट्टाभि सीतारामय्या
१९४६	बेज़वाडा	" उन्नव लक्ष्मीनारायण पंतुलु
१९४७	चित्तूर	" टंगुटूरि प्रकाशम पंतुलु
१९४९	एलूर	" माड़भूमि अनन्तशयनम् अय्यंगार
१९५३	गुँटूर	" गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तम राव
१९५४	विशाखपट्टणम	" रोक्कम लक्ष्मीनरसिंहम दोरा
१९५६	हैदराबाद	" मोटूरी सत्यनारायण

हिन्दी-प्रचारक-मण्डल—

आन्ध्र में 'हिन्दी-प्रचारक-मण्डल' नामक एक प्रबल संघ है। इस मण्डल की ओर से भी प्रति वर्ष प्रचारक-सम्मेलन किया जाता है। विभिन्न केन्द्रों में कार्य करने वाले प्रचारक सम्मेलन में भाग लिया करते हैं। प्रचार-कार्य के विकास की आयोजना बनाना, शिक्षण-कला के तरीकों पर चर्चा करके उसके संबंध में अधिकाधिक

(१) 'हिन्दी प्रचार का इतिहास'—आन्ध्र पृष्ठ २३।

जानकारी प्राप्त करना, अपनी योग्यता बढ़ाने के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त करना आदि ही इस सम्मेलन की आयोजना का उद्देश्य है। इस हिन्दी प्रेमी मण्डल की स्थापना सन् १९२३ में हुई। प्रतिवर्ष हिन्दी महासभाओं के सिलसिले में हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन का कार्य-क्रम हिन्दी के प्रमुख अनुभवी कार्यकर्त्ताओं के सभापतित्व में चला करता है। सन् १९३६ तक निम्नलिखित स्थानों पर देश के गण्यमान्य नेताओं के सभापतित्व में सम्मेलन हुए।

वर्ष	स्थान	अध्यक्ष
१९२२	बेजवाड़ा	श्री हृषीकेश शर्मा
१९२३	काकिनाड़ा	स्व० श्री० काशीनाथुनी नागेश्वरराव पन्तुलु
१९२४	गुन्टूर	श्री० भो० पट्टाभि सीतारामय्या
१९३५	बेजवाड़ा	श्री० हरिहर शर्मा
१९३७	एलूर	स्व० श्री० ओरिगंटि वेंकटेश्वर शर्मा
१९३८	काकिनाड़ा	श्री० एस० वी० शिवराम शर्मा
१९३९	तेनाली	श्री० मोटूरी सत्यनारायण
१९४०	अनन्तपुर	स्व० श्री० पीसवाटि वेंकट सुब्बराव
१९४१	कडपा	पं० श्री० रामानन्द शर्मा
१९४३	नंद्याल	श्री० उन्नव राजगोपालकृष्णय्या
१९४४	पेनुगोंड़ा	श्री० भट्टारम वेंकट सुब्बय्या
१९४५	राजमन्द्री	श्री० ब्रजनन्दन शर्मा
१९४६	बेजवाड़ा	श्री० अल्लूरि सत्यनारायण राजु
१९४७	चित्तूर	श्री० शौर्ल ब्रह्मय्या
१९४९	एलूर	श्री० एस० वी० शिवराम शर्मा
१९५१	विजयवाड़ा	श्री० यलमंचिलि वेंकटेश्वर राव
१९५३	गुन्टूर	श्री० दुग्गिराल बलराम कृष्णय्या
१९५४	विशाखपट्टणम	श्री० मोटूरि सत्यनारायण
१९५६	तेनाली	श्री० पुंतुबाका श्री रामुलु

नाटक प्रदर्शन—

नाटक प्रदर्शन के द्वारा जनता में हिन्दी का प्रचार करने में आन्ध्र देश अन्य प्रान्तों का मार्गदर्शक रहा है। वहाँ के हिन्दी-प्रचारकों में उच्चकोटि के अभिनेता हैं। आन्ध्र हिन्दी-प्रचार संघ के भूतपूर्व मन्त्री श्री० उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या एक उच्च-कोटि के अभिनेता हैं। आपकी अभिनय चातुरी की काफी प्रशंसा हुई। प्रशंसकों में स्व० श्री० प्रेमचन्द जी और श्री० काका कालेलकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

नाटकों का प्रदर्शन आन्ध्र देश के हिन्दी-प्रचार का एक प्रबल साधन है, जिससे वे लोगों को हिन्दी की ओर आकृष्ट करने में सफल रहते हैं। वहाँ कई केन्द्रों में अलग अलग नाटक-मण्डलियाँ स्थापित हुई हैं। मछलीपटम, एलूर, चित्तूर, भीमवरम, राजमहेन्द्री आदि स्थानों की नाटक-मण्डलियाँ उनमें प्रमुख हैं। आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी-प्रचार संघ के तत्वावधान में भी एक स्थायी नाटक-मण्डली स्थापित है। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के तत्वावधान में आयोजित अन्तर-प्रान्तीय हिन्दी नाटक-स्पर्धा में यह मंडली अपने अभिनय-प्रदर्शन में सन् १९३८, १९३९ तथा १९४० में तीनों वर्षों की स्पर्धाओं में सर्वप्रथम होकर पुरस्कृत हुई है। इस नाटक-मण्डली में आन्ध्र के उच्च-शिक्षित, लब्ध-प्रतिष्ठ सज्जनों ने तथा अभिनय-कुशल हिन्दी-प्रचारकों ने भाग लिया था। उक्त नाटकों के अच्छे अभिनेताओं में श्री गोडेपल्लि सूर्यनारायण राव, सर्व श्री-दाड़ी गोविन्दराजुलु नायुडु, वाराणसि पद्मनाभम, पेम्मराजु रामाराव, नंडूरि रामकृष्ण-राव, स्व. सोमंचि लिंगय्या, उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, वेमूरि आंजनेय शर्मा, चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा, पसल सूर्यचन्द्र राव, शीलं ब्रह्मय्या, अटलूरि रामाराव और वेमूरि रांधाकृष्णमूर्ति आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री. उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या के अभिनय की प्रशंसा करते हुए श्री. काका कालेलकर तथा श्री. प्रेमचन्द ने यों लिखा है—

"मेरे मित्र हिन्दी प्रेमी श्री. उन्नवराजगोपाल कृष्णय्या को चाणक्य की भूमिका में मैंने देखा। अपनी भूमिका के साथ वे इतने तन्मय हो जाते हैं कि प्रेक्षकों के हृदय तक अपने सर्व ही भाव पूर्णतया पहुँचा सकते हैं। ऐसी उच्चकोटि की अभिनय-कला हर जगह पायी नहीं जाती है। मैंने इनमें जो विशेषता पायी सो यह है कि अभिनय में ये पूरा-पूरा संयम रखते हैं। इसीलिए स्वाभाविकता आती है और असर भी संपूर्ण होता है। शुद्ध संस्कारिता का यह फल है। इनके अभिनय से हिन्दी को बहुत कुछ लाभ हो रहा है। युवक लोग इनसे यह कला सीख कर इनको कृतार्थ करें।"

मद्रास
१-१-१९३५. (काका कालेलकर)

"हिन्दी एसोसिएशन ने हिन्दी-प्रचार सभा के वार्षिकोत्सव पर जनता को 'दुर्गादास' नाटक और 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के चार सीन दिखाये। यद्यपि एसोसिएशन ने पहले से विशेष तैयारी न कर पायी थी, फिर भी इन दृश्यों को देखकर मुझे ऐसा लगा कि हमारे यहाँ साधारणतः जो अमेच्योर लोग ड्रामे खेलते हैं। उनकी अपेक्षा इन लोगों के अभिनय में कुछ स्वाभाविकता ज्यादा थी। उच्चारण तो जैसा चाहिए, वैसा न था, लेकिन अभ्यास से यह ऐब दूर हो सकता है। और लोगों के एक्टिंग में

तो खूबी थी ही, लेकिन श्री. उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या ने चाणक्य का जो पार्ट खेला वह इतना स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी था कि मैं उसे देखकर मुग्ध हो गया। जहाँ जिस तरह के भावप्रदर्शन की ज़रूरत थी, वहाँ इन्होंने वैसा ही किया। ऐसे व्यक्ति का जो पारिवारिक और वैयक्तिक विपत्तियों से ईश्वर, सत्य और धर्म में अपना विश्वास खो चुका हो, और जिसकी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही हो उसका इतना सुन्दर चित्रण करने पर मैं आपको बधाई देता हूँ।''

मद्रास
१-१-१९३५

(प्रेमचन्द)

हिन्दी-प्रेमी-मंडलियाँ—

इन दिनों आन्ध्र के सैकड़ों केन्द्रों में हिन्दी-प्रेमी-मंडलियाँ स्थापित हैं जो आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी-प्रचार संघ से संबद्ध हैं। इन मंडलियों को सरकारी मान्यता प्राप्त है। वास्तव में मंडलियों की कार्य-शक्ति पर ही आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन की सफलता निर्भर रहती है।

हिन्दी-विद्यालय—

संघ के तत्वावधान में आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी विद्यालय चलाये गये जिनमें हज़ारों विद्यार्थियों ने हिन्दी की शिक्षा पायी। इन दिनों उनमें से कई एक स्कूलों के हिन्दी-अध्यापक बने हुए हैं और कई स्वतंत्र रूप से हिन्दी-प्रचार-क्षेत्र में काम कर रहे हैं। उन विद्यालयों का क्रम आज भी जारी है।

निजी-भवन--

सन् १९४२ में आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी-प्रचारक संघ के लिए स्व. श्री. काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु के स्मारक के रूप में एक कार्यालय-भवन बेज़वाड़ा में खरीदा। कार्यालय-भवन के अतिरिक्त सन् १९४६ में एक विद्यालय-भवन भी बनवाया गया है। विद्यालय-भवन के शिलान्यास-कर्म में महात्मा गाँधीजी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था।

कवि और लेखक—

आन्ध्र देश के हिन्दी-प्रचारकों में कई अच्छे लेखक और कवि हुए हैं जिन्होंने हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपनी गहरी विद्वत्ता तथा प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है। उनमें सर्वश्री स्व. जंध्याल शिवन्न शास्त्री, स्व. पीसपाटि वेंकट सुब्बराव, मोटूरी, सत्यनारायण, वाराणसि राजमूर्ति 'रेणु', कर्णवीर नागेश्वर राव, एलमंचिलि वेंकटेश्वर राव, वेमूरी अंजनेय शर्मा, पिंगली लाजपतराय, चाड़े परपु रामशेषय्या, येलमंचिलि वेंकटप्पय्या, वर्दिपर्त्ति चलपतिराव, वज्झल सुब्रह्मण्यम, दुर्गानन्द, वैरागी, कोटा सुन्दर-राम शर्मा, ए. सी. कामाक्षी राव, दण्डमूड़ि महीधर, दण्डमूड़ि मंजुलता, ए. बाल शौरी

रेड्डी, कर्णराज शेष गिरिराव, अयाचितुल हनुमच्छास्त्री, वंकायलपाटी शेषावतारम्, बूदराजु सुब्बराव, वैज्ञानि श्रीरामुलु गुप्त दोनेपूडिराजाराव, दंडमूडि वेंकिट कृष्णराव, वेमूरी राधाकृष्ण मूर्ति, चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा, एस. वी. शिवराम शर्मा, उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सफल संगठक—

आन्ध्र में इन दिनों दो हज़ार से अधिक प्रचारक हिन्दी-प्रचार में लगे हुए हैं। स्कूल-कालेजों में भी हिन्दी की पढ़ाई हो रही है। सन् १९३९ से आन्ध्र के हज़ारों हिन्दी-प्रचार-केन्द्रों में संगठित रूप से प्रचारकार्य हो रहा है। मंडल संगठक योजना को कार्यान्वित करने के लिए सुयोग्य संगठक नियुक्त है। श्री. चिट्टूरी लक्ष्मीनारायण शर्मा, श्री. वेमूरी आँजनेय शर्मा, श्री. उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, श्री. चन्द्रभट्ट अप्पन्न शास्त्री, श्री. नंडूरी शोभनाद्राचार्युलु आदि आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार संगठन के प्रबल नेता हैं।

परीक्षाएँ—

इन दिनों दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा की प्रारंभिक परीक्षाएँ (प्राथमिक, मध्यमा, राष्ट्र-भाषा) आन्ध्र देश के विद्यार्थियों के लिए चलाने का भार सन् १९४९ से संघ ही संभाल रहा है। १९५१ में संघ ने एक हिन्दी प्रेस को भी वहाँ स्थापित किया है। साहित्यिक-ग्रंथों के प्रकाशन में भी संघ प्रगति कर रहा है।

परीक्षार्थी—

सभा की विभिन्न परीक्षाओं में आन्ध्र प्रान्त से प्रतिवर्ष ३० हज़ार से ज्यादा विद्यार्थी बैठा करते हैं।

सदस्य—

इन दिनों संघ के १० हज़ार सदस्य हैं जो ५ रुपया या १० रुपया चंदा दिया करते हैं। इस संघ की स्थापना के समय संघ की वार्षिक आय एक हज़ार रुपये की थी, लेकिन आज उसका बजट एक लाख से अधिक रुपये का बन रहा है।

हैदराबाद हिन्दी प्रचार-संघ—

जब से हैदराबाद रियासत भारत के अन्तर्गत आ गयी, तब से तेलंगाना में हिन्दी-प्रचार-कार्य संघ की ओर से कार्य किया गया। श्री. वेमूरी आंजनेयशर्मा, जो संघ के पुराने अनुभवी, सुयोग्य कार्यकर्त्ता हैं, वहाँ कार्य-संचालन के लिए भेजे गये। उनकी कार्य-कुशलता तथा त्याग-निष्ठा के फल-स्वरूप वहाँ के कार्य का इतना विकास हुआ कि वहाँ भी एक अलग हिन्दी-प्रचार संघ की स्थापना हुई। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के तत्वावधान में वहाँ अब संगठित और व्यापक कार्य हो रहा है

श्री. बूर्गुल डॉ. रामकृष्णराव, श्री. रंगारेड्डि, स्वामी. रामानन्द तीर्थ, श्री. चेन्नारेड्डि, डॉ. मेलकोटे जैसे सुप्रसिद्ध नेताओं की सहायता एवं सहयोग से संघ के कार्यों की दिन-प्रतिदिन उन्नति होती रही है। सन् १९५७ में पुराने आन्ध्र-प्रान्त के ग्यारह जिलों में काम करनेवाली संस्था 'आन्ध्र राष्ट्र हिन्दी-प्रचारकसंघ' तथा तेलंगाना के नौ जिलों में कार्य करने वाली संस्था 'हैदराबाद हिन्दी-प्रचारक-सघ' दोनों का एकीकरण हुआ। अब सारे आन्ध्र-राज्य में 'दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा—आन्ध्रशाखा' हिन्दी-प्रचार का कार्य-संचालन करती है।

प्रथमगणनीय प्रचारक

स्व० जंघ्याल शिवन्न शास्त्री—

सन् १९२१ से लेकर आज तक आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार में प्रगति लाने का निरन्तर प्रयत्न हजारों निस्वार्थ, कर्मठ हिन्दी प्रचारकों द्वारा होता रहा है। इन सबके नाम गिनाना असम्भव नहीं, तो दुष्कर अवश्य है। आरम्भ के दिनों में इस क्षेत्र में उतरनेवाले प्रमुख प्रचारकों में श्री० स्व० जंघ्याल शिवन्न शास्त्री सर्वप्रमुख व्यक्ति हैं। उन्होंने इलाहाबाद से हिन्दी की उच्च-शिक्षा पायी। वे सन् १९२१ में आन्ध्र के कार्य-क्षेत्र में उतरे। हिन्दी के प्रचार में उनकी सेवाएँ अमूल्य रही हैं। उन्होंने हिन्दी-व्याकरण, हिन्दी तेलुगु-कोष तथा तेलुगु-हिन्दी-कोष की रचना की है। ये तीनों हिन्दी-प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित हैं। हिन्दी का दुर्भाग्य कहिए, उनका तैंतीस वर्ष की आयु में देहान्त हुआ। वे दक्षिण के हिन्दी-प्रचार के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे।

स्व० श्री० वेंकट सुब्बराव—

आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले व्यक्ति श्री० स्व० पी० वेंकट सुब्बराव जी हैं। सभा के प्रधान मन्त्री श्री० मो० सत्यनारायणजी ने 'स्वर्गीय हिन्दी-सुब्बराव' शीर्षक लेख ('हिन्दी-प्रचार समाचार'—अप्रैल १९४१) में उनके सम्बन्ध में यों लिखा है। वे सन् १९२१ से आजीवन हिन्दी की सेवा में रत रहे। आप 'हिन्दी-सुब्बराव' नाम से पुकारे जाते थे। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए वे आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी की जड़ जमाने में सफल हुए। उनकी कर्तव्य-निष्ठा, त्यागभाव और देश-भक्ति अन्य प्रचारकों के लिए अनुकरणीय हैं। आन्ध्र हिन्दी प्रचार सभा के मन्त्री के पद पर भी आपने काम किया था। उनकी अमूल्य सेवाओं का मूल्य आँकना कठिन है। बीस वर्ष की निरन्तर सेवा के बाद सन् १९४१ में आपकी आकस्मिक मृत्यु हुई। आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार को उनके निधन से जो क्षति पहुँची, आज भी उसकी पूर्ति नहीं हुई है।

श्री० स्व० ओरुगँटि वेंकटेश्वर राव—

स्व० श्री० वेंकटेश्वर राव बड़े प्रतिभावान तथा उच्चकोटि के विद्वान व्यक्ति हैं। आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार के विकास एवं वृद्धि में उनका योगदान बड़े ही महत्व का रहा। वे आन्ध्र के प्रचारकों के लिए आदर्श रूप थे। अपनी गहरी विद्वत्ता और निःस्वार्थ सेवा-वृत्ति के बल पर वे आन्ध्र जनता के आदर और प्रेम के पात्र बने। नेल्लूर, विनयाश्रम आदि केन्द्रों में आपने सफलता के साथ हिन्दी का प्रचार किया। आन्ध्र विश्व-विद्यालय में आप प्राध्यापक भी रहे थे। चालिस वर्ष की आयु में आपका देहान्त हुआ। हिन्दी प्रचार की श्रीवृद्धि में उनकी अतुलय सेवाएँ आन्ध्र जनता बड़ी श्रद्धा से याद करती है।

श्री हृषीकेश शर्मा जी—

आरम्भ के दिनों में आध्र के हिन्दी-प्रचार के विस्तार और विकास में महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करनेवाले स्मरणीय व्यक्ति पं० हृषीकेश शर्माजी हैं। आन्ध्रजातीय कलाशाला, मछलीपटणम, राजमहेन्द्री के हिन्दी-प्रचारक-विद्यालयों में आपने सैकड़ों युवकों को हिन्दी की ऊँची शिक्षा देकर प्रचारक बनाया। उसके बाद आप केन्द्र सभा मद्रास में कार्य करने के लिए नियुक्त हुए। उनका विशेष परिचय 'हिन्दी के आधार स्तम्भ' में दिया गया है।

श्री अवधनन्दन जी—

उत्तर से दक्षिण में आये हुए प्रमुख प्रचारकों में श्री अवधनन्दन जी एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। आरम्भ के दिनों में आपने मदनपल्ली, बरहमपुरम, बेजवाड़ा आदि केन्द्रों में बड़ी सफलता के साथ हिन्दी-प्रचार किया था। उनका परिचय 'हिन्दी-प्रचार के आधार-स्तम्भ' में दिया गया है।

भ्रातृद्वय—

श्रीरामानन्द शर्मा जी

तथा

श्रीव्रजनन्दन शर्माजी—

उत्तर से आकर दक्षिण के हिन्दी-प्रचार में अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित करने वाले लोक-प्रिय, प्रचारकों में श्रीरामानन्द शर्माजी तथा श्रीव्रजनन्दन शर्माजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीरामानन्दजी बड़े और व्रजनन्दन छोटे हैं। दोनों न केवल आन्ध्र में ही हिन्दी प्रचार की प्रगति में सहायक रहे, बल्कि दक्षिण के सभी प्रान्तों में तथा दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के विविध विभागों में अपनी कार्यशक्ति का परिचय भी दिया है। श्रीव्रजनन्दन शर्मा ने तेलुगु भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और तेलुगु-रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। सभा के

प्रचारक विद्यालयों के अध्यापन, पाठ्यपुस्तक-निर्माण, पत्र-सम्पादन आदि के कार्यों में आप दोनों की सेवाएँ अतुल्य रही हैं। दीर्घकाल तक अपनी निस्वार्थ सेवा और त्याग वृत्ति से दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार सभा के क्रमगत विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे।

श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या—

श्री० पीसपाटि वेंकट सुब्बराव के बाद आन्ध्रराष्ट्र हिन्दी-प्रचार संघ का सफल नेतृत्व करनेवाले प्रमुख व्यक्ति श्री उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या हैं। आरम्भ से ही आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन में एक वीर सेनानी के रूप में आप यशस्वी हो गये हैं। वे पहले आन्ध्र के विभिन्न केन्द्रों में एक सफल प्रचारक के रूप में काम करते रहे। हिन्दी-नाटकों के अभिनय में आपकी कलाचातुरी की लोगों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनकी प्रशंसा में श्री० प्रेमचन्द जी तथा श्री० काका कालेककर जी ने जो प्रमाण-पत्र दिये हैं, अन्यत्र उल्लिखित हैं। नाटकों के अभिनय द्वारा आपने हिन्दी प्रचार के लिए पर्याप्त धन-संग्रह भी किया है। आप कुछ वर्ष तक दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा के संयुक्त मन्त्री रहे। इन दिनों सभा की सेवा से निवृत्त हुए हैं। दक्षिण के हिन्दी-हितैषियों ने श्रीउन्नवजी की हिन्दी-सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें १९६२ में एक अभिनन्दनग्रंथ समर्पित किया है।

श्री आंजनेय शर्मा—

सन् १९३५ से लेकर आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में अदम्य उत्साह के साथ निरन्तर लगे रहनेवाले कार्यकुशल व्यक्ति हैं। आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार के सर्वांगीण विकास में उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। प्रचार, संगठन, अध्यापन आदि के क्षेत्रों में आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा कार्य-दक्षता की छाप पड़ी है। अभिनय-कला में आप उन्नवजी की तरह निष्णात हैं। सन् १९५१ से आप हैदराबाद हिन्दी-प्रचार सभा के मन्त्री रहे। वहाँ की सफलता का श्रेय आपको है। इन दिनों आप हिन्दी-प्रचार सभा, केरल-शाखा के विशेष अधिकारी के पद पर केरल में काम कर रहे हैं।

चिट्टूरी लक्ष्मीनारायण शर्मा—

सन् १९३२ से आप हिन्दी की सेवा में आत्मसमर्पण किये हुए हैं। आन्ध्र के कई केन्द्रों में बड़ी सफलता के साथ उन्होंने कार्य किया है। संगठन के कार्य में वे अद्वितीय हैं। आप भी नामी अभिनेता हैं। अपनी निस्वार्थ सेवा-परायणता तथा अनुपम कार्य-कुशलता के बल पर आप आन्ध्र के लोकप्रिय हिंदी-सेवी बने हुए हैं। आज आप आन्ध्र हिन्दी प्रचार संघ के मन्त्री पद पर नियुक्त हैं।

एस० वी० शिवराम शर्मा—

आन्ध्र के पुराने अनुभवी, सुयोग्य कार्य-कर्त्ताओं में श्री शिवराम शर्मा जी अग्रणी हैं। अपनी विद्वत्ता, कार्य-तत्परता तथा निस्वार्थ सेवा-वृत्ति से आप आन्ध्र के प्रचारकों

की प्रथम श्रेणी में आते हैं। आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन की सफलता में श्री शर्माजी की सेवाएँ भी विशेष महत्व की रही हैं। प्रचार, संगठन, अध्यापन, भाषण आदि के विभिन्न क्षेत्रों में आप समान रूप से दक्ष हैं।

भालचन्द्र आपटे—

श्री भालचन्द्र आपटे प्रथम श्रेणी के कार्यकर्त्ता हैं। दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा के विविध कार्यकलापों के संचालन एवं संगठन में उनकी दक्षता और कार्य-शक्ति सहायक रही है। मराठी आपकी मातृभाषा है। तेलुगु की भी आप अच्छी योग्यता रखते हैं। शिक्षण-कला के आप आचार्य हैं। प्रचारक विद्यालयों में आपके शिक्षित सैकड़ों नवयुवक आज हिन्दी के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। संगठन, शिक्षण, प्रचार आदि के क्षेत्रों में आपकी योग्यता के सभी कायल हैं। देश-प्रेम की उग्र-भावना से प्रेरित होकर आपने सन् १९४२ में स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया और गिरफ्तार होकर जेल गये थे। इन दिनों आप हिन्दी-प्रचार सभा, शाखा कार्यालय दिल्ली के सञ्चालक हैं।

अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ता—

स्व० मुडंबि नरसिंहाचार्युलु, स्व० बड्लमानि लक्ष्मीनरसिंहम्, स्व० कंचर्ल वेंकट कृष्णय्या आदि ने भी हिन्दी की सेवा में अपनी अमर कीर्ति छोड़ी है। श्री यलमंचलि वेंकटप्पय्या चौधरी, श्री कोमंडूरि गोविन्दराजाचार्युलु, श्री कर्णवीर नागेश्वर राव, श्री दशिक सूर्यप्रकाश राव, श्री वेमुरंटि पापायम्मा आदि सैकड़ों हिन्दी-सेवी भी इस क्षेत्र में स्मरणीय व्यक्ति हैं।

हिन्दी-प्रचार में आन्ध्र का स्थान—

दक्षिण में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में आन्ध्र का स्थान सर्वप्रथम है। अन्य प्रान्तों के लिए इस कार्य में वह आदर्श रहता है। हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की दृष्टि से वह प्रथम गणनीय है। हिन्दी का वातावरण भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा वहाँ अधिक अनुकूल है। हिन्दी-प्रचार के सभी कार्यों में वहाँ की देवियों की सेवाएँ केरल की तरह महत्त्वपूर्ण रही हैं। हिन्दी सीखने वाले छात्रों की अपेक्षा छात्राओं की संख्या वहाँ ज्यादा है। हिन्दी का विरोध वहाँ नाम-मात्र के लिए भी नहीं है। वहाँ के स्कूलों और कालेजों में भी हिन्दी का प्रवेश हो चुका है और लाखों विद्यार्थी बड़े उत्साह से हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं। आन्ध्र के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के क्रमिक विकास में वहाँ के हजारों स्वार्थत्यागी, कर्मठ, हिन्दी प्रचारकों की निरन्तर सेवाएँ अर्पित होती रही हैं जिनका मूल्य केवल शब्दों से आँका नहीं जा सकता।

प्रकरण १५

केरल में हिन्दी प्रचार

केरल—

कहा जाता है कि 'चेर' शब्द से ही 'केरल' की उत्पत्ति हुई है। इसके संबन्ध में इतिहास-लेखक भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। उन दिनों चेर राज्य के राजा को 'चेरलन' कहा जाता था। 'चेरलन' शब्द से केरल शब्द बना, यही अधिकाँश लोगों का मत है। 'केर' (नारियल) वृक्षों का 'अलम्' (खान) अर्थ में केरलम् शब्द बना, यही कुछ विद्वानों की राय है।

केरल प्रदेश पर्वत और सागर के बीच में स्थित है। 'मलाबार' भी इसका और एक नाम है। ईसा के ५४५ वर्ष पहले विदेशियों ने 'पहाड़' के अर्थ में 'मला' शब्द का प्रयोग किया था। इन दिनों ट्रावनकोर-कोच्चिन (तिरुवितांकूर-कोच्चि) का उत्तरी प्रदेश ही मलाबार नाम से जाना जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि 'मला' (पहाड़) और आब्धि (समुद्र) के बीच का प्रदेश होने से इस देश का नाम मलयाल्म् पड़ा है। 'मलयालम्' शब्द से केरल देश का भी बोध होता है। केरल भार्गव क्षेत्र भी कहलाता है। दन्तकथा है कि परशुराम ने फरसा फेंककर समुद्र को हटाया और वहाँ जो जमीन निकल आयी, वही भार्गव क्षेत्र कहलाया।

प्रकृति-सौन्दर्य—

केरल की भूप्रकृति अत्यन्त रमणीक है। प्रकृति-सौन्दर्य की दृष्टि में केरल दक्षिण का कश्मीर माना जाता है। धान के हरे-भरे खेत, नारियल के जंगल के जंगल, उनके बीचो-बीच छोटे-छोटे घर, कहीं-कहीं हरी-भरी पहाड़ियाँ, उनमें से निकलती हुई नदियाँ, बड़े-बड़े झील, सम-शीत-उष्णप्रद जलवायु आदि मानों केरल के लिए विशेष रूप से प्रकृतिदेवी की अमर देन है। प्रकृति का संपूर्ण सौन्दर्य उसकी परिपूर्ण मात्रा में यहाँ विद्यमान है। भारतीय कवियों ने अपनी रचनाओं में केरल की नैसर्गिक प्रकृति-सुषमा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रा-विवरणों में केरल की मनोमुग्धकारी प्रकृति-छटा का वर्णन किया है। आज भी बाहर से प्रतिवर्ष सैकड़ों यात्री केरल का प्रकृति-सौन्दर्य देखने के लिए यहाँ आया करते हैं और यहाँ की अनुपम प्रकृति-छटा देखकर मुग्ध हो जाते हैं।

केरल के दक्षिणी छोर पर कन्याकुमारी अन्तरीप है जो भारतीय भूभाग का दक्षिणी सीमा-बिन्दु है। वह भारत का न केवल एक तीर्थस्थान ही है, बल्कि सारी दुनिया के लिए एक अनुपम दर्शनीय स्थान भी है।

मलयालम् भाषा—

मलयालम् भाषा की उत्पत्ति के संबन्ध में भी भाषाविज्ञान के आचार्यों की राय एक-सी नहीं है। परन्तु उनके विभिन्न मतों का मूल तत्व एक ही है। मलयालम् द्राविड़ गोत्र की भाषा मानी गयी है। तमिल के साथ उसकी घनिष्ठता है। प्राचीन तमिल की साहित्यिक-शाखा की भाषा 'चेंतमिल' और बोलचाल की भाषा 'कोटुंतमिल' कहलाती थी। वही कोटुंतमिल केरल में प्रचलित थी। कहा जाता है कि मलयालम् उसी का रूपान्तर मात्र है। मलयालम भाषा का प्राचीन नाम 'मलयाण्मा' अथवा 'मलयाय्मा' था।

मलयालम्-लिपि—

प्राचीन काल में मलयालम् की लिपि उसकी वर्तमान लिपि से बिलकुल भिन्न थी। उसका नाम 'वट्टेषुत्तु' (वृत्ताकार लिपि) था। लिपि वृत्ताकार थी, अतएव वह नाम पड़ा। 'गजवटिव' उसका और एक नाम था। हाथी के पद-तल की उपमा में 'गजवटिव' (वृत्ताकार) शब्द का प्रयोग हुआ। ब्राह्मी लिपि से उस लिपि की उत्पत्ति हुई। अशोक के शिला-लेखों में उस लिपि का उपयोग किया गया है। आधुनिक मलयालम् लिपि के रूपान्तर के बाद भी 'वट्टेषुत्तु' लिपि केरल में व्यवहृत थी, इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। 'कोलेषुत्तु' नामक और एक लिपि भी उत्तर केरल में प्रचलित थी। इन दोनों में बहुत ही कम अन्तर है।

साहित्य—

यह सर्वविदित है कि शिक्षा के प्रचार, संस्कृत की घनिष्ठता, अंग्रेज़ी के प्रभाव आदि के कारण मलयालम् का साहित्य समृद्ध हुआ है और वह अब किसी भी भारतीय भाषा से पिछड़ा नहीं कहा जा सकता। मलयालम् साहित्य की सभी शाखाएँ आज विकासोन्मुख हैं। प्राचीन कवियों में एषुत्तच्छन चेरुश्शेरी, कुंचन और आधुनिक युग के महाकवियों में आशान-वल्लत्तोल-उल्लूर (त्रिमूर्ति), शंकर कुरुप, चंगनपुषा आदि विश्वविख्यात हैं। कहानी और उपन्यास के क्षेत्रों में चन्तुमेनोन, सी. वी. रामनपिल्लै, केशवदेव, तकषि। कारूर, मुहम्मद बशीर, कुट्टिक्कृष्णन, पोट्टेक्काट आदि उच्चकोटि के कलाकार माने जाते हैं।

केरल के हिन्दी प्रचार की पूर्व पीठिका

तीर्थ स्थानों में हिन्दी—

केरल के पुराने इतिहास से पता चलता है कि केरल के तीर्थ-स्थानों में वर्षों पूर्व ही हिन्दी का प्रवेश हो गया था। उत्तर से तीर्थाटन के लिए दक्षिण के तीर्थ-स्थानों में उन दिनों जो यात्री अथवा साधु-संन्यासी आते थे, उनके द्वारा उन प्रदेशों के बीच में हिन्दी का व्यवहार होता रहा है। ऐसे तीर्थ-स्थानों की सरायों अथवा धर्मशालाओं के अधिकारी भी उत्तर-भारतीय तीर्थाटकों से विचार-विनिमय करने के लिए पर्याप्त हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। आज भी दक्षिण के तीर्थ-स्थानों में पुरानी पुरोहित परम्परा के लोग उत्तर-भारतीयों से हिन्दी में बात-चीत करने भर का कामचलाऊ ज्ञान रखते हैं।

गुसाई भाषा अथवा तुर्क भाषा—

उस जमाने में लोग यहाँ हिन्दी या हिन्दुस्तानी को 'गुसाई भाषा' या 'तुर्क भाषा' कहते थे। आज भी हिन्दी के विरोधी 'गुसाई भाषा' कहकर हिन्दी की खिल्ली उड़ाया करते हैं। पहले यहाँ की रियासतों (कोचि और तिरुवितांकुर) में तीर्थ-यात्रियों के रहने के लिए सरायें या धर्मशालाएँ सरकार की ओर से स्थापित थीं जिन्हें लोग 'गुसाई मठ' कहते थे। उत्तर से आने वाले सभी तीर्थयात्री उन दिनों गुसाई कहलाते थे। अतएव उनके ठहरने के स्थान को 'गुसाईमठ' और उनकी भाषा को 'गुसाई भाषा' कहना सर्वथा स्वाभाविक ही था।

गुसाईमठों में द्विभाषी—

गुसाईमठों में ठहरने वाले तीर्थाटकों को, विशेषत: उत्तर-भारतीयों को सरकार की ओर से भोजन की चीजें—आटा, दाल, सब्जी आदि मुफ्त में देने की व्यवस्था थी। उनकी सुख-सुविधा की देख-रेख के लिए हिन्दी जानने वाले दक्षिणी लोग द्विभाषियों के रूप में नियुक्त होते थे। द्विभाषियों के लिए हिन्दी में बोलने की योग्यता पाना अनिवार्य था।

हिन्दी स्वबोधिनी—

द्विभाषी बनने के लिए लोग स्वयं हिन्दी का अध्ययन करते थे। वे गुसाइयों से भी कभी-कभी बोलचाल की हिन्दी सीख लेते थे। मलयालम् की लिपि में लिखी हुई 'हिन्दी स्वयं-शिक्षक', 'हिदुस्तानी उस्ताद', 'हिन्दी स्वबोधिनी' आदि पुस्तकें भी उन दिनों प्रचलित थीं। उत्तर के तीर्थ-स्थानों में काशी, हरिद्वार, वृन्दावन, हृषीकेश आदि में—जाने के इच्छुक दक्षिण भारतीय लोग भी हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसी पुस्तकों का सहारा लेते थे। इससे पता चलता है कि वर्षों पूर्व ही केरलीय

जनता में हिन्दी का प्रचलन, कम मात्रा में ही सही होता रहा है।

राजवंशों में हिन्दी—

पहले तिरुवितांकूर और कोचीन के राजवंशों के लोग संगीत, साहित्य, चित्र रचना आदि ललित कलाओं में बड़ी अभिरुचि रखते थे और उनमें से कई एक उन कलाओं में बड़े निष्णात भी हो गये हैं। उन दिनों राजदरबारों में बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान नियुक्त होते थे। राजघराने के लोगों की शिक्षा-दीक्षा का कार्य उन्हें सौंपा जाता था। उत्तर-भारत से आने वाले संस्कृत के पंडितों का भी राजदरबार में आदर सम्मान होता था। ऐसे हिन्दी भाषी विद्वानों के सम्पर्क में आने के कारण राजघराने के लोगों के लिए हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना एक प्रकार से अनिवार्य सा हो जाता था।

प्राचीन काल में केरल (कोचि, तिरुवितांकूर और मलबार) के अन्तर्गत कई छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य थे। वहाँ के शासकों की सेना में रियासतों की तरह मराठा, राजपूत और पठान वंश के सैनिक भी नियुक्त होते थे। उनके साथ सम्पर्क बनाये रखनेवाले केरलीय सिपाही और अन्य कर्मचारी हिन्दी में बोलने की योग्यता प्राप्त करना जरूरी मानते थे। पल्टन की संगति में आने वाले अन्य लोग भी—व्यापारी, कारीगर, मजदूर, नाई, धोबी आदि हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे।

टीपू सुलतान और उर्दू—

भारत में मुगल सलतनत के कायम होने पर दक्षिणी राज्यों की सेना के उच्च कर्मचारी हिन्दुस्तानी में पर्याप्त योग्यता प्राप्त करना जरूरी समझते थे। जब हैदरअली और टीपू सुलतान ने केरल के प्रदेशों पर चढ़ाई की तो उनके कारण वहाँ थोड़ी-बहुत मात्रा में उर्दू का भी प्रचलन हुआ था। 'मुसलमानों की भाषा' के अर्थ में उस समय लोग हिन्दी को 'तुर्क भाषा' कहने लगे। सैकड़ों अरबी और फारसी के शब्द उर्दू के प्रचलन के फलस्वरूप दक्षिणी भाषाओं में धीरे-धीरे घुल-मिल गये, जो आज भी अपने तत्सम और तद्भव रूपों में उन भाषाओं में प्रचलित हैं। लेकिन प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव से उन शब्दों में कई एक का अर्थान्तर हो गया है। कई शब्द ऐसे भी हैं जो इन दिनों उनके मौलिक अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ मलयालम् में प्रयुक्त होने वाले कुछ फारसी और अरबी के शब्द यहाँ दिये जाते हैं।

हिन्दी में	मलयालम् में
बाकी	बाकी
रूमाल	उरुमाल
ज़ोर	जोर

हिन्दी में	मलयालम् में
रोटी	रोट्टी
रतल	रात्तल
सिपाही	शिवायी
ज़मीनदार	जमीनदार
मुंशी	मुनषी
नकल	नकल
हाज़िर	हाजर
हुज़ूर	हजूर
मामूल	मामूल
तकरार	तकरार
करार	करार
खुशहाल	कुशाल
सरकार	सरकार
तहसीलदार	तहसीलदार
तालुका	ताल्लूक
ज़िला	जिल्ला
दलाल	दल्लाल
चुंगी	चुंकम
सिफ़ारिश	शुपार्शा
खलास	कलाशम

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि कई शब्द मलयालम् में आकर परिवर्तित हो गये हैं और कई एक ज्यों के त्यों अब भी प्रयुक्त होते हैं।

राजघरानों में उर्दू—

टीपू के आक्रमण के बाद कोच्चिन के राजा और टीपू में संधि हुई थी। संधि की एक शर्त के मुताबिक राजा अपने परिवार के लोगों को उर्दू सिखाने का प्रबन्ध करने के लिए बाध्य हुआ था। तब से राजघराने के लोगों को उर्दू सिखाने के लिए उर्दू-उस्ताद, जिन्हें उर्दू-मुंशी कहा जाता था, नियुक्त होते रहे। सन् १९३० तक यह नियम जारी रहा और कोच्चि-राजपरिवार के लोग उर्दू-मुंशी से फारसी लिपि में 'हिन्दुस्तानी' सीखते रहे। सन् १९३१ में जब से कोच्चि में हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा तब से उर्दू-मुंशी नियुक्त किये जाने की प्रथा बन्द हो गयी और उनके स्थान पर हिन्दी-पंडित नियुक्त होने लगे।

बन्दरगाह, व्यापारी केन्द्र आदि में हिन्दी

केरल के प्रमुख बन्दरगाहों (आलप्पी, कालिकट, कन्ननोर, कोच्चिन, आदि) तथा अन्य व्यापारी केन्द्रों में वर्षों पहले ही से उत्तर भारत से मारवाड़ी, गुजराती और मुसलमान लोग व्यापार के लिए आते-जाते रहते थे। उनमें कुछ लोग यहाँ बस भी गये हैं। वे अपनी टूटी-फूटी मातृभाषा मिश्रित हिन्दुस्तानी में यहाँ के लोगों से बातचीत करते थे। उनके साथ रोज़मर्रे की बातचीत की ज़रूरत पड़ी तो उन व्यापारी केन्द्रों और बन्दरगाहों के लोग भी हिन्दुस्तानी सीखने लगे। आज भी सैकड़ों लोग उन केन्द्रों में रहते हैं जो अपनी उस पुरानी 'खिचड़ी-हिन्दुस्तानी' में परस्पर विचार-विनिमय करते हैं।

मलयालम् साहित्य में हिन्दी का प्रवेश—

मलयालम् साहित्य में भी हिन्दुस्तानी का प्रभाव और प्रयोग पाया जाता है। मलयालम् के सुप्रसिद्ध प्राचीन कवि, हास्य-सम्राट स्व० कुंचन नंबियार की 'तुल्लल-कथा' (कथा-नाट्य) की रचना में कहीं-कहीं हिन्दुस्तानी के वाक्यों का प्रयोग पाया जाता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि प्राचीन कवि कुँचन के काल में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का केरल में प्रचलन था।

स्वातितिरुनाल महाराजा और हिन्दी-गीत—

केरल के राजाओं में स्व० स्वाति तिरुनाल (स्वाति नक्षत्रजात) श्री रामवर्म राजा अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा, गहरी विद्वत्ता, अनुपम संगीत-कला-कुशलता आदि के कारण सुविख्यात हो गये हैं। संस्कृत, मलयालम्, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, अंग्रेज़ी, हिन्दी आदि भाषाओं के आप बड़े विद्वान थे। संगीत-शास्त्र के आप आचार्य थे। आपके रचे हुए सैकड़ों मधुर गीत (हिन्दी, संस्कृत, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम् आदि में) आज भी दक्षिण की 'संगीत-सभाओं' में बहुत ही प्रचलित हैं। सुप्रसिद्ध संगीताचार्य श्री त्यागराज के ही समान संगीत-जगत् में आपका यश भी फैला है। श्री स्वातितिरुनाल महाराजा ने हिन्दी में कई मधुर पद रचे हैं। सूर के पदों की तरह ये भी अत्यंत सरस तथा भक्तिपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ उनके दो पद नीचे उद्धृत हैं।

(१) भैरवी—आदि ताल

रामचन्द्र प्रभु तुमबिन प्यारे कौन खबर ले मेरी।
बाज रही जिनके नगरी मो सदा धरम की भेरी।
जाके चरणकमल की रज से तिरिया तलक फेरी।
औरन कूँ कछु और भरोसा हमें भरोसा तेरी।
पद्मनाभ प्रभु फणिपर शायी कृपा करो क्यों देरी।

(२) पूर्वी—चौताल

ऊधो सुनिये मेरा सन्देश ।
चले जब से पिया परदेश ।
गौवों तृण नीर त्याग कीन्हों,
सबै ग्वाल बाल शोच कीन्हों,
जल जमुना नहिं भावै ।
घड़ी भर कुंज कुम्हलावै ॥

उपर्युक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि केरल में हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रवेश वर्षों पूर्व ही हो चुका था । धार्मिक, सांस्कृतिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में उसका उपयोग और प्रचार स्वाभाविक ही था और निर्बाध गति से ही हुआ भी था । प्रायः सभी दक्षिणी प्रदेशों में न्यूनाधिक मात्रा में उस समय हिन्दी का व्यवहार जो हुआ, उसके मूल कारण एक समान रहे होंगे ।

राजनैतिक पुनरुत्थान के प्रश्रय में राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर सन् १९२२ से ही केरलियों ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी पढ़ना आरंभ किया था ।

केरल में हिन्दी-प्रचार का प्रारंभ—सन् १९२२

सन् १९२२ में ही केरल में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का सार्वजनिक प्रचार शुरू हुआ, यद्यपि उसके पूर्व ही आन्ध्र, मद्रास और तमिलनाडु में प्रचार-कार्य आरंभ हो चुका था । कर्नाटक और केरल में करीब-करीब एक ही समय पर प्रचार-कार्य का प्रारंभ माना जा सकता है । उन दिनों केरल में हिन्दी शिक्षकों का सर्वथा अभाव था । उत्तरभारतीय हिन्दी-प्रचारक, जो थोड़ी संख्या में उस समय तक आ गये थे, अन्य प्रान्तों के विभिन्न केन्द्रों में प्रचार-कार्य में लग चुके थे । अतः केरल तथा कर्नाटक में चार वर्ष बाद ही हिन्दी-प्रचार शुरू हो सका था ।

केरल के सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचारक

स्व. एम. के. दामोदरन उण्णि—

स्व० दामोदरन उण्णिजी केरल के सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचारक हैं । साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग के तत्कालीन अधिकारियों ने उनको सन् १९२२ में हिन्दी प्रचारार्थ केरल में भेजा था । दामोदरन उण्णिजी ने पट्टांबी (मलबार) के संस्कृत कालेज में पहले संस्कृत का अध्ययन किया । तदनन्तर वे संस्कृत का विशेष अध्ययन करने की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर उत्तर भारत गये । आर्यसमाजी महाविद्यालय, ज्वालापुर में भर्ती होकर उन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी का गहरा अध्ययन किया और कुछ वर्ष तक वहाँ संस्कृत के अध्यापक रहे । स्वदेश लौटते समय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के

अधिकारियों से उनका परिचय हुआ और बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन के अनुरोध से वे हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन की ओर मुड़े। हिन्दी-प्रचार-कार्य में लग जाना उस समय तक उनके जीवन का ध्येय नहीं था। फिर भी टंडनजी की प्रेरणा का यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बदल दिया और केरल में आकर दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार सभा के अधीन कार्य करने लगे।

सन् १९२२ में हिन्दी-प्रचार क्षेत्र में उतरे। तब तक दक्षिण के अन्य तीनों प्रान्तों में (तमिलनाडु, आन्ध्र तथा कर्नाटक) न्यूनाधिक मात्रा में हिन्दी का प्रचार कार्य हो चुका था।

केरल का सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचार केन्द्र सन् १९२२–२३—

हिन्दी-प्रचार-सभा के संचालक श्री. हरिहर शर्माजी बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने श्री उण्णिजीको मंजश्वर (दक्षिण-मलबार) में प्रचारार्थ भेजा। केरल के हिन्दी-प्रचार के इतिहास में सर्वप्रथम हिन्दी-प्रचार-केन्द्र मंजश्वर ही माना जा सकता है। छोटा गाँव होने से हिन्दी-प्रचार के लिए वहाँ काफी सुविधाएँ उण्णिजी को प्राप्त नहीं हुई। अतः उन्होंने कुछ महीने बाद उस केन्द्र को छोड़ दिया और ट्रिच्चूर केन्द्र में जाकर बड़े उत्साह के साथ हिन्दी-प्रचार करने लगे। ट्रिच्चूर के सैकड़ों लोगों ने उनसे हिन्दी सीखी। श्री. कुरुर नीलकंठन नंपूतिरिपाट, जो केरल के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता तथा समाज सुधारक हैं उण्णिजी के कार्य में समयानुकूल सहयोग देते रहते थे। अतएव ट्रिच्चूर की जनता में हिन्दी-प्रचार के प्रति हार्दिक सहानुभूति उत्पन्न हुई और जनता ने सहर्ष हिन्दी का स्वागत किया। एकाध वर्ष वहाँ सफलता पूर्वक कार्य करने के बाद वे अन्य केन्द्रों में हिन्दी प्रचारार्थ भेजे गये। एट्टुमानूर, कुमरकम, वैकम, कुमारनेल्लूर, कुटमाल्लूर, चंगनाश्शेरी, मावेलिक्करा, हरिप्पाड़, करुवाट्टा, तिरुवनन्तपुरम आदि केन्द्रों में श्री उण्णिजी ने हिन्दी की जड़ जमाने में सफलता पायी। उन केन्द्रों में हज़ारों लोगों को उन्होंने हिन्दी सिखायी। उनसे शिक्षा पाकर पचासों हिन्दी-प्रचारक तैयार हुए और भिन्न-भिन्न केन्द्रों में उनकी देख-रेख में कार्य करने लगे। केरल के सभी प्रमुख केन्द्रों में हज़ारों की संख्या में स्त्री-पुरुष हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए। उसका पूरा श्रेय श्री उण्णिजी को है।

वर्षों तक सभा की सेवा में रहकर हिन्दी का सन्देश केरल में, विशेषतः तिरुवितांकूर के गाँव-गाँव में फैलाने के पश्चात् वे तिरुवितांकूर राजघराने के राजकुमारों को हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने के लिए सरकार की सेवा में लिये गये। उस समय उन्होंने सभा की सेवा से त्याग-पत्र दे दिया और तब से जनसाधारण में हिन्दी-प्रचार करने का उनका कार्य बन्द रहा।

उण्णिजी की प्रतिभा—

श्री उण्णिजी संस्कृत, हिन्दी तथा मलयालम् के बड़े विद्वान् थे। बंगला, गुजराती, तमिल, अंग्रेज़ी आदि का भी आप सामान्य ज्ञान रखते थे। संस्कृत और मलयालम् में आप अच्छी कविता करते थे। वक्तृत्व-कला में वे अपना सानी नहीं रखते थे। उनकी नैसर्गिक वाग्विभूति और गहरी विद्वत्ता के सामने संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् नतमस्तक हो जाते थे। संस्कृत में धारावाही और आकर्षक साहित्यिक शैली में उनको बोलते सुनकर संस्कृत के विद्वान् लोग 'बाणभट्ट' से उनकी उपमा करते थे। पढ़ाने की कला में वे अपने ढंग के अकेले थे। असाधारण वाक्शक्ति, अगाध विद्वत्ता और निस्वार्थ सेवावृत्ति के कारण वे बड़े ही लोकप्रिय बने थे। सन् १९५३ में ५३ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ।

श्री उण्णिजी की शिष्य-परंपरा में सैकड़ों हिन्दी-प्रचारक हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन में शामिल हुए। उनमें से श्री. एन. वेंकिटेश्वरन्, (परीक्षामंत्री, दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास), डॉ० के० भास्करन् नायर (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम्), स्व. श्री. के. वी नायर, श्री. सी. जी. गोपाल कृष्णन्, (संगठक, दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा, केरल शाखा, एरनाकुलम्) पी. के. केशवन् नायर, (लेखक), श्री. ए. एन. राघवन् नायर (हिन्दी अध्यापक), श्री. पी. शिवराम पिल्लै, (प्राध्यापक, एस. बी. कालेज, चंगनाश्शेरी), श्री. नारायण देव, (संपादक, केरल-भारती) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

केरल के हिन्दी-प्रचार के इतिहास में स्व. श्री उण्णिजी केरल के प्रथम सुयोग्य प्रचारक के रूप में चिरस्मरणीय हो गये हैं।

के. केशवन् नायर—

जब दामोदरन् उण्णिजी सन् १९२२ में हिन्दी की सेवा में लगे तब उनके अतिरिक्त अन्य किसी केन्द्र में हिन्दी के क्षेत्र में कोई कार्यकर्ता नहीं उतरा था। प्रचारकों को तैयार करने के लिए दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा की तरफ़ से सन् १९२२ में ईरोड़ में एक हिन्दी प्रचारक विद्यालय खुला था। (इसका उल्लेख प्रारंभ के प्रकरण में किया गया है) उस विद्यालय में केवल एक ही केरलीय विद्यार्थी ने अध्ययन किया था। अध्ययन के बाद वे केरल में हिन्दी प्रचारार्थ भेजे गये। वे दामोदरन् उण्णिजी के बाद इस क्षेत्र में उतरने वाले सुयोग्य हिन्दी-प्रचारक के. केशवन् नायरजी हैं।

श्री केशवन् नायर ने केरल के कई केन्द्रों में हिन्दी-प्रचार का सराहनीय कार्य किया है। उनका प्रमुख केन्द्र पहले ट्रिवेंड्रम रहा। राजधानी होने के कारण ट्रिवेंड्रम अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों का अड्डा माना जाता है। ट्रिवेंड्रम के उच्च-शिक्षित लोगों के बीच

में हिन्दी का सन्देश फैलाने वाले सर्वप्रथम प्रचारक केशवन् नायरजी हैं । उन्होंने ट्रिवेंड्रम, ट्रिचूर, ओट्टप्पालम् आदि केन्द्रों में सराहनीय कार्य किया है । हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू तथा मलयालम् के आप बड़े विद्वान् हैं । वर्षों तक सभा की सेवा करते रहने के बाद आपने ट्रिच्चूर के सरकारी हाईस्कूल में नौकरी स्वीकार की और तब से पेंशन लेने तक उसी स्कूल में हिन्दी का अध्यापन कार्य करते रहे । आज वे वयोवृद्ध होने के कारण हिन्दी-प्रचार-कार्य से निवृत्त हुए हैं । केरल के हिन्दी-प्रचार के विकास में उनकी सेवाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं ।

शंकरानन्द—

प्रारंभकाल में हिन्दी के क्षेत्र में उतरनेवाले तीसरे प्रचारक स्व. शंकरानन्दजी हैं । वे नेय्याट्टिनकरा के निवासी थे । उत्तरभारत में रहकर उन्होंने हिन्दी और संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया । सन् १९२३ में आप केरल में आकर हिन्दी-प्रचार में लग गये । नेय्याट्टिनकरा, कुन्नमकुलम, ट्रिच्चूर, तिरुवनन्तपुरम् आदि केन्द्रों में आप ने हिन्दी का खूब प्रचार किया । जब स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश हुआ, वे ट्रिवेंड्रम के एस. एम. वी. हाईस्कूल में नियुक्त हुए । सरकार की सेवा में रहते हुए भी वे जनता के बीच में हिन्दी का प्रचार करते रहे । सरकारी सेवा से निवृत्त होने के उपरान्त वे फिर से सभा की सेवा में आ गये और मृत्यु तक हिन्दी के क्षेत्र में कार्य करते रहे । उनकी शिष्यपरंपरा में कई हिन्दी-प्रचारक तैयार हुए और इन दिनों वे सभी हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं । तिरुवितांकूर के सुप्रसिद्ध हिन्दी-प्रचारक स्व. के. वासुदेवन् पिल्लैजी उनके शिष्यों में से थे । सन् १९२२ से लेकर १९२५ तक के प्रारंभ काल में हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास के अधीन नियमित रूप से केरल में हिन्दी-प्रचार करनेवाले उपर्युक्त तीनों सुयोग्य प्रचारक केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के आदि प्रवर्त्तक माने जाते हैं । उन तीनों की शिष्यपरंपरा के अन्तर्गत केरल भर के अधिकांश प्रचारक गिने जा सकते हैं ।

मद्रास में शिक्षा-प्राप्त सर्वप्रथम प्रचारक—

केन्द्र हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय, मद्रास से सुशिक्षित होकर केरल के हिन्दी-प्रचार-क्षेत्र में उतरनेवाले सर्वप्रथम हिन्दी प्रचारक पी. के. नारायण नायर, पी. के. केशवन् नायर (लेखक) और स्व. के. वी. नायर हैं । दामोदरन् उण्णिजी, केशवन् नायरजी और शंकरानन्दजी के बाद हिन्दी की सेवा में अपना जीवन अर्पित करने वाले सबसे पुराने प्रचारक आप तीनों ही हैं ।

स्व. के. वी. नायर (के. वेलायुधन नायर)—

प्रारंभ में कुन्नमकुलम, पेरुंपलम, वैकम, ट्रिच्चूर आदि केन्द्रों में वे बड़ी सफलता पूर्वक हिन्दी-प्रचार करते रहे । हज़ारों विद्यार्थियों को आपने हिन्दी पढ़ायी है ।

सन् १९३० के बाद आप चंगनाश्शेरी (ट्रावनकोर) में हिन्दी-प्रचार-कार्य में लग गये। कुछ वर्ष बाद आप चंगनाश्शेरी के एस. बी. कालेज में नियुक्त हुए। सन् १९६० तक उस कालेज में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष रहे। १९६२ में आपका देहान्त हुआ। मृत्यु तक आप हिन्दी की सेवा में तत्पर रहे।

प्रारंभ काल, (सन् १९२२ से सन् १९२७ तक)—

सन् १९२२ से १९२७ तक, पाँच वर्ष का समय केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन का प्रारंभिक काल माना जा सकता है। इस अल्पकाल में संतोषजनक प्रगति नहीं हो सकी। हाँ, इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि व्यापक क्षेत्र में हिन्दी की जड़ जमाने में इस अल्पकाल के अंदर पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हुईं। जनजागरण हिन्दी के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने में सहायक रहा। लेकिन सुयोग्य प्रचारकों की कमी के कारण व्यापक रूप में हिन्दी का प्रचार नहीं हो सका। सन् १९३० तक मुख्यतः छः प्रचारक ही केरल में काम पर लग गये थे। सैकड़ों केन्द्रों से प्रचारकों की माँग आती रही। सभा जनता की माँग कैसे पूरी करती? सभा के पास तो अल्पसंख्या में ही प्रचारक थे। लेकिन सभा ने प्रमुख केन्द्रों के प्रचारकों को आदेश दिया कि वे अपने केन्द्र के पड़ोसी गाँवों या अन्य केन्द्रों में भी जाकर हिन्दी का प्रचार करें। इस आदेश के पालन में कठिनाइयाँ ज़रूर थीं। आवागमन की असुविधा, मार्गव्यय की समस्या, समय का अभाव, ये सब उस मार्ग के रोड़े थे। फिर भी राष्ट्रप्रेमी प्रचारकों ने इन कठिनाइयों की परवाह न करते हुए अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में पैदल जाकर जनसाधारण में बड़े उत्साह के साथ प्रचार-कार्य किया। उन केन्द्रों में जब विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगती और अकेले काम संभालना कठिन हो जाता, तब प्रचारक अपने सुयोग्य विद्यार्थियों की सेवाएँ भी पढ़ाने के कार्य में लेते। प्राथमिक या मध्यमा परीक्षा तक की योग्यता पाये हुए विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए नियुक्त करने से प्रचार-कार्य तो बढ़ा, मगर पढ़नेवालों की हिन्दी-योग्यता का स्तर घटता ही गया। उस से सभा के कार्य को क्षति पहुँचती रही! सुयोग्य अध्यापकों के अभाव, योग्य प्रचारकों के स्थान-परिवर्तन, कच्चे प्रचारकों के द्वारा हिन्दी पढ़ायी जाने की स्थिति, आदि के फलस्वरूप हिन्दी का स्थायी वातावरण किसी केन्द्र में पैदा नहीं हो सका था। इस कारण सीखी हुई हिन्दी का भूल जाना एक साधारण बात थी।

नवोत्थान—

सन् १९२७ से १९३२ तक का समय केरल हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के नवोत्थान का प्रथम चरण माना जा सकता है। इन पाँचों वर्षों में हिन्दी-प्रचार की गति-विधि में काफी परिवर्तन हुआ। लोगों में उत्साह की मात्रा बढ़ी। सैकड़ों नये केन्द्र खुले। प्रचारकों और विद्यार्थियों की संख्या काफी बढ़ी। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में

आशातीत वृद्धि हुई। स्कूलों और कालेजों में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने की दिशा में प्रयत्न होने लगा। देश में राष्ट्रीय आन्दोलन में जैसे-जैसे तीव्रता आती गयी, हिन्दी-प्रचार तथा अन्य रचनात्मक कार्यों की ओर जनता अधिकाधिक आकृष्ट भी होती गयी।

शाखा-संयोजन—

सन् १९३३ अक्तूबर में प्रान्तीय कार्यों के संचालन तथा संगठन के लिए अन्य प्रान्तों की तरह ट्रावनकोर और कोचिन की हिन्दी-प्रचार-सभा-शाखाओं को संयुक्त बनाकर 'केरल-प्रान्तीय-हिन्दी-प्रचार-सभा' की स्थापना की गयी। देवदूत विद्यार्थी जी इसके मंत्री नियुक्त हुए।

हिन्दी-प्रचारार्थ नेताओं का केरल में भ्रमण—

यों तो दक्षिण के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के जमाने में सैकड़ों कांग्रेसी नेताओं ने दक्षिण के विभिन्न केन्द्रों में समय-समय पर भ्रमण किया था। इन भ्रमणों के सिलसिले में जो सार्वजनिक सम्मेलन और स्वागत-सभाएँ हुईं, उनमें कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम की महत्ता पर जोरदार भाषण भी हुए। भाषणों में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाले बिना वे रह नहीं सके जिससे हिन्दी-प्रचार की श्री वृद्धि में स्फूर्ति और शक्ति आ गयी। जनता में हिन्दी के प्रति श्रद्धा बढ़ी। हिन्दी-प्रचार-सभा की आर्थिक शक्ति बढ़ाने में भी नेताओं के भाषण सहायक हुए। धन-संचय के लिए दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा की ओर से कई बार इस प्रकार के भाषणों का आयोजन हुआ था। महात्मा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू, वल्लभभाई पट्टेल, राजगोपालाचारी, आचार्य कृपलानी जैसे राष्ट्रीयनेताओं के भ्रमणों के सिलसिले में कई केन्द्रों में हिन्दी-सम्मेलन हुए, धन-संचय हुआ और सैकड़ों स्थानों पर हिन्दी-प्रेमियों ने उन्हें हिन्दी में मान-पत्र दिये। इन सब का प्रभाव हिन्दी के व्यापक प्रचार एवं प्रगति की दिशा में अत्यन्त प्रेरक शक्ति सिद्ध हुआ है। दक्षिण के 'प्रादेशिक भाषावाद' की भ्रामक धारणाओं को कुछ हद तक दूर करने में भी इन भ्रमणों का कार्यक्रम सहायक रहा है।

केरल में श्री सेठ जमनालाल बजाज और राजगोपालाचारी का भ्रमण—

श्री सेठ जमनालाल बजाज और श्री राजगोपालाचारीजी का हिन्दी-प्रचारार्थ सन् १९२९ में दक्षिण में जो भ्रमण हुआ, उसके सिलसिले में वे केरल में भी कुछ दिनों तक भ्रमण पर रहे थे। हिन्दी-प्रचार के लिए धन-संग्रह करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। कन्याकुमारी, ट्रिवेंड्रम, एरनाकुलम, कोचिन, कालिकट आदि केरल के मुख्य-मुख्य नगरों में उनके भ्रमण का कार्यक्रम रहा। सभी स्थानों में सार्वजनिक

सम्मेलन हुए जिनमें सेठजी और राजाजी के 'हिन्दी की आवश्यकता' पर जोरदार भाषण भी हुए।

प्रथम अखिल केरल हिन्दी-प्रचार सम्मेलन—

केरल हिन्दी प्रचार सभा के तत्वावधान में ता० १०-२-१९२९ को अखिल केरल हिन्दी-प्रचार सम्मेलन का कार्यक्रम महाराजा कालेज, एरनाकुलम में सुसम्पन्न हुआ। श्री. के. जी. शेषअय्यर बी. ए; बी. एल; एम. आर. ए. एस (रिटायर्ड जज) सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। केरल के हिन्दी-प्रचार के इतिहास में वह सम्मेलन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्मेलन में एरनाकुलम नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों और देवियों के अतिरिक्त अनेकों उच्च सरकारी अधिकारियों ने भी भाग लिया था। कोचि राज्य के दीवान श्री. टी. एस. नारायण अय्यर, डॉ. सी. मत्ताई, (शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर), श्री. के. सुब्रह्मण्य अय्यर (प्रिन्सिपल, महाराजा कालेज, एरनाकुलम), श्री. के. पी. रामन मेनोन, (एम. एल. सी.), जनाब मुहम्मद सीतिसाहेब, (एम. एल. सी.), श्री. वी. के. अरविन्दाक्ष मेनोन (चीफ इंजीनियर) आदि उनमें प्रमुख थे। नगर की लगभग २०० प्रतिष्ठित महिलाएँ भी सम्मेलन में उपस्थित रहीं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि कोचि राज्य के महाराजा की पत्नी श्रीमती वी. के. लक्ष्मी-कुट्टी नेत्यारम्मा सम्मेलन की स्वागतसमिति की अध्यक्षा रहीं। श्री जमनालालजी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। सम्मेलन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये। स्कूलों में हिन्दी को स्थान देने की सरकारी नीति की सराहना करते हुए राजाजी ने सरकार को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव का मुख्य अंश यों था —:

"We are indebted to the Cochin Government not only for the progress of Hindi in the State, but also for setting a noble example to South India in general."

स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने की अपील करते हुए सम्मेलन ने प्रस्ताव पास किया था।

हिन्दी पुस्तकालय—

सम्मेलन के सिलसिले में राजाजी ने स्थानीय हिन्दी-विद्यार्थिनी-मंडल की तरफ़ से एक हिन्दी वाचनालय तथा पुस्तकालय का उद्घाटन किया। एरनाकुलम की जनता ने उनको हिन्दी प्रचारार्थ रुपये की थैली भेंट दी। राजाजी और बजाजजी उस दिन कोचि के राज-अतिथि रहे।

कालिकट में—

दूसरे दिन राजाजी और उनके दल के लोग कालिकट गये। वहाँ श्री. सेठ नागजी पुरुषोत्तमदास, सेठ श्यामजी सुन्दर दास, श्री. टी. आर. कृष्णस्वामी अय्यर,

श्री. यु. गोपाल मेनोन आदि ने उनका स्वागत किया। कालिकट की जनता ने भी उन्हें रुपये की थैली भेंट दी। वहाँ के एक सार्वजनिक सम्मेलन में राजाजी और बजाजजी ने हिन्दी पढ़ने की आवश्यकता पर प्रभावशाली भाषण दिये।

अनुकरणीय दान—

कालिकट के सुप्रसिद्ध धनी सेठ नागजी पुरुषोत्तमदास ने कालिकट में एक हिन्दी-प्रचारक के खर्च के लिए प्रतिवर्ष १०० रुपया देने का वचन दिया।

हिन्दी-क्लास का उद्घाटन—

श्री जमनालाल बजाज ने कालिकट में एक सार्वजनिक हिन्दी वर्ग का उद्घाटन किया। उन्होंने स्वयं बोर्ड पर लिख कर विद्यार्थियों को कुछ पाठ सिखाये। कालिकट की महिलाओं ने भी अपनी तरफ़ से बजाज जी को रुपये की थैली भेंट दी।

कालिकट के बाद श्री बजाज जी और राजाजी श्री. टी. आर. कृष्णस्वामी अय्यर के साथ ओलवकोट गये। ओलवकोट में श्री. कृष्णस्वामी अय्यर का सुविख्यात 'शबरी आश्रम' स्थापित है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। ओलवकोट और अकत्तेत्तरा की जनता ने हिन्दी-प्रचार के लिए उन्हें १०१ रुपये की थैली दी।

मालवीयजी का आगमन—

सन् १९२९ के मई महीने में श्री. पं. मदनमोहन मालवीयजी ने केरल के प्रमुख नगरों में भ्रमण किया। एरनाकुलम और कोचि के सार्वजनिक सम्मेलनों में उनके उज्वल भाषण हुए। उन्होंने अपने भाषणों द्वारा राष्ट्र भाषा हिन्दी की महत्ता लोगों को समझायी। जहाँ-जहाँ वे गये, लोगों ने उन्हें हिन्दी में मान-पत्र दिये। केरल में हिन्दी प्रचार की उत्तरोत्तर प्रगति देखकर वे बहुत ही संतुष्ट हुए। हिन्दी-प्रचार में केरलीय महिलाओं के हार्दिक सहयोग और हिन्दी के प्रति उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा की उन्होंने सराहना की। कोचिन में हिन्दी की प्रगति के संबन्ध में उन्होंने एक सार्वजनिक सम्मेलन में यों अपने विचार प्रकट किये—"बड़ी प्रसन्नता की बात है कि कोचिन में हिन्दी-प्रचार की काफ़ी प्रगति हुई है। मलयालियों की मधुर भाषा मलयालम में संस्कृत शब्दों की भरमार है, अतएव वे आसानी से हिन्दी सीख सकते हैं। कोचिन की विधान-सभा ने स्कूलों में हिन्दी को अनिवार्य विषय के तौर पर पढ़ाने के संबन्ध में जो प्रस्ताव पास किया, उससे देश का कल्याण होगा। मातृभाषा और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त उन्हें हिन्दी भी सीखनी पड़ेगी। हिन्दी की पढ़ाई से देश को बड़ा लाभ पहुँचेगा।"[1]

---

(१) **'हिन्दी-प्रचारक' जून १९२९**

महिलाओं का योगदान—

आरंभ से लेकर आज तक हिन्दी-प्रचार की प्रगति में पुरुषों की अपेक्षा केरल की स्त्रियाँ ही अधिक संख्या में सहायता पहुँचाती रही हैं। प्रतिवर्ष सभा की विभिन्न परीक्षाओं में बैठने वाले परीक्षार्थियों के आँकड़ों का अध्ययन करने से इस बात का पता चलता है कि केरल में स्त्रियाँ ही अधिक संख्या में हिन्दी पढ़ती रहती हैं। केरल में आरंभ से लेकर आज तक करीब-करीब यही स्थिति रही है। अन्य प्रान्तों में भी केरल की तरह स्त्रियों के बीच में ही प्रचार का कार्य अधिक मात्रा में हुआ है। हिन्दी प्रचार आन्दोलन में मुख्यतः दक्षिण की स्त्रियों का योगदान अत्यंत महत्व का रहा है। आज भी वे सब कहीं हिन्दी पढ़ने में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अभिरुचि दिखाती हैं।

हिन्दी-प्रचार-सभा, कोचिन शाखा, (एरनाकुलम)—

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा ने कोचिन, मलाबार और दक्षिण कार्नाटक के कार्य-संचालन के लिए ता० ३ जुलाई १९३२ को एरनाकुलम में अपना एक शाखा-कार्यालय खोला। उसका उद्घाटन श्री. कोमाट्टिल अच्युत मेनोन, जज चीफकोर्ट, कोचिन के द्वारा हुआ। श्री. ए. चन्द्रहासन शाखा-मंत्री नियुक्त हुए।

श्री. ए. चन्द्रहासन—

सन् १९३१ से केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन की गति-विधि में पूर्वाधिक तीव्रता आ गयी। श्री. चन्द्रहासन तथा श्री देवदूत विद्यार्थी के नेतृत्व में आन्दोलन सर्वव्यापक और प्रगतिशील हुआ। सन् १९३१ से १९३६ तक का समय केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के नवोत्थान का दूसरा चरण माना जा सकता है।

सन् १९३१ में श्री चन्द्रहासन एरनाकुलम में हिन्दी-प्रचारक नियुक्त हुए। तब से लेकर आज तक केवल केरल के ही नहीं, बल्कि दक्षिण के हिन्दी-प्रचार के क्रमगत विकास एवं उत्कर्ष में उनका प्रबल हाथ रहा है। उनकी लगन, अथक परिश्रम और अतिशय कार्यदक्षता केरलीय जनता में हिन्दी को चिर प्रतिष्ठा लब्ध होने में अत्यन्त सहायक हुई है। सन् १९३१ में उन्होंने कोचिन और मलाबार के प्रचार कार्य का संचालन और नेतृत्व ग्रहण किया। सन् १९३२ में जब कोचिन शाखा कार्यालय एरनाकुलम में स्थापित हुआ, वे उसके मन्त्री नियुक्त हुए। उनके सम्बन्ध में सभा मुखपत्र 'हिन्दी प्रचारक' में उस समय संपादकीय नोट में यों लिखा गया था :

"Mr. Chandrahasan in a national servant of the first order. A brilliant graduate and rare chemistry one

to boot, he took to national work as a duck to water. Even at College, Khadi was his consuming passion. He joined the Hindi Vidyalaya, Madras in the first batch, qualified himself as a pracharak and was posted at Ernakulam where he had already considerable influence. Under him the centre is comming to its old height again"[१].

श्री चन्द्रहासन हिन्दी-प्रचार सभा के अधीन हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में उतरनेवाले सर्वप्रथम ग्रेजुएट हैं। उन दिनों बी० ए०डिग्रीधारियों को हिन्दी-प्रचार के कंटकाकीर्ण पथ पर चलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। अपने आगे चमकते हुए उज्वल भविष्य के प्रलोभन को ठुकराते हुए श्री चन्द्रहासन कटिबद्ध होकर हिन्दी की सेवा के पथ पर अग्रसर हुए। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रचार, संगठन, परीक्षासंचालन, शिक्षण-पद्धति, साहित्य-रचना आदि की सफलता में उनका बड़ा हाथ रहा है। दक्षिण के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने का उन्होंने अथक प्रयत्न किया है। केरल सरकार के शिक्षा-विभाग में हिन्दी विशेषाधिकारी के पद पर भी आप नियुक्त रहे। स्कूलों के लिए हिन्दी-पाठ्यक्रम, पुस्तक-निर्माण आदि में आपकी सेवाएँ सराहनीय रही हैं। इन दिनों आप महाराजा कालेज, एरनाकुलम के प्रिन्सिपल हैं। सरकारी सेवा में रहते हुए भी वे हिन्दी की आयोजनाओं को कार्यान्वित करने में तथा हिन्दी के सर्वतोमुखी उत्कर्ष में सदा तत्पर रहते हैं। केरल के हिन्दी-प्रचारक आन्दोलन के आधार-स्तंभ के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।

राजघराने में हिन्दी—

एरनाकुलम में न केवल जनसाधारण में ही हिन्दी का प्रचार हुआ, बल्कि कोच्चिन राजघराने की राजकुमारियों ने भी हिन्दी के अध्ययन में बड़ी दिलचस्पी दिखायी। यों तो एरनाकुलम में उन दिनों हिन्दी पढ़ने वालों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी। इस सम्बन्ध में 'हिन्दी-प्रचारक' पत्रिका के जनवरी १९३१ के अंक में एक संपादकीय नोट में इस प्रकार उल्लेख किया गया है :—

"The examination list of the Ernakulam Centre presents monopolies. All those that appeared for the 'Rashtra-Bhasha' were ladies and all those for 'Madhyama' were princess. In these days of equality of opportunities such monopolies should not be permitted."

---

१. हिन्दी-प्रचारक १९३१.

तिरुविल्वामला—

सन् १९३१ से तिरुविल्वामला (कोच्चिन) हिन्दी प्रचार का एक प्रमुख केन्द्र रहा। श्री माधव कैम्मल वहाँ बड़ी सफलता के साथ कार्य करते थे। चित्तूर (कोच्चिन) की तरह वहाँ के घर-घर में हिन्दी का प्रवेश हुआ। 'हिन्दी-प्रचारक' के जनवरी १९३१ के अंक में उस केन्द्र के हिन्दी-प्रचार कार्य पर एक मनोरञ्जक संपादकीय टिप्पणी यों लिखी गयी थी :—

"The Hindi Class at Kollakkal House, Tiruvilwamala (Cochin) brings together all the members of a big joint family, whatever their age, from the Karanavan (मुखिया) down to the smallest boy in the family, they are all class-mates for a time. This is an experience which the young boys will never forget."

स्व. इग्नेशियस की हिन्दी-सेवा—

सन् १९२८ में श्री इग्नेशियस दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा के प्रचार-मंत्री नियुक्त हुए। आप केरलीय थे। प्रचार-मंत्री की हैसियत से सभा के कार्य-संचालन, संगठन, प्रचार आदि में आपकी सेवाएँ अमूल्य रहीं। वे मलयालम और अंग्रेज़ी के प्रभावशाली वक्ता थे। उनकी बातों में ऐसा जादू था कि अंग्रेज़ी के अनन्य समर्थकों को वे बात की बात में हिन्दी के प्रबल पक्षपाती बना लेते थे। संगठन के क्षेत्र में वे अपने ढंग के अकेले थे। कोचिराज्य के स्कूलों में हिन्दी को प्रविष्ट कराने में सभा को उनका सहयोग प्राप्त हुआ था। सभा की मुखपत्रिका 'हिन्दी-प्रचारक' के संपादन में विशेषतः अंग्रेज़ी विभाग में आपने अपनी प्रतिभा तथा कार्य-कुशलता का परिचय दिया था।

स्व. डॉ० सी. मत्ताई—

उन दिनों कोचिनराज्य के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर स्व. डॉ. सी. मत्ताई थे। वे हिन्दी के सच्चे हितैषी थे। स्कूल के पाठ्यक्रम में हिन्दी को शामिल कराने का श्री. इग्नेशियस ने जो प्रयत्न किया, उसे सफल बनाने में हार्दिक सहयोग एवं सहायता प्रदान करनेवाले व्यक्ति श्री. मत्ताई थे। इस संबन्ध में श्री. इग्नेशियसजी ने 'हिन्दी-प्रचारक' पत्रिका की संपादकीय टिप्पणी में यों लिखा है —

"Emboldened by the Sympathy of the Director of Public Instruction, Cochin State and the devotion shown to the cause by all ranks of persons especially

the enlightened ladies, I Soon put myself in correspo-nena with some Heads of Schools in the State. It in worthy of record that I received immediately and uni-form support from them and also found that the movement had already claimed their attention and that their minds had been made up its favour. The Sympathy of the D. P. I. was known to them and exercised on their minds its potent influence. The result was that the demand for teacher came up from many centres."[1]

कोच्चिन की विधान-सभा में हिन्दी का प्रस्ताव—

सन् १९२८ में कोच्चि राज्य की विधान सभा (Legislative Council) में स्कूल के पाठ्यक्रम में हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान देने के संबन्ध में एक प्रस्ताव आया। स्व० जनाब सीतिसाहब. बी. ए. बी. एल; एम. एल. सी. ने प्रस्ताव पेश किया था। (जनाब सीतिसाहब सन् १९६० में कुछ समय तक केरल की विधान-सभा के प्रवक्ता रहे। उसी वर्ष आपका देहान्त हुआ था) प्रस्ताव का समर्थन करते हुए श्रीमती गौरी पवित्रन ने जो भाषण दिया था, उससे हमें हिन्दी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा का परिचय मिलता है। उनके भाषण का सारांश यही था —

"चाहे पुरुष हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान दिलाना चाहें या न चाहें, हम स्त्रियाँ—कोच्चि राज्य की शिक्षित स्त्रियाँ—हिन्दी को पाठ्यविषय के रूप में स्वीकृत कराना चाहती हैं। जब तक विधान-सभा द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत होकर अमल में न आये तब तक हम अपने को संतुष्ट नहीं समझेंगी।"[2]

ऐच्छिक हिन्दी—

कोच्चिन की विधान-सभा में पेश हुए प्रस्ताव पर गंभीर चर्चा हुई। अधिकांश सदस्यों ने प्रस्ताव का जोरों से समर्थन किया। बहुमत से प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन सरकार हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने को तैयार नहीं थी। अंत में ऐच्छिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान देने का निश्चय हुआ। सरकार ने अपने आर्डर में यह सूचित किया कि ऐच्छिक विषय के तौरपर हिन्दी की पढ़ाई की सफलता देखने के बाद उसे अनिवार्य कर देने के मामले में पुनर्विचार किया जायगा

---

१. हिन्दी-प्रचारक'—१९३१.

२. 'हिन्दी-प्रचारक' १९२८

और यदि जरूरी समझा गया तो उसके लिए सुविधाएँ दी जायँगी।[1]

इस निर्णय के अनुसार एरनाकुलम, कोटुंगल्लूर, इरिंजालकुटा, कुन्नमकुलम और चित्तूर के हाईस्कूलों में ऐच्छिक रूप में हिन्दी प्रविष्ट हुई। श्री. इग्नेशियस के प्रयत्न से थोड़े समय के अन्दर और कुछ स्कूलों में भी हिन्दी का प्रवेश हुआ।

कोचिन में कार्य का विस्तार—

सन् १९२८ से १९३२ तक कोचिन के प्रमुख नगरों—एरनाकुलम, ट्रिच्चूर, कुन्नमकुलम, वटक्कांचेरी, तृप्पूणित्तुरा, चित्तूर आदि में हिन्दी का प्रचार बड़ी तेजी के साथ बढ़ा। एरनाकुलम और चित्तूर में हज़ारों लोग हिन्दी-क्लासों में भर्ती होकर पढ़ने लगे। हिन्दी पढ़ने वालों में महिलाओं की संख्या अधिक रही। कई केन्द्रों से प्रचारकों की माँग आती ही रही। पर, सभी केन्द्रों में प्रचारक नियुक्त करने में सभा बिलकुल असमर्थ रही।

प्रमुख हिन्दी-प्रचार केन्द्र और वहाँ के प्रचारक—

चित्तूर—पी. के. केशवन् नायर सन् १९२८। उन दिनों चित्तूर (कोचिन) हिन्दी-प्रचार का एक आदर्श केन्द्र रहा। श्री केशवन् नायर (लेखक) सन् १९२८ से १९३१ तक वहाँ सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। वहाँ के कार्य की प्रगति पर सन्तुष्ट होकर हिन्दी-प्रचार सभा के प्रचार-मंत्री श्री इग्नेशियसजी ने 'हिन्दी-प्रचारक' के जनवरी १९३१ के अंक में "Good Record" शीर्षक एक लेख लिखा था। उस लेख का निम्नलिखित उद्धरण वहाँ के सफल कार्य का परिचायक है।

"चित्तूर प्रारंभ से लेकर सभा का एक प्रमुख केन्द्र रहा था। वहाँ के विद्यार्थियों की संख्या एक समय पर २५० तक बढ़ गयी थी और केशवन् नायरजी अकेले उन सबको पढ़ाते रहे। वहाँ कई विद्यार्थी सभा की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हैं। उस दृष्टि से वह केन्द्र दक्षिण का आदर्श केन्द्र रहा। कई विद्यार्थियों ने केरलभर में अथवा दक्षिणभर में परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम आने के उपलक्ष्य में सभा से पुरस्कार भी प्राप्त कर लिये हैं। चित्तूर के कुछ घरों में हिन्दी एक उपभाषा के रूप में बोलचाल की भाषा बन गयी है। 'पुतुकुलंगरा' नामक घर इस विषय में आदर्श है। उस घर की चार बहनें बड़ी लगन से हिन्दी पढ़ती

---

१. "It reaffirms its past policy of giving the atmost facilities to Hindi through its Schools wherever there is demand and hopes to reconsider the question in the light of the experience gathered in trying Hindi on an optional basis."

हैं। परीक्षाओं में वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं।"[1]

"Chittoor was from the start one of our best centers. At one time the number of students rose as high as 250 and all of them were managed by Mr: Nair single handed.

The centre has also been known to be Scoring first classes rather generously. There have been many prize winners too. There are some families where Hindi has become a second spoken language. There in one family particularly which deserves to be singled one. The Puthukulangara family has four sisters Kaveri Amma, Chennammu Amma, Thai Amma and Karthyayani Amma. They are model Students and all of them have taken first classes in all our kaminations that they sat for."

जब कोचिन सरकार ने हाईस्कूलों में हिन्दी ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाने का निश्चय किया तब चित्तूर के दोनों हाईस्कूलों में (लड़कों और लड़कियों के) हिन्दी का प्रवेश हुआ। उस समय हिन्दी-प्रचार-सभा ने स्थानीय प्रचारक केशवन् नायरजी (लेखक) की सेवाएँ सरकार को तात्कालिक रूप में उधार दी थीं।

चित्तूर का कार्य उन दिनों बहुत ही सफल रहा। स्थानीय प्रमुख व्यक्तियों ने हिन्दी का हृदय से स्वागत किया था। श्री. स्व. अंबाट ईच्चरमेनोन एम. एल. सी., श्री सुब्रह्मण्य अय्यर बी. ए. एल. टी. (प्रधान अध्यापक, सरकारी बाइस हाईस्कूल), श्री. सुब्बय्या मास्टर, श्री. शेषु अय्यर, श्री मती गौरी-पविश्रन (प्रधान अध्यापिका, गर्ल्स हाईस्कूल), श्री. वेंकटेश्वर अय्यर, श्री. विश्वनाथ अय्यर, श्री. रंग अय्यर वकील, श्री. सुन्दर अय्यर, श्रीमती कावेरी देवी, श्रीमती विशालाक्षी अम्मा आदि ने वहाँ के हिन्दी-प्रचार-कार्य की वृद्धि में अमूल्य सहायता पहुँचायी है।

चित्तूर के कार्य की प्रशंसा में 'हिन्दी-प्रचारक' के १९३० जनवरी अंक में एक संपादकीय टिप्पणी यों लिखी गयी है—

" पहले ही से लेकर आखीर तक चित्तूर के हिन्दी-प्रचार-कार्य का विवरण कुछ विशेष घटनाओं का इतिहास-सा लगता है। विशेषता यह है कि लोग बड़े धीरज के साथ अपने कार्य को आगे बढ़ाते चले जा रहे हैं। उसका पूरा श्रेय वहाँ के उत्साही,

---

१ 'हिन्दी-प्रचारक'—जनवरी १९३१।

योग्य तथा परिश्रमी प्रचारक श्री. केशवन् नायरजी को है।"

श्री केशवन् नायर सन् १९२५ में हिन्दी के कार्यक्षेत्र में उतरे। वे १९२८ तक नेट्टाशेरी, कोट्टयम, कुम्मनम आदि केन्द्रों में काम करते रहे। बाद को चित्तूर, टेलिचेरी, कन्ननोर, कालिकट और पालघाट में काम किया है। इन दिनों आप यूनिवर्सिटी कालेज, ट्रिवेंड्रम में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आपने केरल सरकार के अधीन हिन्दी विशेष-अधिकारी के पद पर भी काम किया है। केरल के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन की सफलता में आपकी सेवाएँ भी सहायक रही हैं।

एरनाकुलम—पी. के. नारायणन नायर—

सन् १९२८-२९ के दिनों में एरनाकुलम भी दक्षिण के सर्वप्रमुख केन्द्रों में एक रहा। वहाँ के कार्यकर्त्ता श्री. पी. के. नारायणन नायर थे। श्री. नायरजी की लगन, कार्यकुशलता तथा त्याग-वृत्ति के कारण एरनाकुलम की जनता हिन्दी की ओर आकृष्ट हुई। जगह-जगह पर हिन्दी-वर्ग खुले और सैकड़ों की संख्या में लोग हिन्दी पढ़ने लगे। उन्होंने सन् १९२५ में तिरुवनन्तपुरम में कार्य का आरंभ किया। बाद को कालिकट और ट्रिचूर में भी प्रचार-कार्य किया है।

सन् १९३१ से वे स्थायी रूप से एरनाकुलम को अपना केन्द्र बनाकर हिन्दी की सेवा करने लगे। एरनाकुलम में हिन्दी प्रचार आन्दोलन को मजबूत और सर्वव्यापक बनाने में श्री० नारायण नायर का योगदान महत्व का रहा है। प्रचारक, अध्यापक तथा प्रान्तीय मन्त्री के पदों पर नियुक्त रहकर आपने केरल के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन के दिशा-दर्शन में अपनी प्रतिभा तथा कार्यकुशलता का परिचय दिया है। वे आज भी पूर्ववत् हिन्दी की सेवा में संलग्न हैं।

वटक्कानचेरी—

उन दिनों वटक्कानचेरी (कोच्चिन) भी हिन्दी-प्रचार का एक प्रबल केन्द्र रहा है। स्व० श्री के० वासुदेवन् पिल्लैजी वहाँ का कार्य-संचालन कर रहे थे। आसपास के गाँवों में भी हिन्दी का सन्देश पहुँचाने में श्री वासुदेवन् पिल्लैजी का नेतृत्व सहायक हुआ। कुछ समय के उपरान्त श्री पिल्लैजी का ट्रिवेंड्रम (ट्रावनकोर) को स्थान-परिवर्तन हुआ। तब से वे स्थायी रूप से वहाँ के कार्यों का नेतृत्व करते रहे। ट्रावनकोर के हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी कार्यों के विवरण में उनके कार्यकलापों का विशेष उल्लेख किया गया है।

कोटुंगल्लूर- श्री गोवर्धनदास शास्त्री—

कोटुंगल्लूर (क्रांगनोर) कोच्चि राज्य का एक सुविख्यात नगर है। श्री गोवर्धनदास शास्त्री सन् १९२८-२९ में वहाँ हिन्दी प्रचार कर रहे थे। १९२९ के

बाद वे कालिकट (मलाबार) में प्रचारार्थ भेजे गये। मलाबार उन दिनों हिन्दी-प्रचार के विषय में बहुत पिछड़ा हुआ था। मलाबार में पालघाट को छोड़कर सन् १९२९ तक और किसी केन्द्र में हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ नहीं हुआ था।

श्री शास्त्री जी मलयालम के अतिरिक्त बंगला, संस्कृत और हिन्दी के बड़े विद्वान् थे। वर्षों तक उत्तर में रहने के कारण वे एक प्रकार से हिन्दी-भाषा-भाषी-से हो गये थे। व्रजभाषा और अवधी के आप अच्छे ज्ञाता थे। सीमित दायरे में रहकर वे हिन्दी-प्रचार करते थे। फिर भी कालीकट में आरम्भ के दिनों में उनकी जो सेवाएँ हुईं, चिरस्मरणीय रहेंगी सन् १९३१ के बाद वे केरल के हिंदी-प्रचार के क्षेत्र से अलग हुए।

प्रकरण १६

मलबार में हिन्दी-प्रचार का प्रारंभ—

सन् १९३० तक मलबार में हिन्दी प्रचार का कार्य ट्रावनकोर और कोचिन की अपेक्षा बहुत ही कम केन्द्रों में हुआ था। पालघाट, ओलवकोट, कालिकट और कन्ननोर के अतिरिक्त और किसी केन्द्र में प्रचार कार्य का आरंभ ही नहीं हो सका था। प्रचारकों का अभाव ही इसका प्रमुख कारण था। वहाँ कांग्रेस के आन्दोलन की लहर उठ रही थी। सीधे ब्रिटिश साम्राज्य का प्रशासित प्रदेश होने के कारण असहयोग और सविनय कानून-भंग-आन्दोलन वहाँ ट्रावनकोर और कोचिन रियासत की अपेक्षा अधिक ज़ोर पकड़ रहा था। अतएव हिन्दी-प्रचार जैसे रचनात्मक कार्य के लिए वहाँ का वातावरण अधिक अनुकूल था। सन् १९३० के बाद जब काफ़ी संख्या में प्रचारक तैयार हुए, तब मलबार के विभिन्न केन्द्रों में ज़ोर-शोर से हिन्दी-प्रचार का कार्य भी शुरू हुआ। पालघाट, ओट्टप्पालम, कालिकट, बड़गरा और टेलिचेरी में हिन्दी की जड़ जमने लगी। उन केन्द्रों के आस-पास के गाँवों में भी धीरे-धीरे कार्य आरंभ हुआ। हज़ारों की संख्या में लोग हिन्दी पढ़ने लगे। जनता ने हिन्दी का बड़े प्रेम से स्वागत किया। काँग्रेसी नेताओं की सहायता एवं सहयोग के बल पर भिन्न-भिन्न केन्द्रों में प्रचारक प्रशंसनीय कार्य करने लगे।

पालघाट—

दक्षिण मलबार का एक सुप्रसिद्ध नगर है पालघाट। पहले पहल वहाँ हिन्दी-प्रचार कार्य श्री पी. के. केशवन् नायर के द्वारा हुआ। श्री. नायर उन दिनों (सन् १९२८-२९) में चित्तूर (कोचि) में काम कर रहे थे। विक्टोरिया कालेज (पालघाट) में उस समय डॉ. कर्मचन्द अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर रहे। आप हिन्दी के बड़े समर्थक थे। उनके सहयोग एवं सहायता से पालघाट में हिन्दी का कार्य आरंभ हुआ। श्री. केशवन् नायर (लेखक) हफ्ते में एक-दो दिन चितूर से वहाँ जाकर हिन्दी-क्लास चलाते थे। स्थानीय महिला-संघ की अध्यक्षा श्रीमती. चिन्नम्मू-मन्नाडियार की देख-रेख में क्लास चलता था। सैकड़ों देवियों ने उस क्लास में भर्ती होक र हिन्दी पढ़ी। एकाध वर्ष तक श्री. केशवन् नायरजी वहाँ हिन्दी-क्लास चलाते रहे। उनका स्थान-परिवर्तन होने के कारण वहाँ संगठित कार्य सन् १९३१ तक बन्द-सा रहा। सन् १९३१ से वहाँ पूर्वाधिक उत्साह के साथ बड़े व्यापक रूप में हिन्दी-आन्दोलन आरंभ हुआ। सन् १९३१ तक श्री.-सी. जी. गोपालकृष्णन् हिन्दी-प्रचारक विद्यालय, मद्रास

से उच्चशिक्षा प्राप्त करके हिन्दी प्रचारार्थ पालघाट आ गये। उसके पूर्व ही उन्होंने ओलवकोट और आस-पास के गाँवों में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया था। थोड़े ही दिनों में पालघाट हिन्दी-प्रचार आन्दोलन का एक जबर्दस्त केन्द्र बन गया। हज़ारों लोग हिन्दी आन्दोलन की ओर आकर्षित हुए। राष्ट्रीय-जागृति के उस जमाने में पालघाट काँग्रेसी नेताओं के आवागमन का भी एक प्रमुख केन्द्र था। उनके आगमन से हिन्दी-आन्दोलन को स्फूर्ति और बल प्राप्त हुआ। पालघाट की जनता में हिन्दी की जड़ जमाने में गोपालकृष्णजी की निस्वार्थ सेवाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। श्री गोपालकृष्णजी के स्थान-परिवर्तन के बाद श्री ए. वासुमेनोन जी वहाँ के कार्य को संभाल रहे हैं। सन् १९३८ से १९४६ तक श्री पी. के. केशवन् नायर ने भी वहाँ के कार्यों के संगठन एवं संचालन में मदद पहुँचायी थी।

श्री. ए. वासुमेनोन—

हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में श्री वासुमेनोन बड़े ही लोकप्रिय व्यक्ति हैं। वे सच्चे अर्थ में 'प्रचारक' हैं। पालघाट में श्री ए. 'वासुमेनोन' 'हिन्दी-प्रचारक' का पर्यायवाची शब्द बन गया है। घर-घर में श्री मेनोन जी ने हिन्दी का सन्देश पहुँचाया है। हज़ारों लोगों को उन्होंने हिन्दी सिखाई है। कुछ वर्ष तक वे कालीकट में भी हिन्दी-प्रचार करते रहे हैं। हिन्दी प्रचार सभा के इतिहास में, विशेषतः केरल के हिन्दी-प्रचार-आंदोलन में श्री वासुमेनोन की देन अत्यंत महत्व की मानी जायगी। अपनी असाधारण कार्यकुशलता और निस्वार्थ सेवा-भाव के बल पर श्री मेनोन जी इन दिनों पालघाट के जननायक बने हुए हैं। केरल के सबसे सफल हिन्दी शिक्षक के रूप में आप द. भा. हिन्दी-प्रचार सभा द्वारा पुरस्कृत हैं।

अकत्तेत्तरा (ओलवकोट)—

पालघाट के पास का गाँव है। राष्ट्रीय जागरण के ज़माने में वह दक्षिण के 'बरदोली' नाम से प्रख्यात था। वहाँ के घर घर में काँग्रेस का झंडा फहराता था। उन दिनों वहाँ का 'शबरी-आश्रम' हरिजनों का सुप्रसिद्ध 'विद्याकेन्द्र' था। स्व० श्री कृष्णस्वामी अय्यर उसके स्थापक हैं। हरिजनों के उद्धार में उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया था। आप हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के भी प्रबल सहायक थे। उनके सहयोग से 'शबरी-आश्रम' में एक हिन्दी-वर्ग चलता था। उस समय श्री सी. जी. गोपालकृष्णजी वहाँ हिन्दी पढ़ाते थे। उन्होंने पास के गाँवों में भी हिन्दी-का बीज बोया। 'शबरी-आश्रम' में उन दिनों देश के गण्यमान्य नेता संदर्शनार्थ आया करते थे। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, कस्तूरबा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद जैसे देश के प्रथम-गणनीय नेताओं के आगमन और उनके प्रोत्साहन से ओलवकोट और अकत्तेत्तरा के

लोगों से रचनात्मक कार्यों के प्रति आस्था और सहानुभूति बढ़ी। हिन्दी-प्रचार के विकास में वहाँ के लोगों से सहयोग बराबर प्राप्त होता रहा है।

अकत्तेत्तरा में श्री० गोपाल कृष्णन् के प्रयत्न से कई प्रचारक तैयार हुए। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के सुयोग्य प्रचारकों में सर्वश्री ए० वासुमेनोन, पी० नारायण, वी० नारायण मेनोन, ए० वासु अच्चन, स्वामीनाथन्, विश्वनाथन्, लक्ष्मी देवी, भगीरथी देवी, रामवर्मा, दामोदर आदि अकत्तेत्तरा निवासी हैं। उन सबको हिन्दी के क्षेत्र में लाने का श्रेय श्री० सी० जी० गोपालकृष्ण को है।

ओट्टप्पालम् (दक्षिण मलबार)—

सन् १९२९ में श्री के. केशवन् नायर के द्वारा ओट्टप्पालम् में हिन्दी-प्रचार का आरंभ हुआ। कुछ दिनों के बाद श्री नायर जी का स्थानपरिवर्तन ट्रिच्चूर को हुआ तो वहाँ का कार्य बन्द हो गया। सन् १९३० से श्री एन. सुन्दर अय्यर के प्रयत्न से वहाँ फिर से कार्य शुरू हुआ। श्री वी. नारायण मेनोन जी उस केन्द्र में हिन्दी प्रचारक नियुक्त रहे। श्री सुन्दर अय्यर जी के नेतृत्व में ओट्टाप्पालम् तथा आस पास के गाँवों में हिन्दी का सन्देश पहुँचाने में श्री मेनोन जी सफल हुए। सन् १९३५ के बाद श्री सी. आर. नाणप्पा, श्री दामोदरन्, श्री सदाशिवन् आदि कार्यकर्ताओं ने भी वहाँ प्रशंसनीय कार्य किया है। इस समय श्री वारियर वहाँ सफलतापूर्वक हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

कालीकट—

मलबार का प्रधान नगर कालीकट है। वहाँ हिन्दी-प्रचार का आरंभ सन् १९२८ में श्री गोवर्धनदास शास्त्री के द्वारा हुआ। उसके बाद श्री पी. के नारायण नायर, श्री सी. जी गोपालकृष्णन् तथा श्री ए. वासुमेनोन ने वहाँ की जनता में हिन्दी के प्रति उत्साह बढ़ाया। सन् १९३५ तक शहर के कोने-कोने में हिन्दी-वर्ग खुले। दर्जनों प्रचारकों के संगठित प्रयत्न से कालीकट दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। श्री कुट्टिकृष्णन् नायर, श्री वी. कृष्ण कुरुप, श्री के. राघवन्, श्री गोपालन्, श्री उण्णिकृष्ण मेनोन, श्री नारायण मेनोन आदि की सेवाएँ वहाँ के हिन्दी-प्रचार की प्रगति में महत्वपूर्ण रही हैं। श्री के. राघवन् द्वारा संचालित हिन्दी-विद्यालय कालीकट के हिन्दी-प्रचार-कार्य की वृद्धि में अनुकरणीय सेवाएँ प्रदान करता रहता है।

आर्य-समाज—

स्थानीय आर्य-समाज की ओर से श्री लक्ष्मण विद्यार्थी, श्री राघवन्, श्री बुद्ध सिंह तथा श्रीमती सुगन्धी बाई आदि की सेवाएँ कालीकट में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार

में काफ़ी सहायक हुई हैं। आज भी आर्य-समाज कालीकट के एक मुख्य मुहल्ले पुतियरा में निशुल्कः हिन्दी-वर्ग चला रहे हैं। सैकड़ों छात्र-छात्राएँ वहाँ निःशुल्क शिक्षा पा रहे हैं। श्रीमती सुगन्धी बाई तथा श्री बुद्ध०सिंह की सेवाएँ इस दिशा में अभिनन्दनीय हैं।

गणपत हाईस्कूल—

स्थानीय गणपत हाईस्कूल वास्तव में हिन्दी-प्रचार कार्य-कलापों का केन्द्र रहा। उसके संचालक श्री सर्वोत्तम राव जी हिन्दी के अनन्य प्रेमी हैं। उन्होंने पहले पहल अपने हाईस्कूल में हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में पाठ्य-क्रम में स्थान दिया था। हिन्दी-प्रचार कार्यों के लिए अपने स्कूल का भवन बिना किराये के सदा-सर्वदा वे देते रहे। आज वह सरकारी हाईस्कूल बन गया है।

हिन्दी-प्रचार की प्रगति में सहयोग एवं सहायता प्रदान करनेवाले सैकड़ों व्यक्ति कालीकट में रहते हैं। कालीकट के गुजराती व्यापारियों ने हिन्दी प्रचार के लिए जितना धन दिया, उतना शायद ही केरल के किसी केन्द्र से प्राप्त हुआ हो। श्री श्यामजी सुन्दरदास जो गाँधीजी के साबरमती आश्रम के अन्तेवासियों में से हैं, हिन्दी के बड़े समर्थक हैं। स्व. सेठ नागजी पुरुषोत्तम दास भी हिन्दी-प्रचार में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। हिन्दी के प्रचार में उन दोनों से आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता प्राप्त होती रही। काँग्रेस के सभी रचनात्मक कार्यों में कालीकट के गुजराती व्यापारियों ने काफ़ी आर्थिक सहायता पहुँचायी है। स्व. त्रिपुरान्तक मुदलियार भी हिन्दी के प्रचार में समय-समय पर आर्थिक सहायता प्रदान करते रहे थे।

प्रमुख सहायक—

श्रीमती कुट्टिमालु अम्मा, स्व. शंकुण्णि नंबियार, (मंत्री, हरिजन सेवा-संघ), स्व. श्री के. रामन् मेनोन (भूतपूर्व मंत्री, मद्रास), श्री के. पी. रामुण्णि मेनोन, श्रीमती के. ई. शारदा, श्री वी. कुमारन्, श्री जी. एस. प्रसाद, श्री ए. वी. कुट्टिकृष्ण मेनोन (भूतपूर्व प्रिन्सिपल, ज़ामोरिनस कालेज, कालीकट), श्री कुट्टिकृष्णन् नायर (भूत-पूर्व मंत्री), स्व. वी. गोविन्दन् नायर, श्री डी. वी. नंबूतिरिप्पाड़, श्री के. केलप्पन आदि सज्जनों की सहायता एवं सहयोग से ही कालीकट में हिन्दी प्रचार का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

उन दिनों कालीकट काँग्रेसी नेताओं का सदर-मुकाम बना रहता था। देश भर के काँग्रेसी नेता समय-समय पर कालीकट में आते-जाते रहे। काँग्रेसी कार्य-कलापों का प्रमुख केन्द्र होने के कारण हिन्दी-प्रचार की प्रगति में देश के नेताओं से स्फूर्ति एवं सामयिक सहायता भी प्राप्त होती रही। कालीकट की जनता की राष्ट्रीय जागृति इस दिशा में बड़ी ही सहायक हुई।

'मातृभूमि' की हिन्दी-सेवा—

कालीकट से निकलने वाला 'मातृभूमि' दैनिक समाचार-पत्र हिन्दी प्रचार के कार्य में जितनी सहायता पहुँचाता रहा और आज भी पहुँचा रहा है, शायद ही और किसी केरल के समाचार-पत्र ने पहुँचायी हो। मातृभूमि के भूतपूर्व संपादक, श्री दामोदर मेनोन, श्री पी. नारायणन् नायर, श्री एम. के. राजा तथा वर्तमान संपादक श्री केशव मेनोन, श्री सी. एच. कुंजप्पा, श्री माधवनार, श्री किटाव, स्व. उण्णि कृष्णन् नायर आदि की सेवाएँ इस दिशा में गणनीय हैं। कालीकट के हिन्दी-प्रचार का इतिहास हिन्दी-प्रचार संबन्धी अनेकों महत्वपूर्ण कार्य-कलापों और स्फूर्ति-दायक घटनाओं का इतिहास है।

बड़गरा—

सन् १९३१ में हिन्दी प्रचार का कार्य आरंभ हुआ। श्री एन. वेंकिटेश्वरन् हिन्दी-प्रचार सभा की ओर से वहाँ प्रचारक नियुक्त हुए। उनके अथक परिश्रम और अदम्य उत्साह से बड़गरा तथा उसके आस-पास के गाँवों में हिन्दी का प्रचार बढ़ा। स्थानीय हिन्दी प्रेमी सज्जनों में श्री ई. के. शंकरवमीराजा, श्री चात्तुमास्टर तथा श्री पारोलि वासुदेवन् नंबूतिरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके तथा अन्य देशप्रेमी नवयुवकों के हार्दिक सहयोग एवं सहायता से श्री वेंकिटेश्वरन् अपने कार्य में शीघ्र ही सफल मनोरथ हुए। सैकड़ों विद्यार्थियों ने हिन्दी पढ़ी। श्री वेंकिटेश्वरन् के स्थान परिवर्तन के बाद वहाँ के कार्य को स्थानीय हिन्दी-शिक्षित युवकों ने जारी रखा। आज भी बड़गरा हिन्दी का प्रचार-केन्द्र है।

कन्ननोर—

सन् १९२९-१९३० तक मलबार के एक प्रमुख नगर कन्ननोर में हिन्दी का प्रचार शुरू हुआ। सन् १९३० तक श्री पी. सी. कोरन मास्टर वहाँ हिन्दी वर्ग चलाते रहे। श्री पी. के. केशवन् नायर, जो सन् १९३० में प्रचारार्थ टेलिचेरी भेजे गये थे, वहाँ हफ्ते में एकाध दिन हिन्दी-वर्ग चलाते रहे। सन् १९३१ के बाद श्री सी. एन. गोविन्दन् वहाँ के कार्यक्षेत्र में उतरे। कन्ननोर तथा आसपास के गाँवों में श्री गोविन्दन् के द्वारा सराहनीय कार्य हुआ। कई प्रचारक वहाँ तैयार हो गये और नगर में तथा अन्य आस-पास के गाँवों में इन दिनों भी वे हिन्दी-प्रचार कार्य में लगे हुए हैं। उनमें श्री वी. कृष्णन् नंपियार सर्वप्रमुख हैं। केरल हिन्दी-प्रचार सभा के कार्यों में आपका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कन्ननोर को हिन्दी-प्रचार का एक उज्वल केन्द्र बनाये रखने में वे सदा तत्पर रहते हैं। वे केरल हिन्दी-प्रचार सभा के उपाध्यक्ष भी रहे हैं।

टेलिचेरी—

उन दिनों मलबार के प्रमुख केन्द्रों में टेलिचेरी का नाम भी विशेष उल्लेख-योग्य है। सन् १९३१ में वहाँ कार्य आरंभ हुआ। श्री पी. के. केशवन् नायर वहाँ के सर्वप्रथम कार्यकर्त्ता हैं। विद्यार्थियों की संख्या की दृष्टि से टेलिचेरी उन दिनों प्रथम श्रेणी का केन्द्र था। टेलिचेरी के आस-पास धर्मटम, तिरुवंगाड़, चोक्ली, माही, चेट्टनकुन्नु, आदि स्थानों में हिन्दी-वर्ग चलते थे। स्थानीय सज्जनों में श्री शंकर अय्यर (वकील), श्री अच्युतन् वैद्यर (वकील), श्री एल. एस. प्रभु (काँग्रेसी नेता), श्री डॉ०. टी. वी. एन. नायर, श्री स्वामी आनन्दतीर्थ आदि का सहयोग केशवन् नायर को प्राप्त हुआ था। देश के गण्यमान्य नेताओं ने टेलिचेरी के हिन्दी-प्रचार कार्य की प्रशंसा की है। महात्मा गाँधी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद आदि नेताओं के केरल-पर्यटन के अवसर पर टेलिचेरी की जनता ने उन्हें हिन्दी में मान-पत्र दिया था। चालिय-हायर-एलिमेंटरी स्कूल के प्रधान अध्यापक तथा मैनेजर श्री कुंजिरामन् मास्टर की सेवाएँ हिन्दी-प्रचार की प्रगति में अत्यंत सहायक रही हैं। उन्होंने अपना स्कूल सुबह छः बजे से दस बजे तक और शाम को चार बजे से रात के दस बजे तक हिन्दी-क्लास के लिए हमारे सुपुर्द कर रखा था।

स्व. पी. वी. नारायणन् नायर—

श्री केशवन् नायर के स्थान-परिवर्तन के बाद उनके प्रमुख शिष्यों ने टेलिचरी तथा आस पास के गाँवों के हिन्दी प्रचार सम्बन्धी कार्यों का संचालन किया। स्व. पी. वी. नारायणन् नायर तथा स्व. सी. आर. रामकुरुप उनमें प्रमुख थे। वे बड़े उत्साह के साथ कार्य करते रहे। उनकी महान् त्याग-वृत्ति और कर्त्तव्य-निष्ठा ने टेलिचेरी केन्द्र को उज्वल बनाये रखा। दोनों की आकस्मिक मृत्यु से टेलिचेरी का कार्य थोड़े दिनों के लिए मन्द पड़ गया था। पर शीघ्र ही श्री पी. वी. अप्पुमास्टर, श्री दामोदरन् नंपियार (शंकुमास्टर) तथा श्री गोपालन् ने वहाँ का कार्य-भार अपने ऊपर ले लिया। उक्त तीनों तथा उनके सहयोगी अन्य प्रचारकों के निरन्तर प्रयत्न तथा वहाँ की हिन्दी-प्रेमी-जनता के सहयोग के बल पर आज भी टेलिचेरी हिन्दी की सेवा में अग्रसर रहता है।

आलत्तूर-श्री के. वासु अच्चन—

दक्षिण मलबार का एक प्रमुख केन्द्र आलत्तूर हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन में महत्व-पूर्ण भाग लेता रहा है। वहाँ कार्यकुशल प्रचारक श्री ए. वासु अच्चन हैं। उनकी सेवाएँ इस क्षेत्र में अमूल्य रही हैं। प्रारम्भ के दिनों में हिन्दी-प्रचार-कार्य की दृष्टि से आलत्तूर एक आदर्श केन्द्र रहा। स्थानीय सज्जन स्व. पी. पद्मनाभ मेनोन (वकील)

हिन्दी के अनन्य सेवी रहे। आलत्तूर की जनता में हिन्दी के प्रति अटूट श्रद्धा आज भी बनी रहती है।

अन्य प्रमुख केन्द्र—

इलप्पुल्लि, पेरिन्तलमण्णा, षोरन्नूर, निलम्बूर, मँचेरी, तिरनर, परप्पनंगाड़ी, कोयिलाँडी, नलिपरम्पा, पय्यन्नूर, नीलेश्वरम्, वयनाडु आदि केन्द्रों में आज हिन्दी प्रचार का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। इन केन्द्रों में हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी हिन्दी की शिक्षा पा रहे हैं। सभा से आर्थिक सहायता न पानेवाले सैकड़ों प्रचारक इन दिनों मलबार के गाँव-गाँव में हिन्दी-प्रचार की वृद्धि में अपनी निस्वार्थ सेवाएँ प्रदान करते रहते हैं।

हिन्दी के अनन्य प्रेमी और सहायक—

विशेषतः काँग्रेसी नेताओं के सहयोग से ही मलबार में आरम्भ के दिनों में कार्य शुरू हुआ था। लेकिन ज्यों-ज्यों प्रचार-कार्य बढ़ता गया, त्यों-त्यों हिन्दी-प्रचारकों को सार्वजनिक सहयोग प्राप्त होता गया। शुरू से लेकर आज तक इस महान् कार्य में सहयोग एवं सहायता प्रदान करते रहनेवालों की संख्या असीम है। उन सबके नाम गिनाना असंभव है। फिर भी विशेषरूप से हिन्दी की प्रगति में सहायक बने रहनेवालों में पालघाट के श्री आर. राघव मेनोन, स्व. पी. वासु मेनोन, श्री वी. दामोदरन् नायर, श्री डा० पद्मनाभन् आदि के नाम स्मरणीय हैं। कालीकट में श्रीमती कुट्टिमालु अम्मा, श्रीमती के. ई. शारदा, श्री के. पी. रामुण्णि मेनोन, श्री जी. एस. प्रसाद, श्री श्यामजी सुन्दरदास, श्री स्व. सेठ नागजी पुरुषोत्तम, श्री पी. कुमारन्, श्री स्व. पी. शंकुण्णि नैंपियार आदि महान् व्यक्तियों का योगदान स्थानीय कार्य-वृद्धि में बहुत ही महत्व का रहा है। टेलिचेरी में श्री अच्युतन् वैद्यर, श्री कुंभिरामन् मास्टर, श्री स्व. शंकर अय्यर आदि की सहायता हिन्दी प्रचार के कार्य में सदा सर्वदा प्राप्त होती रही है। उसी प्रकार कन्ननोर में भी श्री सोमन, श्रीमती के. गोमती अम्मा, श्री कुंजिरामन् आदि कितने ही हिन्दी-प्रेमियों ने हिन्दी की श्री वृद्धि में अपनी अमूल्य सेवाएँ प्रदान की थीं।

कोच्चिन—

सन् १९३० तक कोच्चिन राज्य में पी. के. नारायणन् नायर, गोवर्धन शास्त्री, शंकरानन्दन्, वासुदेव पिल्लै तथा पी. के. केशवन् नायर काम कर रहे थे। इसके बाद कोच्चिन के विभिन्न केन्द्रों में तथा हाईस्कूलों में कई प्रचारक हिन्दी पढ़ाने के कार्य में लगे। सभा के अधीन कार्य करनेवालों में ए. चन्द्रहासन्, देवदूत विद्यार्थी, एन. वेंकिटेश्वरन्, ऐ. केलायुधन और विमलजी प्रमुख थे। स्कूलों में काम करनेवाले

हिन्दी अध्यापक भी उन दिनों जनसाधारण में अपने अवकाश के समय हिन्दी का प्रचार-कार्य करते रहते थे। के. केशवन् नायर, जी. एन. नायर, एम. नारायण मेनोन, माधव कैमल, राघवन् इलयिडम, कृष्णदेव, परमेश्वर पणिक्कर आदि उनमें प्रथम-गणनीय हैं। सन् १९३६ के बाद जब प्रान्तीय शाखा तृप्पूणित्तुरा में स्थापित हुई ❀ कोचि के हिन्दी-प्रचार का कार्य पूर्वाधिक सफलता के साथ हुआ। सैकड़ों प्रचारकों ने सभा के अधीन या स्वतन्त्र रूप से हिन्दी-प्रचार-सभा की सेवा की। शंकरनकुट्टि मेनोन, गीर्वासिस, श्रीमती पी. लक्ष्मीकुट्टी, आर. के. राव, विश्वनाथ मल्लैय्या, परमेश्वर पणिक्कर, एस. पद्मनाभन्, चौधरी धारासिंह, पी. वी. जोसफ़, वी. जोण, दिवाकरन्, श्रीमती समुद्रा तंपुरान आदि ने हिन्दी-प्रचार की प्रगति में निःस्वार्थ सेवाएँ प्रदान की हैं। आज हज़ारों प्रचारक हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं।

प्रमुख सहायक—

कोचिन के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन की सफलता में डॉ० ए. आर. मेनोन, डॉ० सी. मत्ताई, पोतुवाल, डा० कृष्णय्यर, कुरूर नंपूतिरिप्पाड आदि प्रबल सहायक रहे हैं।

पं० देवदूत विद्यार्थी—

सन् १९३२ से लेकर १९४१ तक केरल के हिन्दी प्रचार-आन्दोलन का नेतृत्व करने वालों में पं. देवदूतजी विद्यार्थी का स्थान सबसे ऊँचा है। वे सन् १९२२ से १९३२ तक सभा की सेवा में तमिलनाड और कर्नाटक में सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। सन् १९३२ में वे ट्रिवेंड्रम शाखा कार्यालय के मन्त्री नियुक्त हुए। तब से केरल उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा। केरल भर के लिए जब एक ही शाखा-कार्यालय एरनाकुलम् में स्थापित हुआ, तब आप ही उसके प्रथम संचालक बने। अपनी कार्यकुशलता और त्यागनिष्ठा के बल पर उन्होंने केरल के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को सुसंगठित और चिरस्थायी बनाया। संगठन के क्षेत्र में वे अपने ढंग के अकेले थे। वे अंग्रेजी और हिन्दी के अच्छे वक्ता, सुलेखक और सुयोग्य अध्यापक हैं। दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा के सभी विभागों के कार्य संचालन में आपने अपनी कार्य-दक्षता का परिचय दिया है। केरल की हिन्दी-प्रेमी जनता उनकी अमूल्य सेवाओं के लिए उनकी चिर-ऋणी रहेगी।

पं. देवदूतजी के बारे में श्री जी. रामचन्द्रन् ने एक भाषण में यों कहा था—

"I recently met one of your Pracharaks, Pandit Devadoot Vidyarthi in Trivandrum. We became friends.

❀ प्रान्तीय शाखा कार्यालय पहले तृप्पूणित्तुरा में स्थापित हुआ। बाद को एरनाकुलम् को हटाया गया।

I was struck by the same single-hearted devotion to Hindi in him. He thinks of Hindi all the time, dreams of it and lives in it. He has infected his enthusiasm for Hindi all round, he has waked up the minds of men, women and even children to learn Hindi. He went from house to house and convassed for students."[1]

प्रगति की ओर—

केरल के हज़ारों केन्द्रों में सन् १९३६ तक हिन्दी-प्रचार का कार्य सुसंगठित रूप में होने लगा। सभा ने सभा के नये संविधान के अनुसार प्रत्येक केन्द्र में हिन्दी-प्रचार शाखा समिति स्थापित करने की आयोजना बनायी। हिन्दी-प्रेमी मंडलों की ओर से पहले जो कार्य हो रहा था, उसे शाखा समितियों के अधीन सुचारु ढंग से चलाने की व्यवस्था हुई। शाखा समितियों के संगठन, संचालन और नियंत्रण के लिए ही जिला समितियाँ कायम की गयीं। ज़िले भर के कार्य की देख-रेख और मार्ग-दर्शन के लिए जिला-संगठनों की नियुक्ति हुई। संगठक जिले-जिले में भ्रमण करके प्रचारकों के कार्य को सुगम तथा सुस्थायी बनाने में मदद पहुँचाते थे। जिला-सम्मेलन करना, सभा के लिए चंदा वसूल करना तथा हिन्दी वर्गों का निरीक्षण करके प्रचारकों को पढ़ाई-सम्बन्धी बातों में आवश्यक परामर्श देना संगठकों का प्रधान कार्य था। जिला समितियों के कार्यालय, तिरुवनन्तपुरम्, एरनाकुलम् और कोषिक्कोड़ में स्थापित हुए थे।

हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की उच्च परीक्षा की शिक्षा देकर प्रचारकों को तैयार करने के लिए सभा ने सन् १९३२ में एरनाकुलम् में तथा बाद को ट्रिवेंड्रम् में हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय चलाये। उनमें शिक्षा पाकर कई हिन्दी-प्रचारक तैयार हुए और वे केरल के प्रमुख केन्द्रों में कार्य करने लगे। एम. के. गोविन्दन उण्णि, सी. आर. नाणप्पा, श्रीमती भवानी देवी, श्रीधर कुरुप, कृष्णदास, वेलप्पन नायर आदि उनमें प्रमुख हैं। उन दिनों सभा की राष्ट्रभाषा-विशारद की पढ़ाई ही उन विद्यालयों में होती थी। सन् १९४७ से केरल के कई प्रमुख केन्द्रों में हिन्दी-अध्यापकों को तैयार करने के लिए महाविद्यालय खुले। ओट्टप्पालम्, वेस्टहिल, अयिरूर, तृप्पूणित्तुरा, कोषिक्कोड़, तिरुवनन्तपुरम्, आट्टिंगल, नागरकोविल, चेंगन्नूर, मावेलिक्करा, हरिप्पाड़, कोट्टयम्, कोषंचेरी, कण्णूर, नीलेश्वरम्, पालघाट आदि स्थानों में सभा के अधीन

1. 'हिन्दी-प्रचारक'—मई १९३२।

तथा सभा की मान्यता के साथ कई विद्यालय चले जिनमें करीब १५०० विद्यार्थियों ने सभा की उच्च परीक्षा की शिक्षा पायी। उनमें सैकड़ों नवयुवक-युवतियाँ आज स्कूल-कालेज में हिन्दी-अध्यापक नियुक्त हुए हैं। इन विद्यालयों के अतिरिक्त तिरुवनन्तपुरम्, एरनाकुलम्, तृप्पूणित्तुरा, पालघाट, ओट्टप्पालम्, तलश्शेरी, कण्णूर, ट्रिचूर, नीलेश्वरम्, षोरन्नूर आदि केन्द्रों में सभा की सर्वोच्च परीक्षा 'प्रवीण' की शिक्षा देने के लिए विद्यालय खुले थे। इन विद्यालयों में भर्ती होकर करीब २०० विद्यार्थियों ने 'प्रवीण' का अध्ययन किया था।

प्रशिक्षण विद्यालय—

हिन्दी अध्यापकों और प्रचारकों को 'प्रशिक्षण' देने के लिए सन् १९५१ से १९५४ तक तिरुवनन्तपुरम् और कोषिक्कोड़ में विद्यालय चलाये गये। सन् १९६१ से तिरुवनन्तपुरम् में दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा के सीधे नियंत्रण और संचालन में हिन्दी-प्रचारक-प्रशिक्षण-विद्यालय फिर से चल रहा है। इन सब विद्यालयों में अभी तक लगभग २५० प्रचारकों और अध्यापकों ने शिक्षा पाकर 'प्रचारक-उपाधि' प्राप्त की है।

प्रमुख अध्यापक—

आरंभ से लेकर आज तक जो महाविद्यालय चले उनमें सभा के वैतनिक कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त अन्य स्वतंत्र कार्यकर्त्ताओं ने भी अध्यापन का कार्य किया है। सभा के वैतनिक अध्यापकों में ए. चन्द्रहासन्, पी. के. नारायणन् नायर, देवदूत विद्यार्थी (सन् १९३२-३३), पी. के. केशवन् नायर, टी. बालकृष्णन् नायर, रविवर्मा, एन. वेंकिटेश्वरन् १९४६-४७ और उसके बाद सी. आर. नाणप्पा, सी. एन. गोविन्दन्, सी. जी. गोपालकृष्णन्, पं. नारायणदेव, एन. सदाशिवन्, माधवकुरुप, नारायणदत्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। केरल के कई प्रमुख केन्द्रों में आज भी कई प्रचारक स्वतंत्र रूप से विशारद विद्यालय चलाकर प्रचारकों को तैयार करते रहते हैं। उन में पी. पी. अप्पू और गोपालन्, दामोदरन् नंपियार (तलश्शेरी), वी. कृष्णन् नंपियार (कण्णूर), रामन् नायर (कोच्चि), टी. वी. थामस और एम. आर. कृष्णन् नायर (कोषंचेरी), तामस (चेंगन्नूर), के. जी. कुट्टन पिल्लै (हरिप्पाड), रविवर्मा (आलप्पुषा), केशवन् नायर (आट्टिंगल), शंकर नारायण अय्यर (किलिमानूर), वेलप्पन नायर (कोल्लम), कृष्णदास (नागर कोविल), एच्. बालसुब्रह्मण्यम् (तिरुवनन्तपुरम्) आदि की सेवाएँ अभिनन्दनीय हैं।

हिन्दी-परीक्षार्थी—

हिन्दी परीक्षाओं में बैठने वाले परीक्षार्थियों की संख्या आरंभ से लेकर आज

तक बढ़ती ही रही है। सभा की बिभिन्न परीक्षाएँ देनेवाले विद्यार्थियों की संख्या सन् १९२२ से सन् १९५६ तक इस प्रकार है—

परीक्षा	विद्यार्थी संख्या
प्राथमिक	६८,८२५
मध्यमा	७२,५७९
राष्ट्रभाषा	४०,३५७
प्रवेशिका	१८,०५६
विशारद	९,१९४
प्रवीण	१,६८२

उक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त प्रतिवर्ष तिरुवितांकूर विश्वविद्यालय तथा अन्य विश्वविद्यालयों की हिन्दी विद्वान्, B.A (हिन्दी), M.A (हिन्दी) आदि उच्च परीक्षाओं में हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी भर्ती होते रहते हैं।

हिन्दी सेवा समिति—

सन् १९४० में श्री. जी. एन नायर के प्रयत्न से ट्रिच्चूर में 'हिन्दी-सेवा-समिति' नामक एक संस्था स्थापित हुई थी जिसकी तरफ़ से नगर के विभिन्न मुहल्लों में हिन्दी वर्ग चलाते थे। हज़ारों लोगों को हिन्दी की शिक्षा देने में समिति सफल हुई। उस समिति के संचालन और संगठन के कार्यों में स्थानीब सज्जन डॉ० कृष्णय्यर की सेवाएँ समिति के कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त होती रही हैं। श्री. डॉ. कृष्णय्यर सुप्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी श्री. एन. सुन्दरय्यर के भाई हैं।

केरल के प्रमुख कार्यकर्त्ता एन. वेंकिटेश्वरन्—

श्री. वेंकिटेश्वरन् सन् १९३० से लेकर केरल के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन में लगातार लगे रहनेवाले प्रथम श्रेणी के सुयोग्य कार्यकर्त्ता हैं। हिन्दी-प्रचार सभा के सभी कार्यों में उनकी अद्भुत कार्यशक्ति प्रकट हुई है। वे सफल अध्यापक, हिन्दी के मंजे हुए लेखक तथा अच्छे वक्ता हैं। केरल के सबसे अच्छे लेखक के रूप में आप सभा द्वारा पुरस्कृत हैं। केरल के सैकड़ों प्रचारक आपकी शिष्य-परंपरा में से हैं। केरल-हिन्दी-प्रचार-सभा के मंत्री की हैसियत से लगातार बारह वर्ष तक की आपकी सेवाएँ केरल के हिन्दी-प्रचार की सर्वतोमुखी प्रगति में चिरस्मरणीय हैं। हिन्दी-साहित्य में आपकी गहरी पहुँच है। इस क्षेत्र में भी आपको सफलता प्राप्त हुई है। इन दिनों आप केन्द्र-सभा-मद्रास के परीक्षा-विभाग के मंत्री हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुभद्रा तंपुरान भी बड़ी हिन्दी-सेविका हैं। वर्षों तक तृप्पूणित्तुरा की महिलाओं में आप हिन्दी का प्रचार करती रही हैं। आप राजघराने की संकीर्ण-परिधि से बाहर

निकलकर हिन्दी के क्षेत्र में, जनसाधारण की सेवा में जीवन को सार्थक माननेवाली एक आदर्श महिला हैं ।

ऐ. वेलायुधन्—

ट्रिच्चूर आरंभ से ही लेकर हिन्दी-प्रचार का एक प्रमुख केन्द्र रहा है । ट्रिच्चूर की जनता में हिन्दी का संदेश फैलाने में सभा के तत्कालीन प्रचारक श्री ऐ. वेलायुधन् की सेवाएँ अमूल्य हैं । सन् १९३५ से लेकर आज तक ट्रिच्चूर की महिलाएँ हिन्दी-प्रचार की प्रगति में सहायक रही हैं । स्थानीय विवेकोदयम् हाईस्कूल में सन् १९२८ से हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाने लगी थी । उस स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री वी. के. कृष्णमेनोन हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे । श्री वेलायुधन् के अथक प्रयत्न से ट्रिचूर में हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या में कोच्चिन के अन्य केन्द्रों की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई थी । स्थानीय हिन्दी-प्रेमी मंडल के तत्वावधान में वहाँ कई हिन्दी-प्रचार सम्मेलन हुए । उन अवसरों पर हिन्दी-नाटकों का अभिनय भी हुआ था । स्थानीय हिन्दी-प्रचारक-संघ तथा हिन्दी-प्रचार समिति की तरफ़ से वहाँ बड़ी सफलता के साथ कार्य हुआ था । श्री के. केशवन् नायर, श्री जी एन. नायर, श्री विमल जी, श्रीमती पी. लक्ष्मीकुट्टी, श्री सदाशिवन् , श्री नारायण दत्त, श्री नंपीशन, आदि कितने ही प्रचारकों ने ट्रिचूर के हिन्दी-प्रचार कार्य में अपनी निस्वार्थ सेवाएँ अर्पित की हैं । सभा की ओर से उन सबको मार्गदर्शन देने में, एवं नगर भर के कार्यसंचालन और संगठन करने में श्री वेलायुधन् ने बड़ी दक्षता का परिचय दिया था । प्रान्तीय सभा के संगठन, सहायक मन्त्री आदि के पदों पर भी उनकी सेवाएँ अमूल्य रही हैं । केरल के हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को सशक्त और सुसंगठित बनाने में योगदान विशेष महत्व का रहा है । वे इन दिनों महाराजा-कालेज, एरनाकुलम् के हिन्दी विभाग में काम कर रहे हैं ।

सी. एन. गोविन्दन्—

केरल हिन्दी-प्रचार सभा के प्रथम श्रेणी के कार्यकर्त्ताओं में श्री सी. एन. गोविंदन् भी गिने जाते हैं । मलबार ही उनका मुख्य कार्यक्षेत्र रहा है । अध्यापन, संगठन आदि के क्षेत्रों में उनकी सेवाएँ सराहनीय रही हैं । वे पिछले ३२ वर्षों से हिन्दी के कार्यक्षेत्र में निरन्तर लगे रह कर अपनी निस्वार्थ सेवा-वृत्ति के बल पर लोकप्रियता उपलब्ध करने वाले प्रचारकों में आप अग्रणी हैं । केरल के हिन्दी-प्रचार के आन्दोलन की सफलता में उनकी सेवाएँ स्मरणीय हैं । वे आज भी उसी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं ।

सी. जी. गोपालकृष्ण—

केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के इतिहास में श्री गोपालकृष्ण की बहुमूल्य

सेवाएँ भी गणनीय हैं। गत ३४ वर्षों से वे हिन्दी की सेवा में निरंतर संलग्न हैं। प्रथमगणनीय संगठक के रूप में आप हिन्दी-प्रचार-सभा द्वारा पुरस्कृत हैं। केरल प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा की विविध आयोजनाओं को कार्यान्वित करने में आपने अपनी अद्वितीय संगठन-दक्षता का परिचय दिया है। मलबार ही आपका प्रधान कार्यक्षेत्र रहा। वहाँ की जनता में एक लंबे अर्से तक सभा के संगठक, जिला मंत्री, प्रचारक, विद्यालयों के अध्यापक तथा प्रचारक के रूप में आपने बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया है। पिछले सात-आठ वर्षों से आप दक्षिण केरल (ट्रावनकोर) में मण्डल संगठक के पद पर कार्य कर रहे हैं। केरल हिन्दी-प्रचार की प्रगति में उनकी देन महत्वपूर्ण है।

सी. आर. नाणप्पा—

केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन में आत्मार्पण किये हुए व्यक्तियों में श्री नाणप्पा का भी स्थान है। पिछले तीस वर्षों से वे हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं। मुख्यतः मलबार उनका कार्यक्षेत्र रहा। तमिलनाडु में भी आपने कुछ समय तक कार्य किया है। प्रचार, संगठन, अध्यापन आदि के सभी क्षेत्रों में आप सफल कार्यकर्ता रहे हैं। वे साहित्यिक-प्रतिभा से अनुगृहीत हैं। अतः हिन्दी में लेख, कहानियाँ आदि लिखने की विशेष रुचि रखते हैं। आप मलयालम् और हिन्दी के अच्छे वक्ता और अभिनेता हैं। अभिनय-कला में केरल के अच्छे अभिनेता के रूप में आप सभा द्वारा पुरस्कृत हैं। इन दिनों वे 'केरल-भारती' के सफल सहयोगी संपादक हैं। केरल के हिन्दी प्रचार की प्रगति में आपकी सेवाएँ विशेष महत्व की हैं।

पं. नारायण देव—

पं. नारायण देव केरल के पुराने अनुभवी, सुयोग्य कार्यकर्ताओं में एक हैं। ट्रावनकोर उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा। सन् १९३२ से आप हिन्दी की सेवा में दत्तचित्त हैं। कोट्टयम का 'श्रद्धानन्द-विद्यालय' आपकी प्रिय संस्था है। इस विद्यालय में शिक्षित होकर सैकड़ों हिन्दी-प्रचारकों ने हिन्दी की सेवा का क्षेत्र अपनाया है। आप एक सफल अध्यापक हैं। कविता करने में आपकी विशेष रुचि है। आप अच्छे हिन्दी कवि तथा लेखक के रूप में सभा द्वारा पुरस्कृत हैं। केरल हिन्दी-प्रचार-सभा के मंत्री के पद पर भी आपने हिन्दी की सेवा की है। इन दिनों आप 'केरल-भारती' के संपादक हैं।

एन. सुन्दरय्यर—

केरल हिन्दी-प्रचार-सभा के इतिहास में श्री. सुन्दरय्यर भी चिरस्मरणीय व्यक्ति हैं। आप सुप्रसिद्ध वकील हैं। अपने पेशे के साथ हिन्दी के प्रचार में भी आप समयोचित सहायता पहुँचाते रहते हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, मलयालम् और तमिल के

आप अच्छे विद्वान एवं वक्ता हैं। आप संस्कृत की अच्छी योग्यता रखते हैं। जब १९१८ में दक्षिण में हिन्दी-प्रचार का आरम्भ हुआ था तब श्री. सुन्दररय्यर जी मद्रास में कानून पढ़ रहे थे। उन्होंने श्री. स्वामी सत्यदेव जी के हिन्दी-वर्ग में भर्ती होकर हिन्दी पढ़ी। तब से वे हिन्दी के पक्के हिमायती बने। बाद को उन्होंने स्वाध्याय से हिन्दी की खूब योग्यता भी प्राप्त कर ली।

केरल हिन्दी-प्रचार-सभा के अध्यक्ष की हैसियत से आपने हिन्दी की अतुलनीय सेवाएँ की हैं। केरल हिन्दी-प्रचार-सभा के भवन-निर्माण के लिए आपने ही अधिक धन-संग्रह किया था। दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा की कार्यकारिणी-समिति के सदस्य तथा मद्रास नगर के प्रचार-मन्त्री के पदों पर भी आपने बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया है। जहाँ कहीं हिन्दी की सेवा करने का अवसर मिला हो, उन्होंने उसे टाला नहीं है। आज भी उनके पथप्रदर्शन से केरल के कार्यकर्ता अनुगृहीत रहते हैं।

चार महान् सहयोगी—

केरल-प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार सभा के क्रमिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देने-वालों में श्री वी. आर. कृष्णय्यर, श्री के. पी. माधवन् नायर, श्री ए. अच्युतन् वैद्यर तथा श्री के. सी. पिल्लै के नाम चिरस्मरणीय हैं। वे चारों हिन्दी के प्रबल समर्थक हैं। वर्षों से वे केरल के हिन्दी-प्रचार-सभा के सभी कार्यों में सक्रिय भाग लेते रहे हैं। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पदों पर रहते हुए सभा के कार्य-संचालन में उनकी सेवाएँ अमूल्य रही हैं। वे केरल के हिन्दी प्रचारकों के प्रदर्शक हैं।

हिन्दी के अन्य प्रबल समर्थक—

केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन की सफलता में केरल के नेताओं की सहायता तथा सहयोग समय-समय पर प्राप्त होता रहा है। श्री के. केलप्पन्, श्री जी. राम-चन्द्रन्, श्री स्व. रायबहादुर के. ए. कृष्णअय्यर, जस्टिस ए. वेंकिटराव, स्व. बारिस्टर ए. के. पिल्लै, स्व. चंगनाश्शेरी परमेश्वरन् पिल्लै, श्री स्वामी आनन्दतीर्थ, श्री के. कुट्टिकृष्णन् नायर, श्री आर. राघवमेनोन, श्री स्व० डॉ० पद्मनाभन्, श्रीमती ए. वी. कुट्टिमालु अम्मा, श्री स्व. पी. वासुमेनोन, श्री स्व. के. अच्युत मेनोन, श्री पनंपल्लि गोविन्द मेनोन, श्री के. पी. माधवन् नायर, श्री पी. शिवरामअय्यर, श्री एम. एन. शिवरामन् नायर, स्व. डॉ. ए. आर. मेनोन आदि उनमें प्रमुख स्थान रखते हैं।

केरल के सफल संगठक—

केरल के संगठकों में स्व. सी. एन. कृष्णपिल्लै, श्री शंकरन्‌कुट्टी मेनोन, श्री एम. माधवकुरुप, श्री एन. सदाशिवन् तथा श्री नारायणदत्त के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रचार,

अध्यापन तथा संगठन के क्षेत्रों में इनकी सेवाएँ विशिष्ट रही हैं। श्री सदाशिवन् तथा श्री नारायण दत्त आज भी पूर्ववत् हिन्दी के प्रचार एवं संगठन कार्य में संलग्न रहते हैं।

दिवंगत हिन्दी प्रचारक—

श्री के. एन. परमेश्वर पणिक्कर (तिरुवनन्तपुरम्), श्री एन. श्रीधर (कोल्लम्), श्री सी. एन. कृष्ण पिल्लै, श्री टी. एस. वासुदेव, श्री वी. के. दामोदर शास्त्री, श्री के. पद्मनाभपिल्लै, श्री वी. एस. जनार्दनन् आदि की सेवाएँ हिन्दी प्रचार की वृद्धि में सहायक रही हैं। वे सब अल्पायु में दिवंगत हुए। फिर भी केरल उनकी सेवाओं का चिर आभारी रहेगा।

प्रकरण १७

तिरुवितांकोर (ट्रावनकोर) में हिन्दी-प्रचार

तिरुवनन्तपुरम् (ट्रिवेंड्रम्)—

सन् १९३० से तिरुवितांकोर के कई केन्द्रों में हिन्दी-प्रचार बड़े ज़ोरों पर होने लगा था। राजधानी तिरुवनन्तपुरम् के प्रमुख कार्यकर्त्ता उन दिनों के. वासुदेवन् पिल्लैजी थे। झोंपड़ी से लेकर राजमहल तक हिन्दी का संदेश फैलाने में वासुदेवन् पिल्लैजी सफल हुए। हज़ारों लोग हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए। वासुदेवन् पिल्लैजी के निरंतर प्रयत्न और निस्वार्थ सेवा के फलस्वरूप तिरुवनन्तपुरम् दक्षिण भारत का एक प्रमुख केन्द्र बना। तब से लेकर आज तक वह दक्षिण के सभी हिन्दी-केन्द्रों के लिए आदर्श-रूप बना रहता है। हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से तिरुवनन्तपुरम् को दक्षिण भारत का सर्वप्रथम केन्द्र कहने में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं होगी। तिरुवनन्तपुरम् को हिन्दी का चिरस्थायी तथा आदर्श केन्द्र बनाने में वासुदेवन् पिल्लैजी का योगदान महत्वपूर्ण है।

पं. जवाहरलाल नेहरूजी का आगमन–१९३१—

सन् १९३१ में पं० जवाहरलालजी नेहरू ने दक्षिण भारत का भ्रमण किया था। उस सिलसिले में उन्होंने तूतिकोरिन्, कोल्लम्, आलप्पी, कोट्टयम्, ट्रिच्चूर, चित्तूर, एरनाकुलम्, तिरुवनन्तपुरम्, मैसूर, बंगलोर आदि केन्द्रों में हुए हिन्दी-सम्मेलनों में भाग लिया था। उक्त केन्द्रों की हिन्दी-प्रेमी जनता की ओर से उन्हें हिन्दी में मान-पत्र भी समर्पित किये गये थे। दक्षिण में राष्ट्रभाषा आन्दोलन को ज़ोर पकड़ते देखकर वे बहुत ही खुश हुए।

नेहरूजी का भाषण—

स्थानीय हिन्दी-प्रेमी मंडल के तत्वावधान में ता० २६ मई १९३१ को विक्टोरिया टाउन हॉल में एक सार्वजनिक सम्मेलन हुआ था। शहर के गण्यमान्य सज्जनों और महिलाओं से हॉल ठसाठस भरा हुआ था। स्थानीय प्रचारक वासुदेवन् पिल्लैजी ने पंडितजी को हिन्दी में मान-पत्र समर्पित किया। पंडितजी ने हिन्दी में भाषण दिया जिसका सारांश यह है :—

"मुझे इस बात की खुशी है कि इस सम्मेलन में मुझे हिन्दी में बोलने का मौका मिला। मुझे कुछ जगहों में विदेशी भाषा (अंग्रेज़ी) में बोलना पड़ा, इसका मुझे अफ़सोस और शरम है। मैं आपकी भाषा मलयालम् नहीं जानता और आप लोगों में ज्यादातर लोग राष्ट्रभाषा हिन्दी नहीं समझते होंगे। आपको मालूम ही होगा कि काँग्रेस ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा मान लिया है। दक्षिण के लोगों की कठिनाई को मैं जानता हूँ। मुझसे यहाँ के प्रचारक ने पूछा कि मेरे भाषण का हिन्दी में अनुवाद करना ज़रूरी है कि नहीं? मैंने उत्तर दिया कि हिन्दी-सम्मेलन में ऐसे लोगों के आने की ज़रूरत नहीं कि जो हिन्दी नहीं जानते हैं।

आपको मालूम है कि एक राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा की सख्त जरूरत है। हिन्दी भारत की अधिकांश जनता की भाषा है। इसलिए काँग्रेस ने उसे राष्ट्रभाषा मान लिया है। आशा है आप सबके सब निकट भविष्य में हिन्दी की काफ़ी योग्यता हासिल कर लेंगे। हिन्दी के प्रचार में आप सब मदद पहुँचावें, यही आप से अनुरोध है।"[१]

वासुदेवन् पिल्लैजी ने भाषण का संक्षेप मलयालम् में लोगों को सुनाया। पंडित जी ने हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र दिये।

अनुकरणीय हिन्दी-प्रेमी मण्डल—

तिरुवनन्तपुरम् का हिन्दी-प्रेमी मण्डल नगर भर के हिन्दी-प्रचार कार्य को मज़बूत और लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से स्थापित हुआ था। सन् १९३१ में उसका पुनःसंगठन हुआ। नगर के प्रतिष्ठित सज्जन उसके सदस्य बने। श्री एस. वी. कुञ्ञिलिया और एस. वी. पंडित उसके मंत्री थे। श्री ए. दामोदरन् आशान M. L. C., श्री वारियर, दीवान बहादुर वी. एस. सुब्रह्मण्यअय्यर, सर. सी. पी. रामस्वामी अय्यर, रायबहादुर के. ए. कृष्णय्यर, जस्टिस ए. वेंकिट राव, बारिस्टर ए. के. पिल्लै आदि के सहयोग और सहानुभूति के बल पर हिन्दी-प्रेमी-मण्डल ने बहुत ही सराहनीय कार्य किया। वासुदेवन् पिल्लैजी के अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम से मंडल का कार्य सफल रहा। सन् १९३२ जुलाई से वी. ई. अय्यप्पन् नायर और श्री. एस. परमेश्वरन् पिल्लै—दो उत्साही प्रचारक—सहयोगी वासुदेवन् पिल्लैजी को प्राप्त हुए। मंडल के अधीन तीन सौ से ऊपर विद्यार्थी अध्ययन करते थे। स्थानीय सरकारी कालेज, संस्कृत कालेज, एल. एम. एस. हॉस्टल, एन. एस. एस. स्कूल, सनातन धर्म कामर्स इन्स्टिट्यूट आदि स्थानों में हिन्दी-क्लास चलते थे।

---

(१) 'हिन्दी-प्रचारक'—मई १९३१ की रिपोर्ट के आधार पर

डॉ. सी. पी. रामस्वामी अय्यर का भाषण—

स्थानीय हिन्दी-प्रेमी-मण्डल का वार्षिक सम्मेलन राज्य के दीवान डॉ० सी. पी. रामस्वामी अय्यर की अध्यक्षता में ता ३० अक्तूबर १९३२ को हुआ। उन्होंने परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र दिये। अध्यक्ष का भाषण बड़ा स्फूर्तिदायक रहा। भारत की एकता और संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी पढ़ने की आवश्यकता पर उन्होंने ज़ोर दिया। उनके भाषण का नीचे उद्धृत अंश महत्वपूर्ण है।

"It is perfectly true that India is a Country of vast distances with many-differences and divergencies. It is true that our province differs from another in many ways. But it is equally true and I have never been weary of Stating this and reiterating this that the ultimate unity of India is something as marvellous of establishment as the adversities of India. Its inherent traditions are its unity and its wonderful culture and to cherish and maintain that unity is worthy of being carefully considered and investigated and pursued. It is from that point of view that I welcome all those who try their self-sacrifice, are encouraging this movement and devoting their time and attention to this."[1]

महत्वपूर्ण सम्मेलन—

सन् १९३१-१९३२ में केरल के प्रमुख केन्द्रों में कई महत्वपूर्ण हिन्दी-प्रचार-सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों के फलस्वरूप जनता में हिन्दी के प्रति अधिक सहानुभूति और हिन्दी पढ़ने में बड़ा उत्साह पैदा हुआ।

बडगरा में—

सन् १९३१ मई महीने में अखिल केरल राष्ट्रीय महासम्मेलन के सिलसिले में सुप्रसिद्ध नेता श्री. के. एफ़. नरिमन (बम्बई) की अध्यक्षता में अखिल केरल हिन्दी-प्रचार सम्मेलन एवं प्रचारक-सम्मेलन बड़गरा (मलाबार) में हुए। श्री. जे. एम. सेनगुप्ता ने सम्मेलन का उद्घाटन किया था। उन सम्मेलन के दिनों में अखिल-केरल महिला-सम्मेलन तथा विद्यार्थी-सम्मेलन भी हुए जिनमें कोच्चिन,

---

(१) डॉ० रामस्वामि अयर के अध्यक्ष-भाषण से—'हिन्दी-प्रचारक' १९३२।

ट्रावनकोर और मद्रास सरकार से स्कूलों में हिन्दी की अनिवार्य पढ़ाई की व्यवस्था करने की अपील करते हुए प्रस्ताव पास किया गया।

तिरुवनन्तपुरम् में—

सन् १९३२ दिसंबर में तिरुवितांकूर हिन्दी-प्रचार-सभा-शाखा के तत्वावधान में नेय्याट्टिनकरा में भी अखिल केरल हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन हुआ था। श्री. लल्लूभाई सामलदास K. T. C. I. E., J. P. ने सम्मेलन की अध्यक्षता ग्रहण की थी। श्री. रायबहादुर नारायणन् पंडालैजी का उसमें स्वागत-भाषण हुआ था।

श्रीमती लक्ष्मीकुट्टी—

नेय्याट्टिनकरा में उन दिनों श्रीमती लक्ष्मीकुट्टी प्रचार कार्य कर रही थीं। केरल के हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में पहले-पहल उतरनेवाली प्रचारिका के रूप में श्रीमती लक्ष्मीकुट्टी स्मरणीय हैं। नेय्याट्टिनकरा में हुए सम्मेलन से वहाँ के हिन्दी-प्रचार कार्य को ज़्यादा स्फूर्ति और शक्ति मिली। वहाँ सैकड़ों लोग हिन्दी की ओर आकर्षित हुए। वहाँ के कार्य की सफलता का यश श्रीमती लक्ष्मीकुट्टी को है।

पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने का प्रस्ताव—

ता० ९-८-१९३१ को तिरुवितांकूर विधान-सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव पेश हुआ—

"This Council recommends to the Government that Hindi should be made compulsory subject in all state schools."[1]

प्रस्ताव पेश करते हुए श्री ए. एस. दामोदरन् आशान (B. A; B. L.) ने हिन्दी को स्कूलों के पाठ्यक्रम में एक अनिवार्य विषय के तौर पर स्थान देने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने प्रस्ताव का विरोध किया। श्री पट्टम् ताणुपिल्लैजी ने (जो इन दिनों पंजाब के राज्यपाल हैं) प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि—"I can not support the views expressed by the Director of Public Instruction. It was said by him that the whole discussion was based on a political stand-point. But that can be no reason why this should not be carried out. There can be no doubt that the importance of Hindi will necessarily increase when political changes take place in British India. There can be no difference of opinion whatsoever as to whether such changes

(१) 'हिन्दी-प्रचारक'—अगस्त १९३१ पृष्ठ २३७।

will take place or not. There is no foundation whatsoever for the Director's statement that the Public of Travancore is not behind this demand. It is enough that this Council has proved its necessity. Again I do not think the expenditure will be so great as is feared."[1]

कई सदस्यों ने प्रस्ताव का ज़ोरदार समर्थन किया। अन्त में मत लिया गया। उसके पक्ष में २४ सदस्यों ने तथा विपक्ष में १६ सदस्यों ने मत दिये। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। हिन्दी के पक्ष में मत देनेवालों में श्री कोट्टूर कुंञिकृष्ण पिल्लै, श्री कुञित्तोम्मन, श्री पी. कृष्णपिल्लै, श्री एन. के. कृष्णपिल्लै, श्री ई. वी. कृष्णपिल्लै, श्री करुणाकरन्, श्री. के. पी. माधवन् पिल्लै, जनाब मुहम्मद मुस्तफ़ा, जनाब पी. एस. मुहम्मद, श्री एम. नारायण पिल्लै, श्री. पट्टम ताणुपिल्लै, श्री. सुन्दरम् पिल्लै, श्री. दामोदरन् आशान, श्री. डॉ० के. वी. पणिक्कर, श्री के. सी. चॉंडी, श्री के. पी. अब्रहाम, श्री जोसफ़ कुँञु आदि प्रमुख थे।

शाखा कार्यालय—ट्रिवेंड्रम्—

दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा की ट्रावनकोर शाखा का उद्घाटनोत्सव सन् १९३२ के जून महीने में भूतपूर्व चीफ़ सेक्रेटरी राय बहादुर के. नारायणन् पंडाले के करकमलों से सुसम्पन्न हुआ। उसी अवसर पर ट्रावनकोर के हिन्दी-प्रचारकों का एक सम्मेलन भी हुआ जिसके अध्यक्ष श्रीयुत् पट्टम् ताणुपिल्लै B. A., B. L., M. L. C. थे। ट्रावनकोर के २४ हिन्दी-प्रचारकों के अतिरिक्त सम्मेलन में स्थानीय बहुत से स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के प्रधान मंत्री श्री पं० हरिहर शर्मा जी भी सम्मेलन में उपस्थित थे। उन्होंने अपने भाषण में यों कहा—"करीब २० वर्ष पहले मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज श्रीयुत् वी. कृष्णस्वामी अय्यर ने मद्रास में हिन्दी-प्रचार की आवश्यकता को अनुभव किया और आपने कुछ मित्रों के साथ हिन्दी पढ़ना शुरू भी किया था। पर मद्रास में हिन्दी-प्रचार का आरंभ १९१८ में ही महात्माजी के नेतृत्व में सुसंगठित रूप में हुआ। शुरू में उत्तर भारत से श्रीयुत् जमनालालजी बजाज आदि महाशयों से धन की सहायता मिला करती थी। १९२७ से दक्षिण भारतीयों की सहायता से ही हिन्दी-प्रचार का काम चल रहा है। आगे भी उन्हीं की सहायता से हिन्दी-प्रचार का काम यहाँ जारी रखना है। अभी तक के हिन्दी-प्रचार के काम से यह मालूम पड़ता है कि दक्षिण भारतीय हिन्दी की आवश्यकता अच्छी तरह समझ गये हैं। हिन्दी-प्रचार के काम में ट्रावनकोर ने जो उत्साह दिखाया है वही इस ट्रावनकोर हिन्दी-प्रचार-सभा

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक' अगस्त १९३१ पृष्ठ २३९।

की स्थापना का कारण है। दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के 'आजीवन कार्यकर्ता' पं. देवदूत विद्यार्थी इस सभा के मंत्री नियुक्त किये गये हैं। आशा है कि आप इस ट्रावनकोर हिन्दी-प्रचार-सभा को सब तरह की सहायता पहुँचायेंगे।"[१]

रायबहादुर नारायण पंडाले ने सभा का उद्घाटन करते हुए हिन्दी और अंग्रेजी में व्याख्यान दिया। उनका व्याख्यान ज़ोरदार और भावपूर्ण था। उन्होंने हिन्दी में यों कहा—"इस विषय में बहुत बातें करने की ज़रूरत नहीं है। आप सब लोग बड़े विद्वान, बुद्धिमान और भारत की सेवा के लिए उत्सुक हैं। अतः मैं इसमें देर नहीं लगाना चाहता। आप सब लोगों की अनुमति से उद्दिष्ट शुभ कर्म करता हूँ। और ट्रावनकोर हिन्दी-प्रचार सभा का उद्घाटन करता हूँ। भगवान श्री पद्मनाभस्वामी इस शुभ कर्म को सफल बनावें।"[२] उसके बाद पं० हरिहर शर्मा प्रधान मंत्रीजी ने शाखा सभा की सलाहकारिणी समिति के सदस्यों के नाम पढ़कर सुनाये। इसके बाद प्रचारक-सम्मेलन का कार्य शुरू हुआ।

श्रीयुत् पट्टम् ताणुपिल्लै के अध्यक्ष का पद स्वीकार करने के बाद पं० देवदूतजी ने बाहर से आये हुए पं० हृषीकेश जी आदि के संदेशों को सुनाया। फिर अध्यक्ष ने अपना व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा—"सबको हिन्दी का अध्ययन करना चाहिए। लेकिन विद्यार्थियों को इसमें ज़्यादा भाग लेना चाहिए। उनके ज़रिये हिन्दी भाषा का जितनी जल्दी और आसानी से प्रचार होगा उतना और किसी से भी नहीं होगा, यह निःसन्देह है। हिन्दी-प्रचार में भी हम सबको मिलकर काम करना ही चाहिए। भारत में एक भाषा के प्रचार से यह भाव हमारे हृदय में उत्पन्न होता है कि हम भारतवासी सब आपस में भाई-भाई हैं। राष्ट्रीयता उत्पन्न होने के लिए भी एक भाषा ज़रूरी है। भारत के आधे से अधिक लोग हिन्दी जानते हैं। इसमें सरकार को भी भाग लेना चाहिए। पिछली ट्रावनकोर लेजिसलेटिव काउन्सिल में ऐसा एक प्रस्ताव पास हुआ है कि ट्रावनकोर के सभी हाईस्कूलों में हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाय। उस समय ट्रावनकोर शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने कहा कि यदि हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जायगी तो विद्यार्थियों को मुश्किल होगी। इससे कहना पड़ता है कि उनको देश की स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं मालूम है। सरकार ने ऐच्छिक रूप में हिन्दी को इस लिए स्वीकार किया है कि मातृभाषा या संस्कृत के बदले हिन्दी रख सकते हैं। हिन्दी भाषाध्ययन की ज़रूरत समझ लेने पर लोग सरकार को हिन्दी भाषा-प्रचार के लिए बाध्य करेंगे। यहाँ के हिन्दी-प्रचार के काम के लिए अभी तक अन्य प्रान्तों से रुपये मंगाकर खर्च

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक'—१९३२ जून—पृष्ठ १९२

२. 'हिन्दी-प्रचारक' जुलाई १९३२

किये गये हैं। यह हमारे लिए गर्व की बात नहीं है। इस प्रदेश के धन से ही यहाँ का काम होना चाहिए। व्यापार और राष्ट्रीयता की वृद्धि हिन्दी भाषा के प्रचार पर निर्भर है। हम दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा को हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। हम उसे कभी भी नहीं भूल सकते। अभी तक प्रचार करने के लिए हमें जितना धन्यवाद उसको देना चाहिए उससे अधिक हमें उसको सहायता पहुँचानी चाहिए। यह हर्ष की बात है कि देवियाँ भी इसमें भाग लेने लगी हैं। एक देवी का हिन्दी सीखना दस पुरुषों के हिन्दी सीखने के बराबर है। वे अपनी संतानों को भी सिखाएँगी।''[1]

ट्रावनकोर रियासत समिति—

ट्रावनकोर रियासत में हिन्दी प्रचार कार्य को संगठित व विस्तृत करने के वास्ते ट्रावनकोर हरिजन-सेवक-संघ के मंत्री तथा हिन्दी-प्रेमी श्री जी. रामचन्द्रन् जी के उद्यम से 'ट्रावनकोर रियासत समिति' की स्थापना हुई थी। सभा द्वारा रियासत भर के कई प्रमुख हिन्दी प्रेमी इस समिति के सदस्य मनोनीत किये गये थे। श्री रावबहादुर ए. वेंकटराम अय्यर (भूतपूर्व-जज, हाईकोर्ट, ट्रिवेण्ड्रम्) इस समिति के अध्यक्ष रहे। नीचे लिखे सज्जन कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे—

श्री रावबहादुर ए. वेंकटराम अय्यर—अध्यक्ष
" रावबहादुर नारायण पण्डाले } —उपाध्यक्ष
" चंगनाशेरी परमेश्वरन् पिल्ले }
" जी. रामचन्द्रन्—मंत्री
" एम. गोविन्दन् नायर—कोषाध्यक्ष
श्रीमती सारा पोत्तन
" दामोदर आशान
" एन. के कृष्ण पिल्ले
" डेविड़ वी. जार्ज

नगर में हिन्दी प्रचार कार्य करने के लिए श्री शंकरानन्द तथा और पाँच सहायक प्रचारक नियुक्त हुए थे। समिति की ओर से नगर में एक पुस्तकालय भी खुला था।

श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति का भाषण—

हिन्दी-प्रचार-सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन ता० ३-१२-१९३९ रविवार को विक्टोरिया टाउन हॉल, ट्रिवेंड्रम् में श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति, डेपुटी स्पीकर, मद्रास लेजिसलेटिव एसेम्बली की अध्यक्षता में हुआ था। मलयालम् के सुविख्यात

(१) 'हिन्दी-प्रचारक' १९३२

महाकवि उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर एम. ए., बी. एल. अध्यक्ष स्वागत-समिति ने स्वागत भाषण दिया।

सर सी. पी. रामस्वामी अय्यर ने सम्मेलन की सफलता चाहते हुए एक सन्देश भेजा था। सन्देश में आपने हिन्दी के महत्व पर ज़ोर दिया था। उनके विचार कितने मार्के के हैं, यह बात सबको विदित है। सन्देश यों था—

"इसमें सन्देह नहीं कि दक्षिणवासियों को, उत्तर भारतीयों से जो करीब सबके सब हिन्दी समझते हैं, आज़ादी के साथ बातें करने के लिए समर्थ बनाने में अखिल भारतीय दृष्टि से हिन्दी का ज्ञान अत्यन्त सहायक होगा। राष्ट्रीय एकीकरण और एकता के लिए हिन्दी-प्रचार की अभिवृद्धि करना बहुत महत्वपूर्ण कार्य है।"

अध्यक्ष-भाषण में भी श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपतिजी ने भारत के सांस्कृतिक समन्वय में हिन्दी कहाँ तक सहायक होगी, इसी पर ज़ोर दिया। केरलीय जनता के हिन्दी-प्रेम पर भी उन्होंने संतोष प्रकट किया था। आपके भाषण के उद्धरण से पाठक समझ सकते हैं कि श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति के विचार हिन्दी के विषय में कितने उज्वल और दूरदर्शितापूर्वक थे। उन्होंने अपने भाषण में यों कहा—"हिन्दी प्रचार, शिक्षण व सांस्कृतिक आन्दोलन है; यद्यपि सांस्कृतिक दृष्टि से उसकी ज़्यादा प्रधानता है। हिन्दी-प्रचार के उद्देश्यों में जहाँ तक मैं समझती हूँ, हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिलाकर एक भारतीय संस्कृति का निर्माण करना भी एक है। यही संस्कृति भारत की भावी संस्कृति होगी और यही सांप्रदायिक झगड़ों को मिटा सकेगी। यद्यपि इस वक्त भारत में धार्मिक, सांप्रदायिक व सांस्कृतिक विभिन्नताएँ काफी मात्रा में हैं, फिर भी भारत एक राष्ट्र है और उसके विभिन्न हिस्से अपने अस्तित्व, भाषा या जाति को खोये बिना एक राष्ट्र में समा सकते हैं और राष्ट्रीय कार्य के लिये एक राष्ट्रभाषा से काम ले सकते हैं। "नियम-बद्ध प्रजातंत्र के लिए एक राष्ट्रभाषा की ज़रूरत है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र के भिन्न-भिन्न भाग के लोगों को नज़दीक लाती है और उनमें एकता का भाव पैदा करती है।"

मद्रास के 'हिन्दी-विरोधी आन्दोलन' की निरर्थकता पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा—

"फिर आप पूछ सकते हैं कि 'हिन्दी-विरोधी आन्दोलन' का क्या मतलब है। आखिर अनिवार्य हिन्दी व ऐच्छिक हिन्दी में कोई फरक नहीं है जब कि यह मान लिया जाता है कि राष्ट्रीय उन्नति के लिए हमें राष्ट्रभाषा की ज़रूरत है। हाँ, जब तक थोड़ा-बहुत दबाव न डाला जाय तब तक इसका प्रचार जल्दी नहीं हो सकता। हमारा देश राजनीति की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है, और यहाँ पर अच्छी बातें भी कानून की सहायता के बिना सिखाई नहीं जा सकतीं। इसी को ध्यान में रखकर मद्रास सरकार ने स्कूलों में हिन्दुस्तानी पढ़ाने की आज्ञा निकाली।

"मद्रास की धारा-सभा में श्री कुमार राजा मुत्तय्या चेट्टियार ने कहा कि हिन्दी का विरोध राजनैतिक कारणों से नहीं किया जा रहा है। विरोध इसलिये किया जा रहा है कि लड़कों पर यह बोझ होगा। लेकिन देखिये, जब काँग्रेसी सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया तब उनके दल वालों ने यह घोषित किया कि चूँकि अब सरकार बदल गयी है, इसलिये हिन्दी-विरोधी-आन्दोलन बन्द किया जायगा। इससे आप आसानी से समझ सकते हैं कि उनका सच्चा उद्देश्य क्या है।"

केरल के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन की सफलता देखते हुए आपने इस बात की बड़ी खुशी ज़ाहिर की कि केरल में हिन्दी का विरोध नहीं है। ट्रावनकोर के महाराजा और महारानी के हिन्दी-प्रेम पर भी आपने प्रसन्नता प्रकट की। आपने यों कहा—

"यह बड़ी खुशी की बात है कि केरल प्रान्त हिन्दी-प्रचार के काम में अग्रसर रहता है। इसका बहुत कुछ श्रेय केरल प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार-सभा तथा उसके उत्साही कार्यकर्त्ताओं को देना चाहिए। केरल की जनता का सहयोग बहुत प्रशंसनीय है। केरल के लोगों ने हिन्दी-प्रचार के उद्देश्य व अर्थ को अच्छी तरह समझ लिया है। इसीलिये दक्षिण भारत में केरल का प्रमुख स्थान है। यहाँ बड़ी संख्याओं में परीक्षार्थी हिन्दी-परीक्षाओं में बैठे हैं और बड़ी संख्या में हिन्दी सीख रहे हैं। केरल के युवकों और युवतियों ने हिन्दी के संदेश को फैलाना अपना धर्म मान लिया है। आप लोगों ने मद्रास सरकार के प्रयत्नों का स्वागत किया है और मलबार व ट्रावनकोर में इंटर और बी. ए. के वर्गों में कई विद्यार्थियों ने हिन्दी ली है। इस सफलता पर मैं केरल को हार्दिक बधाई देती हूँ। ट्रावनकोर की जनता ने हिन्दी को विशेष रूप से अपनाया है। इससे यह बात मालूम हो सकती है कि ट्रावनकोर रियासत ने सबसे ज़्यादा परीक्षार्थियों को हिन्दी परीक्षाओं में बिठाया है। ट्रावनकोर के महाराजा व महारानी ने भी हिन्दी को बहुत प्रोत्साहन दिया है।"

श्री के. सन्तानम् का भाषण—

सन् १९४० जनवरी में हिन्दी-प्रचार-सम्मेलन के सिलसिले में तिरुवनन्तपुरम् में तीसरा अखिल केरल-हिन्दी-अध्यापक-सम्मेलन हुआ था। उसके अध्यक्ष मद्रास के सुप्रसिद्ध नेता श्री के. सन्तानम् थे। आपने भी अपने भाषण में राष्ट्रनिर्माण एवं सांस्कृतिक समन्वय के कार्यों में एक राष्ट्रभाषा का स्थान बनाते हुए मद्रास के हिन्दी-विरोधी-आन्दोलन की क्षुद्रता पर प्रकाश डाला। आपने कहा—

"आज से हज़ारों वर्ष पहले जो लोग आपके देश में संस्कृत भाषा लाये थे, अगर उनसे यह पूछा गया हो कि क्या आपका उद्देश्य सिर्फ एक राष्ट्रभाषा स्थापित करना था तो वे बहुत नाराज़ हुए होंगे। संस्कृत को यहाँ लाने में उनकी एक विशेष दृष्टि थी। उनका उद्देश्य था, एक नयी संस्कृति कायम करना, जीवन में एक

महान् परिवर्तन करना। वे कहाँ तक इसमें सफल हुए या विफल, इसका विचार इस वक्त करना मेरा उद्देश्य नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि आज संस्कृत की आत्मा भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस प्रान्त में अधिक घुसी हुई है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी-प्रचार आधुनिक भारतवर्ष के सबसे बड़े दूरदर्शी महात्मा गाँधीजी का निर्धारित एक कार्यक्रम है। भारतवर्ष में नयी जान फूँकना और उसमें नयी संस्कृति कायम करना इस आन्दोलन का उद्देश्य है। तमिल प्रान्त में कुछ संकुचित विचार के लोग कह रहे हैं कि हिन्दी पढ़ने से तमिल को हानि पहुँचेगी। ऐसा कहना तमिल भाषा का फिज़ूल अपमान करना है।"[1]

प्रमुख प्रचारक—

सन् १९३० के बाद ट्रावनकोर के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने वाले अन्य प्रमुख प्रचारकों में सर्वश्री पी. ए. बावा, एम. के. गोविन्दन् उण्णि, पी. जी. वासुदेव, वैकम रामन् पिल्लै, सी. जी. एब्रहाम, सी. एन. पद्मनाभन्, ए. एन. राघवन् नायर, अभयदेव, डा० भास्करन् नायर, चेल्लप्पन् नायर, डा० एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, पी. जे. जौसफ़, के. कुमार, के. राघवन् नायर, पद्मनाभ पिल्लै, पी. रामन् नायर, पाप्पी देवी, पोन्नम्मा देवी, कोच्चम्मालु देवी, वेलप्पन नायर, श्रीधरन् पिल्लै, उण्णित्तान, ए. जी. कुट्टन पिल्लै, एम. पी. माधव कुरुप, वी. कृष्ण दास, सुधेशन् नायर, श्रीधर कुरुप, राघवन् पिल्लै, पांडु पिल्लै, केशव पिल्लै, सेबास्त्यन्, एन. पी. चन्द्रशेखरन् नायर. जनार्दनन् पिल्लै, एम. आर. कृष्णन् नायर, टी. वी. थामस, रामन् नायर, गौरी अम्मा, वासुदेवन् नायर आदि प्रथमगणनीय हैं। आज उनमें कई एक स्कूल-कालेजों में हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं और कई स्वतंत्र रूप से हिन्दी-प्रचार कर रहे हैं। हिन्दी-प्रचार को अपने जीवन का ध्येय मानकर राष्ट्र-सेवा के मार्ग पर अग्रसर रहनेवाले इन कर्मनिष्ठ कार्यकर्ताओं की सेवाएँ यहाँ जन-हृदय में हिन्दी को स्थान दिलाने में अत्यन्त सहायक हुई हैं।

स्वतंत्र विद्यालयों की सेवा—

सन् १९४० के बाद ट्रावनकोर में कई स्वतंत्र विद्यालय स्थापित हुए। उन विद्यालयों में आज भी हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी हिन्दी की शिक्षा पा रहे हैं।

केरल के हिन्दी-प्रचार की अभिवृद्धि में इन हिन्दी-महाविद्यालयों की सेवाएँ सबसे अधिक प्रभावशाली रही हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में आज केवल ये ही संस्थाएँ प्रमुख रूप से हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में योगदान देती रहती हैं। इनमें इने-गिने विद्यालयों को कुछ वर्ष पहले अल्पमात्रा में सरकारी अनुदान प्राप्त हुआ है। हिन्दी-

---

१. 'हिन्दी-प्रचारक'—१९४० जनवरी।

प्रचार सभा से परीक्षा-अनुदान के रूप में इनमें अधिकांश विद्यालयों को छमाही आर्थिक सहायता भी परीक्षार्थियों की संख्या के अनुसार प्राप्त होती रहती है। केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता पाने के लिए इन विद्यालयों के संचालकों का निरन्तर प्रयत्न होता रहता है। लेकिन अभी तक सरकार की कृपादृष्टि इन विद्यालयों पर नहीं पड़ी है। फिर भी इनमें कार्य करनेवाले हिन्दी प्रचारक हताश नहीं हुए हैं। वे अपनी दीन स्थिति में भी हिन्दी के प्रचार में अपना पूरा समय और पूरी शक्ति लगा रहे हैं। इन संस्थाओं को चलाने वाले राष्ट्रसेवी हिन्दी प्रचारकों की सेवाएँ अभिनन्दनीय हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों विद्यार्थियों को विभिन्न हिन्दी परीक्षाओं के लिए तैयार करने वाले केरल के निम्नलिखित हिन्दी महाविद्यालय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

	विद्यालय के नाम—	स्थान—	कार्यकर्त्ता
१.	ए. डी. एन. विद्यालय	ट्रिचूर	
२.	महिला सदन	आलुवा	
३.	जवाहर हिन्दी विद्यालय—	मट्टांचेरी	
४.	रत्ना हिन्दी विद्यालय	एरनाकुलम्	
५.	हिन्दी महाविद्यालय	तृप्पूणित्तुरा	
६.	महात्मा हिन्दी विद्यालय—	आलप्पुषा	श्री. रविवर्मा
७.	बापूजी हिन्दी विद्यालय	,,	भास्करन् पिल्लै
८.	आज़ाद हिन्दी विद्यालय	,,	के. जी. नायर
९.	हिन्दी महाविद्यालय	हरिप्पाड	के. जी. कुट्टन पिल्लै
१०.	हिन्दी महाविद्यालय	कीरिक्काड्	के. एस. राघवन् पिल्लै
११.	हिन्दी विद्यालय	चौव्वा	वी. गोपालन्
१२.	हिन्दी विद्यालय	,,	मुकुन्दन्
१३.	हिन्दी विद्यालय	कन्ननोर	कृष्णन् नंबियार
१४.	हिन्दी विद्यालय	कतिरूर	एन. कुंजिरामन्
१५.	हिन्दी-विद्यालय	,,	एन. कुंञप्पा
१६.	हिन्दी-विद्यालय	कोषिक्कोड्	वी. कृष्ण कुरुप
१७.	हिन्दी-महाविद्यालय, तली	कोषिक्कोड्	वी. राघवन्
१८.	हिन्दी विद्यालय	कोल्लम	वेलप्पन् नायर
१९.	हिन्दी महाविद्यालय	,,	एन. के. उण्णित्तान्
२०.	विशारद विद्यालय	नीलेश्वर	
२१.	हिन्दी-भवन	कन्ननूर	

	विद्यालय के नाम	स्थान	कार्यकर्त्ता
२२.	हिन्दी महाविद्यालय	पय्यन्नूर	
२३.	नारायणन् नायर स्मारक विद्यालय	टेलिचेरी	पी. पी. अप्पु
२४.	हिन्दी महाविद्यालय	"	के. पी. गोपालन्
२५.	हिन्दी विद्यालय	"	दामोदरन् नंपियार
२६.	हिन्दी महाविद्यालय	षोरनूर	
२७.	हिन्दी महाविद्यालय	ओट्टप्पालम्	वारियर
२८.	हिन्दी महाविद्यालय	पालघाट	ए. वासुमेनोन
२९.	हिन्दी महाविद्यालय	आलत्तूर	
३०.	बापूजी हिन्दी विद्यालय	आट्टिंगल	के. केशवन् नायर
३१.	हिन्दी महाविद्यालय	आरनमुला	टी. वी. थामस
३२.	महात्मा हिन्दी विद्यालय	कोषंचेरी	गौरी अम्मा
३३.	हिन्दी महाविद्यालय	रान्नी	रामन् नायर
३४.	सर्वोदय हिन्दी विद्यालय—	तिरुवल्ला—	वी. के. एस. नंपूतिरी
३५.	'निराला' हिन्दी महाविद्यालय—	तिरुवनन्तपुरम्—	बालसुब्रह्मण्यम्
३६.	राजेश्वरी हिन्दी विद्यालय	"	श्रीधरन् नायर
३७.	कार्तिकेय हिन्दी विद्यालय	"	पणिक्कर
३८.	राष्ट्रभाषा मन्दिर	"	जोसफ़
३९.	आज़ाद हिन्दी विद्यालय—	करमना— (तिरुवनन्तपुरम्)	श्री. के. एस. कुमारन्
४०.	हिन्दी महाविद्यालय	पुनलूर —	रिची
४१.	हिन्दी-महाविद्यालय	चेंगनूर	थामस
४२.	दामोदरन् उण्णि हिन्दी विद्यालय	एट्टुमानूर	
४३.	हिन्दी महाविद्यालय	"	कुट्टनपिल्लै

मलबार के पुराने प्रचारक—

मलबार के प्रमुख केन्द्रों में सन् १९३० से प्रचार कार्य तीव्रगति से होने लगा। उन दिनों वहाँ कार्य करनेवालों में निम्नलिखित प्रचारक प्रमुख रहे। इनमें कुछ लोग सभा की अवैतनिक सेवा में ही रहे थे।

			केन्द्र
श्री.	गोवर्धनदास शास्त्री	...	कालीकट
"	पी. के. नारायणन् नायर	...	"
"	सी. आर. नाणप्पा	...	"

श्री			केन्द्र
,,	पी. के केशवन् नायर	...	टेलिचेरी
,,	पी. वी. नारायणन् नायर	...	,,
,,	कृष्णन नंपियर	...	,,
,,	पी. सी. कोरन्	...	कन्ननोर
,,	सी. एन. गोविन्दन्	...	,,
,,	वी. गोविन्दन् नंपीशन्	...	पय्यन्नूर
,,	एन. वेंकिटेश्वरन्	...	बड़गरा
,,	कुंञ्जिकृष्ण कुरुप	...	,,
,,	सी. जी. गोपालकृष्णन्	...	पालघाट
,,	ए. वासुमेनोन्	...	,,
,,	टी. बालकृष्णन् नायर	...	,,
,,	के. बालकृष्णन् नायर	...	,,
,,	इट्टिरारश्शन् नायर	...	,,
,,	वी. नारायण मेनोन	...	ओट्टप्पालम्
,,	दामोदर मेनोन	...	,,
,,	के. वासुअच्चन	...	आलत्तूर
,,	सी. आर. रामकुरुप	...	कतिरूर
,,	वी. शंकरन्	...	पेरिन्तलमण्णा
,,	पी. सी. परमेश्वरन्	...	,,
,,	बालकृष्ण मेनोन	...	अकत्तेत्तरा

सन् १९३८ के बाद मलाबार के सैकड़ों केन्द्रों में बड़ी तीव्र गति से प्रचार-कार्य होने लगा। आज सभा के अधीन कार्य करनेवाले सहायक प्रचारक सैकड़ों की तादाद में हैं।

केरल हिन्दी-प्रचार सभा-तिरुवनन्तपुरम्—

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा की केरल प्रान्तीय कार्यालय के तत्वावधान में तिरुवितांकोर के हिन्दी-प्रचार कार्यों का संचालन तिरुवितांकोर हिन्दी प्रचार सभा कर रही थी। श्री के. वासुदेवन् पिल्लैजी सभा के संचालक थे। तिरुवनन्तपुरम् में केन्द्र कार्यालय स्थापित कर वे केरल के इस प्रदेश भर में हिन्दी-प्रचार कार्य सुचारु रूप से चलाते थे। ई० सन् १९४८ तक भाषा-नीति जैसी इतरेतर भिन्न विचारों के कारण श्री पिल्लैजी ने अपना सम्बन्ध केन्द्र सभा से तोड़ लिया और तब से यह प्रादेशिक सभा स्वतन्त्र रूप से कार्यभार संभालने लगी। उस समय श्री अच्युत मेनन सभा के

अध्यक्ष रहे। थोड़े दिनों में तिरुवितांकूर के भिन्न-भिन्न केन्द्रों में इस सभा की शाखाएँ खुलीं जिनके अधीन कई प्रचारक हिन्दी प्रचार में लग गये। सभा ने तभी से स्वतन्त्र रूप से कुछ प्रारम्भिक परीक्षाएँ चलाने की भी आयोजना बनायी थी, अतः उन प्रचारकों से संचालित विद्यालयों में हजारों की संख्या में उन परीक्षाओं के पाठ्यक्रम के अनुसार लोगों ने शिक्षा पायी और 'हिन्दी प्रथम', 'हिन्दी दूसरी', 'हिन्दी राष्ट्रभाषा' जैसी परीक्षाएँ पास कीं। थोड़े ही वर्षों में इस सभा की परीक्षायें लोकप्रिय बनीं। प्रतिवर्ष इन परीक्षार्थियों की संख्या और बढ़ती गयी तो 'हिन्दी-प्रवेश', 'भूषण' जैसी उच्च परीक्षाएँ चलाने की भी व्यवस्था हो गयी। केरल में हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को भी सुव्यवस्थित रूप देने की दिशा में इस सभा की सेवायें अनुपम रही हैं।

दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा की (मध्यकालीन) हिन्दुस्तानी नीति से श्री वासुदेवन् पिल्लै जी सन्तुष्ट नहीं थे। साहित्य सम्मेलन की भाषा-नीति अपनाकर वे संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षपाती रहे। अतएव उन्होंने उक्त परीक्षाओं की आयोजना बनायी थी, ताकि पाठ्यक्रम में 'शुद्ध हिन्दी' की पुस्तकों को ही प्रधानता दी जाय। ऐसी हिन्दी का प्रचार बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने तिरुवनन्तपुरम् में एक केन्द्रीय विद्यालय की भी स्थापना की जो अब भी चालू है। वहाँ सभा की उक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त साहित्य सम्मेलन की मध्यमा (सा० विशारद), उत्तमा (साहित्यरत्न) मद्रास तथा स्थानीय विश्वविद्यालयों की विद्वान आदि परीक्षाओं के लिए भी पढ़ाई की व्यवस्था की गयी है।

इस सभा की परीक्षाओं में 'भूषण' उच्च उपाधि परीक्षा है। इस उपाधि को केरल विश्वविद्यालय तथा केरल के शिक्षा विभाग और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की मान्यता प्राप्त है। यह दक्षिण भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा राष्ट्रभाषा विशारद की समकक्ष है। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की मान्यता तो सभी परीक्षाओं को प्राप्त है ही। इन परीक्षाओं में प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी शामिल होते हैं। फरवरी १९६१ तक विभिन्न परीक्षाओं में बैठे विद्यार्थियों का आँकड़ा निम्नलिखित प्रकार है—

हिन्दी	प्रथम	१५०३१
"	दूसरी	९९५६
"	राष्ट्रभाषा	५३४१
"	प्रवेश	३६८०
"	भूषण	४१६२

हर साल सभा उपाधिदान-समारोह का भी आयोजन करती है। प्रथम दीक्षान्त सम्मेलन ट्रावनकोर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री नन्दन मेनन की अध्यक्षता में

सम्पन्न हुआ जब तत्कालीन ट्रावन्कोर-कोच्चिन के मन्त्री श्री टी. के. नारायण पिल्लैजी ने दीक्षान्त भाषण दिया था। उसके बाद समारोहों में श्री यू. एन. ढेबर, डॉ० सम्पूर्णानन्द, श्री पट्टम ताणुपिल्लै जैसे देश के महान् नेताओं के दीक्षान्त भाषण हुए हैं।

सभा का एक प्रकाशन विभाग है जिसकी ओर से प्रारम्भिक परीक्षा की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। कुछ काल पहले 'राष्ट्रवाणी' नामक हिन्दी-मलयालम्-तमिल त्रैभाषिक साप्ताहिकपत्र का प्रकाशन भी होता रहा जो आर्थिक कठिनाई की वजह से बन्द हो गया। सभा को केरल सरकार की ओर से १०००) का अनुदान प्राप्त हुआ है। पिछले वर्ष (१९६१) केन्द्र सरकार ने दस हज़ार रुपये का अनुदान दिया था जिससे सभा ने एक अच्छा वाचनालय और पुस्तकालय खोले हैं। सन् १९६१ में सभा ने केन्द्र सरकार की देखरेख में 'अखिल भारतीय हिन्दी अध्यापक सेमिनार' प्रभावशाली ढंग से चलाया जिसमें डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० प्रेमनारायण टण्डन, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे सुविख्यात साहित्यकारों ने भाग लिया था।

श्री. स्व के. वासुदेवन् पिल्लै—

श्री वासुदेवन् पिल्लैजी केरल के पुराने सुयोग्य प्रचारकों में गिने जाते हैं। सन् १९२८ से लेकर केरल में विशेषतः ट्रावनकोर के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को मज़बूत और चिरस्थायी बनाने में उनका योगदान उत्कृष्ट रहा है। ट्रावनकोर हिन्दी प्रचार सभा (जो आज केरल हिन्दी प्रचार सभा के नाम से विदित है) श्री वासुदेवन् पिल्लैजी का कीर्ति स्तंभ है। उक्त संस्था के वे स्थापक ही नहीं, बल्कि प्राण भी थे। तिरुवितांकोर की राजधानी ट्रिवेंड्रम को मुख्य केन्द्र बनाकर करीब ३४ वर्षों तक हिन्दी के प्रचार में निरन्तर लगे रहनेवाले, उनके जैसे त्यागनिष्ठ, निस्वार्थ कार्यकर्ता इस क्षेत्र में विरले ही मिलेंगे। आज तिरुवितांकोर में 'वासुदेवन् पिल्लै' का नाम 'आदर्श हिन्दी प्रचारक' का पर्यायवाची शब्द बन गया है। हिन्दी को आज ट्रावनकोर के सार्वजनिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में जो स्थान उपलब्ध हुआ है, वह श्री वासुदेवन् पिल्लै जी की निस्वार्थ सेवा का फल है। केरल के हिन्दी प्रचार के आन्दोलन के इतिहास में उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

प्रगति के पथ पर—

सन् १९६१ में ही ट्रावनकोर हिन्दी प्रचार सभा ने अपना नाम 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' रखा। सभा के वर्तमान अध्यक्ष 'ट्रावनकोर यूनिवर्सिटी' के भूतपूर्व प्रो. वाइसचान्सेलर श्री पी. आर. परमेश्वर-पणिक्कर हैं। केरल यूनिवर्सिटी-कालेज के हिन्दी

विभाग के अध्यक्ष डॉ. के. भास्करन् नायर सभा के उपाध्यक्ष हैं। सभा की परीक्षाओं को सरकार से मान्यता दिलाने की सफलता का श्रेय श्री डॉ. भास्करन् नायर को है। आप पुराने अनुभवी हिन्दी सेवी हैं। हिन्दी की सेवा में आपका योगदान अत्यन्त महत्व का है। आज केरल हिन्दी प्रचार सभा विकासोन्मुख है। उसके स्थापक श्री वासुदेवन् पिल्लैजी की आकस्मिक मृत्यु से सभा को बड़ी क्षति पहुँची है। उसकी पूर्ति करना कठिन है। फिर भी श्री पणिक्कर तथा श्री भास्करन् नायर के नेतृत्व में सभा अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। श्रीमती सरोजिनी देवी (श्री वासुदेवन् पिल्लैजी की धर्मपत्नी) भी अपने स्व. पति के पथ का अनुसरण कर रही हैं। आप यूनिवर्सिटी के महिला-कालेज में हिन्दी की प्राध्यापिका हैं। हिन्दी के प्रचार में पहले ही से आप योगदान देती रही हैं। इन दिनों आप गौरव मंत्रिणी के पद पर सभा के संचालन-कार्य में विशेष सहायता पहुँचा रही हैं।

सच्चे सहयोगी—

स्व. श्री वासुदेवन् पिल्लैजी के सच्चे अनुयायी तथा उनके सहयोगी कार्यकर्ताओं में कई ऐसे हैं जो केरल हिन्दी प्रचार सभा की प्रगति में सहायता पहुँचाते रहते हैं। श्री कुञ्ञिलिया, श्री जयपालन्, श्री बालकृष्ण पिल्लै, श्री कृष्णन कुट्टी, श्री पी. जे. जोसफ़ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सभा के वैतनिक कार्यकर्ताओं में श्री वेलायुधन् नायर तथा श्री के. एस. कुमारन् प्रथमगणनीय व्यक्ति हैं जिनकी कार्यकुशलता से प्रचार, संगठन, परीक्षा-व्यवस्था आदि के कार्यों में सभा को सफलता प्राप्त हुई है। सैकड़ों स्वतंत्र प्रचारक आज विभिन्न केन्द्रों में सभा की परीक्षाओं के लिए विद्यार्थियों को तैयार कर रहे हैं। संस्था के क्रमगत विकास में उन सब का योगदान भी महत्व का रहता है। केरल के पुराने अनुभवी कार्यकर्ता श्रीमती तंकम्मा मलिक भी सभा के संगठन के कार्यों में सहायता पहुँचाते रहे हैं।

केरल सरकार और हिन्दी—

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में केरल सरकार की नीति अत्यंत उदार रही है। राज्य पुनर्गठन के पूर्व ही कोच्चिन और ट्रावनकोर रियासतों की सरकारों ने हिन्दी को हाइस्कूलों तथा कालेजों के पाठ्यक्रम में समुचित स्थान देने की ओर विशेष ध्यान दिया था। सन् १९२८ में कोच्चिन और सन् १९३१-३२ में ट्रावनकोर की धारा-सभाओं में हिन्दी को स्कूलों का पाठ्यविषय बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। इसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है।

सन् १९५२ में 'तिरु-कोच्चि' सरकार ने स्कूलों की हिन्दी-पढ़ाई का निरीक्षण करने और राज्य भर के हिन्दी-प्रचार संबन्धी कार्यों में प्रगति लाने के उद्देश्य से एक 'हिन्दी विशेष अधिकारी' को नियुक्त किया। हिन्दी-प्रचार-सभा के पुराने अनुभवी कार्यकर्ता श्री चन्द्रहासन् ही, जो उस समय महाराजा-कालेज, एरनाकुलम् के भाषा-विभाग के अध्यक्ष थे सर्वप्रथम हिन्दी विशेष अधिकारी के पद पर नियुक्त हुए। तीन वर्ष के बाद श्री चन्द्रहासन् पुनः कालेज के काम पर चले गये। फिर सन् १९५७ तक हिन्दी विशेष-अधिकारी के रिक्त स्थान की पूर्ति नहीं हुई। परन्तु इस बीच में सन् १९५६ में सरकार ने केन्द्रीय सरकार के अनुदान की सहायता से एक हिन्दी प्रोपगेंडा अफ़सर को नियुक्त किया। श्री के. जी. के. नायर आज केरल में प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक विद्यार्थी हिन्दी लेकर एस. एस. एल. सी. परीक्षा में बैठा करते हैं। कालेजों में भी हज़ारों विद्यार्थी प्रतिवर्ष B.A, B.sc. के पार्ट II में हिन्दी की परीक्षा दिया करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अहिन्दी प्रदेशों में केरल ही एक ऐसा राज्य है जहाँ इतनी अधिक संख्या में विद्यार्थी हिन्दी का अध्ययन करते हैं। केरल सरकार के शिक्षा-विभाग तथा केरल विश्वविद्यालय के अधीनस्थ स्कूल-कालेजों में हिन्दी पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या चार हज़ार से ऊपर है।

पुस्तकालय व वाचनालय—

केरल के स्कूलों तथा कालेजों में हिन्दी-पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित हैं। केरल-विश्वविद्यालय तथा केरल विश्वविद्यालय-कालेज के लिए अलग-अलग हिन्दी पुस्तकालय हैं जिनमें हज़ारों की संख्या में हिन्दी की पुस्तकें संग्रहीत हैं। केरल राज्य के हज़ारों स्वतंत्र सार्वजनिक पुस्तकालयों व वाचनालयों में भी सरकार के अनुदान से हिन्दी-पुस्तकों का अलग विभाग खोला गया है। हिन्दी के विकास में इन पुस्तकालयों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

१९५७ में केरल में कम्यूनिस्ट मंत्री-मंडल कायम हुआ। उसके मुख्यमंत्री श्री ई० एम० एस० नंपूतिरिप्पाड़ हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे। उन्होंने पुनः हिन्दी विशेष अधिकारी के स्थान पर श्री पी० के० केशवन् नायर (लेखक) को नियुक्त किया। साथ ही साथ एक हिन्दी सलाहकारिणी समिति भी बनायी गयी। श्री नंपूतिरिप्पाड़ ने दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, केरल सभा, केरल शाखा को सरकारी अनुदान के रूप में प्रतिमास २५०) दिलाने की कृपा की। तब तक, वर्षों से ट्रावनकोर के भूतपूर्व दीवान डॉ० सी० पी० रामस्वामी अय्यर की कृपा से सभा को प्रतिवर्ष १००) का अनुदान प्राप्त होता रहा। सन् १९६० में जब श्री केशवन् नायर व्यक्तिगत असुविधाओं के कारण विशेष अधिकारी के पद से

निवृत्त होकर कालेज के अपने पूर्व पद पर कार्य में लग गये तो उनके स्थान पर तत्कालीन काँग्रेसी सरकार ने यूनिवर्सिटी कालेज के एक सुयोग्य हिन्दी प्राध्यापक श्री के० एस० मणि को हिन्दी विशेषाधिकारी के पद पर नियुक्त किया। इन दिनों, वे ही उस पद पर सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

उपर्युक्त बातों से यह बात व्यक्त हो सकती है कि केरल सरकार हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सदा-सर्वदा तत्पर रहती आयी है। इस विषय में अन्य प्रदेशों के लिए केरल राज्य सर्वथा आदर्शरूप रहा है।

प्रकरण १८

कर्नाटक में हिन्दी प्रचार

कन्नड़ भाषा—

जनश्रुति के अनुसार दक्षिण भारत की भाषाएँ पंचद्राविड़ भाषाएँ कहलाती हैं। ये पाँच भाषाएँ हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम् तथा तुलु। प्रथम चारों भाषाएँ समृद्ध साहित्यिक हैं, जिनकी अपनी अपनी लिपियाँ हैं। कुछ ग्राम्य गीतों के अतिरिक्त न तुलु का कोई साहित्य है न उसकी अलग लिपि है। वह कन्नड़ की एक बोली है जो दक्षिण कन्नड़ के अधिकांश प्रदेश में बोली जाती है।

कोडगु, तोड़, कोट और बड़ग भी कन्नड़ की अन्य बोलियाँ हैं। कोडगु, तुलु के निकट है, वह कुर्ग में बोली जाती है। तोड़, कोट और बड़ग ये बोलियाँ हैं। कुर्ग वर्तमान मैसूर का छोटा जिला है। तोड़, कोट और बड़ग ये बोलियाँ नीलगिरि की तीन अलग-अलग पहाड़ी जातियों में बोली जाती हैं, जो अविकसित हैं। नीलगिरि मद्रास के अन्तर्गत है।

कन्नड़, कर्नाट तथा कर्नाटक ये तीनों शब्द अति प्राचीन ग्रन्थों में समानार्थवाची हैं। कन्नड़ भाषा महाभारत, रामायणकाल में भी बोली जाती थी, लेकिन ईसा के पूर्व का कन्नड़-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। कर्नाटक में अब तक प्राप्त शिला-लेखों में बेलूर के पास हल्मिड़ि नामक गाँव में प्राप्त शिला-लेख में कन्नड़ के गद्य का सर्वप्रथम रूप उपलब्ध है। यह सन् ४५० ई. में लिखा माना जाता है। यद्यपि ईसा की सातवीं सदी के पूर्व ही गद्य-रचना होती थी, तो भी नवीं सदी के पहले का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता है। सब से प्राचीन ग्रन्थ "कविराज मार्ग" है। यह रीति-ग्रन्थ है जो दंडी के 'काव्यादर्श' पर आधारित है। इसका रचनाकाल ८१५-८७७ के बीच में है।

कन्नड़ और कर्नाटक शब्दों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद है। कन्नड़ में 'नाडु' का अर्थ "देश" है। कर्नाटक शब्द 'करु-नाडु' से बना है। यही कुछ विद्वानों का मत है। करु-नाडु का अर्थ काली मिट्टी का देश है। कुछ वैयाकरणों का मत है कि कन्नड़ शब्द 'कर्नाटक' का तद्भव रूप है। कुछों की राय है—कम्पितु-नाडु अर्थात् सुगन्धित देश से कन्नाडु और कन्नाडु से कन्नड़ बना है। कर्नाटक में चन्दन खूब होता है। अतः सम्भव है, ऐसा नाम पड़ा हो।

लिपि—

कन्नड़ और तेलुगु की लिपियाँ करीब-करीब समान हैं। यह बनावट में देवनागरी से भिन्न है; किन्तु ध्वनि-समूह में अधिक अन्तर नहीं है। इसका प्राचीन साहित्य समुन्नत है।

आधुनिक युग में एक नवीन, सामाजिक, सांस्कृतिक जागृति हुई है। १९२० के बाद साहित्य का विकासकाल है। साहित्य की विविध शाखायें आज विकासोन्मुख हैं।

हिन्दी प्रचार का आरंभ—

सन् १९२३ में जब काकिनाड़ा में काँग्रेस का विराट् सम्मेलन हुआ तब उसके सिलसिले में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का अधिवेशन भी बुलाया गया था। उस अधिवेशन में कर्नाटक के तत्कालीन नेता श्री गंगाधर राव देशपांडे, डॉ. ना. सु. हर्डीकर आदि नेताओं ने भी भाग लिया था। दक्षिण भारत के हिन्दी-प्रचार-कार्य का महत्व समझने के लिए उन्हें अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उसके फलस्वरूप कर्नाटक में हिन्दी का प्रचार सुसंगठित और सर्वव्यापक रूप में करने की उनकी इच्छा हुई।

बेलगाँव काँग्रेस—

उसके बाद सन् १९२४ में जब बेलगाँव में काँग्रेस का महाधिवेशन हुआ तो कर्नाटक के नेताओं ने हिन्दुस्तानी सेवादल के शिविरों में हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध किया। डॉ. ना. सु. हर्डीकर के प्रयत्नों से ही यह कार्य आरंभ हुआ था। उस समय तक कर्नाटक के कुछ केन्द्रों में हिन्दी प्रचार का कार्य आरंभ हो चुका था। पर संगठित तथा व्यवस्थित रूप से कोई कार्य नहीं हो सका था। अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रचार कार्यालय मद्रास की तरफ से सन् १९२४ में ही वहाँ व्यवस्थित रूप से कार्य शुरू हुआ।

आरंभ के कार्यकर्ता—

श्री सो. वे. शिवराम शर्माजी ने डॉ. कार्नाड़ सदाशिव रावजी के सहयोग से मंगलूर में कार्य आरंभ किया। श्री. धर्मदेव विद्यावाचस्पति (आर्य समाज-प्रचारक) की सहायता और सहयोग भी उनको प्राप्त हुआ। उसके बाद मद्रास कार्यालय के द्वारा भेजे गये प्रचारकों में रामभरोसे श्रीवास्तव, स्व. जमुना प्रसाद, श्री कृत्तिवास, पं. देवदूत विद्यार्थी, पं. सिद्धनाथ पंत आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने कर्नाटक के विभिन्न केन्द्रों में कार्य आरंभ किया।

आरंभ के प्रमुख केन्द्र—

मंगलूर, हुबली, बेंगलूर, मैसूर, बेलगाँव आदि उस समय के प्रमुख केन्द्र थे।

श्री जमुना प्रसाद मैसूर में तथा सिद्धनाथ पंत बेंगलूर में सुसंगठित कार्य करने लगे। जगह-जगह पर हिन्दी प्रेमी मंडलियाँ स्थापित हुई।

कार्य-विस्तार—

सन् १९२५ में श्री सिद्धनाथ पंत मद्रास-कार्यालय की तरफ से बेंगलूर में नियुक्त हुए। श्री पी. आर. रामय्या और टी. के. भरद्वाज वहाँ पहले ही नींव पक्की कर चुके थे। उनके अथक परिश्रम से कई स्थानों में हिन्दी वर्ग खुले। श्री. पंतजी की संगठन-दक्षता से विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी।

सन् १९३० तक कर्नाटक के सैकड़ों केन्द्रों में हिन्दी प्रचार जोर पकड़ चुका था। सत्याग्रह आन्दोलन में भी कई हिन्दी प्रचारको ने सक्रिय भाग लिया था। सभा ने श्री पंतजी को फिर मैसूर में (जमुना प्रसाद के छुट्टी पर जाने पर) भेजा। उन्होंने ग्रीष्म-हिन्दी प्रचार-शिविर का आयोजन किया। शिविर में सेवादल की व्यायाम-शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

मंगलोर—

१९२३-१९२५ के बीच में प्रचार कार्य आरंभ हुआ। पहले पं. धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति तथा श्रीमती वासन्ती देवीजी (कर्नल राय की धर्मपत्नी) ने वहाँ हिन्दी का श्री गणेश किया था। कुछ वर्ष बाद १९२९ से संगठित रूप से हिन्दी प्रचार सभा की ओर से काम होने लगा। श्री देवदूत विद्यार्थीजी तथा के. स्व. राघवाचारीजी को वहाँ की कार्य-सफलता का श्रेय है।

वहाँ श्री बिजूर विश्वेश्वर रावजी (गणपति हाईस्कूल के अध्यापक) की हिन्दी-सेवा अमूल्य रही है। उन्होंने हिन्दी प्रचार को अपना दैनिक कार्य-क्रम बनाया। उनके अतिरिक्त श्री माधव बालिग, श्री. लक्ष्मण देव विद्यार्थी, श्री पी. श्रीधर भट, श्री यू. केशवराव, श्रीमती कमलाबाई, श्री च. शंकर भट, श्री कटपाड़ी, श्री निवास शेणै, श्री पुट्टप्पय्य कारन्त, श्रीमती सुन्दरी बाई, श्रीमती रत्नाबाई, श्री टी. नागेश्वर राव, श्री वासुदेवाचार्य, श्री वर्धमान हेगड़े, श्री बाबू शेट्टी, श्री विट्ठल भट, श्री श्रीनिवास भक्त आदि कितने ही स्वतंत्र प्रचारकों ने वहाँ हिन्दी प्रचार-कार्य को बढ़ाने का अथक परिश्रम किया। १९३३ तक दक्षिण कर्नाटक के कई केन्द्रों में केन्द्रीय सभा की तरफ से हिन्दी का व्यापक प्रचार होने लगा। हिन्दी-प्रचार में उस समय दक्षिण कर्नाटक सबसे अधिक आगे बढ़ा हुआ था।

विद्यार्थिनी मंडल—

मंगलोर में हिन्दी का सन्देश स्त्री-समाज में फैलाने का अधिक श्रेय वहाँ की महिलाओं को ही दिया जा सकता है। श्रीमती ललिताबाई सुब्बाराव, श्रीमती

शाम्भवी, श्रीमती आर. पूँजा आदि ने हिन्दी विद्यार्थिनी-मंडलों के द्वारा हिन्दी का प्रचार चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न किया। श्रीमती कमलाबाई, श्रीमती पार्वतीबाई मंजेश्वर, श्रीमती बारिजा बाई, श्रीमती शान्ताबाई, श्रीमती लीलाबाई कामत आदि की हिन्दी सेवाएँ इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। महिला सभा, ईश्वरानन्द महिला सेवाश्रम, सेंट एग्नेस कालेज आदि स्थानों में हिन्दीवर्ग चलते थे जिनमें सैकड़ों की संख्या में महिलायें हिन्दी पढ़ती थीं।

हिन्दी में साहित्य रचना—

श्रीमती पार्वती बाई मंजेश्वर की हिन्दी कविताएँ उन दिनों "हिन्दी प्रचारक" में निकला करती थीं। कई देवियाँ हिन्दी में सुन्दर लेख भी लिखा करती थीं।

हिन्दी प्रेमी मंडल—

मंगलोर के "हिन्दी-प्रेमी-मंडल" की ओर से भी सराहनीय कार्य हुआ। श्री माधवराव, श्री जे. ए. साल्दाना, श्री ए. वी. शेट्टी. एम. एल. सी., श्री एकांबर राव, श्री राव बहादुर वेंकट राव, डाक्टर विट्ठल शेट्टी, श्री ए. निवासपाई, श्री यू. सी. एस. भट, श्री सोमशेखर राव, जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों के सहयोग से मंगलोर के कार्य में संतोषजनक प्रगति हुई।

हिन्दी प्रचार के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान देनेवाली संस्था श्री बिजूर विश्वेश्वर रावजी द्वारा स्थापित 'भारत भाषा-प्रवर्तक-संघ' थी। उसकी ओर से स्थानीय गणपति हाईस्कूल, कन्नरा हाईस्कूल, मिशन हाईस्कूल आदि स्थानों में हिन्दी-वर्ग चलते थे। मूड़बिद्री, मंजेश्वर, बँटवाल आदि स्थानों में श्री शिशुपालेन्द्र शास्त्री तथा श्री रामानंद रावजी की सेवाएँ अमूल्य रही हैं।

मंगलोर के आसपास के मूल्कि, बिजै आदि गाँवों में श्री सु. केशव राव जी तथा श्री संजीव मल्ली ने हिन्दी प्रचार का अच्छा कार्य किया। मंगलोर के हिन्दी विद्यार्थिनी-मंडल की ओर से पुत्तूर में भी हिन्दी-प्रचार का सराहनीय कार्य हुआ। श्रीमती सीतादेवी रामानन्द तथा श्री यू. सीतादेवी परशुराम ने पुत्तूर में हिन्दी का प्रचार शुरू किया था। श्रीमती सीतादेवी अभिनय-कला में बड़ी दक्ष थीं। हिन्दी नाटकों के अभिनय से पुस्तकालय के लिए उन्होंने चंदा इकट्ठा किया था। श्रीमती सुन्दरी बाई बैंदूर और वी. एस. रत्नादेवी की हिन्दी सेवाएँ भी वहाँ के कार्य की वृद्धि में सहायक रहीं। श्री टी. नागेश्वर राव, श्री शिवराम होल्लाजी, श्री. मोलहल्ली शिवराम, श्री प्रभाकर राव बैंदूर, श्री बी. रामचन्द्र राव आदि गण्यमान्य सज्जनों की सहायता एवं सहयोग से वहाँ हिन्दी शीघ्र ही लोकप्रिय बनी।

केदिला-केन्द्र—

इस गाँव में श्री पुट्टप्पय्य कारन्तजी, उनके सहायक श्री-रामचन्द्रभट और श्री

ईश्वर शर्माजी के निरंतर प्रयत्न के फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में हिन्दी का खूब प्रचार हुआ। सैकड़ों लोग क्लास में भर्ती होकर हिन्दी का अध्ययन करने लगे।

मंगलोर में श्री देवदूतजी के बाद श्री के. राघवाचारी नियुक्त हुए। देवदूतजी मंगलूर में हिन्दी प्रचार की नींव पहले ही से सुदृढ़ कर चुके थे। राघवाचारी जी ने अपनी कार्य-कुशलता से हिन्दी प्रचार कार्य को अत्यन्त लोकप्रिय और व्यापक बनाया।

प्रथम हिन्दी-प्रचार सम्मेलन—गाँधी जी और मालवीय जी—

सन् १९२७ में बंगलूर में अखिल कर्नाटक हिन्दी प्रचार सम्मेलन का आयोजन श्री पंतजी ने किया। कर्नाटक के विकासोन्मुख हिन्दी प्रचार आन्दोलन को सुसंगठित और सुव्यवस्थित करना ही इस सम्मेलन का उद्देश्य था।

इस सम्मेलन का अध्यक्ष-पद पूज्य महात्मा गाँधी जी ने ही ग्रहण किया था। पं० मदनमोहन मालवीय जी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया था। कर्नाटक के हिन्दी प्रचार के इतिहास में ही नहीं, बल्कि दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के इतिहास में इस सम्मेलन का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी सम्मेलन के अवसर पर ही मद्रास के नवसंगठित "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" की प्रथम बैठक हुई थी, जिसमें साहित्य सम्मेलन प्रयाग से सभा के पृथक् होने का प्रस्ताव स्व० सेठ जमनालाल बजाज जी द्वारा पेश हुआ। जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ था।

उक्त सम्मेलन का कर्नाटक जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। सम्मेलन के अध्यक्ष तथा उद्घाटक दोनों ने अपने भाषणों में राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा एक राष्ट्र लिपि देवनागरी के प्रचार के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने पर ज़ोर दिया। पं० मालवीय जी ने अपने भाषण के सिलसिले में विभिन्न भाषाओं के वाक्य-खंडों को नागरी लिपि में सबको सुनाते हुए यह सिद्ध किया कि देवनागरी लिपि सभी भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकृत हो सकती है। सम्मेलन में गाँधी जी की उपस्थिति के कारण लाखों की संख्या में लोगों ने भाग लिया था। देश के गण्यमान्य नेताओं ने भी सम्मेलन की कार्यवाहियों में सक्रिय भाग लेकर उसे सफल बनाया।

बेंगलूर—

सन् १९३० तक कर्नाटक के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी की जड़ जम चुकी थी। इस बीच में राजनीतिक क्षेत्र में सत्याग्रह आन्दोलन का जोर था। कॉंग्रेसी नेताओं के नेतृत्व में हिन्दी प्रचार सभा के कई कार्यकर्ताओं ने उस आन्दोलन में अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। श्री सिद्धनाथ पंत जी उस समय बेंगलूर में कार्य कर रहे थे। बेंगलूर केन्द्र पंत जी के निरंतर प्रयत्न के फलस्वरूप हिन्दी प्रचार का आदर्श केन्द्र बना। उस समय हजारों की संख्या में वह लोग हिन्दी पढ़ रहे थे। मैसूर में श्री जमनाप्रसादजी कार्य कर रहे थे। मैसूर भी बेंगलूर के समान हिन्दी प्रचार में अग्रगण्य था। जब

जमनाप्रसाद जी छुट्टी पर गये तो श्री पंत जी उनके स्थान पर मैसूर भेजे गये। पंत जी ने ग्रीष्म हिन्दी प्रचार-शिविर के नाम से हिन्दी विद्यार्थियों का संगठन किया और शिविर के कार्यक्रम में सेवादल की व्यायाम-शिक्षा को भी स्थान दिया।

हासन—

बेंगलूर के हिन्दी प्रेमी मंडल में श्रीमान पंडित कृष्णमाचार्य और पंडित आहोबल शास्त्री हासन में हिन्दी प्रचार करते थे। परन्तु वहाँ एक ऐसे हिन्दी प्रचारक की बड़ी आवश्यकता पड़ी जो अपना सारा समय हिन्दी प्रचार के लिए दे सके। इस काम के लिए मैसूर के हिन्दी प्रेमी मंडल की तरफ़ से श्री० टी० के. सुब्बाराव नियुक्त हुए। स्थानीय हाईस्कूल, वेस्लियन मिशन स्कूल, वाणी विलास बालिका पाठशाला और (Coronation Jubilee Hall) में हिन्दी वर्ग खुले जिनमें सैकड़ों छात्र-छात्राओं ने हिन्दी का अध्ययन किया। यहाँ के हिन्दी प्रचार को सुसंगठित, सुव्यवस्थित करने और सुचारु रूप से चलाने के लिए नगर के प्रभावशाली हिन्दी प्रेमी सज्जनों की हिन्दी प्रेमी मंडल नाम की एक संस्था भी स्थापित हुई थी।

जमुना प्रसाद श्रीवास्तव—

उत्तर भारतीय हिन्दी प्रचारकों में श्री जमुना प्रसाद भी बड़े ही लोकप्रिय व्यक्ति हुए हैं। कर्नाटक प्रांत आपका कार्यक्षेत्र था। कर्नाटक के प्रचार कार्य में प्रगति लाने वालों में आपका स्थान सर्व प्रमुख है। आपके छोटे भाई ने भी कुछ वर्ष तक कर्नाटक में हिन्दी का प्रचार किया था। उनकी आकस्मिक मृत्यु हुई। आप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर्नाटक शाखा के संचालक रहे। एक अच्छे अभिनेता के रूप में आप सारे दक्षिण में बहुत प्रसिद्ध हुए। हिन्दी नाटकों के प्रदर्शन द्वारा हिन्दी-प्रचार क्षेत्र में बड़ी जागृति और हिन्दी के प्रति सद्भावना पैदा करने में आपका प्रयास अत्यंत स्तुत्य रहा। कर्नाटक इस कार्य में उनका चिर ऋणी रहता है।

बेंगलोर के हिन्दी प्रचारक श्री जमुना प्रसाद श्रीवास्तव की हिन्दी-सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। प्रारंभ के दिनों में उन्होंने कई कष्टों को झेलते हुए निस्वार्थ भाव से हिन्दी का सन्देश बेंगलोर के घर-घर में पहुँचाया। उनकी प्रशंसा में हिन्द प्रचारक में "आदर्श की झलक" शीर्षक जो लेख प्रकाशित हुआ उसमें ये शब्द लिखे गये थे।

"हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि इतनी विद्यार्थी संख्या आजतक यहाँ नहीं बढ़ी थी, शायद और केन्द्रों में बढ़ी हो। इसका कारण श्री जमुनाजी की गंभीर आकर्षण शक्ति है। उनके आचरण की सादगी, व्यवहार की सचाई, कार्य कुशलता, व्याख्यान की रसिकता आदि केवल विद्यार्थियों को ही नहीं बल्कि सारी जनता को

हिन्दी की ओर खींच रही है। उनकी निस्वार्थता इसी में दृष्टिगोचर होती है कि वे उत्तरवासी होते हुए भी यहाँ दक्षिण में सेवा-वृत्ति से अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी जो त्याग वृत्ति है, वह उस तपस्वी जीवन को और भी उज्वल बना रही है। उनके सम्मानार्थ यहाँ के कुछ हिन्दी-विद्यार्थियों ने हाल ही में एक सत्कार-समारम्भ किया जिसमें उनको एक सोने की अंगूठी को स्वीकार करने के लिए विवश किया था। परन्तु श्री प्रसादजी ने स्वीकार करने के साथ ही दान भी कर दिया। आपने कहा कि मैं इस सम्मान का पात्र नहीं हूँ, बल्कि जिस संस्था की ओर से मैं नियुक्त हूँ वही इसके योग्य है; अतः उस संस्था की जो शाखा यहाँ 'हिन्दी प्रेमी मंडल' के नाम से प्रसिद्ध है उसी को मैं यह भेंट चढ़ाता हूँ।[1]

श्री जमुना प्रसाद के स्वभाव, योग्यता, त्याग-वृत्ति आदि का परिचय उपर्युक्त उद्धरण से भलीभाँति मिल सकता है। कुछ वर्ष तक आप आसाम में भी प्रचार कार्य करते रहे। आपकी आकस्मिक मृत्यु से हिन्दी प्रचार को बड़ी क्षति पहुँची।

पं० सिद्धनाथ पंत—

आपने अदम्य उत्साह, अगाध पांडित्य और असाधारण कार्यकुशलता के बल पर कर्नाटक के हिन्दी प्रचार में एक युग परिवर्तन करने वाले एक क्रान्तिकारी प्रचारक हैं श्री पंतजी। सर्वप्रथम केन्द्र विद्यालय मद्रास (१९२४–२५) में उन्होंने (लेखक के साथ) हिन्दी की शिक्षा पाई। सन् १९२५ में वे सभा की ओर से बेंगलोर में हिन्दी प्रचारक नियुक्त हुए। उनकी कार्य संचालन शक्ति से बहुत शीघ्र ही बेंगलोर तथा आसपास के केन्द्रों में हिन्दी प्रचार की नींव सुदृढ़ हो गई। वहाँ के सुप्रसिद्ध नेताओं, साहित्यकारों, पत्रकारों तथा उच्च सरकारी अधिकारियों का सहयोग प्राप्त करने में वे सफल हुए। उनकी राष्ट्रीयता की जागृति के उस ज़माने में पंत जी जैसे निस्वार्थ कर्मठ कार्यकर्ताओं की सेवाएँ कर्नाटक के हिन्दी प्रचार की प्रगति में अत्यन्त सहायक रहीं। राजनीति के क्षेत्र में जब ज्वार-भाटा आता श्री पंतजी भी उसके अनुसार अपने त्यागपूर्ण जीवन को मोड़ दिया करते थे। आप जेल में भी गये। वहाँ भी हिन्दी का नारा बुलन्द करने में कोई बात उठा नहीं रखी। कर्नाटक की जनता उनकी सेवाएँ भूल नहीं सकती। वे आज भी हिन्दी की सेवा में तन-मन अर्पित किए हुए हैं।

श्री जम्बुनाथन्—

मैसूर में हिन्दी प्रचार की जड़ जमाने में श्री जम्बुनाथन् की सेवायें अमूल्य हैं। कर्नाटक के विभिन्न केन्द्रों में श्री जम्बुनाथन् ने हिन्दी प्रचार का संगठन किया।

---

१. हिन्दी प्रचारक-फरवरी १९३२ पृष्ठ ५९

ग्रीष्म-शिविर तथा हिन्दी प्रेमी मण्डल के संगठन और संचालन में उनकी कार्यशक्ति प्रकट हुई। कर्नाटक की हिन्दी प्रेमी जनता में उन दिनों श्री जम्बुनाथन् की अपूर्व लोकप्रियता इसकी परिचायक है।

इन दिनों, श्री जम्बुनाथन् मैसूर यूनिवर्सिटी के साइन्स विभाग के प्रोफ़ेसर हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के विकास एवं प्रगति में उनका अमूल्य योगदान रहा है।

श्री जमुना प्रसाद और जम्बुनाथन् की सेवाएँ मैसूर की जनता बड़े गर्व के साथ याद करती है। स्थानीय प्रतिष्ठित सज्जनों के सहयोग से उन्होंने वहाँ हिन्दी-प्रेमी मण्डल की स्थापना की। हिन्दी के उक्त मण्डल की अमूल्य सेवाओं से हिन्दी-प्रचार का कार्य वहाँ प्रगति पा रहा है।

'हिन्दी प्रचारक' के १९३१ अगस्त के अंक में श्री जम्बुनाथन् और श्री जमुना प्रसाद् के सम्बन्ध में 'Mr. Jambunathan Honoured' शीर्षक एक लेख निकला था जिसमें उनकी प्रशंसा में लिखे गये शब्द नीचे उद्धृत हैं —

"Mysore remembers with pride the young men Sir Jamuna prasad and Sri Jambunathan who along with the other distinguished Citizens founded the Hindi Premi Mandal which has been rendering excellent service in the Karnataka Capital for the promotion and propagation of the Gospel of the language."

Jambunathan—

"The Chief man in the Hindi field of Karnatak Sri M. V. Jambunathan M. A., B. Sc., has been appointed as the Honourary Chief Organiser for Karnatak. Sri Jambunathan has endeared himself to the public of Karnatak by his meritorious services. We understand that he is exerting his best to enable Karnatak to steal a march over Andhra."[1]

नमक सत्याग्रह—

श्री पंतजी स्वतः उग्र राष्ट्रीयता के प्रेमी रहे हैं। भला, वे नमक सत्याग्रह आन्दोलन में चुप कैसे रह सकते थे? उन्होंने हिन्दी-प्रचार-शिविर के कार्यकर्ताओं का

---

(१) 'हिन्दी प्रचारक' मार्च १९३१।

एक प्रबल दल बनाकर उसे "सत्याग्रह" के लिए भेजा। उस दल का नेतृत्व उन्होंने स्वयं ग्रहण किया था।

श्री वेंकटाचल शर्मा—

उनकी अनुपस्थिति में वहाँ का कार्य संभालने के लिए श्री पी. वेंकटाचल शर्मा को हिन्दी प्रचार सभा ने नियुक्त किया। श्री शर्माजी बड़े ही विद्वान, उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। स्थानीय प्रमुख व्यक्तियों की सहायता से उन्होंने मैसूर तथा आसपास के केन्द्रों में हिन्दी प्रचार का अच्छा संगठन किया। अपनी विद्वत्ता और मधुर स्वभाव के कारण वे शीघ्र ही बहुत ही लोकप्रिय बने। मैसूर उन दिनों दक्षिण के सर्वप्रमुख केन्द्रों में गिना जाता था। श्री शर्माजी की कार्यकुशलता से मैसूर का कार्य व्यापक और मज़बूत बना। श्री जमुना प्रसाद जी के छुट्टी से वहाँ वापस आने पर श्री शर्मा जी फिर बेंगलोर केन्द्र गये और वहाँ का कार्यसंचालन करने लगे।

टी. कृष्णस्वामी—

बेंगलोर में उस समय श्री टी. कृष्णस्वामी काम कर रहे थे। हिन्दी प्रचार सभा के आदि प्रवर्तकों में से श्री कृष्णस्वामी चिरस्मरणीय व्यक्ति हैं। हिन्दी प्रचारकों में उन दिनों इतनी अधिक लोकप्रियता शायद ही और किसी को प्राप्त हुई हो। अपनी विनोदशीलता, अध्यापन-वैदग्ध्य, वक्तृत्व-शक्ति तथा सेवातत्परता के कारण वे सबके 'दिली दोस्त' बने।

श्री वेंकिटाचलशर्मा. श्री. कृष्णस्वामी के साथ काम करते थे।

स्व. श्री राघवाचारी—

कर्नाटक के प्रमुख प्रचारकों में से थे। १९३० से लेकर १९३४ तक के अल्प-काल में आपने अपना पसीना नहीं, रक्त बहाकर हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को शक्ति-शाली बनाने का प्रयत्न किया। २६ वर्ष की अल्पायु में मंगलोर में उनका देहान्त हुआ। वे कन्नड़ तथा हिन्दी के बड़े विद्वान् थे। दोनों में वे कविता भी करते थे। १९३२ से १९३४ तक मँगलोर में प्रचार करते हुए दक्षिण कर्नाटक के प्रत्येक गाँव में हिन्दी का सन्देश पहुँचाने में वे सफल हुए।

सन् १९३१–३२ तक वहाँ का कार्य बहुत ही व्यापक हो गया। श्री देवदूतजी के वहाँ से जाने के बाद श्री के. राघवाचारी ने वहाँ का संगठन-भार अपने ऊपर ले लिया। वे बड़े ही लोकप्रिय प्रचारक थे। उनकी प्रतिभा, सेवा तत्परता और मधुर स्वभाव ने वहाँ के लोगों को मुग्ध किया था। उनकी सेवाएँ अमूल्य हैं। दो वर्ष बाद हिन्दी माता की सेवा करते हुए ९–१२–३४ को उन्होंने अपनी अंतिम साँस ली।

श्रीनागप्पा—

श्री नागप्पा मैसूर के हिन्दी कार्यकर्ताओं में गणनीय व्यक्ति हैं। इन दिनों वे मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। अपने विद्यार्थी-जीवन से लेकर आज तक वे कर्नाटक के हिन्दी प्रचार की श्रीवृद्धि में दत्तचित्त रहे हैं। हिन्दी प्रचार उनके जीवन का लक्ष्य है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के क्रमगत विकास एवं वृद्धि में श्री नागप्पा जी की सेवाएँ अमूल्य रही हैं। हिन्दी की गहरी विद्वत्ता के साथ कार्य संचालन शक्ति भी आपकी हद दर्जे की है। मिलनसार, मधुर भाषी और सच्चरित्र होने के कारण आप दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों के अत्यन्त स्नेह और आदर के पात्र हैं। उनके संबन्ध में १९३२ में मई के 'हिन्दी प्रचारक' पत्रिका में संपादकीय टिप्पणी में यों लिखा था। निम्नलिखित उद्धरण उनकी कार्य-शक्ति तथा हिन्दी प्रेम का परिचायक है।

"Sincerity and Determination.

"Since the opening of the Summer training Camp in 1931 there have sprang up a band of young men in Mysore, who organise and conduct classes in different localities in the city one of them in particular Mr. N. Nagappa has displayed a very great power of organisation. He is an honours student in the Maharajas College and inspite of his studies and other social service work he has been able to devote a considerable time to Hindi. He has been managing the chamundi extension centre-of one of the biggest in Mysore-for the past one year. At the seminar camp this year he is conducting the 'Rapia Course' classes with no small success. Sincerity and determination are the main causes of success in any enterprise and when Mr. Nagappa has the success comes of its own record."[1]

श्री हिरण्मय—

सन् १९३३ में श्री हिरण्मय को हिन्दी प्रचार सभा ने मैसूर में नियुक्त किया। कर्नाटक के हिन्दी प्रचार के इतिहास में श्री हिरण्मयजी का नाम विशेष उल्लेखनीय

१. 'हिन्दी प्रचारक' मई १९३२

है। उन्होंने बड़ी दक्षता के साथ हिन्दी के प्रचार में प्रगति लाने का प्रयत्न किया। वे हिन्दी प्रचार सभा के प्रथम श्रेणी के कार्यकर्ता हैं। इन दिनों मैसूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में काम कर रहे हैं। आपने कन्नड़ और हिन्दी का तुलनात्मक शोध-ग्रन्थ लिखकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है।

कार्य-विस्तार—

सन् १९३३ तक हासन, तुमकूर आदि स्थानों में भी हिन्दी का खूब प्रचार होने लगा था। हासन में श्री टी. के. सुब्बाराव कार्य कर रहे थे। उनके प्रयत्न से हासन हिन्दी-प्रचार का एक जबरदस्त केन्द्र बना था। तुमकूर में ति. श्रीनिवास रावजी सफलतापूर्वक हिन्दी-प्रचार कर रहे थे। उन दिनों केन्द्रों के सरकारी हाइस्कूलों में सबसे पहले हिन्दी को प्रवेश मिला था। स्थानीय नेताओं और वहाँ के कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम का ही यह फल था।

कर्नाटक का दक्षिणी जिला जो कोच्चिन (केरल) शाखा के अन्तर्गत था, अक्तूबर १९३३ से कर्नाटक प्रान्तीय शाखा के अधीन कर दिया गया। उसके मंत्री श्री जमना प्रसाद श्रीवास्तव नियुक्त हुए। बेंगलोर में कर्नाटक प्रान्तीय कार्यालय स्थापित हुआ।

कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा-१९३५

सन् १९३५ फरवरी में महात्मा गाँधीजी के निर्देश के अनुसार श्री काका कालेलकर ने कर्नाटक का भ्रमण किया। चारों प्रान्तों में स्वतन्त्र रूप से शाखा-सभाएँ स्थापित करने के विषय में विचार-विमर्श करके सभा के लिए नया विधान बनाने के लिए बेंगलोर में कुछ प्रमुख हिन्दी हितैषी सज्जनों की एक बैठक बुलाई गयी। शाखा-सभा के लिए आवश्यक विधान बनाने के लिए एक समिति बुलाई गयी। श्री निट्टूर श्रीनिवास राव बी. एस. सी, बी. एल. (मंत्री, स्थानीय हिन्दी प्रेमी मण्डल) तथा श्री के. संपतगिरि राव (प्रधान अध्यापक, नेशनल हाइस्कूल, बेंगलोर) उक्त समिति के संयुक्त गौरव मंत्री मनोनीत किये गये थे।

सन् १९३३ में श्री पंतजी ने बेंगलूर को केन्द्र बनाकर समूचे कर्नाटक प्रान्त के कार्यों का संगठन किया। अखिल कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा के रूप में संगठन का कार्य बड़ा व्यापक और शक्तिशाली बना।

ज्ञान-यात्री दल—

पंतजी ने दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों तथा हिन्दी विद्यार्थियों का उत्तर के लोगों से संपर्क बनाये रखने एवं उत्तर के वातावरण में रह कर उनको अपनी हिन्दी योग्यता बढ़ाने की सुविधा देने के विचार से सन् १९३४ में ज्ञान-यात्री दल का भी संगठन किया। पं० हृषीकेश शर्माजी के नेतृत्व में दक्षिण के हिन्दी ज्ञान-यात्रियों के प्रथम दल

ने सन् १९३४ में उत्तर भारत के विभिन्न केन्द्रों में यात्रा की। उत्तर की शिक्षण संस्थाओं ने ज्ञान-यात्री दल का हृदय से स्वागत किया। इस यात्रा के फलस्वरूप दक्षिण के सैकड़ों विद्यार्थियों को उत्तर की शिक्षण-संस्थाओं में प्रविष्ट होकर हिन्दी की उच्च शिक्षा पाने की सुविधाएँ प्राप्त हुईं।

प्रान्तीय सभा—

सन् १९३६ में नये विधान के अनुसार कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा स्थापित हुई। श्री पंतजी उसके मंत्री बने। सभा के पदाधिकारी श्री. के. पी. पुट्टण्ण चेट्टी., डॉ. सी. बी. रामराव, श्री नारायण गोविन्द नायक आदि रहे।

स्कूलों में हिन्दी—

सन् १९३७ में जब मद्रास में काँग्रेसी मंत्री-मंडल स्थापित हुआ तो अन्य प्रान्तों की तरह कर्नाटक के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को सरकारी प्रोत्साहन काफ़ी न मिल सका। यद्यपि स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान मिला, तो भी मैसूर की सरकारी नीति हिन्दी की प्रगति के लिए सन्तोषजनक साबित न हुई। अतएव बेंगलूर का हिन्दी-प्रचार सभा-कार्यालय बंबई-कर्नाटक की राजधानी धारवाड़ को बदलना पड़ा। तब सभा के नये पदाधिकारियों का भी नये सिरे से चुनाव हुआ। श्री आर. आर. दिवाकर (अध्यक्ष), श्रीमती उमाबाई कुंदापुर (उपाध्यक्षा) और श्री ए. जी. दोड्डमेरी (खजाञ्ची) चुने गये। श्री पंतजी सभा के मंत्री रहे।

मैसूर हिन्दी प्रचार समिति—

सन् १९३५-३६ में मैसूर राज्य के अन्दर सभा के कार्य का संगठन करने के लिए "मैसूर रियासत हिन्दी समिति" कायम हुई। बेंगलोर ही उसका सदर मुकाम रहा। सभा के उत्साही प्रचारक श्री हिरण्मय समिति के संचालक नियुक्त हुए। उनके प्रयत्न के फलस्वरूप बेंगलोर में समिति के भवन निर्माण के लिए कुछ जमीन प्राप्त हुई। सन् १९४७ में श्री राजगोपालाचारी ने सभा-भवन का शिलान्यास किया।

कालेज में हिन्दी—

कालेजों में हिन्दी का प्रवेश कराने के लिए प्रयत्न जारी था। श्री ना. नागप्पा के अथक परिश्रम के फल स्वरूप उस कार्य में कुछ सफलता हुई।

प्रांतीय सभा के कार्यालय को धारवाड़ ले जाने के बाद श्री पंतजी ने बंबई-कर्नाटक के जिलों में भ्रमण करके हिन्दी को स्कूलों में अनिवार्य विषय बनाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। इस संबन्ध में उन्होंने बंबई सरकार के तत्कालीन मुख्यमंत्री खेरसाहब को एक निवेदन पत्र समर्पित किया। उसके फलस्वरूप बंबई सरकार ने स्कूलों में अनिवार्य हिन्दी-पढ़ाई की घोषणा की और इस विषय में

आवश्यक सलाह देने के लिए एक हिन्दी शिक्षण-समिति भी बनाई। इस समिति के अध्यक्ष श्री आर. आर. दिवाकर और मंत्री श्री सिद्धनाथ पंत मनोनीत हुए। स्कूलों में प्रवेश दिया गया तो हिन्दी शिक्षकों को प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था की गयी।

प्रशिक्षण विद्यालय—

सन् १९३७ में धारवाड़ में एक हिन्दी प्रशिक्षण विद्यालय खुला जिसके प्रधान अध्यापक श्री. नागप्पा नियुक्त हुए। श्री. नागराज, श्री. कृष्णानंत पै, श्री. सिद्धगोपाल आदि सहायक अध्यापक बने। सैकड़ों नवयुवक उस विद्यालय में प्रशिक्षित होकर स्कूलों में हिन्दी अध्यापक बने। बंबई सरकार ने "हिन्दी शिक्षक सनद" नाम की एक प्रशिक्षण-परीक्षा चलायी। उसके बाद उस परीक्षा के पाठ्यक्रम में आवश्यक संशोधन किया गया। महामहोपाध्याय श्री. दत्तोवामन पोतदार की अध्यक्षता में पुनः एक समिति कायम की गयी। श्रीमती कैप्टन (मंत्रिणी, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, बंबई), श्री मगन भाई देसाई (रजिस्ट्रार गुजराती विद्यापीठ अहमदाबाद), श्री गोपाल परशुराम नेने (मंत्री, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना) तथा श्री सिद्धनाथ पंत (मंत्री कर्नाटक प्रांतीय सभा, धारवाड़) इस समिति के सदस्य रहे। इस समिति की सिफ़ारिश से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की परीक्षाओं को अंशतः बंबई में तथा प्रधानतः कर्नाटक में मान्यता मिली।

१९४२ का आन्दोलन—

सन् १९४२ में जब देश भर में राष्ट्रीय आन्दोलन की ज़बरदस्त लहर उठी तब सैकड़ों हिन्दी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हुए। प्रान्तीय सभा के अध्यक्ष श्री आर. आर. दिवाकर, उमाबाई कुंदापुर, डॉ० हर्डीकर, श्री सिद्धनाथ पंत आदि नज़रबंद रहे। बंबई-कर्नाटक के हिन्दी प्रचार की प्रगति में इस से कुछ बाधा हुई तो भी कर्नाटक के अन्य जिलों में प्रचार कार्य पूर्ववत् चलता रहा।

हिन्दुस्तानी नीति पर असन्तोष—

सन् १९४५ में गाँधीजी के आदेश के अनुसार जब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने उर्दू तथा नागरी लिपियों में हिन्दुस्तानी का प्रचार करने की आयोजना बनायी तो कई एक कार्यकर्ता उस नीति से सहमत न हुए। इससे इस आयोजना को कार्यान्वित करने में संपूर्ण सफलता प्राप्त न हुई।

सन् १९५१ में धारवाड़ में कर्नाटक हिन्दी प्रचार आन्दोलन की रजत-जयंती मनायी गयी। बंबई के मुख्यमंत्री श्री बाला साहब खेर ने जयंती-सम्मेलन का अध्यक्ष-पद ग्रहण किया था। उनकी कृपा से बंबई सरकार ने प्रांतीय सभा को धारवाड़ में भवन-निर्माण के लिए दो एकड़ ज़मीन तथा सभा के कार्य-विकास के लिए अनुदान भी दिया।

सन् १९५३ में श्री पंतजी के छुट्टी पर जाने तथा छुट्टी की समाप्ति पर केन्द्रीय सभा के आदेशानुसार "पंच-भाषा-कोश" संपादन में लग जाने से उनके स्थान पर श्री रामकृष्ण नावड़ा प्रांतीय मंत्री नियुक्त हुए। वे बड़े उत्साह के साथ १९५५ तक कार्य करते रहे।

प्रारंभिक परीक्षायें—

केन्द्र सभा की प्रारंभिक परीक्षाएँ चलाने का भार सन् १९५५ में प्रांतीय सभा ने अपने ऊपर ले लिया। कुछ समय बाद श्री नावडे को केन्द्रीय सभा के आदेशानुसार अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् के संचालनार्थ आगरा जाना पड़ा तो श्री पी. वेंकटाचल शर्मा पुनः कर्नाटक के प्रान्तीय मंत्री के पद पर नियुक्त हुए।

प्रान्तीय सभा-भवन—

प्रांतीय सभा भवन का शिलान्यास बंबई के तत्कालीन राज्यपाल डॉ. हरेकृष्ण मेहताब के हाथों हुआ। कार्यालय, प्रेस, विद्यालय आदि के लिए भवन बने हैं। सन् १९५६ में श्री श्रीकण्ठ मूर्ति प्रांतीय सभा के मंत्री नियुक्त हुए। श्री कंठमूर्ति सभा के पुराने अनुभवी कार्यकर्ता हैं। मैसूर के विभिन्न जिलों में आपने संगठन का कार्य किया है। हिन्दी विद्यालयों में प्रधान अध्यापक के पद पर भी आपने हिन्दी की सराहनीय सेवा की है। कुछ समय के लिए श्री बी. एम. कृष्णस्वामी जी मैसूर में प्रांतीय मंत्री के स्थान पर कार्य करते रहे। कर्नाटक के हिन्दी प्रचार आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर उसे सफल बनाने वाले हज़ारों राष्ट्रसेवी हैं, जिन की सेवाओं का विस्तृत परिचय देना असंभव है। हिन्दी के प्रचार में निरंतर लगे रहने वाले हज़ारों निस्वार्थ हिन्दी प्रचारकों की निष्ठापूर्ण सेवाओं के बल पर ही वहाँ का कार्य प्रगतिशील बना है, इसमें सन्देह नहीं।

प्रमुख समर्थक—

कर्नाटक के हिन्दी प्रचार कार्य को सुसंगठित एवं सर्वव्यापक बना कर उसमें प्रगति लानेवालों में सार्वजनिक नेताओं के अतिरिक्त वहाँ के उच्च सरकारी अधिकारी भी शामिल हैं। सार्वजनिक नेताओं में सर्व श्री गंगाधर राव देशपाँडे, डॉ० हर्डीकर, आर. आर. दिवाकर, डॉ, सी. पी. रामराव कर्पूर, श्रीनिवास राव, सर के. पी. पुट्टण्ण चेट्टी, कार्नाड सदाशिव राव, डॉ. डी. के. भरद्वाज, उमाबाई कुंदापूर, पं. तारानाथ, मैसूर के वृद्ध पितामह वेंकट कृष्णय्या, एम. लक्ष्मीनारायण राव, पी. आर. रामय्या आदि प्रमुख हैं। सरकारी उच्च अधिकारियों में डॉ. एन. एस. सुब्बराव, प्रो. ए. आर. वाड़िया, प्रो० आगा मुहम्मद अब्बास शूस्तरी, जस्टिस शंकर नारायण राव, श्री टी. कृष्णमूर्ति आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रकरण १९

तमिलनाडु में हिन्दी-प्रचार

तमिल भाषा—

द्राविड़ भाषाओं में तमिल ही सब से अधिक प्राचीन है। उत्पत्ति के सम्बन्ध में निर्णय नहीं हो सका है कि किस समय इसका प्रारंभ हुआ। संस्कृत, ग्रीक और लैटिन की तरह इसे भी लोग अति प्राचीन और संपन्न मानते हैं। २५०० वर्षों से यह व्यवहृत है। उपलब्ध प्रमाणों से सिद्ध है कि ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व तमिल भाषा सुसंस्कृत एवं सुव्यवस्थित थी। साहित्य में तथा कोश में तमिल 'मधुर' अर्थ में प्रयुक्त है। कहा जाता है कि संस्कृत शब्द 'द्राविड़' से तमिल शब्द बना है, जैसे-द्राविड़-द्रविड़-द्रमिड़-द्रमिल-दमिल-तमिल। लेकिन अधिकांश विद्वान इस विचार से सहमत नहीं हैं।

तमिल करीब तीन करोड़ से ज़्यादा लोगों की मातृभाषा है। मद्रास राज्य के अलावा दक्षिण तिरूवितांकोर, उत्तर-पश्चिमी लंका आदि स्थानों में मुख्यतः तमिल बोली जाती है। तमिल के दो रूप हैं-चेंतमिल और कोटुंतमिल। चेंतमिल, तमिल का साहित्यिक रूप है जिसमें पुराने साहित्यिक ग्रंथ मिलते हैं। कोटुंतमिल इसका व्यावहारिक रूप है।

भाषा के प्रथम नामकरण की तिथि पर विचार करने के लिए हमारे पास तमिल का प्रामाणिक ग्रन्थ "तोल्कापियम्" है। यह व्याकरण ग्रन्थ है। विद्वानों ने इसे ई० पू० ४०० का माना है। पूर्ववर्ती ग्रन्थ लेखकों का इसमें उल्लेख है; तमिल पद का भी प्रयोग है। यह पाणिनि-व्याकरण 'अष्टाध्यायी' से पूर्व का माना जाता है।

तमिल के सुप्रसिद्ध विद्वान राघवय्यंगार का मत है कि तमिल की आदिम लिपी का सम्बन्ध मिस्री लिपि से है।

भारतीय भाषाओं में तमिल ही एकमात्र भाषा ऐसी है जिसकी वर्णमाला में अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत कम अक्षर हैं। इसमें १२ स्वर और १८ व्यंजन और एक विसर्ग सदृश अर्धस्वर है।

तमिल का प्राचीन साहित्य उत्कृष्ट है। आधुनिक साहित्य की सभी शाखाएँ भी काफ़ी समृद्ध हैं।

हिन्दी प्रचार का आरंभ—

सन् १९१९ में तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार का कार्य आरंभ हुआ। यद्यपि मद्रास शहर तमिलनाडु के अन्तर्गत है और वहाँ सन् १९१८ से ही हिन्दी प्रचार होने लगा था तो भी तमिलनाडु के अन्य केन्द्रों में हिन्दी प्रचार का प्रारंभ सन् १९१९ से ही माना जाता है।

तिरुचिरापल्ली श्री प्रतापनारायण वाजपेयी—

प्रारंभ से लेकर आज तक ट्रिची (तिरुचिरापल्ली) हिन्दी प्रचार का प्रमुख केन्द्र रहा है। स्व. प्रतापनारायण-वाजपेयी ने वहाँ पहले पहल हिन्दी प्रचार का कार्य शुरू किया था। वे सभा के अधीन नियुक्त सर्वप्रथम उत्तर भारतीय हिन्दी प्रचारक हैं।

श्री वाजपेयी की सेवा से वहाँ के लोग अधिक दिन तक लाभान्वित नहीं हो सके। क्योंकि उन दिनों सत्याग्रह आन्दोलन की लहर उठ रही थी। श्री वाजपेयी सत्याग्रही बन कर जेल गये। वहाँ उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वे राजयक्ष्मा के शिकार हुए। तब भी निर्दयी सरकार ने उनको नहीं छोड़ा। जब उनके बचने की आशा न रही तभी सरकार ने बड़ी दया करके उन्हें छोड़ दिया। जेल से छूटने के तीसरे दिन वे इस संसार से भी सदा के लिए छूट गये ! उनके सम्बन्ध में तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा के भूतपूर्व मंत्री श्री अवधनन्दनजी ने यों लिखा है —

"वाजपेयी बिहार प्रांत में पटना नगर के निवासी थे और बड़े ही विद्वान, त्यागी, कर्मनिष्ठ तथा देशभक्त थे। उन्होंने अल्पकाल में ही तिरुचि के प्रायः सभी प्रमुख कॉंग्रेसी नेताओं का सौहार्द प्राप्त कर लिया। स्व० डॉ० स्वामीनाथ शास्त्री तथा श्री हालास्यम इनके विद्यार्थियों तथा मित्रों में से थे।

वाजपेयीजी ने तिरुचि में अपना कार्य आरम्भ ही किया था कि गाँधी जी का प्रथम सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ। वाजपेयी अपने पूरे जोश के साथ आन्दोलन में शामिल हो गये और हालास्यम आदि अपने मित्रों के साथ गिरफ्तार होकर जेल चले गये। किन्तु उनका स्वास्थ्य जेल के कष्टों को भोगने के योग्य नहीं था। जेल में उन्हें यक्ष्मा के रोग ने ग्रस लिया और उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरने लगा। तो भी निर्दय ब्रिटिश सरकार को उन पर दया नहीं आयी। आखिर १९२३ में उन्हें जेल से रिहा किया गया और जेल से मुक्त होने के तीसरे दिन उनका देहावसान हो गया।"[1]

---

१. हिन्दी प्रचार का इतिहास (आन्ध्र)
'तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार, लेखक—श्री० अवधनन्दन पृष्ठ ३३

प्रथम हिन्दी-प्रचारक विद्यालय, ईरोड़—

दक्षिण में हिन्दी प्रचारकों को तैयार करने के लिए सन् १९२२ में ईरोड़ में सभा का दूसरा हिन्दी-प्रचारक विद्यालय खोला गया।

श्री ई० वी० रामस्वामी नायिक्कर—

वर्तमान समय के सबसे बड़े हिन्दी-विरोधी तथा तमिलनाडु के 'द्राविड़कषकम' के प्रमुख नेता श्री ई० वी० रामस्वामी नायिक्कर के संरक्षण में उन्हीं के एक मकान में हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय का उद्घाटन हुआ था। इससे पता चलता है कि वे उन दिनों हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे।

उद्घाटक स्व० पं० मोतीलाल नेहरू—

उक्त विद्यालय का औपचारिक उद्घाटन स्व० पं० मोतीलाल नेहरू ने किया था। इस सम्बन्ध में सभा ने तत्संबन्धी एक विवरण में यों लिखा है—

"सभा ने अपना दूसरा विद्यालय सन् १९२२ में ईरोड़ (तमिलनाडु) में प्रचार बढ़ाने के लिए खोला। स्व. देशपूज्य मोतीलाल जी नेहरू ने इसका उद्घाटन किया।"[1]

इस विद्यालय में शिक्षा पाकर कई प्रचारक तैयार हुए और विभिन्न केन्द्रों में प्रचार-कार्य में लग गये। १९२३ में इस विद्यालय का सत्र समाप्त हुआ और विद्यालय बंद हो गया। इस विद्यालय के प्रधान अध्यापक श्री देवदूत विद्यार्थी थे। कुछ मास तक श्री अवधनन्दन जी उस विद्यालय के अध्यापक रहे थे।

आदर्श केन्द्र मदुरा—

तमिलनाडु का तीसरा प्रधान हिन्दी प्रचार केन्द्र मदुरा है। तमिल प्रान्त के राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का भी मदुरा एक प्रमुख केन्द्र रहा है। वहाँ सबसे पहले श्री देवदूत विद्यार्थी द्वारा कार्य का आरम्भ हुआ था। कुछ वर्ष के बाद उनका वहाँ से स्थान-परिवर्तन हुआ तो स्थानीय प्रचारकों ने वहाँ का कार्य पूर्ववत् जारी रखा। तमिलनाडु के सुप्रसिद्ध नेता स्व० वैद्यनाथ अय्यर जी की संरक्षकता में मदुरा में हिन्दी का प्रचार बढ़ा।

सन् १९२६ में श्री रामानन्द शर्माजी का वहाँ से नीलगिरि को स्थान परिवर्तन हुआ। उनके स्थान पर श्री रघुवरदयालु मिश्र नियुक्त हुए। मिश्रजी के आने के बाद मदुरा के कार्य में तीव्रगति से वृद्धि हुई। अतः सभा ने श्री रामानन्द शर्माजी को नीलगिरि से फिर मदुरा भेजा।

---

१. हिन्दी प्रचारक १९३२ अक्तूबर पृष्ठ ३३६

प्रचारक द्वय—

वहाँ के प्रचारकों के परस्पर सहयोग तथा कार्य कुशलता के कारण उस केन्द्र में जो सफलता हुई उस पर बधाई देते हुए सभा ने अपना सन्तोष यों व्यक्त किया था—

"यह सौभाग्य किसी केन्द्र को नहीं मिला जहाँ पर सभा के दो सुयोग्य प्रचारक काम करते हों। पं० रघुवरदयालु मिश्र और पं० रामानन्द शर्मा सभा के दो परिश्रमी कार्यकर्ता हैं। अन्य योग्यताओं के साथ आप दोनों में आपस में सहयोगिता के साथ काम करने की विशेषता अधिक है। यह आजकल बिलकुल साधारण बात है कि एक ही जगह पर दो कार्यकर्ता एक ही तरह के फल के लिए काम करें तो वैयक्तिक मतभेद आ जाय, लेकिन आप दोनों ने उसके लिए मौका नहीं दिया; किन्तु पृथक-पृथक् व मिलकर जो कार्य किया उसका श्रेय तथा फल आपस में एक ही-सा बाँट लिया। आज यदि मदुरा हिन्दी प्रचार के इतिहास में तमिलनाडु में ही नहीं, बल्कि दक्षिण-भारत में भी एक अच्छा स्थान पाये हुए है तो उसके श्रेय के पात्र हमारे ये प्रचारक द्वय ही हैं। उनके उत्तम कार्य के लिए हम उनको बधाई देते हैं।"[1]

हिन्दी वाचनालय—

सन् १९२८–२९ में हिन्दी विद्यार्थियों के लिये वहाँ एक पुस्तकालय और वाचनालय की स्थापना की गयी। वहाँ 'चाँद', 'माधुरी', 'सुधा', 'बालक', 'खिलौना', 'बालसखा' आदि सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'अभ्युदय', 'विश्वमित्र', 'ब्रह्मचर्य', आदि साप्ताहिक पत्र भी मँगाये जाते थे।

सन् १९३१ मार्च में श्री आचार्य पी० सी० राय का मदुरा में आगमन हुआ था। वे श्री वैद्यनाथ अय्यर के अतिथि बने। हिन्दी प्रचार समिति की तरफ से उन्हें हिन्दी में मान-पत्र दिया गया था।

श्री विक्टोरिया एडवर्ड हॉल में इस सिलसिले में एक बड़ी सभा हुई थी। श्री पी० सी० राय ने सभा की विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों के प्रमाण-पत्र बाँट दिये। उन्होंने हिन्दी पढ़ने की आवश्यकता को समझाते हुए एक ज़ोरदार भाषण भी दिया था।

शाखा कार्यालय–मदुरा

इसका उल्लेख किया जा चुका है कि सन् १९२३ में हिन्दी प्रचार सभा का शाखा-कार्यालय पहले पहले तिरुची में खुला था। श्री अवधनन्दन जी १९२८ तक उसके संचालक रहे। उसी वर्ष उनका स्थान-परिवर्तन हुआ। वे मदुरा

---

१. 'हिन्दी प्रचारक'—मार्च १९३२

में कार्य करने के लिए भेजे गये । १९३० में जब सभा का पुनः संगठन किया गया तो सन् १५-७-१९३२ को स्थानीय सुप्रसिद्ध राष्ट्रप्रेमी श्री सोमसुन्दर भारती एम० ए० बी० एल० के द्वारा सभा शाखा-कार्यालय का उद्घाटन हुआ। उद्घाटन-समारोह के अवसर पर कई महत्वपूर्ण भाषण हुए। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के तत्कालीन मंत्री पं० हरिहर शर्माजी ने अपने भाषण में यों कहा था—

"हिन्दी प्रचार में तमिल प्रान्त बहुत पीछे है। अन्य प्रान्त वालों ने हिन्दी को जैसे तन-मन-धन से अपनाया है ऐसे तमिल प्रान्तियों ने नहीं किया है। यह उनके लिए एक अपमानजनक कार्य है।"

सम्मेलन में श्रीमान् सुण्डाजी बी. ए., बी. एल., एफ. आर., ई. एस. ने भाषण देते हुए अपने अनुभव का दृष्टान्त देकर यों कहा :—

"यहाँ के लोग स्कूलों और कालेजों में हिन्दी को स्थान देने से हिचकते हैं। जब कोई महाशय उनसे विद्यार्थियों को हिन्दी की शिक्षा दिलवाने के लिए कहते हैं तो वे हिन्दी और उर्दू में, जो वस्तुतः एक है, झगड़ा पैदा करवाते हैं और उस मुख्य बात को ही टाल देते हैं।

श्रीमान् नरसिंह अय्यर बी. ए; बी. एल. ने तमिल देश के लोगों को उद्बोधित करते हुए यों कहा —"अगर तमिल भाषा-भाषी हिन्दी नहीं पढ़ेंगे तो वे देश-सेवा से वंचित रहेंगे। क्योंकि काँग्रेस का सब काम हिन्दी में ही होता है। हम हिन्दी नहीं पढ़ेंगे तो काँग्रेस में किसी प्रकार का भाग नहीं ले सकेंगे। उसके सिवा, हिन्दी सीखे बिना उत्तर हिन्दुस्तान में जाकर पुण्यतीर्थों का दर्शन करने तथा उन देशों के वासियों से बातचीत करने में हमें बड़ी कठिनाई होगी।" उन्होंने बहनों से कहा कि उनको पुरुषों से भी ज्यादा हिन्दी सीखने की जरूरत है। क्योंकि हिन्दी पढ़ कर वे उत्तर भारत के अच्छे-अच्छे रीति-रिवाजों को चुन कर अपने घर और देश में फैला सकती हैं और उसके सीखने से वे यहाँ के बुरे रीति-रिवाज़ों को भी दूर कर सकती हैं।

श्रीधरानन्दजी ने दलीलें देकर यह सिद्ध किया कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने में किसी प्रकार का धार्मिक या राजनैतिक विरोध नहीं है। अंग्रेजी भाषा के प्रचार से (उससे कुछ लाभों के होने पर भी) यहाँ के धर्म, सभ्यता और आर्थिक दशा का अधःपतन होता जा रहा है। एक राष्ट्र में एक भाषा के न होने से उसके निवासियों के विचार परस्पर नहीं मिल सकते हैं। विचारों के न मिलने से राष्ट्र की उन्नति का मार्ग निश्चित नहीं किया जा सकता है।

श्री भारती ने तमिल के विद्वानों को सम्बोधित कर कहा —"कुछ' तमिल वाले समझते हैं कि हिन्दी के सीखने से उनकी तमिल भाषा का अधःपतन होता है—यह विचार गलत है। क्योंकि दूसरी भाषा के सीखने से ही अपनी भाषा का

महत्व पहिचाना जा सकता है। अगर कोई अपनी देश-भाषाओं से सच्चा प्रेम करता है, उनका महत्व जानना चाहता है तो उसको अवश्य हिन्दी सीखनी चाहिए। उसके सीखने से देश-भाषाओं का अधःपतन नहीं होता, बल्कि उनकी पुष्टि ही होती है। क्योंकि उसके संसर्ग से उसके अच्छे विचारों को अपनी देश-भाषाओं में मिला सकते हैं।" उन्होंने फिर कहा :—"मद्रासी किसी भाषा के ज्ञान में भी पीछे नहीं हैं। संस्कृत में वे अग्रगण्य हैं। अंग्रेज़ भी उनकी अंग्रेजी की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। अब हिन्दी का ज़माना आ गया है। उसका भविष्य बहुत उज्वल है। अगर मद्रासी खासकर तमिलियन उससे पीछे रहेंगे तो उनके भाषा-पाण्डित्य और योग्यता पर धब्बा लगेगा। तमिल वाले स्वभावतः कुछ आलसी होते हैं। अतः वे अब तक कुम्भकर्ण की नींद में सोते रहे। लेकिन अब हिन्दी-प्रचारक उनको जगाने और उनके आलस्य और हिन्दी के प्रति स्नेह-शून्यता का उपहास करने लगे हैं। वे इस अपमान को सहन नहीं कर सकते हैं। इसलिए तमिलियन उठ खड़े होकर ऐसी श्रद्धा और प्रेम से हिन्दी पढ़ने लगेंगे जिसको देख कर अन्य प्रांत के लोग जो अब गर्व से फूल रहे हैं, आश्चर्य में एकदम डूब जायँगे। "अन्त में उन्होंने कहा —"मैं भी स्वयं सीखने का प्रयत्न करूँगा। हिन्दी हमारे राष्ट्र की एकमात्र भाषा है—यह बात हमें अच्छी तरह मालूम हो गयी है। "हिन्दी पढ़ने वाली सुयोग्य छात्राओं की योग्यता को देखकर उन्होंने यों कहा—यहाँ की लड़कियाँ हिन्दी के पठन-पाठन में आगे बढ़ गयी हैं। यह देख कर भी हम पुरुषों के दिल में हिन्दी सीखने की अभिलाषा नहीं होती हो तो हम स्त्रियों के सामने सिर उठाने के लायक नहीं बन सकते।"[1]

वैद्यनाथ अय्यर—

श्री वैद्यनाथ अय्यरजी ने मदुरा के कार्य-संचालन का नेतृत्व ग्रहण किया था। १९२८ में वहाँ एक हिन्दी प्रचार समिति कायम की गयी। श्रीमती वी० लक्ष्मी-अम्माल (समिति की अध्यक्षा) तथा श्रीमती एस० ललिता देवी (समिति की मंत्रिणी) के सहयोग एवं सहायता से स्त्रियों के बीच में भी हिन्दी का खूब प्रचार हुआ। श्रीमती ललिता देवी हिन्दी की विदुषी थीं। अतः वे हिन्दी पढ़ाने में भी अपना अधिकांश समय बिताती थीं।

श्री वैद्यनाथ अय्यर अपनी मृत्यु तक मदुरा के हिन्दी प्रचार में सहयोग एवं सहायता प्रदान करते रहे। आप बड़े देशभक्त थे। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यों में उनकी सेवाएँ अमूल्य हैं। उन्होंने सबसे पहले अपने घर में हिन्दी को स्थान

---

१. आधार —

'हिन्दी प्रचारक—१९३२ जुलाई—पृष्ठ २३८

दिया। उनके परिवार के लोग भी हिन्दी विद्यार्थी बने। मदुरा की जनता में हिन्दी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने का पूरा श्रेय उनको ही दिया जा सकता है।

श्री अवधनन्दनजी ने अपने संस्मरण में यों लिखा है—

"मदुरा में हिन्दी-प्रचार के समर्थकों में स्व० श्री ए० वैद्यनाथ अय्यर का स्थान सबसे मुख्य था। उनका सारा परिवार चर्खा-भक्त तथा गाँधीवादी था। उनके घर में हिन्दी को एक विशेष स्थान प्राप्त था और बच्चे से लेकर बूढ़े तक हिन्दी से प्रेम करते थे और उसे सीखते थे।"[1]

श्री वैद्यनाथ अय्यरजी तथा उनके जैसे अन्य हिन्दी प्रेमियों के फलस्वरूप मदुरा उन दिनों हिन्दी प्रचार का एक प्रबल केन्द्र बना। सैकड़ों लोग हिदी की ओर आकृष्ट हुए।

सन् १९२८ में श्री रामानन्द शर्माजी हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की तरफ़ से मदुरा में नियुक्त हुए। हिन्दी प्रचार कार्य को अधिक व्यापक और लोकप्रिय बनाने में आपका प्रयत्न सराहनीय रहा है। मदुरा में उनको आये थोड़े ही दिन हुए कि वहाँ हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि श्री शर्माजी के लिए अकेले उन सब को हिन्दी सिखाने का भार संभालना कठिन हो गया। अतः एक स्थानीय सज्जन श्री सुन्दरेश्वर अय्यर, जो हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे, प्रचार कार्य में शर्माजी को सहायता पहुँचाते थे।

हिन्दी प्रचार क्षेत्र में मदुरा केन्द्र को जो सफलता मिली है, वैसी सफलता बहुत कम केन्द्रों को मिली है। वहाँ की विशेषता यह रही कि मदुरा के हिन्दी प्रेमियों ने सभा को आर्थिक भार से बिल्कुल मुक्त कर दिया था। प्रचार की दृष्टि से भी वह किसी केन्द्र से पिछड़ा नहीं रहा। स्थानीय हिन्दी प्रचार सभा, शहर के गण्यमान्य सज्जनों के मार्गदर्शन में सफलतापूर्वक कार्य करने में समर्थ हुई। वहाँ एक अच्छा पुस्तकालय भी स्थापित हुआ। हिन्दी प्रचारकों के लिए वह केन्द्र आदर्श रहा। इसका पूरा श्रेय धनी व त्यागधनी श्री वैद्यनाथ अय्यरजी व उनके अन्य मित्रों को है।

अनुकरणीय सेवा

मदुरा में श्रीमती ललिता देवी और श्रीमती जयलक्ष्मी देवी की हिन्दी सेवाओं से प्रसन्न होकर सुप्रसिद्ध आर्यसमाज मिशनरी के श्री केशव देव ज्ञानी ने अपनी दक्षिणी यात्रा शीर्षक लेख में उनके संबन्ध में भी लिखा था —

---

१. हिन्दी प्रचार का इतिहास (आन्ध्र)
तमिलनाडु में हिन्दी प्रचार'—पृष्ठ ६६

"दुर्भाग्यवश श्री ललिता देवीजी उन दिनों मदुरा में न थीं। श्री जयलक्ष्मी देवी जी से परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप वयोवृद्ध, उत्साही और अनन्य हिन्दी प्रेमिका हैं। आप जिस निस्वार्थ रीति से हिन्दी प्रचार में रत हैं, वह अत्यन्त अनुकरणीय है। आपकी लगन और आपकी कर्मण्यता हिन्दी देवी की उपासना में धार्मिक श्रद्धा का रूप धारण कर चुकी है।"

श्री केशवदेव ज्ञानी ने मदुरा के सौराष्ट्र-लोगों के हिन्दी प्रेम की भी तारीफ़ यों की थी :—

"सौराष्ट्र लोग ऐतिहासिक दृष्टि से शायद दक्षिणी नहीं हैं। इनका प्राचीन निवास स्थान गुजरात–काठियावाड़ ही होगा। परन्तु सदियों से यहाँ बस गये हैं। यहीं का भेष, यहीं की भाषा और नाम-धाम यहीं के हैं। मदुरा नगर में इनकी प्रधानता है। संख्या, शिक्षा, व्यापार अथवा ऐश्वर्य की दृष्टि से ये सम्माननीय हैं। हिन्दी प्रचार में तो इनका विशेष अनुराग है। और यदि यह कहा जाय कि उन्हीं की सहायता से मदुरा का विस्तृत हिन्दी प्रचार चक्र घूम रहा है तो कोई अयुक्ति न होगी।"[1]

तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा-शाखा-तिरुच्चि १९२३—

सन् १९२३ में हिन्दी प्रचार सभा मद्रास का एक शाखा कार्यालय तिरुच्चि में स्थापित हुआ। श्री अवधनन्दन उसके प्रथम संचालक नियुक्त हुए। सन् १९२८ में उनका स्थान-परिवर्तन मद्रास को हुआ। उनके स्थान पर क. म. शिवराम शर्माजी कुछ साल तक शाखा का कार्य संभालते रहे। इसी समय रामनाथपुरम् के राजा साहब को हिन्दी सीखने की इच्छा हुई और शिवराम शर्माजी सभा की सेवा से छुट्टी लेकर रामनाथपुरम् चले गये। उनके जाने के बाद शाखा का कार्य कुछ ढीला पड़ गया। सन् १९३० में तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा का पुनः संगठन किया गया और श्री रघुवरदयालु मिश्र उसके प्रथम मंत्री नियुक्त हुए। पहले इसका दफ्तर मदुरा में था, पीछे तिरुच्चि को बदल दिया गया। उस समय तक तमिलनाडु के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी का प्रचार आरंभ हो चुका था। तिरुनेलवेली, कोयंबत्तूर, मन्नारगुड़ी, सात्तूर, कुंभकोणम् आदि शहरों में न्यूनाधिक मात्रा में हिन्दी प्रचार का कार्य हो रहा था। तिरुनेलवेली में श्रीनागेश्वर मिश्र, सातूर में श्रीनटेश अय्यर, कुंभकोणम् में श्रीरामचन्द्र शास्त्री और मन्नारगुड़ी में श्रीकृत्तिवासजी बड़े उत्साह के साथ काम कर रहे थे। अन्य स्थानों में स्थानीय प्रचारकों द्वारा सराहनीय कार्य हो रहा था।

---

१. हिन्दी प्रचारक—नवम्बर १९३२

उत्तर से आये हुए निरीक्षक—

जब दक्षिण में हिन्दी प्रचार बढ़ा, तब से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से दक्षिण के कार्य का निरीक्षण करने के लिए आवश्यक व्यवस्था भी हुई। इस सिलसिले में सन् १९२३ में श्रीरामदास गौड़, १९२४ में श्री द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी और १९२५ में बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, निरीक्षण के लिए तमिलनाडु में आये थे।

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य का दान—

इस बात का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है कि दक्षिण के सुप्रसिद्ध कांची कामकोटि पीठाधीश जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य ने दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ श्रीटंडन जी को १००) का दान दिया था। यह एक दक्षिण भारतीय का हिन्दी प्रचार के लिए दिया हुआ सर्वप्रथम दान माना जाता है।

स्वदेशी-प्रदर्शनी—

स्वदेशी प्रदर्शनी के अवसर पर स्थानीय हिन्दी प्रेमी मंडल की ओर से एक हिन्दी पुस्तक भण्डार खोला गया। उससे हिन्दी प्रचार सम्बन्धी चित्र, कार्टून, चार्ट्स, हिन्दी पुस्तकें, पत्रिकाएँ आदि प्रदर्शित की गयीं।

हिन्दी-प्रेमी मण्डल—

१९३२ में हिन्दी प्रेमी मण्डल की स्थापना हुई। श्री रामय्यर एम. ए. मंत्री थे। १९१९ में वहाँ कार्यारम्भ हुआ। १९२२ में ट्रिची में शाखा कार्यालय खुला। श्री वाजपेयीजी के बाद श्री अवधनन्दन आये। १९२७ में शाखा कार्यालय बन्द हुआ। श्रीसिद्धगोपाल १९३२ सितम्बर में वहाँ नियुक्त हुए। वे मण्डल के अधीन काम करते थे। श्रीनटराजन्. बी. ए. (आनर्स) और डी. रामचन्द्रन् बी. ए. (आनर्स) ने भी हिन्दी पढ़ाने में मदद दी। नेशनल कालेज के प्रिंसिपल और ई. आर. हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक का सहयोग वहाँ के कार्य की वृद्धि में सहायक होता रहा। ई. आर. हाईस्कूल हिन्दी कार्य कलापों का केन्द्र रहा।

स्थानीय नेशनल कालेज के व्यवस्थापकों ने अपने हाईस्कूलों में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाया। मण्डल के अध्यक्ष आर. श्रीनिवास अय्यर (कालेज-समिति के सदस्य थे) प्रचार के लिए आर्थिक सहायता देते थे। दूसरे और तीसरे फार्मों में हिन्दी को स्थान दिया गया। सभा के सुयोग्य प्रचारक श्री सिद्धगोपाल जी वहाँ पढ़ाते थे। अगस्त १९३२ में पढ़ाई शुरू की गयी। हफ्ते में आठ पीरियड हिन्दी की पढ़ाई के नियत थे। स्व. प्रतापनारायण वाजपेयी की यादगार में वहाँ एक हिन्दी वाचनालय व पुस्तकालय भी स्थापित हुए थे।

प्रो. ए. रामय्यर की हिन्दी सेवा—

तमिलनाडु के हिन्दी प्रचार आन्दोलन की प्रगति में श्री ए० रमाय्यरजी की सेवाएँ अमूल्य हैं। आप हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, तमिल और मलयालम् के बड़े विद्वान् हैं। शिक्षण शास्त्र के आप अच्छे ज्ञाता हैं। शिक्षण संबन्धी कार्यों में सभा को आपकी सलाह एवं सहयोग समय-समय पर प्राप्त होता रहा है। हमारी दक्षिण यात्रा शीर्षक लेख में सुप्रसिद्ध आर्यसमाज मशनरी के श्री केशवदेव ज्ञानी ने श्री रामय्यर के संबन्ध में यों लिखा है—

"श्रीरामय्यरजी अत्यन्त सरल स्वभाव वाले, सादगी पसन्द और अदम्य सज्जन हैं। आपको त्रिचिनापल्ली के हिन्दी प्रचार का प्राण समझना चाहिए। आप ही के सहयोग और अथक उद्योग से हिन्दी प्रचार का कार्य त्रिची में सफलता पूर्वक चल रहा है।"[1]

हिन्दी विरोध—

उन दिनों तमिलनाडु में आज का जैसा हिन्दी विरोधी आन्दोलन नहीं था। तमिल भाषा-भाषियों के लिए हिन्दी सीखना कुछ कठिन अवश्य था। फिर भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा हिन्दी प्रचार में तमिलनाडु किसी भी दशा में पिछड़ा नहीं रहा। उस समय की स्थिति के संबन्ध में वहाँ के आदि हिन्दी प्रचारकों में अग्रणी पं० देवदूत विद्यार्थीजी ने, जो उत्तर से हिन्दी प्रचारार्थ दक्षिण में आये हुए थे, अपने संस्मरण में यों लिखा है—

"मैंने हिंन्दी प्रचार का काम दक्षिण भारत में तमिल प्रान्त के सब से दक्षिणी तिरुनेलवेली जिले से शुरू किया था। कर्नाटक, केरल और आन्ध्र का अनुभव तो मुझे बाद को प्राप्त हुआ। केरल की मलयालम्, कर्नाटक की कन्नड़ और आन्ध्र की तेलुगु भाषा की अपेक्षा तमिल दक्षिण की सब से पुरानी भाषा है और हिन्दी से उनकी अपेक्षा अधिक दूर है। उक्त तीनों भाषाओं में संस्कृत शब्दों की भरमार है; मगर तमिल में बहुत कम संस्कृत के शब्द व्यवहृत होते हैं। फलतः तमिलियों के लिए हिन्दी सीखना इतना आसान नहीं है। यह ठीक है कि आंध्र, कर्नाटक और केरल में हिन्दी का प्रचार अधिक तीव्रता से बढ़ा। किंतु तमिलियों की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए तमिल प्रदेश के हिन्दी प्रचार की रफ़्तार को धीमी नहीं कहा जा सकता।"

राजगोपाल आचारी और जमनालाल बजाज का भ्रमण—

सन् १९२९ जनवरी और फरवरी में करीब २५ दिन तक श्री राजगोपालाचारी

---

१. हिन्दी प्रचारक नवंबर १९३२

और श्री जमनालाल बजाज ने तमिलनाडु में हिन्दी प्रचारार्थ भ्रमण किया। वे चिदंबरम्, कुंभकोणम्, तिरुच्चि, राजपालयम्, मदुरा, विरुदनगर, तूतिकोरिन, तिरुनेलवेली, कोयंबत्तूर, तिरुप्पत्तूर, सेलम आदि केन्द्रों में गये। करीब ३४ सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने हिन्दी पढ़ने की आवश्यकता पर जोर देते हुए भाषण दिये। तमिलनाडु की जनता में उनके भ्रमण का बड़ा प्रभाव पड़ा। वहाँ के लोगों को हिन्दी की ओर आकृष्ट करने में उनके भाषण बहुत ही सहायक हुए। भ्रमण के सिलसिले में उन्होंने हिन्दी प्रचार के लिए धन-संग्रह भी किया।

तमिलनाडु के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी-प्रचार[1]—

सन् १९३२ से १९३७ तक तमिलनाडु के कई केन्द्रों में हिन्दी प्रचार कार्य सर्वव्यापक हो गया। जनता ने हिन्दी का सहर्ष स्वागत किया। स्कूल के अधिकारियों ने भी हिन्दी को पाठ्यक्रम में शामिल कराने की सद्भावना दिखाई। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा प्रचारकों की माँग पूरी करने का यथा संभव प्रयत्न करती रही।

उस समय के प्रमुख केन्द्र —

उन दिनों मदुरा, त्रिच्ची, सेलम् और कुंभकोणम् के अतिरिक्त अंबासमुद्रम्, गोपिच्चेट्टिप्पालयम्, तंजौर, तिरुनेलवेली, विष्णुपुरम्, तूतिकोरिन, डिंडिगल, चिदंबरम्, कोयंबत्तूर, विरुदुनगर, भद्रावती, श्रीरंगम्, तिरुप्पत्तूर, कल्लिडैक्कुरिच्ची आदि हिन्दी प्रचार के प्रमुख केन्द्र थे।

१. तंजौर —

ट्रिच्ची के बाद तंजौर में १९२० दिसम्बर में हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। स्व० रघुवरदयालु मिश्र वहाँ के सर्वप्रथम प्रचारक थे। उत्तर से उन दिनों हिन्दी प्रचारार्थ दक्षिण में आये हुए प्रचारकों में मिश्रजी चिरस्मरणीय व्यक्ति हैं। (आपका विशेष परिचय 'हिन्दी प्रचार के आधार-स्तंभ' वाले प्रकरण में दिया गया है।)

२. अंबासमुद्रम् (तिरुनेलवेली)—

तिरुनेलवेली जिला के तीर्थपति हाइस्कूल में सन् १९३५ से प्रथम चार फारमों में अनिवार्य रूप से हिन्दी पढ़ाई जाने लगी। एस. एस. एल. सी. के पाठ्यक्रम में ऐच्छिक रूप में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था भी हुई। श्री विश्वमित्र जी वहाँ प्रचार कार्य करने लगे। वे अब भी उस स्कूल में हिन्दी पंडित हैं।

---

(१) हिन्दी प्रचार के मासिक कार्य विवरण के आधार पर

३. गोपिच्चेट्टिप्पालयम् (कोयंबत्तूर जिला)—

स्थानीय हाइस्कूल के अधिकारियों ने १९३५ से स्कूल के पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से हिन्दी की पढ़ाई आरम्भ करने का प्रबन्ध किया। श्री विश्वनाथन् जी वहाँ के प्रचारक थे। श्री वेंकिटनारायण शर्मा का सहयोग एवं सहायता हिन्दी प्रचार की वृद्धि में अत्यन्त सहायक रही है।

४. विष्णुपुरम्—

स्थानीय हिन्दी प्रेमी मंडल की ओर से सन् १९३२ से हिन्दी का प्रचार सफलता के साथ हुआ।

५. चिदंबरम्—

सभा के सुयोग्य प्रचारक श्री नागेश्वर मिश्रजी के प्रयत्न से चिदंबरम् हिन्दी प्रचार का एक प्रमुख केन्द्र रहा। अण्णामलै यूनिवर्सिटी के अधिकारियों के सहयोग से वहाँ के विद्यार्थियों में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न करने में श्री मिश्रजी को सफलता मिली। स्थानीय वकीलों ने भी हिन्दी क्लास में भर्ती होकर हिन्दी सीखी। स्थानीय रामस्वामी हाईस्कूल तथा पच्चय्यप्पा हाईस्कूल में हिन्दी-वर्ग चलाने की व्यवस्था की गयी थी।

६. डिंडिगल (दिण्डुक्कल)—

श्री० आर० सुन्दरेशन् बी० ए० ने डिंडिगल में सन्तोषजनक कार्य किया। हिन्दी के प्रति जनता में सद्भावना पैदा करने में श्री सुन्दरेशन् का प्रयत्न सराहनीय रहा। सैकड़ों विद्यार्थियों ने हिन्दी पढ़ी।

७. विरुदुनगर—

विरुदुनगर के प्रचारक श्री बी० एम० रामस्वामी थे। सन् १९३० में विरुदुनगर में हिन्दी का प्रचार कार्य आरंभ हुआ था। सभा के उत्साही प्रचारक श्री बी० एम० रामस्वामी की कार्यकुशलता से विरुदुनगर हिन्दी प्रचार का एक आदर्श केन्द्र बना। श्री वी० वी० षणमुख नाड़ार तथा उनके सहयोगियों ने हिन्दी के प्रचार में बड़ी मदद पहुँचायी। वहाँ सैकड़ों लोग हिन्दी की ओर आकृष्ट हुए। १९३१ में स्थानीय क्षत्रिय विद्याशाला हाइस्कूल तथा उसकी शाखाओं में पहले फार्म से तीसरे फार्म तक हिन्दी की अनिवार्य पढ़ाई की व्यवस्था हुई।

८. भद्रावती—

भद्रावती में श्रीकृष्ण दीक्षित तथा श्रीमती दीक्षित ने स्थानीय सज्जनों में हिन्दी के प्रचार कार्य में बहुत उत्साह दिखाया। उनके प्रयत्न से वहाँ अच्छा कार्य हुआ।

९. श्रीरंगम्—

श्रीरंगम् में श्री एन. कृष्णस्वामी अय्यंगार के प्रयत्न से हिन्दी प्रचार का कार्य सफल रहा।

श्री कृष्णस्वामी एक बड़े हिन्दी प्रेमी प्रतिष्ठित सज्जन थे।

१०. तिरुप्पत्तूर—

स्थानीय सरकारी हाइस्कूल के प्रधान अध्यापक श्री एम. सी. सुब्बप्पा बी० ए०, एल. टी. ने बड़ी लगन के साथ हिन्दी प्रचार कार्य सुसंगठित रूप से चलाया। श्री सुब्बप्पा हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे। वहाँ के कार्य की प्रगति में उनकी अमूल्य सेवाएँ स्मरणीय हैं।

११. कोयंबत्तूर —

उन दिनों कोयंबत्तूर में श्री के. वी. रामनाथन् हिन्दी प्रचार कर रहे थे। वहाँ की जनता में हिन्दी की जड़ जमाने में श्री रामनाथन् और श्री सदाशिवन् की सेवाएँ उल्लेखयोग्य हैं। कोयंबत्तूर की हिन्दी प्रेमी जनता उन दोनों की सेवाएँ नहीं भूल सकतीं।

१२. कल्लिडैक्कुरिची—

श्री के. आर. कृष्णय्यर कल्लिडैक्कुरिची में प्रचार कार्य कर रहे थे। स्थानीय 'गीर्वाण परिपालिनी सभा' के भवन में हिन्दी वर्ग चलता था। स्व. वी. वी. एस. अय्यर के 'भरद्वाज आश्रम' में गुरुकुल में भी हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हुई थी। श्री कल्लपिरान वहाँ हिन्दी प्रचार का कार्य बड़े उत्साह के साथ करते थे।

१३. श्रीमुत्तय्यादास—तूतिकोरिन—

सभा के सुप्रसिद्ध प्रचारक श्री. स्व. भारतसंतानम् मुत्तय्यादास के निरंतर प्रयत्न के फलस्वरूप तूतिकोरिन उन दिनों हिन्दी प्रचार सभा का एक प्रमुख केन्द्र रहा। श्री मुत्तय्यादास अपनी देशभक्ति, लगन, कर्तव्य-निष्ठा आदि गुणों से तूतिकोरिन की जनता के आदर पात्र बने। तूतिकोरिन के घर-घर में हिन्दी का सन्देश पहुँचाने में श्री मुत्तय्यादास सफल हुए। वे हिन्दी के पीछे पागल थे। वर्षों वे वहाँ कार्य करते रहे। उनकी सेवाएँ सभा के इतिहास में विशेष रूप से उल्लिखित रहेंगी। तूतिकोरिन की महिलाओं में हिन्दी प्रचार करने में श्रीमती देशोद्धारिका शारदाबाल तथा श्रीमती गणेशी बाई देवी की सेवाएँ बड़े महत्त्व की रही हैं। आप दोनों के प्रयत्न से तूति-कोरिन की महिलाओं ने हिन्दी को अपनाया। उस केन्द्र से सभा की विभिन्न परीक्षाओं में संतोषजनक संख्या में प्रतिवर्ष छात्र-छात्राएँ उत्तीर्ण होती रही हैं।

सन् १९२९ में दक्षिण के भ्रमण के सिलसिले में श्री जमनालाल जी बजाज तूतिकोरिन गये थे। वहाँ की जनता ने उनको ६००) रु. की थैली हिन्दी प्रचारार्थ भेंट की थी। वहाँ के कार्य की सफलता देख कर उन्होंने संतोष प्रकट किया था।

१४. सेलम—

सेलम भी उन दिनों हिन्दी प्रचार का एक मुख्य केन्द्र था। मदुरा के बाद तमिलनाडु में सेलम का नंबर आता है। वहाँ सन् १९१९ में हिन्दी प्रचार का कार्य आरंभ हुआ। १९१९ से लेकर १९३२ तक वहाँ का कार्य मन्दगति से चल रहा था। लेकिन जब से (१९३२ में) सभा के उत्साही प्रचारक श्री. टी. एस. रामकृष्णन् की वहाँ नियुक्ति हुई तब से वहाँ का कार्य तीव्र गति से बढ़ा। उन्होंने उक्त केन्द्र के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी प्रचारक में यों लिखा था—"सेलम में हिन्दी का श्री गणेश उसी समय हुआ था जब स्थानीय मुनिसिपालिटी ने सन् १९१९ में अपने कालेज के सभी वर्गों में हिन्दी को अनिवार्य रूप से पढ़ाने का निश्चय किया था।

पहले पहल श्री. व्यास जी❋ प्रचारार्थ यहाँ भेजे गये। उनके बाद १९२१ तक यहाँ श्री अवधबिहारी लाल जी और वेकिंटरमण अय्यंगार जी कार्य करते रहे।

सेलम के प्रमुख प्रचारक—

१९२२ के अक्टोबर महीने में श्री. टी. कृष्णस्वामी जी यहाँ प्रचारक के स्थान पर नियुक्त हुए। अत्यंत उत्साह तथा परिश्रम के साथ उन्होंने सात वर्ष तक काम किया। उनके समय में दक्षिण हिन्दुस्तान के हिन्दी संसार में सेलम का स्थान अव्वल दर्जे के केन्द्रों में था। उन सात वर्षों के अन्दर यहाँ से ५०० विद्यार्थी सभा की परीक्षाओं में बैठे जिनमें अधिकांश विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। कृष्णस्वामी जी कालेज के अलावा बाहरी सज्जनों को भी हिन्दी पढ़ाते थे। श्री कृष्णस्वामी जी ने कर्नाटक में भी हिन्दी का सफलता पूर्वक प्रचार किया है जिसका उल्लेख उस प्रकरण में किया गया है।

नेताओं का निरीक्षण—

उसी समय उत्तर भारत से श्री कोतवाल जी, सेठ जमनालाल बजाज जी, श्रीमती कस्तूर बा गांधी आदि बड़े-बड़े नेताओं ने यहाँ पधार कर यहाँ की जनता और विद्यार्थियों में हिन्दी के प्रति प्रेम व उत्साह खूब बढ़ाया।

❋ व्यास जी आर्यसमाजी थे। उनके द्वारा तमिलनाडु में पहले पहल राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार हुआ, ऐसा माना जाता है।

हिन्दी दिवस—

गत १९२८ दिसंबर में पहला 'हिन्दी दिवस' ट्रिची नेशनल कालेज के प्रोफेसर श्री रामय्यर की अध्यक्षता में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। उसके बाद श्री कृष्णस्वामी छुट्टी पर गये। इसलिए १९२९ और १९३० में यहाँ किसी तरह का कार्य नहीं हुआ। यद्यपि श्री. अवधनन्दन जी और चन्द्रहासन जी ने एक-दो महीने तक काम किया तो भी यहाँ से सभा की परीक्षाओं में कोई भी नहीं बैठा था।

सेलम की सफलता—

सेलम के हिन्दी प्रचार कार्य की सफलता तथा वहाँ के प्रचारक श्री. टी. एस. रामकृष्णन् की सच्ची लगन और निस्वार्थ सेवा पर प्रसन्न होकर श्री. केशवदेव ज्ञानी आर्यसमाज मिशनरी ने "सेलम यात्रा" शीर्षक एक लेख हिन्दी प्रचार के सितंबर १९३२ के अंक में लिखा था। उसके नीचे उद्धृत अंश से श्री. टी. एस. रामकृष्णन् की कार्यशक्ति, स्वभाव आदि का परिचय मिल सकता है।

"आज से ५०-६० वर्ष पूर्व आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने गुजराती होकर भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी भाषा में लिखी तब शायद ही किसी को यह विचार आया होगा कि समय गुज़रने पर यही हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा बनने का दावा करेगी। अस्तु, आर्यसमाजी होने के कारण हिन्दी भाषा से प्रेम स्वाभाविक है और विशेष कर के दक्षिण-भारत में इसके प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रचार को देख कर हृदय बल्लियों उछलता है।

अभी पिछले दिनों में सेलम 'हिन्दी प्रेमी मंडल' के प्रथम वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

एक छोटे से युवक श्रीयुत् रामकृष्णन् के अपूर्व उत्साह को देख कर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई। सैकड़ों विद्यार्थी, युवक तथा युवतियाँ न केवल हिन्दी सीखती हैं, अपितु बड़े अभिमान से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओं में सम्मिलित होकर अपने अदम्य तथा भगीरथ निश्चय का जीवित प्रमाण उपस्थित करता है।

दो आदर्श हिन्दी-सेवी—

सेलम में सबसे प्रथम परिचय श्रीमान् शामन्ना जी तथा उनकी गुणवती धर्मपत्नी श्रीमती ललिता बाई से हुआ। गुणवती विशेषण मर्यादा के लिए नहीं लगाया है। वस्तुतः उनमें इतने गुण हैं कि यह शब्द पूर्णतया वहीं सार्थक समझना चाहिए। स्त्रियाँ जिन ललितकलाओं के लिए प्रसिद्ध होनी चाहिएँ, वे सब उनमें अतिशय रूपेण वर्तमान हैं। चित्रकला, लेखन, गान, वाद्य और अन्य उपयोगी कारीगरी

में तो वे पूर्ण निष्णात हैं। हिन्दी-प्रेम उनकी रग-रग में है और हिन्दी इतनी स्वच्छ और मुहावरेदार बोलती हैं कि हम उत्तरियों को भी आश्चर्य होता है।

स्थानीय हिन्दी प्रेमी मंडल प्रधान श्रीमान् एस० कृष्णय्यर हैं। आप अत्यंत ही सरल स्वभाव और अदम्य सज्जन हैं और यह आपके निस्वार्थ हिन्दी-प्रेम का ही परिणाम है कि हिन्दी प्रेमी मंडल, सेलम इतना सफल हुआ है। आप के निरंतर प्रयत्नों से हिन्दी ने सेलम निवासिओं के हृदयों में सुरक्षित स्थान प्राप्त कर लिया है।

टी० एस० रामकृष्णन्—

"सेलम के हिन्दी प्रचारक टी० एस० रामकृष्णन् जी हैं। आप अभी बहुत ही अल्प वयस्क युवक हैं। परंतु आप ने जितना काम किया है उससे वस्तुतः आश्चर्य होता है। आप की सफलता का रहस्य अथक परिश्रम और हार्दिक हिन्दी प्रेम में है। दिन भर स्कूल और कालिज में काम करके अतिरिक्त समय में चार पाँच अन्य वर्ग लेना सचमुच शरीर को थकाने और दिमाग को गड़बड़ाने के लिए पर्याप्त है। और निस्सन्देह उक्त प्रचारक का स्वास्थ्य शिथिल हो रहा है। प्रचारक तथा प्रेमी मंडल दोनों के लिए हितकार है कि श्री रामकृष्णन् जी अपने कार्यभार को कुछ समय के लिए हल्का कर दें।"[1]

स्कूलों में हिन्दी—

सन् १९३२ से तमिलनाडु के हिन्दी प्रचार के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू होता है। शहरों और गाँवों में हिन्दी प्रचार कार्य के अतिरिक्त ज़िला बोर्डों और नगरपालिकाओं के अधीनस्थ हाईस्कूलों में हिन्दी को स्थान दिलाने की दिशा में भी प्रयत्न शुरू हुआ। उसके फलस्वरूप मदुरा के तीन हाईस्कूलों में (मदुरा कालेज हाईस्कूल, सेतुपति हाईस्कूल और सौराष्ट्र हाईस्कूल,) मायावरम् और तिरुपत्तूर के म्युनिसिपल हाईस्कूलों, ट्रिची के नेशनल कालेज और तंजौर रामनाडु कमुदी आदि के ज़िला-बोर्ड हाईस्कूलों, के० वी० शाला हाईस्कूल, विरुदनगर पी० के० एन० हाईस्कूल तथा तिरुमंगलम् हिन्दू-नाडार हाईस्कूल शिवकाशी में हिन्दी का प्रवेश हो सका। टाऊन हाईस्कूल, कुंभकोणम् में तीन वर्ष पहले से ही हिन्दी 'सी' ग्रूप में पढ़ाई जाने लगी थी। आरंभ में स्कूलों में हिन्दी को स्थान देने का प्रयत्न करने वाले अधिकारी विशेष अभिनन्दन के पात्र हैं।

महाविद्यालय—

सन् १९३३ में हिन्दी प्रचारकों को तैयार करने के लिए सर्व प्रथम हिन्दी प्रचारक विद्यालय मदुरा में खोला गया।

---

(१) हिन्दी प्रचारक सितंबर १९३२ पृष्ठ २९४.

नये प्रचारक और नये केन्द्र—

१९३२—३३ में सभा के अधीन ३८ प्रचारक तमिलनाडु में काम कर रहे थे। तिरुनेलवेली, अंबासमुद्रम्, सत्यमंगलम, पोल्लाची, अभिरामम्, पेरियकुलम, मायवरम्, शियाली (शीर्काषी) आदि नये केन्द्रों में इसी वर्ष हिन्दी का प्रचार कार्य आरंभ किया गया। १५ वर्षों के निरंतर प्रयत्न के बाद तमिलनाडु में पचासों हिन्दी प्रचारक तैयार हो गये और भिन्न-भिन्न केन्द्रों में प्रचार कार्य में लग गये। फिर भी कई जगहों से हिन्दी-प्रचारकों की माँगें आती रही। सभा एकदम सब की माँगें पूरी करने में असमर्थ रही।

१९३२ से १९४२ तक तमिलनाडु के कोने-कोने में हिन्दी का सन्देश फैलाने में श्री रघुवरदयालु मिश्र जी के नेतृत्व में सैकड़ों प्रचारकों ने जी-जान से परिश्रम किया। मिश्र जी की कार्य-संचालनशक्ति के फलस्वरूप तमिलनाडु के कार्य में आशातीत वृद्धि हुई।

सन् १९४२ में मिश्र जी का स्थान परिवर्तन मद्रास को हुआ और उनके स्थान पर पं. अवधनन्दन जी 'तमिलनाडु-शाखा' त्रिची के मंत्री नियुक्त हुए।

सन् १९४२ का प्रभाव—

सन् १९४२ के देशव्यापी स्वराज्य आन्दोलन का प्रभाव दक्षिण के हिन्दी प्रचार कार्य पर भी पड़े बिना न रह सका। देश में जब 'भारत छोड़ो' वाला ज़बरदस्त आन्दोलन शुरू हुआ, तो हिन्दी प्रचारक भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उसमें भाग लेने लगे। जनता फिर एक बार उठने की चेष्टा करने लगी। जनता की उत्कट स्वतंत्र—तृष्णा को दबाने के लिए सरकारी 'दमन-चक्र' पूरे ज़ोरों पर चलने लगा। देश का चिर स्वप्न सफल हुआ। १९४७ में देश स्वतंत्र हुआ।

१९४२ से १९४७ तक का समय हिन्दी प्रचार के लिए अत्यंत अनुकूल रहा। जब जनता में देशीयता की तरंगें उठने लगीं तो राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति भी लोगों का उत्साह दुगुना बढ़ा। इस बीच में सैकड़ों केन्द्रों में सराहनीय कार्य हुआ। तमिलनाडु में हिन्दी परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ी। नये-नये हिन्दी प्रचारक कार्य-क्षेत्र में उतरे।

हिन्दी प्रचारक विद्यालय—

तमिलनाडु में कई स्थानों में हिन्दी प्रचारक विद्यालय खुले। १९४२ में कुंभ-कोणम् के पास दारासुरम् में हिन्दी प्रचारक विद्यालय खुला। बाद को महेन्द्रपुरम्, शिवगंगा, मन्नारगुड़ी, कोल्लुमांगुड़ी, तिरुची आदि स्थानों में उसका सिलसिला चलता रहा। सैकड़ों प्रचारक इन विद्यालयों में तैयार हुए। श्री रामानन्द शर्मा, श्री व्रज-नन्दन, पं. अवधनन्दन, क. म. शिवराम शर्मा, जी. सुब्रह्मण्यम, चन्द्रमौली, आदि

विद्यालयों के प्रधान अध्यापक रहे हैं। श्री टी० एस० रामकृष्णन्, श्री पी. के० केशवन् नायर, श्री कटील गणपति शर्मा, श्री नारायणदेव आदि प्रमुख प्रचारकों ने भी उनमें से कुछ विद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया है। इसके पहिले सन् १९३७-३८ में कोयंबत्तूर में 'हिन्दुस्तानी इन्स्टिट्यूट' नाम से प्रचारक विद्यालय का अल्पकाल-कोर्स (Short time course) के दो सत्र चले थे जिनमें उस समय की मद्रास सरकार की माँग की पूर्ति करने के लिए अध्यापक तैयार किये गये थे। विद्यालय में श्री व्रजनन्दन जी तथा श्री भालचन्द्र आपटे ने प्रधान अध्यापक के पद पर कार्य किया था। इन विद्यालयों से शिक्षित होकर सैकड़ों प्रचारक तमिलनाडु के कोने-कोने में पहुँच गये। उसके पहले तक हिन्दी का प्रचार प्रधान रूप में नगरों में ही होता रहा था। लेकिन १९४७ तक तमिलनाडु के देहातों में भी हिन्दी का सन्देश लेकर प्रचारक पहुँच गये थे।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद तमिलनाडु की जनता में हिन्दी के प्रति अनुराग बढ़ा। लोग अपूर्व उत्साह के साथ हिन्दी पढ़ने के लिए आगे-आगे आने लगे। हिन्दी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी। सभी स्कूलों में हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए।

संगठन—

प्रान्तीय सभा सन् १९४२ से संगठन की ओर विशेष ध्यान देने लगी। लोगों के बढ़ते हुए उत्साह से लाभ उठाकर सभा ने अपने कार्य का जबरदस्त संगठन किया। संगठकों की नियुक्ति हुई। प्रचारकों तथा विद्यार्थियों को इससे बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सम्मेलनों की आयोजना द्वारा कार्य को और भी विस्तृत और स्थायी बनाने का प्रयत्न किया गया। श्री जी. सुब्रह्मण्यम्, श्री ए. चन्द्रमौली, श्री वेंकिटाचारी, श्री कृष्णमूर्ति, श्री तंकप्पन आदि संगठन के क्षेत्र में बड़ी दक्षता के साथ कार्य करते रहे हैं।

सभा-भवन—

श्री अवधनन्दन के प्रयत्न से डालमियाँ सिमेंट कंपनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री जे० डालमियाँ से सभा-भवन के निर्माण के लिए तीस हजार रुपये प्राप्त हुए। उस रकम से एक एकड़ जमीन खरीदी गयी और उसमें सभा-भवन बनवाया गया। आज तमिलनाडु का हिन्दीप्रचार कार्यालय तथा विद्यालय वहीं चलते हैं।

उच्च शिक्षा की योजना—

तमिलनाडु के कुछ प्रचारकों को प्रतिवर्ष उत्तर भारत की किसी शिक्षण संस्था में भेज कर हिन्दी की उच्च शिक्षा दिलाने की व्यवस्था हुई। ऐसे प्रचारकों को छात्रवृत्ति देने के लिए श्री जयदयालजी डालमियाँ ने तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा को

वार्षिक चार हजार रुपये देने का वादा किया। तीन वर्ष तक हर साल छः प्रचारक इस आयोजना के अनुसार उच्च शिक्षा के लिए उत्तर में जाते रहे। लेकिन बाद को यह कार्य अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् के द्वारा संभाला जाने लगा।

महिलाओं की सेवाएँ—

अन्य प्रान्तों की तरह तमिलनाडु की देवियों ने भी हिन्दी को हृदय से अपनाया है। सभी नगरों में हिन्दी महिला-मंडलों की स्थापना हुई है। इन संस्थाओं के द्वारा हिन्दी के प्रचार एवं प्रगति में महत्वपूर्ण सेवाएँ अर्पित हुई हैं। हजारों देवियाँ आज हिन्दी के क्षेत्र में हिन्दी की सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बनाए हुई हैं।

प्रमुख सहायक—

तमिलनाडु के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने में हज़ारों गण्यमान्य हिन्दी प्रेमी सज्जनों तथा महान् नेताओं का सहयोग एवं सहायता निरन्तर सभा को प्राप्त होती रही है। श्री स्व. वैद्यनाथ अय्यर (मदुरा), श्री स्व. श्रीनिवास अय्यर (तिरुची), स्व. श्री गंगानायडू (कोयंबत्तूर), श्री सरदार वेदरत्नमपिल्लै, श्री डा. महालिंगम्, श्री ए. रामय्यर आदि हिन्दी प्रचार-आन्दोलन के प्रबल सहायकों के रूप में चिरस्मरणीय हैं।

श्री रघुवरदयालु मिश्रजी दस वर्ष तक तमिलनाडु प्रान्तीय सभा के मंत्री की हैसियत से तमिल जनता में हिन्दी की सेवा करते रहे। सन् १९४२ में वे केन्द्र सभा-कार्यालय में संयुक्त मंत्री नियुक्त हुए। उनके स्थान पर वहाँ सभा के सुयोग्य कार्यकर्ता श्री अवधनन्दन की नियुक्ति हुई। श्री अवधनन्दन के अथक परिश्रम के फलस्वरूप थोड़े ही वर्षों में तमिलनाडु का प्रचार पूर्वाधिक व्यापक और सुसंगठित हुआ।

बाबू राजेन्द्र प्रसाद के विचार—

बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी ने अपनी दक्षिण-यात्रा के सिलसिले में हिन्दी प्रचार संबन्धी जो प्रत्यक्ष परिचय पाया था उसका उल्लेख करते हुए अपनी आत्मकथा में तमिलनाडु के हिन्दी प्रचार की प्रगति पर भी प्रकाश डाला था। तत्संबन्धी उनके विचारों से पाठकों को तमिलनाडु के हिन्दी प्रचार की उस समय की गति-विधि की कुछ जानकारी मिल सकती है। उन्होंने यों लिखा है—

"दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का काम १९१८ से ही, महात्मागाँधी जी की प्रेरणा से हो रहा है। तमिलप्रदेश में भी हज़ारों स्त्री-पुरुष ऐसे हो गये हैं जो, हिन्दी बोल और समझ लेते हैं। मैं जिस बड़े शहर में पहुँचता, हिन्दी प्रचारक से मुलाकात हो जाती। कुछ तो वहाँ के ही निवासी थे जिन्होंने हिन्दी सीख ली है; कुछ उत्तर-भारत के रहने वाले हैं जो बिहार तथा युक्तप्रान्त (आज का उत्तर प्रदेश) से

जाकर वहाँ उस काम में लगे हुए हैं। वहाँ के लोगों का हिन्दी के प्रति प्रेम और श्रद्धा अवर्णनीय है। हिन्दी प्रचार का काम विशेष कर पढ़े-लिखे लोगों में ही अधिक हुआ है। स्त्रियों ने इसमें उतना ही रस लिया है जितना पुरुषों ने। हिन्दी पाठ-शालाओं में बूढ़े और बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष, एक साथ शिक्षा पाते हैं। जब मैं एक बार और दक्षिण में गया था तो मैंने देखा था कि एक ही सभा में पिता और पुत्र, माता और पुत्री को हिन्दी परीक्षा पास करने के प्रमाण पत्र एक साथ ही दिये गये थे। यह सिलसिला अभी तक जारी है। लाखों लोगों ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तो भी हिन्दी में भाषण करना अभी संभव न था; क्यों कि हजारों की संख्या में जो लोग जमा होते उनमें हिन्दी समझने वाले थोड़े ही होते। अंग्रेजी जानने वालों की संख्या हिन्दी जानने वालों से कहीं ज़्यादा होती; तो भी सारी जनता में उनकी गणना भी बहुत थोड़ी ही होती। इसलिये, मैं चाहे अंग्रेज़ी में बोलता या हिन्दी में, सभा में उपस्थित सौ आदमियों में प्रायः ९० ऐसे होंगे ही, जो न हिन्दी समझते होंगे न अंग्रेज़ी, और उनके लिए भाषण का भाषान्तर हर हालत में आवश्यक होता।

तमिलनाडु, केरल और आन्ध्र प्रदेशों में बहुत ज़बरदस्त स्वागत हुआ। प्रचार कार्य भी काफ़ी हुआ।"[१]

प्रमुख कार्यकर्ता—

तमिलनाडु के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को सफल बनाने में अबतक वहाँ के हज़ारों कर्मनिष्ठ, सुयोग्य कार्यकर्ताओं का योगदान रहा है। उनमें सर्व श्री टी० कृष्णस्वामी, टी० एस० रामकृष्णन्, बी० एम० रामस्वामी आदि की सेवाओं का उल्लेख पहले हो चुका है। उनके अतिरिक्त तमिलनाडु के प्रचार-कार्य में प्रगति लाने में बड़ी त्याग-निष्ठा के साथ तत्पर रहनेवाले प्रथमगणनीय कार्यकर्ताओं में सर्वश्री ग० सुब्रह्मण्यम्, एस० चन्द्रमौली, वेंकिटाचारी तंकप्पन, कृष्णमूर्ति, बी० एम० कृष्णस्वामी आदि के नाम विशेष उल्लेख-योग्य हैं। वे आज भी उस क्षेत्र में पूर्ववत् कार्यसंलग्न हैं। प्रचार, संगठन, शिक्षण आदि के सभी कार्यों में वे प्रथम श्रेणी के कार्यकर्ता माने जाते हैं। श्री अवधनन्दन के बाद प्रान्तीय मंत्री के पद पर श्री० एस० आर० शास्त्री, श्री एस० महालिंगम् तथा श्री चन्द्रमौली ने बड़ी दक्षता के साथ कार्य किया है। सन् १९६१ अक्टूबर में तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा की रजत-जयन्ती मनायी गयी। माननीय विष्णुराम मेधी, राज्यपाल, मद्रास ने जयन्ती-समारोह सम्मेलन का उद्घाटन किया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री दिनकर की

---

१ 'आत्मकथा' से सादर उद्धृत।

अध्यक्षता में सम्मेलन का कार्यक्रम सुसंपन्न हुआ था। जयन्ती-उत्सव के सिलसिले में 'अखिल भारतीय भाषा-समारोह' का भी आयोजन किया गया था, जिसकी अध्यक्षता हिन्दी के सुविख्यात साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने ग्रहण की थी। इस सिलसिले में तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा ने करीब एक लाख रुपये का धन-संग्रह भी किया था। इन दिनों श्री चन्द्रमौली केन्द्र-सभा में शिक्षा-मंत्री नियुक्त हुए हैं। उनके स्थान पर श्री पी० वेंकटाचल शर्मा वहाँ प्रान्तीय मंत्री नियुक्त हुए हैं। श्री शर्माजी सभा के पुराने सुयोग्य कार्यकर्ताओं में से हैं। वे कर्नाटक के भी प्रान्तीय मंत्री रह चुके हैं। अपने अनुभव और कार्य-कुशलता के बल पर वे तमिलनाडु हिन्दी प्रचार सभा को पूर्वाधिक प्रगतिशील बनाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं।

प्रकरण २०

दक्षिण की हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ

दक्षिण के विभिन्न केन्द्रों में जब हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या बढ़ने लगी, तो सभा के संचालकों को इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि उनके हिन्दी ज्ञान को बनाये रखने के लिए सभा की ओर से एक हिन्दी पत्रिका चलायी जाय। प्रचारकों तथा विद्यार्थियों से भी इस बात की माँग पेश हुई थी। प्रचारक लोग दूसरे केन्द्रों के प्रचार कार्य से परिचित होने तथा अपने-अपने केंद्र के कार्यविवरण को दूसरों को सुनाने की चाह रखते थे। साहित्यिक रुचि रखनेवाले प्रचारक पत्रिका में लेख, कहानियाँ, कवितायें आदि लिखने के भी इच्छुक थे।

'हिन्दी प्रचारक'—

सभा के संचालकों ने इस प्रकार की एक पत्रिका को हिन्दी प्रचार को व्यापक एवं सुसंगठित बनाने के लिए सर्वोत्तम साधन समझा। सन् १९२३ जनवरी में 'हिन्दी प्रचारक' नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। दक्षिण के हिन्दी प्रचार आंदोलन के प्रबल साधन के रूप में उसका महत्वपूर्ण स्थान है।

'हिन्दी प्रचारक' का प्रथम अंक बहुत ही सुन्दर और आकर्षक निकला था। उसके सादे आवरण के मुखपृष्ठ पर भारतमाता का एक चित्र छपा हुआ था। भारतमाता हिन्दी-हिंदुस्तानी का झंडा लिये हुए थी। हिन्दी भारत की वाणी है यही उसका संकेत था और उसके भीतरी पृष्ठ पर पत्रिका के ये तीन मुख्य उद्देश्य लिखे हुए थे—

(१) दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रचार करना।

(२) दक्षिण के आंध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक प्रान्तों में ज़ोर-शोर से शान्तिपूर्वक हिन्दी प्रचार का आंदोलन और संगठन करना।

(३) दक्षिण भारत के सरकारी तथा देशी राज्यों के स्कूल, कालेजों, विश्व-विद्यालयों और जातीय संस्थाओं तथा समाजों (प्रान्तीय कार्यों को छोड़कर) के देशव्यापी कार्यों में हिन्दी-हिन्दुस्तानी को उचित स्थान दिलाना।

'हिन्दी प्रचारक' का आदर्श—

'हिन्दी प्रचारक' के उपर्युक्त उद्देश्यों को सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ने पर यह बात ज्ञात हो सकती है कि इन उद्देश्यों के साथ हिन्दी के स्वरूप, हिन्दी और मातृभाषा की

व्यवहारसीमा, और शिक्षणालयों में हिन्दी का प्रवेश कराने की इच्छा और शान्ति-पूर्वक याने धर्म-भेद, जाति-भेद, प्रान्त-भेद अथवा भाषा-भेद के संघर्ष के बिना हिन्दी का प्रचार करने के आदर्श बंधे रहते थे। इन आदर्शों को सामने रखते हुए उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 'सभा' सदा जागरूक रही है।

'हिन्दी प्रचारक' को अपने जीवन के प्रारंभिक काल में कई विषम परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा। उन्नति को प्राप्त होने के मार्ग में प्रत्येक वस्तु का अनेक अवस्थाओं से गुज़रना स्वाभाविक होता है और उसे प्रायः अनेकों अप्रत्याशित बाधाओं का सामना भी करना होता है। 'हिन्दी प्रचारक' के संबंध में भी यह बात लागू होती है।

'सभा' के प्रमुख विद्वान कार्यकर्ता पं० हृषीकेश शर्माजी १९२३ से २६ तक उसका संपादन करते रहे। उन्होंने 'हिन्दी प्रचारक' को लोकप्रिय बनाने और उसे एक मासिक पत्र के उपयुक्त भावों और लक्षणों से सजाने का सफल प्रयत्न किया। उनकी लगन, योग्यता और सुरुचि से 'हिन्दी प्रचारक' आरंभ से ही सुन्दर ढंग से निकलता रहा। वह कुछ समय तक पाक्षिक पत्र के रूप में भी निकला था।

'प्रचारक' की दूसरी अवस्था १९२७ से शुरू हुई जबकि उसका संपादन पं० देवदूत विद्यार्थी करने लगे। पं० शर्माजी के संपादनकाल में दक्षिण भारतीयों को उत्तर भारतीयों के लेख पढ़ने को खूब मिलते थे। १९२७ से 'प्रचारक' के द्वारा दक्षिण भारतीयों को भी लेख, कहानी और कवितायें लिखने में विशेष प्रोत्साहन दिया गया।

१९२८ में 'प्रचारक' की तीसरी अवस्था शुरू हुई। उसके पहले हिन्दी विद्यार्थियों के हिन्दी-ज्ञान की वृद्धि करने में ही होता था। बाद को उसे प्रचार सम्बन्धी आन्दोलन का एक प्रबल साधन बनाने की ओर सभा का ध्यान गया और इस कारण उसमें एक अंग्रेजी विभाग भी जोड़ा गया। इसका श्रेय श्री डब्ल्यू. पी. इग्नेशियस को ही है, जो उन दिनों सभा के प्रचार-मंत्री थे। श्री इग्नेशियस और मोटूरी सत्यनारायण जी के संपादकत्व में 'हिन्दी प्रचारक' अंग्रेजी विभाग के साथ बड़ी सज-धज से निकलने लगा। यह स्मरण रखने की बात है कि अपने पाँच वर्ष समाप्त करने पर १९२८ में 'प्रचारक' पूरे अर्थ में दक्षिण भारतीयों की 'पत्रिका' हो गया। तब से दक्षिण भारतीयों के लेख, कहानियाँ, कविताएँ आदि हो उसमें पर्याप्त मात्रा में निकलने लगीं।

'सभा' की सेवा से निवृत्त होने के बाद १९३१ से 'प्रचारक' का संपादन 'सभा' के प्रधानमन्त्री पं. हरिहरशर्मा और नये प्रचार मन्त्री श्री सत्यनारायण जी के द्वारा

होने लगा। पं. लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी ने भी कुछ समय तक उसके संपादन में सहायता पहुँचायी थी।

१९३३ से पं. हरिहर शर्मा, मो० सत्यनारायण, पं. हृषीकेश शर्मा, पं० अवधनन्दन, पं. नागेश्वर मिश्र इन पाँच संपादकों के एक मण्डल द्वारा 'हिन्दी प्रचारक' का संपादन होने लगा।

कुछ महीने बाद पं. हृषीकेश शर्मा और पं. नागेश्वर मिश्र उससे छूट गये। तब से अन्य तीनों द्वारा सम्पादन कार्य होता रहा। सन् १९३३ जुलाई से हृषीकेश शर्मा और सत्यनारायण ही उसके संपादक रहे।

सन् १९३३ में 'हिन्दी प्रचारक' का दशाब्दि उत्सव मनाया गया। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सम्पादक, 'विशाल भारत', कलकत्ता की अध्यक्षता में २७-४-३३ को हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय मद्रास, में तत्सम्बन्धी जलसा हुआ। शहर के गण्यमान्य नेता और पत्रकारों ने उसमें भाग लिया।

अध्यक्ष-भाषण के सिलसिले में श्री बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने यों कहा था— "थोड़े वर्षों के बाद ऐसा समय आनेवाला है, जब 'हिन्दी-प्रचारक' तथा 'हिन्दी-प्रचार सभा' की आवश्यकता ही न रहेगी। उस समय आपकी यह सभा 'दक्षिण भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का रूप धारण कर लेगी, और हिन्दी भाषा के ही नहीं, साहित्य के प्रचार में भी वह अपने जन्मदाता अखिल भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी अधिक काम कर दिखायेगी।" वास्तव में १९३२ की यह भविष्यवाणी आज सफल हो रही है।

उपयोगिता और व्यापकता की दृष्टि से दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों और प्रचारकों के बीच में 'हिन्दी प्रचारक' पत्रिका का स्थान महत्व का है। सभा के कार्य-कलापों का विवरण, परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें, हिन्दी वर्गों तथा सम्मेलनों के चित्र, विभिन्न श्रेणियों के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी साहित्यिक सामग्री आदि से 'हिन्दी प्रचारक' की शोभा बढ़ती रही।

दक्षिण की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं पर प्रकाश डालनेवाले उच्च-कोटि के लेख तथा कहानियाँ इसमें प्रकाशित होती रहती थीं। हिन्दी की शिक्षण-पद्धति, दक्षिण की भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण, हिन्दी कवियों की रचनाओं की दक्षिणी दृष्टिकोण से आलोचना आदि का प्रकाशन इस पत्रिका की विशेषता रही है। हिन्दी के प्रचार एवं विकास में इस पत्रिका की देन महत्वपूर्ण है।

दक्षिण भारत—

सन् १९३८ में 'दक्षिण भारत' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन सभा ने शुरू किया। इसे शुद्ध सांस्कृतिक तथा साहित्यिक रूप देने का उद्देश्य था।

श्री काका कालेलकर की अध्यक्षता में सर्वश्री पट्टाभि सीतारामय्या, संजीवकामत, ए. रामय्यर, आर. आर. दिवाकर, एन. सुन्दरय्यर पं. अवधनन्दन, मो. सत्यनारायण और भालचन्द्र आपटे की एक संपादक-मण्डली द्वारा ही उसका संपादन होता था। लेकिन दक्षिण की जनता में इसका अधिक प्रचार न हो सका। उच्च-स्तर की साहित्यिक पत्रिका होने से हिन्दी विद्यार्थियों के अध्ययन की सामग्री नहीं बनी।

हिन्दी प्रचार समाचार—

'हिन्दी प्रचारक' के बन्द होने के बाद 'सभा' ने यह निश्चय किया कि 'दक्षिण भारत' को साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों की मासिक पत्रिका बनायी जाय और हिन्दी प्रचार सम्बन्धी समाचारों के लिए एक अलग पत्र निकाला जाय। तदनुसार 'हिन्दी प्रचार समाचार' सन् १९३८ से निकलने लगा। इस सम्बन्ध में 'हिन्दी प्रचार समाचार' के प्रथम अङ्क में निम्नलिखित संपादकीय टिप्पणी लिखी थी—

" 'हिन्दी प्रचारक' के बंद होने के बाद अकसर यह महसूस होता रहा कि प्रचार-समाचार का ठीक प्रकाशन नहीं हो रहा है। 'दक्षिण भारत' का उद्देश्य और क्षेत्र पृथक् हो जाने के कारण प्रचार-संबंधी विस्तृत समाचारों के प्रकाशनों की गुंजाइश बहुत कम हो गयी। यह महसूस हुआ कि सभा का एक अंग ऐसा भी चाहिये, जो हिन्दी प्रचार-क्षेत्र की सेवा करता रहे और महीने भर का प्रचार-समाचार सभा के सदस्यों, प्रचारकों और विद्यार्थियों के पास पहुँचा दिया करे। अतः हमने निश्चय किया है कि 'दक्षिण भारत' को साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों के लिए सीमित रखकर प्रचार-समाचारों के लिए एक अलग पत्र निकालें। उसी निश्चय के अनुसार यह नया पत्र 'हिन्दी-प्रचार-समाचार' हिन्दी प्रेमियों की सेवा में जा रहा है।"[1]

'दक्षिण भारत' के प्रकाशन के पहले ही 'हिन्दी प्रचारक' थोड़े समय के लिये बन्द हुआ था। इससे सभा को अपने प्रचार-संबंधी कार्यों मे कठिनाई हो गयी। सन् १९३६ से 'दक्षिण भारत' त्रैमासिक पत्र बना दिया गया। इस रूप में भी वह अधिक दिन तक नहीं चला। एक वर्ष के अन्दर 'सभा' को उसका प्रकाशन बन्द करना पड़ा।

सन् १९५२ से 'दक्षिण भारत' मासिक पत्रिका के रूप में फिर से प्रकाशित होने लगा। श्री सत्यनारायण तथा रमेश चौधरी उसका संपादन करते रहे। आज वह लोकप्रिय हो गई है। दोनों संपादक हिन्दी के सुयोग्य लेखक हैं। उनके अनेकों लेख उच्चस्तर के माने जाते हैं। अतएव उस पत्रिका की प्रगति हो रही है।

---

१ हिन्दी प्रचार समाचार, जनवरी १९३६

पहले उल्लेख किया जा चुका है कि 'हिन्दी प्रचारक' सन् १९३८ में 'हिन्दी प्रचार समाचार' के नाम से निकलने लगा था। दूसरे महायुद्ध के कारण कागज़ का मूल्य जब बढ़ गया, तब 'हिन्दी प्रचार समाचार' पर भी उसका प्रभाव पड़ा। बिना सज-धज के उसे निकालने के लिये 'सभा' विवश हुई। सन् १९४२ के राष्ट्रीय आंदोलन के सिलसिले में सत्यनारायणजी नज़रबन्द हुए। उस समय सभा के सभी कार्यों का संचालन कुछ समय के लिये शिथिल-सा हो गया। तब 'हिन्दी प्रचार समाचार' निष्प्राण-सा हो गया। युद्ध की समाप्ति पर जब परिस्थिति बदल गयी, तब उसके रूप-रंग में फिर परिवर्तन हुआ। श्री रघुवरदयालु मिश्र, श्री हरिदास, श्री एस० आर० शास्त्री, श्री भालचन्द्र आपटे, श्री वेंकटाचल शर्मा आदि सुयोग्य कार्य-कर्ताओं ने उसके संपादन में अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। हिन्दी-हिन्दुस्तानी की समस्या जब ज़ोर पकड़ने लगी, तब सभा की हिन्दुस्तानी नीति के अनुसार 'हिन्दी प्रचार समाचार' 'हिन्दुस्तानी प्रचार समाचार' के नाम से प्रकाशित किया जाने लगा। लेकिन धीरे-धीरे फिर वह शुष्क होता गया। यहाँ तक कि इन दिनों वह 'सभा' का गज़ट जैसा नीरस पदार्थ बन गया है।

'दक्खिनी हिन्द'—

सन् १९४७ में मद्रास में काँग्रेसी मंत्री-मंडल कायम हुआ। मुख्यमंत्री श्री टी० प्रकाशम् थे। सरकार के प्रचार विभाग की ओर से एक हिन्दी मासिक पत्र चलाने का उन्होंने निश्चय किया। तदनुसार श्री सत्यनारायण के सहयोग से 'दक्खिनी-हिन्द' नाम का पत्र प्रकाशित होने लगा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा सभा के अनुभवी कार्यकर्ता श्री रामानन्द शर्मा उसके संपादक रहे। उनके संपादकत्व में 'दक्खिनी-हिन्द' उच्चकोटि का मासिक पत्र बन गया। लेकिन सन् १९५२ में सरकारी नीति अनुकूल न होने के कारण वह बंद हो गया।

केरल की हिन्दी पत्रिकाएँ—

दक्षिण के सभी प्रान्तों में हिन्दी प्रत्रिकाएँ उन दिनों न्यूनाधिक संख्या में चलती थीं। केरल में ट्रिचूर से 'हिन्दी मित्र' नामक एक पत्रिका चलने लगी। सभा के सुयोग्य कार्यकर्ता श्री. जी. नीलकंठन् नायर उसके संपादक रहे। कुछ समय तक 'विश्वभारती' नामक एक मासिक पत्र कोट्टयम से श्री अभयदेव के संपादकत्व में चलता रहा। कोचिन से श्री विश्वनाथ मल्लय्या के संपादन में 'प्रताप', और तिरुवनंतपुरम् से श्री के. वासुदेवन् पिल्लै जी के संपादकत्व में 'राष्ट्रवाणी', और ओलवकोट, पालघाट से श्री बालकृष्णन् के संपादन में 'ललकार' पत्रिका चलती रही। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में इन पत्रिकाओं की सेवाएँ सराहनीय हैं। लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण ये पत्र-पत्रिकाएँ अल्पायु रहीं।

'युगप्रभात'—

सन् १९५६ से मलयालम् के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'मातृभूमि' के तत्वावधान में कालीकट से 'युगप्रभात' नामक एक हिन्दी पाक्षिक पत्र निकल रहा है। मलयालम् के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री. एन. वी. कृष्णवारियर तथा श्री के. रविवर्मा इसके संपादक हैं। आज दक्षिण से निकलने वाली सभी हिन्दी पत्रिकाओं में इसका अग्रिम स्थान है। उत्तर और दक्षिण की सांस्कृतिक एकता की दिशा में इस पत्रिका की देन उत्कृष्ट है।

'केरल भारती'—

आज दिन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, केरल शाखा, एरणाकुलम् से 'केरल-भारती' नामक एक हिन्दी-मलयालम् द्वैभाषिक मासिक पत्रिका निकल रही है। पहले श्री. एन. वेंकटेश्वरन् तथा कुछ समय तक श्री. के. आर. विश्वनाथन् ने उसका संपादन किया था। इन दिनों नारायणदेव तथा श्री. सी. आर. नाणप्पा के संपादकत्व में पत्रिका चल रही है। पत्रिका का स्तर ऊँचा है।

'केरल-पत्रिका'—

'भाव और रूप' नामक एक हिन्दी-मलयालम् पत्रिका कुछ महीने तक त्रिवेंद्रम् से निकलती रही। उसके संपादक श्री पी. जी. वासुदेव थे। लेकिन इस पत्रिका की आयु अल्प रही। इन दिनों 'केरल-पत्रिका' नामकी एक हिन्दी पाक्षिक-पत्रिका त्रिवेंद्रम् से निकल रही है। उसके भी संपादक श्री पी. जी. वासुदेव हैं। श्री वासुदेव हिन्दी के अच्छे लेखक तथा केरल के पुराने अनुभवी कार्यकर्ता हैं।

पत्रिका में हिन्दी की समस्याओं पर संपादकीय टिप्पणियाँ रहती हैं।

केरल ग्रंथालोकम्—

'केरल ग्रंथालोकम्' नामक एक हिन्दी मलयालम् मासिक पत्रिका केरल ग्रंथशाला-संघ की ओर से निकल रही है। हिन्दी विभाग की संपादिका पहले श्रीमती शान्ता-कुमारी थीं। इन दिनों हिन्दी के अनुभवी विद्वानों की एक संपादक-मंडली द्वारा उसका संपादन हो रहा है। हिन्दी की सेवा में उसका योगदान कम महत्व का नहीं।

आन्ध्र की हिन्दी-पत्रिकायें—

'मिलाप' नामक हिन्दी दैनिक पत्र हैदराबाद से निकल रहा है। वहाँ से पं० भीष्मदेव के संपादकत्व में 'दक्षिण भारती' और श्री आर्येन्द्र शर्मा के संपादकत्व

में 'कल्पना' नामक दो पत्रिकाएँ निकल रही हैं। हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा की तरफ से श्री वंशीधर विद्यालंकार के संपादकत्व में 'अजन्ता' नामकी पत्रिका भी प्रकाशित हो रही है।

विजयवाड़ा से १९५० से ५२ तक 'शिक्षक' नामक पत्रिका प्रकाशित होती रही। इन दिनों वहाँ से 'इनसान' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन हो रहा है। नास्तिक-वाद का प्रचार करना ही इसका उद्देश्य है। आन्ध्र की पत्र-पत्रिकाओं का योगदान हिन्दी के प्रसार एवं विकास में अभिनन्दनीय है।

कर्नाटक की पत्रिकायें—

कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा की तरफ़ से निकलनेवाली 'भारतवाणी' पत्रिका का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसके संपादक सभा के पुराने अनुभवी, सुप्रसिद्ध हिन्दी सेवी श्री सिद्धनाथ पंत हैं। कर्नाटक से 'हिन्दी वाणी' नाम की और एक पत्रिका श्री. पी. आर. श्रीनिवास के संपादन में एक वर्ष तक हिन्दी विद्यार्थियों की सेवा करती रही।

तमिलनाडु की पत्रिकायें —

तिरुचिराप्पल्ली से 'हिन्दी पत्रिका' नामक एक हिन्दी तमिल मासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। यह बड़ी ही लोकप्रिय है। इसके पुराने संपादक श्री रघुवर-दयालु मिश्र और प्रो० रामय्यर हैं। इसके बाद पं. अवधनंदन, श्री. जी. सुब्रह्मण्यम्, श्री. एस. आर. शास्त्री, श्री. चंद्रमौली आदि ने इसका संपादन किया है। मद्रास से 'चन्दामामा' नामक एक बालोपयोगी पत्रिका निकल रही है। यह भी बहुत ही लोकप्रिय हुई है। श्री. विश्वनाथ और श्री. एल. त्रिपाठी द्वारा संपादित तथा मद्रास से निकलनेवाली 'निर्मला' नामक हिन्दी पत्रिका भी विशेष उल्लेखनीय है।

विविध विषयों की पत्रिकाएँ—

सामाजिक, धार्मिक तथा सांप्रदायिक विषयों के प्रचार के लिए दक्षिण से कई हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनमें 'स्त्री-धर्म' महिला समाज की सेवा के लिए मद्रास से कई वर्षों तक प्रकाशित होती रही। उसकी संपादिकाएँ श्रीमती डॉ० मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी तथा श्रीमती शारदादेवी हृषीकेश थीं। श्री. अरविंदाश्रम, पोंटिचेरी से 'अदिति' नामक पत्रिका योग संबंधी बातों के प्रचार के लिए निकलती रही। 'ब्रह्मविद्या' नाम की एक पत्रिका अडयार, मद्रास से थियोसिफ़िकल सोसाइटी की तरफ़ से १९२६ से कई वर्षों तक प्रकाशित होती रही। मध्व संप्रदाय के प्रचार के लिए श्रीरंगम् भीमाचार द्वारा 'पूर्णबोध' नामक हिन्दी-कन्नड़ पत्रिका देवनागरी लिपि में १९२६ से तीन साल तक निकलती रही। उसी प्रकार 'नृसिंहप्रिया' नाम

की एक तमिल-हिन्दी पत्रिका भी पुतुक्कोट्टा से प्रकाशित होती थी। विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार करना ही इसका उद्देश्य था। प्रोफ़ेसर ए. श्रीनिवास राघवन् उसके संपादक थे।

हिन्दी को दक्षिण के कोने-कोने में फैलाने में इन पत्रिकाओं की बड़ी देन है। इनके द्वारा दक्षिण के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में भी अमूल्य सेवाएँ हुई हैं।[1]

---

१ 'हिन्दीप्रचार-समाचार' मद्रास के विद्वान संपादक श्री शारंगपाणी के 'दक्षिण की पत्र-पत्रिकाएँ' शीर्षक लेख का आधार सादर लिया गया है। (ले.)

प्रकरण २१

हिन्दी का अध्ययन और अध्यापन—

आरंभ में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन पर दक्षिण के प्रचारकों एवं छात्रों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पाठ्य-पुस्तकों की क्रमबद्धता तथा वैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति पर बहुत ही कम ध्यान दिया गया। दक्षिणवालों के लिए वैज्ञानिक ढंग से हिन्दी पढ़ना-लिखना तो सरल अवश्य है। किन्तु अध्ययन और अध्यापन में जब तक वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण नहीं किया जायगा तब तक हिन्दी की शिक्षा अधूरी ही रहेगी। हिन्दी आर्यकुल की भाषा है। द्राविड़ परिवार की भाषा से उसका संबन्ध नहीं है। अतएव तुलनात्मक व्याकरण का सहारा लेकर अध्ययन करना आवश्यक है।

हिन्दी और द्राविड़ भाषाओं की तुलना में वर्णमाला, संधि, शब्द-समूह, क्रिया, सर्वनाम, कृदन्त वाक्यरचना, लिंग, मुहावरा, उच्चारण, ध्वनि आदि में विषमता और समता का परिचय प्राप्त होता है। लेकिन दक्षिण में इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन और अध्यापन का क्रम नहीं था। इस कारण यहाँ के हिन्दी अध्यापकों और विद्यार्थियों की भाषा-शैली, उच्चारण-रीति, ध्वनि आदि में प्रत्येक प्रान्त की भाषा के प्रभाव के साथ कई प्रकार की अशुद्धियाँ पायी जाती हैं। जब लोग अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा सीखते हैं तब उसमें मातृभाषा की उच्चारण-रीति, ध्वनि आदि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह मानी हुई बात है कि उच्चारणमूलक अशुद्धियाँ अंशत: मातृभाषा के अनियंत्रित प्रभाव से ही होती हैं। हिन्दी के अध्ययन और अध्यापन में लगे रहने वाले दक्षिण के अध्यापक तथा छात्र उच्चारण संबन्धी त्रुटियों को दूर करने की ओर अभी तक समुचित ध्यान नहीं देते रहे हैं, ऐसा ही हमारा अनुभव है। हिन्दी प्रचार सभा भी, इस विषय पर जितना ध्यान देना चाहिए था नहीं दे पायी। सभा की उच्च परीक्षाओं में मौखिक परीक्षा का क्रम चालू किया गया। किन्तु परीक्षार्थियों की जाँच में जिस स्तर तक की योग्यता की आशा की जाती थी, या तो उसे भुला दिया गया या जानते हुए भी उस मामले में सभा के अधिकारी लापरवाह रहे। अध्यापकों को ट्रेनिंग देने के लिए सभा वर्षों से प्रशिक्षण-विद्यालयों की आयोजना पर अमल करती आ रही है। चारों प्रान्तों में पचासों विद्यालय खोले गये, शिक्षण पद्धति के सिद्धान्तों को ज़बानी याद कराया गया, अमली (Practical) वर्गों के द्वारा उन सिद्धान्तों पर अमल कराया गया और हज़ारों

प्रचारक बात की बात में तैयार किये गये। मगर बहुत हद तक यह सारा प्रयत्न बेकार ही रहा। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए सभा के प्रधान मंत्री सत्यनारायण जी ने एक बार 'हिन्दी प्रचार समाचार' की संपादकीय टिप्पणी में लिखा था कि 'हमने हिन्दी का प्रचार तो किया, लेकिन अभी तक हिन्दी नहीं सिखाई'।

वास्तव में आज दक्षिण की 'हिन्दी' की हालत इतनी नाज़ुक हो गई है कि यदि समय पर इसका इलाज़ न किया जाय तो फिर बीमारी के लाइलाज़ होने में अधिक दिन नहीं लगेंगे। इस बीमारी के इलाज़ के लिए अच्छे प्रामाणिक डाक्टर कौन हैं, कहाँ मिलेंगे इत्यादि बातों पर ग़ौर करना सरकार तथा संस्थाओं का काम है।

उच्चारण की अशुद्धियाँ—

कई अध्यापक पहले वर्णमाला सिखाते हैं। हिन्दी की ध्वनियों का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं सिखाते। अतएव पीछे चलकर हिन्दी के शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना उनके लिए कठिन हो जाता है। जो शिक्षक ध्वनि-शास्त्र का अच्छा ज्ञान रखते थे, वे मनमाने ढंग से पढ़ाते थे। किसी भी भाषा-शिक्षक को उस भाषा की बोलचाल की भाषा का भी ज्ञान अत्यन्त अपेक्षित है।

तमिल को छोड़कर दक्षिण की अन्य तीनों (कन्नड़, तेलुगु और मलयालम्) भाषाओं की वर्णमाला करीब-करीब हिन्दी के ही समान है। अतः उन भाषा-भाषियों के हिन्दी उच्चारण में हिन्दी वालों की-सी शुद्धता होनी ही चाहिये। तब क्यों, आज चारों प्रान्तों के लोगों के उच्चारण में समानता नहीं है? क्यों सबके सब 'अपनी-अपनी डफ़ली, अपने-अपने राग' में मस्त हैं? इसका उत्तर यही है कि आज तक 'हिन्दी प्रचारकों' ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। दक्षिण के लोग हिन्दी के उच्चारण में किस तरह की त्रुटियाँ करते हैं, यह बात निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

दक्षिण में विशेषतः केरल और तमिलनाडु के हिन्दी विद्यार्थी निम्नलिखित वर्णों का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं करते।

ख, छ, ठ, थ, घ, झ, ढ, ध, भ, त, ट, ड़—आदि।

उनके अशुद्ध उच्चारण के कुछ नमूने नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं।

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
खराब	—	कराब
छोटा	—	चोटा
ठीक	—	टीक

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
थोड़ा	—	तोडा
घर	—	गर
झूठ	—	छूट (चूट, जूट)
मुझे	—	मुछे, मुज्जे
धर्म	—	दर्म
प्रतियोगिता	—	प्रदियोगिदा
भारत	—	बारत
कपड़ा	—	कपटा
पेड़	—	पेट
पढ़ाना	—	पठाना
खड़े खड़े	—	गडे गडे आदि।

अनुस्वार और अर्द्धानुस्वार के उच्चारण में निम्नलिखित त्रुटियाँ पायी जाती हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
हंस	—	हम्स
संसार	—	सम्सार
अंश	—	अम्श—आदि।

अर्द्धानुस्वार का अनुनासिक उच्चारण अधिकतर केरल वाले गलत ढंग से करते हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
कहाँ	—	कहाम्
माँ	—	माम्
मैं	—	मैम्
में	—	मेम्
हैं	—	हैम्
नहीं	—	नहीम् आदि।

छपाई की गलतियाँ—

हिन्दी की पुस्तकों में इन दिनों साधारणतः अर्द्धानुस्वार के चिह्न ँ के बदले ं छपने लगा है। उत्तरवालों ने लिखावट तथा छपाई में अर्द्धचन्द्र चिह्न को 'अर्द्धचन्द्र' दिया है। इस वजह से दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों को अनुस्वार और अर्द्धानुस्वार का भेद समझने में कठिनाई होती है और वे उनका गलत उच्चारण करते हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
हँसी	—	हन्सी
आँसू	—	आन्सू
बँटवारा	—	बण्टवारा
जँचना	—	जन्चना
आँख	—	आम्ख
लड़कियाँ	—	लड़कियाम्
चिड़ियाँ	—	चिड़ियाम् आदि।

नीचे 'बिन्दी' वाले शब्दों के उच्चारण में भी छपाई और लिखावट की गलती के कारण अशुद्धियाँ होती हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
ज़रूरत	—	जरूरत
ज़ोर	—	जोर आदि।

कुछ लोग नीचे 'बिन्दी' रहित शब्दों के 'ज' का उच्चारण भी बिन्दी वाले 'ज़' का जैसा करते हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
मौजूद	—	मौसूद या मौज़ूद
फ़ौज	—	फौस या फ़ौज़
इजाज़त	—	इसासत या इज़ाज़त आदि।

केरल के विद्यार्थियों के 'ज़' के उच्चारण में असहनीय अशुद्धि पायी जाती है। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
ज़रूरत	—	सरूरत
आज़ाद	—	आसाद
ज़रूर	—	सरूर
ज़्यादा	—	स्यादा आदि।

नीचे 'बिन्दी' वाले 'फ़' के कारण दक्षिण के विद्यार्थी और अध्यापक 'फ' के स्थान पर सर्वत्र 'फ़' बोलते हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
फिर	—	फ़िर
सफल	—	सफ़ल
फूल	—	फ़ूल
फिरना	—	फ़िरना
फूटना	—	फ़ूटना
फैलना	—	फ़ैलना
फूँकना	—	फ़ूकना आदि ।

दक्षिण के अधिकांश हिन्दी अध्यापक और हिन्दी विद्यार्थी 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण 'अय' और 'अव' के बदले अपनी मातृभाषा के उच्चारण के अनुरूप करते हैं। जैसे—

शब्द		अशुद्ध उच्चारण
है	—	हइ या हे
और	—	ओर या अउर
कौन	—	कोन या कउन
बैठो	—	बईठो या बइठो आदि ।

ह्रस्व स्वरान्त शब्दों का हलन्त उच्चारण भी यहाँ के लोग ठीक प्रकार से नहीं करते। वे साधारणतः शब्द के अन्तिम स्वर 'अ' का पूरा उच्चारण करते हैं। वैसे, मतलब, पलटन, बरतन, तकलीफ़ आदि शब्दों के दूसरे और चौथे अक्षरों का हलन्त उच्चारण नहीं करते।

केरल के हिन्दी विद्यार्थी उत्साह, उत्सव, उद्भव, महात्मा आदि शब्दों को उल्साह, उल्सव, उल्भव, महाल्मा पढ़ते और बोलते हैं। मलयालम् भाषा का ही इसमें प्रभाव पाया जाता है।

उच्चारणमूलक अशुद्धियाँ अभ्यास से ही दूर की जा सकती हैं। लेकिन जब अध्यापक ही स्वयं इन बातों के अभ्यस्त नहीं हैं, तब अध्येता कैसे इन अशुद्धियों को स्वयं सुधार सकते हैं? अतः 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली उक्ति यहाँ पर सार्थक होती है।

उच्चारण के अतिरिक्त वाक्य-रचना संबन्धी बातों में भी अहिन्दी प्रान्तों के लोगों में भिन्न-भिन्न तरह की त्रुटियाँ पायी जाती हैं। हिन्दी भाषा-भाषियों से निकट संपर्क रखने की सुविधा का अभाव ही इन त्रुटियों के होने का कारण है। अतः हिन्दी अध्यापकों को समुचित ढंग से उच्चारण संबन्धी विषयों में आवश्यक प्रशिक्षण देना अत्यन्त आवश्यक है। हज़ारों ऐसे प्रचारक दक्षिण में आज हिन्दी प्रचार के कार्य में

लगे हुए हैं, जिन्हें किसी अच्छे अध्यापक से नियमित रूप से हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं मिला है। वे स्वतंत्ररूप से हिन्दी पढ़े हुए होते हैं। परीक्षाएँ तो वे आसानी से पास कर लेते हैं लेकिन हिन्दी में, हिन्दी भाषा-भाषी से बातें करने के अभ्यास से वे कोसों दूर रहते हैं। उनकी वाग्शक्ति बढ़ाने के लिए सभी केन्द्रों में वाग्वर्द्धिनी सभाओं का क्रम चालू है। तथापि उससे जितना लाभ होना चाहिए, उतना होता नहीं दीखता। इस ओर सरकार तथा हिन्दी के कार्यकर्ताओं को विशेष ध्यान देना चाहिए। अन्यथा यहाँ धीरे-धीरे हिन्दी की चार अपभ्रष्ट शैलियों के प्रचलित हो जाने की संभावना है। प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हिन्दी में करने की आदत भी बहुतेरे विद्यार्थियों और अध्यापकों को पड़ गयी है। वाक्य-रचना-प्रणाली में भी मातृभाषा का प्रभाव अनियंत्रित रूप में पाया जाता है। यदि इस प्रकार की शिथिलता को दूर करने का यथोचित उद्यम न किया जाय तो दक्षिण की हिन्दी की शक्ल-सूरत ही कालान्तर में बदल जायगी।

बोलने के अभ्यास की कमी—

दक्षिण के प्रान्तों में जिस प्रणाली से हिन्दी सिखाई जा रही थी वह पूर्णतः सफल नहीं कही जा सकती। इसका मुख्य कारण यह है कि सभा के प्रचारकों में अधिकतर लोग शिक्षण-कला के ज्ञाता नहीं हैं। हिन्दी-प्रचारक परीक्षार्थियों को सभा की परीक्षाओं के लिए तैयार करते हैं। विद्यार्थी परीक्षाएँ आसानी से पास भी कर लेते हैं। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उनमें कम से कम पाँच प्रतिशत लोगों को हिन्दी बोलने की शक्ति प्राप्त नहीं होती है। इस सम्बन्ध में प्रो. रामय्यर ने जो दक्षिण के सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैं, सभा के एक हिन्दी शिक्षक-सम्मेलन में यों कहा था —

"हज़ारों लोग हमारी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए हैं, लेकिन उनमें से कितने लोगों को हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त है? मैं समझता हूँ कि जितने प्राथमिक पास हुए हैं, उनमें से अधिक से अधिक पाँच फ़ीसदी लोग हिन्दी में मुश्किल से बोल सकेंगे। यह तो सच है कि हमारी परीक्षाओं से बहुत लोगों को प्रोत्साहन मिला है, लेकिन मैं निस्संकोच कहूँगा कि इन परीक्षाओं से हानि भी हुई है। परीक्षा को हमेशा दृष्टि में रख कर पढ़ाने से ठीक तौर पर पढ़ाना मुश्किल हो जाता है। भाषा का अच्छा ज्ञान देना ही हमारे शिक्षण का उद्देश्य हैं और होना चाहिए। किसी न किसी उपाय से विद्यार्थियों को परीक्षाओं के लिए तैयार करना हमारा मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।"

हिन्दी प्रचार आन्दोलन के आधार-स्तम्भ

हरिहर शर्मा—

हिन्दी-प्रचार सभा के प्रमुख और उसके सारे कार्यकलापों के प्राण रूप श्री हरिहरशर्माजी राष्ट्र सेवा के क्षेत्र में एक योगी हैं। १९०७ से वे राष्ट्रसेवा कर रहे हैं। उनके पुराने मित्र औद गाँधीजी उन्हें "अण्णा" कहते हैं। शर्माजी ने अपने जीवन-क्रम का आरम्भ राष्ट्रसेवा से ही किया है। बड़ौदा के 'श्री गंगानाथ भारतीय सर्व विद्यालय' में वे श्री काका कालेलकर के साथ काम करते थे। विद्यालय बन्द होने के बाद हिन्दुस्तान का खूब भ्रमण किया और कुछ समय तक ब्रह्मदेश में भी रहे। वहाँ से गाँधीजी के साथ अहमदाबाद सत्याग्रह आश्रम (साबरमती) में काम करने लगे। महात्माजीने ही उन्हें हिन्दी सीखने के लिए प्रयाग भेजा था। वहाँ से हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करके वे मद्रास पहुँचे। तुरन्त ही उन्होंने हिन्दी प्रचार का कार्य अपने हाथ में लिया।

शर्माजी एक प्रान्त के नहीं हैं। वे सभी प्रान्तों के हैं क्योंकि उनको अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु और हिन्दी के सिवा मराठी, गुजराती और बंगाली भी ठीक-ठीक आती हैं। उनकी संस्था चलाने की योग्यता, उनकी विद्वत्ता या भाषा प्रवीणता में नहीं है। उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है। नम्रता, सहिष्णुता और साथियों के साथ मधुर व्यवहार उनके विशिष्ट गुण हैं। सबके साथ उनके मन में कौटुंबिक भाव रहता है। इस कारण वे सचमुचं सबके 'अण्णा'—बड़े भाई बने हुए हैं। वे बड़े मितभाषी हैं। किसी की निन्दा या टीका-टिप्पणी करने से विमुख रहते हैं। हिन्दी-प्रचार सभा मद्रास के प्रमुख आधारस्तंभ के रूप में वे दक्षिण के हिन्दी आन्दोलन के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे।

महात्मा गाँधीजी के सच्चे अनुयायी, गाँधीसेवाग्राम, मदुरा के संस्थापक श्री. जी. रामचन्द्रन् ने हरिहर शर्माजी के सम्बन्ध में एक भाषण में यों कहा था—

"My first acquaintance with the Hindi Prachar Sabha started in Vellore Jail. It was there I met Pt. Harihar Sharma. I cannot tell you what I gained by witnessing his single-hearted devotion to his work. We were all political prisoners. But he was really a Hindi prisoner. He obtained permission from the superintendent to teach Hindi to the young men who were then with him for political offences at spare hours.

He held his Hindi Classes on the Verandhas of the Jail cells. He gave away hundreds of Hindi books. I think in the few months we were there, he taught Hindi to most of the people there. There would be very few left who did not learn Hindi under him. That I think, is the Gandhian spirit in the Hindi Prachar.''[१]

मोटूरी सत्यनारायण—

दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के सारथियों में श्रीसत्यनारायणजी का स्थान सबसे ऊँचा है। अपनी विलक्षण प्रतिभा, अनन्य कार्यकुशलता तथा अटल कर्तव्य-निष्ठा के बलपर वे इतने ऊपर उठे कि वहाँ तक पहुँच सकना साधारण-स्तर के कार्य कर्ताओं के लिए असंभव है। इसमें सन्देह नहीं कि सन् १९१८ में श्री देवदासजी तथा स्वामी सत्यदेवजी द्वारा हिन्दी का जो बीज दक्षिण में बोया गया, उसके एक महान् वृक्ष के रूप में लहलहाते हुए बढ़ने एवं उसकी शाखाओं के दक्षिण के कोने-कोने में फैलने में हजारों स्वार्थत्यागी कार्यकर्ताओं की निरन्तर सेवाएँ और कार्यतत्परता बहुत अंश तक सहायक रही हैं। लेकिन इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि उस महान् आन्दोलन के सफल नेतृत्व में श्रीसत्यनारायण का मस्तिष्क ही मुख्यतः काम करता रहा है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ही हिन्दी प्रचार सभा के विविध कार्य-कलापों की सफलता की कुंजी रही है। केवल दक्षिण के चारों प्रान्तों में ही नहीं, बल्कि उत्तर के कुछ अहिन्दी प्रान्तों के व्यापक विस्तृत कार्य-क्षेत्र में भी बिना किसी सरकारी सहायता के हिन्दी प्रचार सभा जैसी एक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था का सिक्का जमाना तथा उसके द्वारा जनता में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना एक उनके जैसे असाधारण व्यक्ति से ही संभव हो सकता है। वे अपने कर्तव्य-पथ में सैकड़ों आँधियों और तूफानों का बड़े धीरज के साथ सामना करते हुए अपने अनुयायियों को आगे बढ़ने की उत्तेजना देते रहे। उनकी दूरदर्शिता और विलक्षण बुद्धिमत्ता का मूल्य आँकना कठिन है। किसी भी संस्था के लिए ऐसे महान् व्यक्ति की सेवाएँ गर्व की वस्तु हैं।

महात्मा गाँधीजी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, गोविन्दवल्लभ पंत जैसे देश के महान् नेताओं के निकटतम संपर्क में रहने और उनके स्नेह तथा अभिनन्दन के पात्र बनने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ है। उनकी योग्यता के उपलक्ष्य में केन्द्रीय सरकार ने

---

(१) हिन्दी प्रचारक—मई १९३२.

उन्हें विधान-सभा का सदस्य मनोनीत किया है और उनकी उत्कृष्ट सेवाओं की मान्यता में उन्हें 'पद्म-भूषण' तथा 'पद्म श्री' से विभूषित किया है।

वे प्रभावशाली वक्ता तथा उच्चकोटि के लेखक हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, तेलुगु आदि भाषाओं पर उनका पूरा अधिकार है। उनकी प्रशंसा में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक बार यों कहा था—

"सत्यनारायणजी का उच्चारण इतना शुद्ध है और वे ऐसी धाराप्रवाह हिन्दी बोलते हैं कि किसी हिन्दी भाषा-भाषी को यह शक भी नहीं हो सकता कि वे दक्षिण भारत के निवासी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे परमात्मा की भौगोलिक भूल हैं। उनका जन्म आन्ध्र के बजाय संयुक्त-प्रान्त में होना चाहिए था।[१]

श्रीसत्यनारायण हिन्दी के दो शैलियों में संस्कृत गर्भित और उर्दू मिश्रित— बोलने-लिखने में निष्णात हैं। नमूने के तौर पर उनकी शैलियों के कुछ वाक्य नीचे उद्धृत हैं—

संस्कृत गर्भित शैली—

"यह निर्विवाद है कि भारतीय संस्कृति एक है और अविभाज्य है। लेकिन उसकी संपूर्णता और शक्तिशालीनता का मूल्यांकन किसी भाषा तथा समाज के सीमित मूल्य के द्वारा नहीं हो सकता। उसका पूर्ण मूल्यांकन उसके समग्र रूप के दर्शन से ही किया जा सकता है। हमारी जितनी क्षेत्रीय विशेषताएँ हैं वे सब भारतीय संस्कृति के भिन्न-भिन्न अंग हैं। हमारी ललित कलाएँ, भाषाएँ, आचार-विचार तथा साहित्य का बाह्य-रूप भिन्न मालूम होने पर भी उनमें एक अभिन्न एकता है, जैसे शरीर का कोई अंग उससे अलग नहीं किया जा सकता और शरीर की सुन्दरता उसके परिपुष्ट अंगों के द्वारा ही झलक सकती है।"[२]

उर्दू शैली का नमूना देखिए—

"अगर हिन्दीवालों को यही मंजूर है कि उसे ऊँची और पंडिताऊ रखनी है, तो वे अपनी हिन्दी को कायम रख सकते हैं। लेकिन उसको आसान बनाना है, तो उसको सब लोगों के मंजूर करने लायक बनाना पड़ेगा और भाषाओं की बनिस्बत हिन्दी के ऊपर ज़्यादा जिम्मेवारी आ जाती है और ज़बानों की बनिस्बत शुमाली हिन्दुस्तान में एक बड़ा मसला यह है कि उसके हर डेढ़ सौ, दो सौ मील

---

(१) हि. प्र.—१९३३ अप्रैल।

(२) 'हमारा सांस्कृतिक पुनरुत्थान'

सत्यनारायण अभिनन्दन ग्रन्थ—पृष्ठ ५४.

के फासले में ज़बान बदलती रहती है। इसलिए किसी फ़िरके की ज़बान को तरजीह देना बड़ा मुश्किल हो जाता है।"

श्रीसत्यनारायणजी की 'हिन्दुस्तानी-शैली' पर मौलवी डॉ० अब्दुल हक (सेक्रेटरी, अञ्जुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू, दिल्ली) ने यों लिखा था—

"हिन्दुस्तानी—यह लफ़्ज़ बहुत दिनों से सुन रहा हूँ, लेकिन कोई नमूना नहीं मिला। आल इंडिया रेडियो ने यह सवाल किया कि यह हिन्दुस्तानी क्या है। छह आदमियों की तकरीरें भी हुईं, लेकिन सबकी ज़बान अलहदा थी। आज इतने दिनों के बाद मुझे एक नमूना मिला; और यह सत्यनारायणजी, सेक्रेटरी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की है। इनकी ज़बान सुनकर मुझे हैरत हुई। मैं उनको मुबारकबाद देता हूँ।" (१)

हृषीकेश शर्मा—

सन् १९२० से लेकर सन् १९३५ तक दक्षिण के हिन्दी-प्रचार-आन्दोलन के एक प्रबल आधारस्तंभ के रूप में श्री हृषीकेश शर्माजी चिरस्मरणीय व्यक्ति हैं। प्रारंभ के दिनों में हिन्दी-प्रचार आन्दोलन को व्यापक एवं शक्तिशाली बनाने में श्री शर्माजी सभा के प्रबल सहयोगी रहे हैं। अपने उज्वल चरित्र, प्रभावशाली व्यक्तित्व, मधुर स्वभाव, नैसर्गिक वाग्विभूति, अगाध विद्वत्ता तथा अटल त्यागवृत्ति के कारण वे सबकी श्रद्धा और प्रेम के पात्र बने। जिन प्रचारकों को उनके अधीन अध्ययन करने तथा उनके संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वे सभी आज भी उनका नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं।[२] प्रचार-कार्य, साहित्य-निर्माण, पत्र-संपादन, अध्ययन, विद्यालय-संचालन, परीक्षा-व्यवस्था आदि सभा के विविध कार्यों में उनकी सेवाएँ अमूल्य रही हैं।

क० म० शिवराम शर्मा—'अल्पविराम'

श्री शिवरामजी महात्मा गाँधीजी के आदेशानुसार सन् १९१९ में प्रयाग से हिन्दी की उच्च शिक्षा पाकर पं० हरिहर शर्माजी के सर्वप्रथम सहयोगी बनकर हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में पदार्पण करनेवाले आदर्श प्रचारक हैं। सौम्य तथा सरल-स्वभाव के बल पर वे 'सबके साथी' बने हुए हैं। आरम्भ से लेकर आज तक वे हिन्दी की निस्वार्थ सेवा में संलग्न रहते हैं। दक्षिण के विभिन्न केन्द्रों में उन्होंने सराहनीय कार्य

---

१ 'हिन्दुस्तानी का मसला'
सत्यनारायण अभिनन्दन ग्रन्थ—पृष्ठ १६.

२ 'हिन्दी प्रचारक विद्यालय की झांकी' वाले प्रकरण में उनके विद्यार्थियों के संस्मरण पढ़ें।

किया है। 'अल्पविराम' उपनाम से उन्होंने 'हिन्दी प्रचार के संस्मरण' शीर्षक लेखों में हिन्दी प्रचार आन्दोलन की प्रारंभिक स्थिति-गति का प्रामाणिक परिचय दिया है। वे सफल अध्यापक हैं। हजारों विद्यार्थियों को उनसे हिन्दी की शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य मिला है। आरम्भ के दिनों में विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हिन्दी रीडरें, स्वबोधिनी आदि लिखकर आपने सभा की अमूल्य सेवा की है। इन दिनों आप हिन्दी प्रचार सभा, वर्धा में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

रघुवर दयालु मिश्र—

स्व० रघुवरदयालु मिश्र उत्तर भारतीय थे। वे हिन्दी-प्रचार आन्दोलन में भाग लेने के लिए गाँधीजी के आदेश पर दक्षिण में आये। हिन्दी प्रचार सभा के विविध कार्य-कलापों में आपका जबरदस्त हाथ रहा है। सन् १९२० से १९५५ तक आप दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के एक प्रबल आधारस्तंभ बने रहे। मुख्यतः तमिलनाडु में, जहाँ हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण नहीं था, श्री मिश्रजी ने हिन्दी आन्दोलन को बड़ा व्यापक और ज़बरदस्त बनाया। आज तमिलनाडु को हिन्दी प्रचार आन्दोलन में जो कुछ सफलता प्राप्त है, उसके मूल में स्व० मिश्रजी की अनन्य सेवा-शक्ति रही है। हिन्दी प्रचार सभा, तमिलनाडु शाखा के मंत्री की हैसियत से उन्होंने तमिलनाडु के कोने-कोने में हिन्दी का सन्देश पहुँचाया है। हिन्दी प्रचार सभा के सभी विभागों में—मुख्यतः परीक्षा, साहित्य शिक्षा, संगठन, प्रचार आदि में उनकी मुहर लगी है। अपने सरल स्वभाव, अटल कर्तव्यनिष्ठा तथा निस्वार्थ सेवा से आपने सबको मोह लिया था। हिन्दी की सेवा में रत रहते-हुए सन् १९५५ में उन्होंने अन्तिम साँस ली।

अवधनन्दन—

उत्तर से हिन्दी प्रचारार्थ सन् १९२०-२१ के बीच आए हुए देशप्रेमी नवयुवकों में श्री अवधनन्दनजी का स्थान भी ऊँचा है। आरंभ में आन्ध्र देश में उन्होंने कार्य किया। उसके बाद मुख्यतः तमिलनाडु उनका प्रधान कार्य-क्षेत्र रहा। केन्द्र-सभा के विविध विभागों में भी आपकी योग्यता तथा व्यक्तित्व की छाप पड़ी है। अध्यापन, पुस्तक रचना, प्रचार आदि सभी कार्यों में वे खूब चमके। सभा की क्रमिक उन्नति में उनका योगदान महत्व का रहा है। हिन्दी के आप मंजे हुए लेखक हैं। विशेषतः बालोपयोगी पुस्तकें लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी लिखी 'बालकृष्ण' 'पांडव वनवास' आदि पुस्तकों की सरल मुहावरेदार शैली अनुपम है। 'शिक्षणकला' के भी आप आचार्य हैं। चालीस वर्ष तक दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन में लगातार लगे रहने के बाद आप सभा की सेवा से निवृत्त हुए हैं।

रामानन्द शर्मा—

उत्तर भारतीय प्रचारकों में श्री रामानन्द शर्मा भी दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों के अत्यन्त स्नेह और आदर के पात्र हैं। हिन्दी महाविद्यालयों के प्रधान अध्यापक की हैसियत से उन्होंने सभा की सराहनीय सेवा की है। दक्षिण के हज़ारों विद्यार्थियों को उनसे हिन्दी की शिक्षा पाने का सुयोग प्राप्त हुआ है। वे बड़े ही भावुक और हृदयालु हैं। अपनी अगाध विद्वत्ता तथा मधुर व्यवहार के कारण वे बड़े ही लोकप्रिय बने थे। पुस्तक-रचना, पत्रिका-संपादन आदि के कार्य में वे अद्वितीय रहे। 'दक्खिनी हिन्द' के पाठकों को उनके विवेचनापूर्ण लेखों का परिचय मिला होगा। वे उच्च-कोटि के आलोचक हैं। 'मानस की महिलाएँ', 'आँसू-अनुशीलन' आदि पर उनके समीक्षात्मक लेख इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं। 'पुनर्मिलन' उनका उपन्यास भी कालेजों के पाठ्यक्रम में रखा गया है। मद्रास में 'साहित्यानुशीलन समिति' की स्थापना करके आपने दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों और अध्यापकों में समीक्षात्मक साहित्यिक शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया है। दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के सभी कार्यों में आपकी सेवाएँ अत्यन्त उत्कृष्ट रही हैं। दक्षिण की हिन्दी प्रेमी जनता के लिए वे चिरस्मरणीय व्यक्ति हैं।

हिन्दी प्रचार सभा कार्यालय के आदर्श सेवक—

जब से (सन् १९२७ से) हिन्दी प्रचार सभा, साहित्य सम्मेलन से संबन्ध विच्छेद कर स्वतंत्र हुई, तब से सभा के कार्यालय विभाग का बहुमुखी विकास होने लगा। परीक्षा-विभाग, शिक्षा-विभाग, अर्थ-विभाग, साहित्य-विभाग, पत्रिका-विभाग, पुस्तक-विक्री विभाग, प्रेस-विभाग, प्रचार-विभाग आदि के संचालन का भार संभालने के लिए सुयोग्य तथा निस्वार्थ कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पड़ी। बाहर सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए सुयोग्य प्रचारकों के अभाव की पूर्ति करना भी आवश्यक हो गया। लेकिन हरिहर शर्माजी, सत्यनारायणजी, क. म. शिवराम शर्माजी, हृषीकेश शर्माजी जैसे सभा के कार्यदक्ष संचालकों ने धीरे-धीरे इस दिशा में भी सफलता पाया। सन् १९३५ तक जब कि सभा नये विधान के अनुसार चलने लगी, काफ़ी संख्या में सुयोग्य कार्यकर्ता कार्यालय के सभी विभागों के लिए तैयार हो गये। नीचे लिखे व्यक्तियों की सेवाएँ उन विभागों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

अर्थ-विभाग—

श्री कृष्णमूर्ति, श्रीशंकरशर्मा तथा श्री देवराजन् वर्षों से अर्थविभाग में बड़ी दक्षता के साथ कार्य करते आये हैं। उनकी कार्यकुशलता पर सभा को गर्व है। आज श्रीदेवराजन् उस विभाग को संभाल रहे हैं। उनकी सेवाएँ इस दिशा में अमूल्य हैं।

परीक्षा-विभाग—

श्री महालिंगम् वर्षों तक परीक्षा मंत्री की हैसियत से दक्षिण के चारों प्रान्तों में चलनेवाली विभिन्न सभा की परीक्षाओं के संचालन का गुरुतर भार सँभालते रहे हैं। लाखों परीक्षार्थी जिन विभिन्न परीक्षाओं में प्रतिवर्ष बैठते हों, उनको नियत रूप से चलाना, परीक्षक नियुक्त करना, पुस्तकों की जाँच कराना, यथा समय परीक्षाफल प्रकाशित करना आदि असाधारण कार्यकुशल व्यक्ति से ही ठीक तरह निभ सकता है। श्री महालिंगम् की सेवाएँ इस दिशा में प्रशंसनीय रही हैं। श्री सत्यनारायणजी, श्री रघुवरदयालु मिश्रजी, श्री अवधनन्दनजी आदि ने भी समय-समय पर इस विभाग के मंत्री-पद पर बड़ी दक्षता के साथ कार्य किया है। इन दिनों श्री एन. वेंकिटेश्वरन् परीक्षा-मंत्री के पद पर कार्य कर रहे हैं। वे सभी क्षेत्रों में, सभी विभागों में समान रूप से चमकनेवाले सुयोग्य व्यक्ति हैं। श्री देवराजन्, श्री माधवराव तथा श्री गणपति की सेवाएँ इस विभाग की सफलता में बड़ी सहायक रही हैं।

शिक्षा-विभाग—

श्री एस. आर. शास्त्री, जो इन दिनों सभा के प्रधान-मंत्री हैं, शिक्षा-विभाग के मंत्री रहे हैं। श्री अवधनन्दनजी, श्री रघुवरदयालु मिश्रजी आदि ने भी इस विभाग के कार्य संचालन में सहायता पहुँचायी है। श्री शास्त्रीजी मद्रास विश्वविद्यालय के (शिक्षा-परिषद् के—Board of Studies) के सदस्य रहे हैं। स्कूलों और कालेजों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने तथा सरकार तथा शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को इस दिशा में मार्गदर्शन करने में उनकी सेवाएँ अमूल्य रही हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में भी आप बड़े ही कार्यकुशल व्यक्ति हैं। इन दिनों श्री चन्द्रमौली इस विभाग के मंत्री नियुक्त हैं। आप भी प्रतिभावान और अनुभवी कार्यकर्ता हैं।

साहित्य-विभाग—

श्री मिश्रजी, श्री रामानन्द शर्मा, श्री व्रजनन्दन शर्मा आदि इस विभाग में काम करते रहे हैं। श्री वेंकिटाचल शर्मा, जो इन दिनों तमिलनाडु शाखा के मंत्री हैं, वर्षों तक साहित्य-विभाग का संचालन करते रहे। साहित्य-निर्माण के कार्य में श्री सत्यनारायणजी, श्री अवधनन्दनजी, श्री एस. आर. शास्त्रीजी, श्रीरामानन्द शर्माजी, श्री मिश्रजी, श्री व्रजनन्दनजी आदि की सेवाएँ विशेष महत्व की रही हैं। इसी विभाग की देख-रेख में प्रान्तों में हिन्दी विद्यालयों का संचालन होता है।

प्रेस-विभाग—

श्री हरिहर शर्माजी इस विभाग के आदि-संचालक हैं। प्रारंभकाल में श्री कृष्णन्

तथा श्री रामय्या ने इसका संचालन किया है। श्री देवराज भी इस विभाग में कुछ समय तक काम करते रहे हैं। उसके बाद अब वर्षों से श्री गोविन्द अवस्थी ही इस विभाग के कुशल व्यवस्थापक हैं। सत्यनारायणजी की देख-रेख में श्री अवस्थी के सफल संचालन में प्रेस का सर्वतोमुखी विकास हुआ है। हिन्दी के अतिरिक्त दक्षिण की सभी भाषाओं में इस प्रेस में पुस्तकें छपती हैं। हिन्दी प्रचार प्रेस, की छपाई की सबने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। छपाई में यह उत्तर के किसी भी अच्छे से अच्छे प्रेस की बराबरी कर सकता है। श्री अवस्थी की सेवाएँ इस विभाग में अभिनन्दनीय हैं। श्री श्रीनिवास शर्मा आदि कितने ही कुशल कार्यकर्ता इस विभाग में काम करते हैं। वर्षों से इस विभाग के संचालन में उन सबका हार्दिक योगदान रहता है।

पुस्तक-विक्री-विभाग—

यह सभा का एक प्रमुख विभाग है। सभा की आमदनी का जरिया मुख्यतः यही विभाग है। अतः इसी का सफल संचालन ही सभा की आधारशिला है। श्री सी. एन. पद्मनाभन् जी इस विभाग के कुशल संचालक हैं। भारत का कोई भी हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशक अथवा पुस्तक-विक्रेता ऐसा नहीं होगा जो इस मौन सेवक से परिचित नहीं हुआ हो। पुस्तक-विभाग के संचालन में श्री पद्मनाभन् जी के समान अनुभवी, कार्यदक्ष तथा निस्वार्थ सेवक शायद ही कोई हो। इस विभाग के क्रमिक विकास में श्री पद्मनाभन् की सेवाएँ अनन्य हैं।

सभा कार्यालय के विविध विभागों को अन्य कई सुयोग्य कार्यकर्ताओं का सहयोग भी प्राप्त होता रहा है। श्री माधवराव, श्री रामराव, श्री गणपति, श्री श्रीनिवास आचार्य, श्री अय्यंगार, श्री धर्मराज, श्री नारायण दास, श्री महेन्द्र जैन, श्री पन्नालाल त्रिपाठी आदि उनमें प्रथमगणनीय हैं।

पत्रिका-विभाग—

वर्षों से पत्रिका का संपादन श्री शारंगपाणी कर रहे हैं। श्री शारंगपाणी बड़े ही प्रतिभासंपन्न, कार्यदक्ष तथा अनुभवी संपादक हैं। श्री रामानन्द शर्माजी जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कुशल संपादक के अधीन 'दक्खिनी हिन्द' के संपादन में योगदान देते रहने का सौभाग्य आपको प्राप्त है। श्री शारंगपाणी के कुशल संपादकत्व के फल-स्वरूप 'हिन्दी प्रचार समाचार' की लोकप्रियता बहुत बढ़ गयी है। पत्रिका के संपादन में श्री हृषीकेश शर्माजी, श्री सत्यनारायणजी तथा पं० रामानन्द शर्माजी के दिखाए मार्ग को प्रशस्त करने में वे तत्पर रहते हैं। उस क्षेत्र में उनकी सेवाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

कार्यालय के सभी कार्यकर्ता साधारणतः सभी विभागों में कार्य करने का अनुभव और दक्षता रखते हैं। वर्षों का उनका अनुभव विभिन्न विभागों के गुरुतर

कार्यों के निर्वाह में बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ है। कार्यालय-संचालन की सफलता का पूरा श्रेय इन निस्वार्थ सेवकों को है।

पुस्तकालय व वाचनालय विभाग—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का पुस्तकालय दक्षिण का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। उसमें करीब २०००० पुस्तकें हैं। वाचनालय में भारत की सभी हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। मद्रास नगर के हजारों लोग सभा के पुस्तकालय तथा वाचनालय से फायदा उठाते हैं।

इस विभाग के सफल संचालन में श्री श्रीनिवास आचार्य तथा श्री नामक्कल कृष्णन् की सेवाएँ महत्व की रही हैं।

कार्य के क्रमिक विकास की रूप-रेखा (सन् १९१८ से १९६० तक)—

सन् १९१८ से लेकर १९६० तक ४२ वर्षों में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अधीन दक्षिण में हिन्दी प्रचार का जो महान् कार्य हुआ, उसके क्रम-विकास की रूप-रेखा नीचे दी गयी है। इसमें सन्देह नहीं कि सभा के कार्यकलापों की प्रगति की झाँकी इस से पाठकों को मिल सकती है—

सभा के द्वारा प्रशिक्षित प्रचारक	८,०००
इन दिनों ट्रेनिंग पानेवाले	३००
हिन्दी प्रचार केन्द्र	६,०००
परीक्षा केन्द्र	१,३५०
दक्षिण के हाइस्कूल, जिनमें हिन्दी पढ़ाई जाती है ...	४,०००
कालेज जिनमें हिन्दी पढ़ाई जाती है	२००
सभा की प्रकाशित पुस्तकें	३१४
सभा के अधीन मण्डल संगठक	१५
प्रान्तीय शाखाएँ (आन्ध्र, कर्नाटक, तमिल तथा केरल) ...	४
शाखा कार्यालयों के कर्मचारी	२५०
मद्रास नगर के प्रचारक	४००
प्रमाणित प्रचारक	७,७६०
१९६१ तक केन्द्र सभा का व्यय	रु. १,००,००,०००
वार्षिक बजट	रु. १५,००,०००

हिन्दी के लेखक और हिन्दी में शोध-कार्य—

पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है कि दक्षिण का हिन्दी प्रचार आन्दोलन मुख्यतः प्रचारात्मक रहा है। दक्षिण के हिन्दी विद्वानों द्वारा साहित्य-सृजन का कार्य बहुत ही कम परिमाण में हुआ है। मौलिक साहित्य की रचना नहीं के बराबर रही

है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि दक्षिण के हिन्दी विद्वान् साहित्यिक रुचि नहीं रखते थे। आरंभ से लेकर हिन्दी का विशेष अध्ययन करने एवं हिन्दी में कहानियाँ, आलोचना, लेख, कविता आदि लिखने की प्रवृत्ति कई हिन्दी प्रचारकों और हिन्दी अध्यापकों में पायी गयी है। हिन्दी की कहानियों तथा उपन्यास-ग्रन्थों का यहाँ की भाषाओं में तथा यहाँ की भाषाओं की कहानियाँ, उपन्यास आदि का अनुवाद हिन्दी में काफी हुआ है। साहित्यिक आदान-प्रदान की दिशा में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। लेकिन इस दिशा में कितना प्रयत्न और कैसा कार्य हुआ, यह अलग खोज का विषय है।

शोध-ग्रन्थ—

दक्षिण के विश्वविद्यालयों के हिन्दी के प्राध्यापकों द्वारा पिछले सात-आठ वर्षों में दक्षिण की भाषाओं (तमिल, तेलुगु, कर्नाटक तथा मलयालम्) की प्राचीन और आधुनिक काव्य-धारा की उत्तमोत्तम रचनाओं का हिन्दी के साथ तुलनात्मक अध्ययन हुआ है और उन्होंने अपने-अपने विषय में शोध-प्रबन्ध भी लिखे हैं। लखनऊ, काशी, आगरा, अलीगढ़, सागर आदि के विश्वविद्यालयों ने उनके शोध-प्रबन्धों को स्वीकार करके उन्हें 'डाक्टरेट' भी दिया है। अब दक्षिण के कुछ विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी विभाग खुले हैं जिनमें शोध-कार्य के लिए सुविधाएँ दी जाती हैं। कई विद्वानों को शोध-कार्य के लिए सरकारी छात्रवृत्तियाँ मिलने लगी हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं है कि शोध-कार्य के क्षेत्र में रुचि रखनेवाले दक्षिण के हिन्दी विद्वानों को पर्याप्त प्रोत्साहन और सहायता न विश्वविद्यालयों द्वारा प्राप्त होती है, न सरकार द्वारा।

गत वर्षों में उत्तर के विश्वविद्यालयों से हिन्दी-शोध-प्रबन्धों के द्वारा 'डाक्टरेट' लेनेवालों में डॉ० के० भास्करन् नायर (केरल), डॉ० वी० गोविन्द शेणाई (केरल), डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर (केरल), डॉ० वी० के० दामोदर प्रसाद (केरल), डॉ० एम० जार्ज (केरल) डॉ० हिरण्मय (मैसूर), डॉ० गणेश (मद्रास), डॉ० पांडुरंग राव (आन्ध्र) आदि उल्लेख योग्य व्यक्ति हैं। इन दिनों इस दिशा में और भी लोग प्रयत्नशील हैं। आशा है कि इस श्रेणी का सशक्त साहित्य थोड़े दिनों में अच्छे परिमाण में तैयार हो जाएगा।

प्रकरण २२

उपसंहार

हिन्दी प्रचार सभा की महत्ता—

सन् १९५२ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के 'राजाजी छात्रावास' के उद्घाटन के अवसर पर सभा के प्रधान मंत्री श्री सत्यनारायणजी ने जो भाषण दिया था, उसका नीचे लिखा उद्धरण सभा के क्रमगत विकास और उसकी महत्ता पर प्रकाश डालता है।

"प्राचीन साधु-संतों की तरह सत्य के द्रष्टा, दीन-दलित वर्ग की सेवा के अटल विश्वासी, बुराइयों से लड़नेवाले, संस्थाओं के निर्माता, राष्ट्रपिता के रूप में महात्मा गाँधी ने भारत की सर्वसाधारण एक भाषा हिन्दी के प्रचार के कार्य का बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री मदनमोहन मालवीय, श्री जमनालाल बजाज और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे जननायकों के साथ मिलकर, श्री गणेश किया। उनकी यह कल्पना महान् स्फूर्ति से परिपूर्ण और शक्ति संपन्न थी।

गत चौबीस वर्षों से हिन्दी का प्रचार द्रुतगति से हुआ। आज हिन्दी प्रचार एक जनप्रिय आन्दोलन है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा इस आन्दोलन का केन्द्र है। करीब १८ वर्षों तक किराये के मकानों में काम करने के बाद सभा ने यह निश्चय किया कि अपने कार्यकलापों के उपयुक्त एक स्वतंत्र स्थान बना ले; और तब मद्रास कार्पोरेशन से पाँच एकड़ यह जमीन ली। सन् १९३६ में कार्यालय और प्रेस के लिए अलग-अलग दो छोटे भवन तथा कार्यकर्ताओं के लिए चार निवास बनाये गये। सभा ने इन १६ वर्षों के व्यवधान में कार्यवृद्धि के अनुपात के अनुसार भवन भी बढ़ाये। इन भवनों को विस्तृत करने की योजना सन् १९४५ में बनी थी। सभा के जीवन-प्राण और संस्थापक तथा अध्यक्ष, पूज्य महात्मा गाँधीजी ने सभा की रजत-जयन्ती के अवसर पर उसके अध्यक्ष की हैसियत से इन योजनाओं को आशीर्वाद दिया था। इन पाँच वर्षों में सभा ने अपने प्रधान कार्यालय तथा प्रेस के भवनों को बढ़ाया है। इस परिवर्तित कार्यालय-भवन का उद्घाटन जुलाई १९४८ में हमारे महामान्य प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया। प्रधान कार्यालय-भवन के संपूर्ण होते ही सभा ने विद्यालय-भवन के निर्माण की ओर कदम बढ़ाया।

इस संस्था के कार्यकलापों में अध्यापकों को तैयार करना एक प्रधान कार्य है। अब तक इस संस्था ने करीब ३००० प्रचारकों को तैयार किया है। इस तरह के शिक्षणालय, प्रान्तीय कार्यालयों तथा केन्द्र कार्यालय मद्रास में भी चलाये जाते हैं। सन् १९३७ में ऐसी एक शिक्षण-संस्था को मद्रास में चलाने के लिए उपयुक्त भवन बनाने के उद्देश्य से हमने प्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी और राष्ट्रभक्त डॉ. कर्नल पंडाले से सहायता माँगी थी। उन्होंने उदारता के साथ हमारी प्रार्थना स्वीकार की और ५००० रु. दान दिये जिससे पाँच छोटे कमरे बनाये गये। सभा के कोषाध्यक्ष श्री अणामलै चेट्टियार ने १५०० रु. दान देकर हमारी सहायता की और 'रंगाचारी चारिटीस' से २००० रु. की सहायता मिली। इस तरह इस ९००० रु. से इस भवन का प्रथम खंड हमने पूरा किया। सन् १९४६ में रजत-जयन्ती की भोजन-समिति ने अपनी बचत के ५००० रु. छात्रावास के भोजनालय-भवन निर्माण के लिए सभा को दिये। इस दान से इस भवन के पूर्व की तरफ़ का भोजनालय बनाया गया है। सभा ने अपने निजी कोष से ४०,००० रु. खर्च कर तीन हॉल व दो कमरे और बनाये। इस छात्रावास में ५० छात्र रह सकते हैं और दो बड़े हॉलों में वर्ग चलाये जा सकते हैं। सन् १९३७ में हमारे प्रिय नेता तथा सभा के उपाध्यक्ष श्री राजगोपालाचार्य ने इस भवन का शिलान्यास कर आशीर्वाद दिया था। उनके इस आशीर्वाद ने हमें शक्ति और सामर्थ्य दिया। इसलिए सभा की कार्यकारिणी-समिति ने इस छात्रावास का नाम 'राजाजी छात्रावास' रखा है।

हिन्दी अब हमारी राजभाषा है। हमारे संविधान के विधानानुसार वर्तमान सरकारी भाषा अंग्रेजी सन् १९६५ के बाद भारत-सरकार की भाषा नहीं बनी रह सकेगी। हिन्दी तब उसका स्थान लेगी। हिन्दी प्रचार में अग्रगण्य इस संस्था का अपने ३४ वर्षों के अनुभव तथा साधन संपत्ति और निस्वार्थ भाव से काम करनेवाले कार्यकर्ताओं के सहयोग से राष्ट्रभाषा को बनाने और उसे समृद्ध करने व प्रचार करने के काम में निश्चित रूप से प्रमुख स्थान रहेगा। हम चाहते हैं कि यह स्थान केवल राष्ट्रभाषा के प्रचार का ही नहीं; बल्कि राष्ट्रीय संस्कृति के प्रचार का भी प्रधान केन्द्र हो। अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी प्रचार करनेवाली संस्थाएँ अपने कार्य में स्फूर्ति व मार्गदर्शन पाने के लिए इस संस्था की तरफ़ देखने लगी हैं। संविधान के अनुच्छेद ३५१ में कही हुई रीति से इस भाषा की श्रीवृद्धि करने तथा उसके साहित्य-भंडार को समृद्ध करने के लिए उपयुक्त हिन्दी प्रचार कार्य को और अधिक व्यापक बनाने में समर्थ कार्यकर्ताओं को तैयार करने के लिए एक अन्तर्प्रान्तीय हिन्दी शिक्षण संस्था की ज़रूरत महसूस की जा रही है; और इस संस्था को यहाँ खोलने का विचार किया जा रहा है।

हम चाहते हैं कि यह छात्रावास केवल विद्यार्थियों का निवास मात्र ही नहीं, बल्कि एक स्थायी और विशाल राष्ट्रीय संस्कृति के विकास का भी केन्द्र हो।"[1]

सभा के मधुर-स्वप्न—

जब देश स्वतंत्र हो गया तो हिन्दी प्रचार सभा के कार्यकर्ताओं ने यह सोचा कि केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारें विदेशीपन से धीरे-धीरे मुक्त हो जायँगी। यह भी उनकी आशा रही कि विदेशी भाषा का प्रभाव भी कुछ सीमा तक कम हो जायगा। तथा केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों के प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी का व्यवहार उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा। मद्रास सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मंत्री श्री अविनाशिलिंगम् चेट्टियार, प्रादेशिक भाषा-माध्यम के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने उस दिशा में कदम उठाया भी था। सभा चाहती थी कि अन्तरप्रान्तीय व्यवहार हिन्दी के द्वारा हो और स्कूलों तथा कालेजों की शिक्षा के पाठ्य-क्रम में हिन्दी को समुचित स्थान प्राप्त हो। सभा की यह माँग थी कि—

(१) पहले फार्म से छठे फार्म तक हाईस्कूलों में हिन्दी को परीक्षा का विषय मान लिया जाय।

(२) प्रादेशिक भाषा के द्वारा जब हाईस्कूलों में पढ़ाई की व्यवस्था होगी तब दूसरी भाषा के तौर पर हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था भी की जाय।

(३) कालेजों की पढ़ाई जब प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से होगी तो हिन्दी को पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाय ताकि भविष्य में स्वतंत्र भारत का हर एक उच्च शिक्षित नागरिक अन्तरप्रान्तीय व्यवहार तथा राष्ट्रीय कार्यों के लिए हिन्दी की पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर सके।

(४) सरकार कुछ ऐसे हाईस्कूल खोलने की व्यवस्था करे जिनमें हिन्दी के माध्यम से पढ़ाई हो।

स्वराज्य प्राप्त हुए, हमें पन्द्रह वर्ष व्यतीत हुए, किन्तु सभा के उपर्युक्त स्वप्न अभी तक सफल नहीं हुए।

हिन्दी प्रचार किया, हिन्दी नहीं सिखाई—

'हिन्दी प्रचारक' के जून १९३९ के अंक में दक्षिण के हिन्दी प्रचार में पायी जानेवाली कमियों पर प्रकाश डालते हुए एक संपादकीय नोट छपा था। उसका सारांश नीचे दिया जाता है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि सभा ने हिन्दी प्रचार-क्षेत्र की कमियों को महसूस किया और उन्हें यथासंभव दूर करने की चेष्टा भी करती रही। संपादकीय नोट में यों लिखा था—

---

1. हिन्दुस्तानी प्रचार—१९५२ मई पृष्ठ २६६

"हिन्दी प्रचारक लोग इस बात का दावा करते हैं कि दक्षिण भारत में उनका संगठन विस्तृत एवं मज़बूत है। अपने कार्य को उन्होंने फैलाया ही नहीं, बल्कि हिन्दी प्रचार आन्दोलन को ज़िन्दा बनाये भी रखा है। हिसाब लगाने पर स्पष्ट हुआ कि अब तक २००० से भी अधिक केन्द्रों में प्रचारक कार्य कर रहे हैं और एक लाख लोगों को हिन्दी पढ़ायी है। करीब एक लाख लोगों ने परीक्षाएँ पास की हैं। अब फिर से गिनती कराएँ तो क्या ये आँकड़े ठीक निकलेंगे? क्या हमने दक्षिण भारत में डेढ़ फीसदी लोगों को वास्तव में हिन्दी सिखाई है? सभा के रिकार्ड में तो इस बात का प्रमाण मिलेगा। लेकिन अधिकांश पुराने विद्यार्थी कहेंगे कि इसमें सचाई नहीं है।"

बीज बोया, पर खाद नहीं दी—

"अगर यह पूछा जाय कि क्या हमारे सभी पुराने विद्यार्थी, जिनकी संख्या हमारे हिसाब के अनुसार १,००,००० है, आज ऐसी योग्यता प्राप्त कर सके हैं कि वे हिन्दी लिख-पढ़ सकें, या कम से कम समझ सकें तो हमें मानना पड़ेगा कि ऐसे आदमी मुश्किल से २० से २५ फ़ीसदी होंगे। बाकी लोग सिर्फ हिन्दी प्रचार या प्रचारकों के संपर्क में आये कुछ लोगों ने हिन्दी सीखी, तो भी वह इस समय उनके पास नहीं है। जिनसे उन्होंने सीखी, उन्हीं के पास वापस चली गयी है, तब फिर हमारा यह दावा किस काम का? तब हमारी यह खुशी किस बात की?

यदि इन लाखों हिन्दी पढ़े-लिखे लोगों में बीस फ़ीसदी लोग सीखी हुई हिन्दी भूल गये या भुला देने पर मज़बूर हुए तो यह समझना चाहिए कि हम लोगों ने सचमुच हिंन्दी नहीं सिखायी; हिन्दी-आन्दोलन का प्रचार किया है। हमने हिन्दी का क्षेत्र तैयार किया है और उसमें बीज बोया है, मगर खाद नहीं दी है।

हम अब अपने पिछले क्षेत्र की तरफ देखते हैं तो हमारा बोया हुआ बीज सूखता हुआ नज़र आता है। उसे सींचने और खाद देने की तरफ़ हमारा ध्यान कम जाता है। हमारा कार्य अभी तक केवल विचारों का कार्य रहा। उन विचारों को अमल में लाने की चेष्टा कम ही हुई है। अतएव हमारा किया-कराया परिश्रम बहुत कुछ निष्फल-सा रह गया।

हिन्दी प्रचारक 'हिन्दी-मास्टर' नहीं—

यह मानी हुई बात है, कि हिन्दी-प्रचारक, स्कूल-कालेजों के 'हिन्दी-मास्टर' नहीं हैं। हिन्दी प्रचारकों का कार्यक्षेत्र व्यापक और विस्तृत है, उसे समाज-सेवा, शिक्षा, संस्कृति-साहित्य आदि के क्षेत्रों में भी काम करना पड़ता है। हिन्दी-प्रचार का मौलिक उद्देश्य वही है। स्कूलों और कालेजों के हिन्दी-मास्टर शिक्षा-संस्कृति और राष्ट्र-सेवा संबंधी आन्दोलनों से कोसों दूर रहते हैं। अतएव उनकी प्रतिष्ठा की

सीमा भी संकुचित रहती है। लेकिन प्रतिष्ठा मात्र से क्या लाभ ? इज़्ज़त और मान-प्रतिष्ठा तभी शोभित और आनन्दकारी लगती है जब कि कार्यकर्ताओं के पेट में चूहे न दौड़ते हों।

पेट का सवाल—

जब से स्कूल-कालेजों में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हुई, अधिकांश सुयोग्य प्रचारक उस संकीर्ण क्षेत्र की ओर अधिक आकृष्ट हुए। कारण स्पष्ट था। सभा की छत्र-छाया में ऐसे सैकड़ों प्रचारकों की जीविका का प्रश्न हल करना असंभव था। हिन्दी-प्रचारक भी तो मनुष्य-प्राणी हैं, उनके भी पेट होते हैं, उनके भी बाल-बच्चे हैं, यह कल्पना सभा के संचालकों को नहीं हुई, यदि हुई भी तो वह कोरी कल्पना ही रही। बड़े-बड़े सुन्दर आदर्श के सिद्धान्तों से पेट का सवाल हल नहीं होगा। इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि अधिकांश प्रचारक 'हिन्दी-प्रचार-क्षेत्र' को छोड़कर स्कूल-कालेजों की नौकरी स्वीकार करने पर विवश हुए।

हिन्दी प्रचार सभा की भूल—

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की भूलों में यही सबसे बड़ी भूल थी कि सभा ने अपने कार्यकर्ताओं की जीविका पर कम ध्यान दिया। सभा के उच्च अधिकारी जिनके हाथ में सभा के वैधानिक संचालन की बागडोर थी, केवल हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के साधन ढूँढ़ने में संलग्न होने के कारण प्रचारकों की आर्थिक कठिनाइयों की ओर उदासीन रहे। इसका यह दुष्परिणाम हुआ कि सैकड़ों नवयुवकों ने सभा की नीति से असन्तुष्ट होकर सभा के स्वतंत्र, स्वच्छन्द, विशाल-क्षेत्र को छोड़ दिया और स्कूल-कालेजों के संकीर्ण-दायरे को पसन्द किया !!

'जिसकी लाठी उसकी भैंस'—

वास्तव में स्कूल-कालेजों का वेतन-क्रम उस ज़माने में आकर्षक नहीं था। क्या ३० रुपये की नौकरी बड़ी ही आकर्षक थी ? कई वर्षों के संगठित प्रयत्न के फल-स्वरूप ही उनके वेतन-क्रम में कुछ वृद्धि हुई थी। अतएव यह कहना कि वे अच्छे वेतन-क्रम से आकर्षित होकर सेवा-वृत्ति को तिलांजली देकर स्कूलों के हिन्दी-मास्टर बने, इस कारण उनकी प्रतिष्ठा कम हुई, सचाई को छिपाने की झूठी गवाही है। यदि सभा की सेवा-व्यवस्था और वेतन-क्रम सरकारी-नियमों के अनुसार स्थायी और आकर्षक होता तो पुरानी पीढ़ी का कोई भी हिन्दी प्रचारक स्कूल में नौकरी करने के लिए लालायित नहीं होता। अतः यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इस दिशा में सभा संपूर्णतः पराजित हुई और धीरे-धीरे सभा का संगठन और वैधानिक व्यवस्था बिलकुल शिथिल होती गयी। सभा के संचालन में 'जिसकी लाठी, उसकी

भैंस' वाली नीति ही बरती गयी। सभा संस्थापक, हिन्दी के प्राणस्वरूप पं० हरिहर शर्मा, हिन्दी के प्रकांड विद्वान् पं० हृषीकेश शर्मा, सुयोग्य हिन्दी प्रचारक जमुनाप्रसाद श्रीवास्तव, श्री सिद्धनाथ पंत, रामानन्द शर्मा, नागेश्वर मिश्र, टी. कृष्णस्वामी, सिद्ध-गोपालजी, व्रजनन्दन शर्मा, देशदूत विद्यार्थी, अवधनन्दनजी आदि सब अंशतः इस नीति के शिकार ज़रूर बने। उनकी दीर्घकालिक सेवाओं से सभा वंचित रही। सभा ने उनमें से कुछ-एक को ५५ वर्ष की उम्र की कड़ी कैद में डाल दिया, जब कि सरकारी सेवा व्यवस्था में कभी-कभी ज़रूरत पड़ने पर पचपन की उम्र पार करनेवालों की भी पुनः नियुक्ति की गुंजाइश रहती है।

कार्यकर्ताओं के एक नये दल की आवश्यकता—

दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार आन्दोलन अब तक अधिकतर प्रचारात्मक रहा है। उसकी व्यापकता को सुसंचालित, स्वावलंबी और नियंत्रित करने में ही सभा ने अभी तक अपनी पूरी शक्ति लगायी है। सुशिक्षण और सुसाहित्य के प्रति रुचि और भाषा के प्रति स्थायी प्रेम-सम्बन्ध बनाये रखने के लिए काफ़ी प्रयत्न नहीं हुआ है, जो अत्यन्त आवश्यक था। सन् १९४५ में यह कल्पना की थी कि दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचार-क्षेत्र में अब ऐसे कार्यकर्ताओं का भी एक नया दल तैयार हो जाये, जो न केवल प्रचार संगठन; धन-संग्रह व व्यवस्था के कार्यों में ही लगा रहे, बल्कि शिक्षण व साहित्य-प्रचार को भी अपने जीवन का ध्येय बनाकर जनता के संपर्क में आवे। इस दल का काम यही हो कि वह वर्तमान तथा पुराने विद्यार्थियों की मदद करे और जहाँ जरूरत पड़े वहाँ प्रचारकों को साहित्यिक साधनों से सुसंपन्न बनावे। सभा की यह कल्पना अभी तक 'कोरी कल्पना' ही रह गयी। उसे कार्यरूप में परिणत करने की दिशा में सभा ने आज तक कदम नहीं उठाया है।

शिक्षा का माध्यम—

शिक्षण-पद्धति तथा शिक्षण की योजनाओं पर केन्द्र सरकार की नीति के आधार पर सभी प्रान्तीय सरकारों ने अपनी-अपनी शिक्षण-पद्धति में परिवर्तन, सुधार एवं संशोधन का क्रम शुरू किया है। लेकिन आज तक शिक्षण के आचार्यों और अधि-कारियों ने देश के लिए उपयुक्त शिक्षा-प्रणाली की समस्या को हल करने में कहाँ तक सफलता पायी, यह कहना कठिन है। अंग्रेजी के माध्यम से वर्षों से देश में जो शिक्षा-प्रणाली कायम रही, जिससे देश की बौद्धिक तथा आर्थिक शक्ति का अपव्यय हुआ, उसके सुधारने में अभी तक कोई ठोस कार्य नहीं हुआ है। गांधीजी ने शिक्षा को कार्य-शील बनाने की चेष्टा की थी।

अंग्रेज़ी आज भी हमारे देश की अन्तर्प्रान्तीय माध्यम बनी हुई है। अदालतों, उच्च-शिक्षणालयों तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में उसी की तूती बोलती है। उन क्षेत्रों में

हिन्दी को चिरप्रतिष्ठित करने का गुरुतर उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार का ही माना जाता है। तथापि जनता तथा हिन्दी प्रचार-संस्थाओं का सहयोग इसमें अत्यन्त अपेक्षित है। यदि लोग अपने-अपने प्रान्त की भाषा की बड़प्पन की हवा बाँधें, अपनी-अपनी संकीर्ण परिधि में ही रहना चाहेंगे तो सरकार क्या, ईश्वर भी हमारी लक्ष्यप्राप्ति में सहायक नहीं हो सकेगा।

आज देश के हर एक नागरिक का यह कर्तव्य हो गया है कि वह अपनी मातृभाषा के साथ राजभाषा तथा अंग्रेज़ी का अध्ययन करे। हिन्दी-भाषा-भाषियों को अहिन्दी प्रान्तों की कोई एक भाषा सीखने के लिए बाध्य करना अनावश्यक मालूम पड़ता है। यदि वे चाहें तो बेशक, अन्य भाषाएँ सीखें। लेकिन चूँकि अहिन्दी प्रान्तवाले हिन्दी सीखने का कष्ट उठाते हैं, इसीलिए हिन्दी भाषा-भाषियों को भी अहिन्दी प्रदेश की भाषा सीखने को मज़बूर करना चाहिए, यह कल्पना प्रतिशोध-वृत्ति की द्योतक है। इस सम्बन्ध में दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन के आदि नेता पं० हरिहर शर्माजी ने वर्धा में हुए अखिल-भारत राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलन में भाषण देते हुए हाल ही में कहा था कि "यह जो प्रस्ताव हो रहा है कि हिन्दी भाषी दक्षिण की भाषा सीखें, अवश्य ही निष्फल होगा। जिनके मन में श्रद्धा नहीं है, उनपर यह अनावश्यक भार क्यों लादा जाय? जहाँ जो भाषा बोली नहीं जाती है वहाँ रहकर वह भाषा सीखना कठिन है। अतः यह प्रयत्न छोड़ देना होगा। केवल दक्षिण के लोगों को संतुष्ट करने के लिए इच्छा न होने पर भी उनकी भाषाएँ सीखना बेकार है।

दक्षिणवासियों का डर—

नौकरियों के मामले में दक्षिणवासियों का यह डर बना रहता है कि यदि आगे हिन्दी की योग्यता पर ही सरकारी नौकरियों की उपलब्धि निर्भर होगी तो हिन्दी भाषा-भाषियों के मुकाबले में वे लोग, जो हिन्दी में अल्पमात्र योग्यता रखते हैं, पिछड़े ही रह जायँगे।

प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने १९५२ में, हैदराबाद में जो भाषण दिया था, उसका नीचे उद्धृत अंश इस सम्बन्ध में भविष्य की ओर उनका संकेत स्पष्ट करता है। उन्होंने यों कहा था—

"अब वे दिन लद गये हैं जब कि अंग्रेजी जाननेवालों के लिए सरकारी नौकरियों में अधिक मौके मिला करते थे। अब ये मौके उन लोगों को मिलेंगे जिन्हें कि हिन्दी का अच्छा परिज्ञान होगा।

आजकल तो दिल्ली के सेक्रेटेरियट में ज्यादा दाक्षिणात्य ही हैं, क्योंकि वे लोग अंग्रेज़ी में अच्छे निपुण हैं। इस उद्देश्य से कि दाक्षिणात्य भी हिन्दी सीखें, और उसमें

दिलचस्पी लें, उस्मानिया विश्वविद्यालय को केन्द्रीय सरकार ने अपने अधीन कर लिया है। यह तो अब दाक्षिणात्यों के लिए है, खासकर हैदराबाद के लोगों के लिए कि वे हिन्दी सीखें और सरकारी नौकरियों में अपना सही हिस्सा हासिल करें।"[१]

अंग्रेज़ी की योग्यता के कारण ही दक्षिण के पढ़े-लिखे लोग केन्द्रीय सरकार के विभागों तथा अन्य क्षेत्रों में अभी तक ऊँची-ऊँची नौकरियाँ प्राप्त करते रहे हैं। अंग्रेज़ी के माध्यम से शिक्षित-दीक्षित होने से वे उत्तरवालों की अपेक्षा अंग्रेज़ी की योग्यता में बहुत अधिक आगे रहे हैं। भारत के सभी प्रमुख शहरों में, हज़ारों की संख्या में ऐसे कर्मचारी पाये जा सकते हैं, जो अंग्रेज़ी ही की योग्यता पर अपने जीवनोपार्जन की समस्यायें आसानी से हल करते हैं। अतः हिन्दी की पर्याप्त योग्यता शीघ्र प्राप्त करने में असमर्थ होने से नौकरियों से वंचित होने का डर होना स्वाभाविक है।

हिन्दी-सरलीकरण—

इन दिनों हिन्दी के 'सरलीकरण' पर भी गंभीर चर्चा होने लगी है। 'अखिल भारत-आकाश वाणी' से प्रसारित होनेवाली हिन्दी-शैली की टीका-टिप्पणी भी कहीं-कहीं हो रही है। पहिले भी हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी पर इस प्रकार काफ़ी गरमागरम बहस हुई थी। विधान के बनने के बाद कुछ समय तक वातावरण शान्त रहा। परन्तु दुर्भाग्य ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा। भावात्मक एकता के मार्ग में प्रतिज्ञाबद्ध होने के बाद भी कुछ लोग इन छोटी-मोटी बातों में समय और शक्ति का अपव्यय करने से बाज़ नहीं आये हैं। जनता को भ्रम में डालनेवाली ऊटपटांग दलीलों को प्रस्तुत करते हुए अपने-अपने पक्ष को वे मज़बूत कर रहे हैं। पर वे यह बात भूल जाते हैं कि विकासोन्मुख भाषा के रूप या शैली का निर्धारण कोई एक व्यक्ति, या जनसमूह या राष्ट्र एक ही दिन में नहीं कर सकता। वर्षों के विकास-परिणाम पर ही भाषा रूप कुछ सीमा तक निश्चित और निर्धारित हो सकता है। विशेषतः हिन्दी ऐसी भाषा है, जिसकी कई अलग-अलग बोलियाँ उत्तर में प्रचलित हैं, जिनके बोलनेवाले एक दूसरे की बात नहीं समझ सकते। इसके अतिरिक्त उर्दू मिश्रित भाषा बोलनेवाले भी काफ़ी संख्या में उत्तर में रहते हैं दक्षिण के लोगों की स्थिति उनसे भिन्न है। यहाँ हिन्दी व्यावहारिक भाषा नहीं बनी है। किताबी हिन्दी से ही यहाँ के लोग अधिक परिचित हैं। बोल-चाल की हिन्दी में अभ्यस्त होने का अवसर उन्हें नहीं के बराबर मिलता है। इस हालत में दक्षिण के लोग यह हठ कदापि नहीं करते कि हिन्दी का रूप उर्दू मिश्रित हो या संस्कृतनिष्ठ हो। लेकिन यहाँ इस बात

---

(१) 'दक्षिण भारत'—१९५२ नवंबर—पृष्ठ ६०

का डर बना रहता है कि जब दक्षिण के चार प्रमुख भाषा-भाषी हिन्दी सीखकर अपनी-अपनी मातृभाषा के प्रभाव के साथ अपनी प्रादेशिक भाषा-शैली में कुछ हद तक प्रादेशिक शब्दों के मिश्रण के साथ बोलेंगे तो क्या उत्तरवाले नाक-भौं सिकोड़ कर यह नहीं कहेंगे कि मद्रासी हिन्दी हमें पसन्द नहीं ! वर्तमान स्थिति को देखते हुए, यह कहना कठिन है कि हिन्दी भाषा-भाषी इस प्रकार की संकीर्ण मनोवृत्तियों की परिधि से मुक्त होकर विशाल दृष्टिकोण से इस नयी परिस्थिति का सामना करेंगे ।

हठधर्मी—

वास्तव में हिन्दी प्रदेशों के कुछ लोगों की हठधर्मी ही हिन्दी के सर्वव्यापक प्रचार में रोड़े अटका रही है । दक्षिण के सुप्रसिद्ध नेता राजाजी को अंग्रेजी में बोलने न देकर उनको हिन्दी में, जिसमें बोलने में असमर्थ हैं, बोलने के लिए विवश करके उनका अपमान करना, उग्र 'राजभाषा प्रेम' का प्रदर्शन हो तो, दक्षिणवाले उस 'प्रेम' को हृदयंगम कदापि नहीं कर सकते । पारस्परिक सहानुभूति और सहनशीलता के बल पर ही हिन्दी को हम दक्षिण के जन-हृदय में प्रविष्ट करा सकते हैं ।

एक नया सवाल—

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि हिन्दी प्रचार जैसी संस्थाएँ, जो अब तक राष्ट्रीय आन्दोलन के एक प्रमुख अंग के रूप में हिन्दी के देशव्यापी प्रचार एवं प्रसार में निरन्तर क्रियात्मक रहीं, क्या वे सभी निष्क्रिय और निष्प्राण होकर धीरे-धीरे मिट जायँ ! आज की गति-विधि को देखते हुए, यह सन्देह निर्मूल नहीं कहा जा सकता । आज केन्द्रीय सरकार हिन्दी के विकास की दिशा में अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार की आयोजना को कार्यान्वित करने के लिए कटिबद्ध है । तब तो क्या, इसका यह अर्थ नहीं कि इन संस्थाओं के लिए कोई ठोस कार्य नहीं रह गया है ? इस स्थिति में केवल सरकारी अनुदान की प्रतीक्षा में अपनी अन्तिम घड़ियों को गिनने के सिवाय और कर ही क्या सकती हैं !

संविधान के अनुच्छेद ३५१ के अनुसार सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी का विकास करने के लिए ऐसी कार्यप्रणाली निर्धारित करे कि विभिन्न भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के निकट आ सकें और हिन्दी उन भाषाओं के साथ समन्वयात्मक भाव से विकसित हो । क्या, यह कार्य केवल सरकारी कर्मचारियों के द्वारा पूर्णतः संभव हो सकेगा ? कदापि नहीं । अब पूर्वाधिक लगन और त्याग-निष्ठा के साथ इस हिन्दी आन्दोलन को सजीव रखना ही देशवासियों का एकमात्र कर्तव्य है ।

हिन्दी आन्दोलन की सफलता—

'हिन्दी प्रचार के आन्दोलन की सफलता एक स्वयं सिद्ध तथ्य है । वह हिन्दुस्तान की नयी जागृति का एक प्रकाश है और भावी स्वराज्य के भव्य-भवन

का आधार है। हिन्दी भारतीय संस्कृति और सभ्यता का जीवन-जागृत कोष है। साथही हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता का समन्वय है हिन्दी की महानता इस बात में है कि उससे हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूप में प्रेम करते हैं और उसपर गर्व करते हैं। और इसका लालित्य, प्रभाव और माधुर्य सब लोगों को अपना प्रेमी बना लेने की शक्ति रखता है।'

इसमें सन्देह नहीं कि किसी आन्दोलन की देशव्यापी सफलता उसकी अपनी उपयोगिता, समय की प्रगति और जनता की तत्परता पर निर्भर रहा करती है। और इन दृष्टियों से हिन्दी प्रचार को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। देश के बड़े-बड़े विद्वानों ने हिन्दी की उपयोगिता और महत्ता को स्पष्ट शब्दों से स्वीकार किया है और उसके देशव्यापी प्रचार पर ज़ोर दिया है। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय महासभा ने हिन्दी को अपनी कार्यभाषा के रूप में स्वीकार किया और सब राष्ट्रीय संस्थाएँ हिन्दी के प्रचार को बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं।

भावात्मक एकता—

हिन्दी-प्रचार वस्तुतः एक सांस्कृतिक आन्दोलन है। भावात्मक एकता ही उसका चरम लक्ष्य है। हिन्दुस्तान को हम एक अखंड राष्ट्र मानते हैं, हालाँकि काल्पनिक जगत को छोड़ कर व्यावहारिक जीवन में ऐसा मानने का हमें सौभाग्य प्राप्त नहीं था। देश के पुनरुद्धार की आयोजना में भाषावार प्रान्तों का पुनर्गठन भी हो चुका है।

स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में भारतीय जनता का एकमात्र लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यशाही से मोचन पाना ही था। जन जागरण के उस जमाने में लोगों ने अपने जातिगत, सांप्रदायिक, धार्मिक तथा भाषागत भेद-भावों को कुछ समय के लिए भुला तो दिया था, वह एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाली जनता की क्षुद्र संकीर्ण भावनाएँ गांधी जी की विशाल देशीयता की तह में दब सी गयीं, किन्तु सदा के लिए वह मिट तो नहीं गयी थीं। स्वराज्य-प्राप्ति के वाद हम देखते हैं, वे फिर से अपना सिर उठाने लगी हैं। गाँधीजी के सभी रचनात्मक कार्यों में नैतिक भावात्मक एकता की कल्पना थी। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, खादी-प्रचार, राष्ट्रभाषा प्रचार, अछूतोद्धार, ग्रामोद्धार, मद्यवर्जन आदि सभी में भारत की अखंड एकता की प्रेरक शक्ति निहित है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है, भाषावार प्रान्त के बनने के बाद देश की एकता के रास्ते में सैकडों रोड़े अटके हुए हैं। भाषावार प्रान्त की कल्पना विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर हुई। प्रशासन की सुविधा और सुगमता की कल्पना ही भाषावार प्रान्तों के विभाजन में थी। परन्तु सब कहीं आज सुगमता के बजाय घोर विषमता पैदा होती नज़र आ रही है।

इस सांस्कृतिक समन्वय के कार्यों में साहित्यकारों को क्या करना चाहिए, इस

बात पर प्रकाश डालते हुए दैनिक 'आज' में जो लेख प्रकाशित किया गया था, उसका नीचे लिखा उद्धरण विशेष महत्व का है ।

"क्या प्रगति, क्या कला और साहित्य, और क्या जीवन, सभी दृष्टियों से दक्षिण समृद्ध है, पर अभी तक उत्तर ने उसे वह आत्मीयतापूर्ण आदर नहीं दिया जो उसका प्राप्य है । आज यह अनिवार्य हो उठा है कि उत्तर के विद्यार्थी और लेखक दक्षिण की एक भाषा अवश्य सीखें और उस भाषा के महत्वपूर्ण साहित्य को हिन्दी के पाठकों तक पहुँचाएँ । उत्तर के साहित्यकारों, कलाकारों, चिन्तकों आदि की दक्षिण-यात्रा और दक्षिण के साहित्यकारों तथा दार्शनिकों की उत्तर-यात्रा भी विचारों के आदान-प्रदान में सहायक होगी । जो सरकार समुद्र पार शिष्टमण्डल भेजती है उसे हिमालय से समुद्र तक फैले हुए अपने देश के भिन्न भिन्न प्रदेशों में बसे व्यक्तियों को एक दूसरे से परिचित कराने का प्रयत्न भी करना चाहिए । यदि ऐसा न होगा तो आज नहीं तो कल यह अपरिचय ही विरोध का सूत्रपात करेगा ।

हमारे देश में सांस्कृतिक एकता का कार्य चिन्तक, कवि और साधक ही करते हैं । उत्तर के चिन्तन और जीवन-दर्शन के विकास में श्री शंकराचार्य, श्री माधवाचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य आदि ने जो योगदान दिया है उससे प्रत्येक विद्वान् परिचित है । आज यदि दक्षिण के किसी-किसी कोने में आर्य और द्राविड़ संस्कृतियों का प्रश्न उठ रहा है तो उसके मूल में उत्तर-दक्षिण का अपरिचय ही है, जिसे दोनों खंडों के चिन्तक और साहित्यकार दूर कर सकते हैं ।" (१)

भविष्य की ओर एक दृष्टि—

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद देश की अनेकों विषम समस्याओं के साथ, भाषामूलक समस्याएँ भी उपस्थित हुई हैं । ये भी कम जटिल नहीं हैं । इनमें भारतीय भाषाओं के विकास, स्कूल-कालेजों में पढ़ाई के माध्यम, राजभाषा के रूप में हिन्दी के व्यवहार के समय-निर्णय, पारिभाषिक शब्दावली-आयोग आदि की समस्याएँ शामिल हैं । देश को इन पर गंभीर विचार करना पड़ रहा है । यह तो निर्विवाद बातें हैं कि पराधीनता के युग में भारतीय भाषाएँ निष्प्राण-सी हो गयी थीं । इसका कारण यह था कि शैक्षणिक तथा प्रशासनिक कार्यों में अंग्रेजी का ही बोलबाला रहता था । अब वह स्थिति बदल गयी है । निकट भविष्य में, संविधान के अनुसार अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी प्रतिष्ठित होने जा रही है । हो सकता है कि हिन्दी के, प्रशासनिक क्षेत्र में व्यवहृत होने में कई कठिनाइयाँ उपस्थित हों; लेकिन इतना तो निश्चित है कि अन्त में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी 'राजभाषा' का पद-ग्रहण करेगी ही । इसके लिए जनता एवं सरकार के सहयोगात्मक प्रयत्न की नितांत आवश्यकता है ।

---

(१) हिन्दुस्तानी प्रचार-दिसंबर १९५१ पृष्ठ ७३०.

सहायक-ग्रन्थों की सूची

१. काँग्रेस का इतिहास —डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या
२. आत्मकथा —श्री राजेन्द्र प्रसाद
३. आत्मकथा —महात्मा गाँधी
४. मेरी कहानी —पं. जवाहरलाल नेहरू
५. हिन्दी-हिन्दुस्तानी —पद्मसिंह शर्मा
६. हिन्दी साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल
७. सत्यनारायण अभिनन्दन ग्रन्थ —हिन्दी प्रचार सभा, आन्ध्र
८. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी —महात्मा गाँधी
९. हिन्दी ही क्यों ? —कमलादेवी गर्ग
१०. भारतीय नेताओं की हिन्दी-सेवा —प्रभावती दरबार
११. 'हिन्दी प्रचारक' —१९२३ से १९३७ तक के सभी अंक (द. भा. हि. प्र. सभा)
१२. 'दक्षिण भारत' —१९३८ से १९३९ तक के तथा १९५२ से १९६२ तक के सभी अंक
१३. 'हिन्दी प्रचार समाचार' —१९३९ से १९६२ तक के सभी अंक (द. भा. हि. प्र. सभा)
१४. 'दक्खिनी हिन्दी' —१९४७ से १९५३ तक के सभी अंक
१५. रजतजयंती रिपोर्ट —द. भा. हि. प्रचार सभा
१६. हिन्दी की पहली पुस्तक —स्वामी सत्यदेव
१७. राष्ट्रभाषा का सवाल —पं. जवाहरलाल नेहरू
१८. भारतीय विधान —भारत सरकार
१९. हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति —{ विजयेन्द्र स्नातक, क्षेमचन्द 'सुमन' }
२०. भारतवर्ष का इतिहास —अवधबिहारी पांडेय
२१. राष्ट्रभाषा हिन्दी —सुनीतिकुमार चाटर्जी
२२. राजर्षि पुरुषोत्तमदास अभिनन्दन ग्रन्थ —
२३. हिन्दी साहित्य कोश —ज्ञानमंडल, वाराणसी
२४. मलयालम् साहित्य का इतिहास —ए. डी. हरिशर्मा
२५. मलयालम् का विकास परिणाम —इलंकुलम कुंजन पिल्लै

२६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ. रामकुमार वर्मा
२७. धर्मयुग —१९५६ से १९६० तक के सभी अंक
२८. नवभारत टाइम्स —१९५० से १९६० तक के सभी अंक
२९. हिन्दी व्याकरण —कामताप्रसाद गुरु
३०. हिन्दी का गद्य-साहित्य —डॉ. रामचन्द्र तिवारी
३१. भारत की भौगोलिक समीक्षा —कृपाशंकर गौड़
३२. केरल प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार सभा का वार्षिक कार्य-विवरण —१९६० तक प्रकाशित सभी फाइलें
३३. A History of Hindi Literature.
By K. B. Jindal

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९	२२	स्वदेश की व्याख्या	'स्वदेशी' की व्याख्या
४८	२७	समय पर	समय-समय पर
५०	२४	के. वी.	के. वी. नायर
५६	१०	संस्करण	संस्मरण
६३	१९	वक्तव्य को	वक्तव्य की
६४	२	लोगों को	लोगों की
७१	६	सभा में	सभा ने
”	७	ज्ञान	ज्ञात
७६	२०	तकनी की	तकनीकी
७९	(शीर्षक में)	१९१८–१९३२	१९२८–१९३२
११६	५	राधाकृष्णन्	रामकृष्णन्
१२१	(उपशीर्षक)	मतभेत	मतभेद
१२२	१८	कुल	कुछ
१५३	९	मंत्र का	मंत्र के
१९३	२०	हिन्दी के बदलने	हिन्दी के बदले करने
२०६	२२	दम छूट	दम घुट
२१४	१६	किया है	दिया है
२३५	३	Natinal	National
”	”	Congqres	Congress
२३९	२१	स्थापित	साबित
२४५	१३	हिन्दी अध्यापकों के लिए–	हिन्दी अध्यापकों को
”	१९	B. E. d.	B. Ed.
२४७	२०	छओं	छहों
२४९	१९	हिन्दी अध्यापक को	हिन्दी अध्यापकों को
२५०	१०	सन् १९३३	सन् १९३३ से
२५३	२०	जनवरी के	जनवरी की
२६२	११	छठवीं	छठी
२६४	६	एको	एक

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६४	८	यह पुरानी कीर्ति की	यह पुरानी कीर्ति कि
२६५	२३	सन् १९३४ से	सन् १९३४ में
२८३	७	Kongress	Congress
"	२२	कलाशाला में	कलाशाला ने
२८७	२८	संबन्ध	संबद्ध
२८८	६	अनेक	उसके
"	१७	जनता के	जनता का
२९३	२२	कार्य किया गया	किया गया
२९९	२५	चन्नुमेनोन	चन्तुमेनोन
"	"	तकबि	तकषि
३०३	१०	कुंचन नंवियार	कुंचन नंपियार
३१७	१४	Kamination	examination
३२३	२	चला रहे हैं	चला रहा है
३२४	१२	शंकर वमी राजा	शंकर वर्म राजा
३२७	३	पेरिन्नलमण्णा	पेरिन्तलमण्णा
"	"	तिरनर	तिरूर
"	"	नलिपरंपा	तलिपरंपा
३२८	१३	संगठनों की	संगठकों की
३३३	१८	प्रदर्शक	पथ-प्रदर्शक
३४७	८	जैसी	जैसी बातों तथा
३५०	२०	कार्यकर्ता	कार्यकर्ता श्री पी. जी. वासुदेव तथा
३५१	९	के. जी. के. नायर	के. जी. के. नायर उस पद पर कार्य करते रहे।
३६२	२२	Rapia	Rapid
३७९	१४	आश्रम में	आश्रम के
३८३	१८	स्वतंत्र-तृष्णा	स्वातंत्र्य-तृष्णा
"	२३	संख्या बड़ो	संख्या बढ़ी
३९७	१३	अच्छा ज्ञान रखते थे	अच्छा ज्ञान नहीं रखते थे
४१४	४	देशदूत	देवदूत

विशेष परिशिष्ट

सभा का वर्तमान कार्य संचालन

रीति-नीति

प्रगति की दिशा में–

पूज्य बापू जी के निधन के बाद डा० राजेन्द्रप्रसाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के आजीवन अध्यक्ष मनोनीत हुए। गाँधी जी के बाद हिंदी प्रचार सभा का अध्यक्ष-पद ग्रहण करने में आपने संकोच नहीं किया। गाँधी जी के अधूरे कार्य को पूरा करना उन्होंने अपना कर्तव्य माना। गाँधी जी की मृत्यु से सभा एक प्रकार से अनाथ-सी हो गयी थी। लेकिन राजेन्द्रबाबू ने उसे सनाथ बनाया। स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश भर में हिन्दी के प्रचार - प्रसार की आयोजनाओं के आप सूत्रधार बने। विधान-परिषद् के अध्यक्ष की हैसियत से आपने हिंदी को राजभाषा का गौरव प्रदान करने में बड़ी दूर-दर्शिता दिखायी। विधान के भाषा संबंधी १७ वें अध्याय में आपने भारतीय भाषाओं का स्थान सुरक्षित रखते हुए उनके साथ हिंदी का समन्वय करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस प्रकार दक्षिण के हिन्दी प्रचार आन्दोलन को एक नयी दिशा में मोड़ दिया। बाद को राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए भी हिंदी के विकास की आयोजनाओं पर आपका विशेष ध्यान रहा।

सभा के आजीवन अध्यक्ष बनने के बाद पहली बार सन् १९५३ में वे सभा में आये। सभा ने उन्हें एक मान-पत्र दिया। उस मान-पत्र की बातें सभा की तत्कालीन गति-विधि एवं आगे के कार्यक्रम पर प्रकाश डालनेवाली हैं। मान-पत्र की निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय हैं—

ज्योतिप्रद् मार्गदर्शन—

"राष्ट्रपिता महात्मागाँधी की प्रेरणा से स्थापित दक्षिण भारत की इस संस्था को रचनात्मक संस्थाओं में साबरमती के सत्याग्रह आश्रम के बाद दूसरा स्थान प्राप्त है। गत पैंतीस वर्षों से (सन् १९१८ से) यह संस्था दक्षिण भारत में द्राविड़ भाषा-भाषियों के बीच में हिंदी प्रचार के लिए निरंतर कार्य करते हुए जो सफलता प्राप्त कर रही है, उससे आप परिचित हैं। आप इस सभा के हैं, आपके ज्योतिप्रद मार्ग दर्शन से सभा के सभी सदस्य, कार्यकर्ता तथा सहयोगी प्रतिक्षण गौरव का अनुभव करते हैं। विधान-परिषद के निश्चय के अनुसार १९५५ में हिंदी के विकास तथा उसकी उन्नति को जाँचने के लिए आप एक आयोग बिठाने वाले हैं।

सभा का डर—

"गत तीन वर्षों से (सन् १९४९ से) भारतीय सरकार तथा राज्य सरकारों की तरफ से जो कार्य हिंदी भाषा को अधिकाधिक विकसित करने तथा कायम बनाने के लिए हुआ है, उसे देखते हुए हमें इस बात का डर है कि अँग्रेजी को उसके वर्तमान

आसन से एक कदम भी हम नीचे नहीं उतार सकेंगे। उल्टे, हमें तो इस बात का डर हो रहा है कि देश के बड़े-बड़े उन्नायक भी अँगरेजी का स्थान देशी भाषाओं तथा हिंदी को देने का अपना संकल्प भी ढीला कर रहे हैं। हम इस स्थिति को निस्सहाय होकर देख रहे हैं। हम आपकी दृष्टि इस तरफ आकृष्ट करना चाहते हैं।.........

शून्य भविष्य—

"दक्षिण के हिन्दी प्रचारकों ने अपने सहज उत्साह से अब तक इतना कार्य इस क्षेत्र में संपन्न किया। अब उनके सामने भविष्य कुछ शून्य-सा दीख रहा है। जब तक राष्ट्रीय स्वतंत्रता नहीं मिल गयी थी, तब तक हिन्दी स्वतंत्रता प्राप्त करने के कार्य-क्रम का एक प्रमुख अंग मानी जाती थी। अब तो स्वतंत्रता मिल गयी है। इसलिए हम बड़ी उत्सुकता के साथ देख रहे हैं कि वह कब राजभाषा के रूप में हमारे सामने आये।.................

हिन्दी की अपूर्णता—

"........आज हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनने के लिए कितनी ही दिशाओं में उन्नति करनी है। उसके साहित्य की प्रगति के साथ-साथ शासन, संसदीय तथा सरकारी काम-काज के लिए उपयोगी शब्द-भंडार तथा शब्द-सौलभ्य उसको अब भी प्राप्त नहीं है। नागरी के मुद्रायंत्र का काम अभी तक अधूरा ही पड़ा है। नागरी-मुद्रण की होड़ में बहुत ही पिछड़ा हुआ है।.................

ढीला संकल्प—

"........आज हमारे देश का कार्य अँग्रेजी के द्वारा चल रहा है। देश के अँग्रेजी विद्वान देशी भाषाओं के प्रति सिर्फ सहानुभूति का रुख दिखा रहे हैं। इस हालत को देखते हुए हिन्दी के कार्यकर्ता अगर यह अनुभव करने लगें कि हिन्दी को राजभाषा बनाने का संकल्प कुछ ढीला पड़ता जा रहा है तो यह अपराध नहीं समझा जायगा।"

राष्ट्रपिता ने मान-पत्र के अन्तर में हिन्दी के कार्यकर्ताओं को आश्वासन देते हुए यों कहा—

"यद्यपि आज आप कुछ इस बात से क्षुब्ध-से हैं कि अब तक हिन्दी प्रचार के लिए काम उतनी तत्परता और शीघ्रता के साथ नहीं किया जा रहा है जितनी तत्परता और शीघ्रता के साथ आप चाहते हैं, तो भी यह बात सर्वमान्य हो गयी है और हमारे संविधान में हिन्दी को राष्ट्रीय कार्य के लिए राज-भाषा मान लिया गया है। पन्द्रह वर्ष की जो मियाद दी गयी है, उसके तीन साल जो बीत चुके हैं, मगर अभी बारह साल और बाकी हैं और हम आशा करें कि इस बीच में उतनी प्रगति हम कर लेंगे कि अँग्रेजी का स्थान हिन्दी ले सके।"

राज्य-सनद संबंधी प्रस्ताव—

सभा ने अपनी व्यवस्थापिका समिति की बैठक में जो ता० ३१-१२-१९५९ को

हुई थी, राज्य सनद संबंधी निम्नलिखित आशय का एक प्रस्ताव पास किया था—

"यह सभा, जो पूज्य महात्मा गाँधी जी द्वारा सन् १९१८ में स्थापित हुई, गत ४१ वर्षों में हिन्दी प्रचार के लिए महत्व पूर्ण और अद्वितीय कार्य करती रही है और मद्रास, आंध्र, मैसूर व केरल के राज्यों में इनकी शाखाएँ स्थापित हो गयी हैं। सभा के अधीन हिन्दी प्रशिक्षण प्राप्त लगभग ६००० हिन्दी प्रचारक कार्य कर रहे हैं जिनके द्वारा दक्षिण की जनता हिन्दी का काम चलाऊ या उससे अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकी है। इस लंबी अवधि में सभा को आम जनता का पर्याप्त संरक्षण मिला, जिससे वह अपनी इस बृहत् संस्था को स्वावलम्बी बनाने की क्षमता प्राप्त कर चुकी है।

हिन्दी आज विधान-सम्मत राजभाषा बन गयी है। आजकल हिन्दी सीखना, केवल एक भाषा की दृष्टि से नहीं, परन्तु संघ व राज्य सरकारों में और अन्य स्थानों में जहाँ हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान बिलकुल अनिवार्य है, आवश्यक हो गया है। इसलिए दक्षिण में यह अनुभव किया जाता है कि हिन्दी के शिक्षण को पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र और सोद्देश्य बनाने के लिए सभा को कुछ व्यवस्था करनी चाहिए।

ऐसी परिस्थिति में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की व्यवस्थापिका समिति का विचार है कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा संस्थापित 'विश्वभारती' की तरह संसद् के विधेयक द्वारा इस संस्था को भी परिनियत मान्यता दिलाने की प्रार्थना संघ-सरकार से करने का उपयुक्त समय आ गया है।................"

उक्त प्रस्ताव के अनुसार आज सभा को National Status (राष्ट्रीय गौरव) देने के संबंध में एक विधेयक राज्य सभा में स्वीकृत होकर अब लोक सभा के अधिवेशन में स्वीकृति के लिए पेश हो रहा है। आशा की जाती है कि वह सन् १९६४ के अधिवेशन में बहुमत से पास हो जायगा।

सभा पर 'विधि-विधान' का आघात!

सन् १९२८ के बाद दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा विभिन्न दिशाओं में प्रगति करती रही। सन् १९२८ से १९६३ तक के इस दीर्घकाल में सभा के कुछ प्रबल समर्थकों, पोषकों एवं संरक्षकों के निधन से हिन्दी प्रचार आन्दोलन को बड़ी क्षति अवश्य पहुँची। फिर भी सभा के कार्यकर्ता हतोत्साह न होकर अपने कर्म-पथ में आगे बढ़ते ही गये।

चिरस्मरणीय हिन्दी-सेवी—

सभा के भूतपूर्व उपाध्यक्षों में स्व० देशोद्धारक श्री काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु (संस्थापक, आंध्र-पत्रिका' मद्रास), स्व० श्री ए० रंगस्वामी अय्यंगार (भूतपूर्व संपादक, 'हिंदू', मद्रास) और स्व० डा० पट्टाभि सीतारामय्या तथा सभा के संरक्षक श्रेयार्थी स्व० जमनालाल बजाज, सभा के सच्चे हितैषी स्व० संजीव कामत, स्व० श्री निवासय्यंगार, स्व० श्री भाष्यम अय्यंगार स्व० श्री सत्यमूर्ति आदि महान नेताओं की सेवाओं से सभा वंचित रही। वास्तव में इन सबकी असामयिक मृत्यु ने सभा के कार्य को बड़ा धक्का

पहुँचाया। फिर भी दक्षिण के अन्य गण्यमान्य नेताओं ने हिंदी आंदोलन को जीवित और स्फूर्तियुक्त बनाये रखा।

सभा के आजीवन अध्यक्ष महात्मा गाँधी जी के आकस्मिक देह-वियोग ने सभा की जड़ को हिलाया था। परन्तु राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के प्रबल हाथों ने सहारा देकर उस आघात से उसे बचाया। उनके प्रयत्न से भारत के संविधान में हिंदी को राजभाषा के पद का गौरव प्राप्त हुआ। स्व० राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, स्व० पं० गोविंदवल्लभ पंत, श्रीसेठ गोविंददास, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि कितने ही हिंदी-भक्तों ने हिंदी के देशव्यापी प्रचार-प्रसार के लिए अथक प्रयत्न किया है। श्री सेठ गोविंददास का प्रयत्न आज भी इस दिशा में स्फूर्तिदायक रहता है।

श्री पट्टाभि सीतारामय्या की मृत्यु एवं श्री राजाजी के हिंदी के सेवा-क्षेत्र से अलग हो जाने के कारण दक्षिण के दो महान प्रबल हिंदी-सेवियों की दीर्घकालीन सेवाओं से सभा वंचित रही।

सभा पर विधि का दूसरा वज्राघात

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र बाबू की मृत्यु से सभा पर और भी एक घोर वज्रपात हुआ। इस आघात की क्षति-पूर्ति करना कठिन है। सौभाग्य की बात है कि आज सभा को अध्यक्ष और उपाध्यक्षों के रूप में तीन सुप्रसिद्ध महान नेता प्राप्त हुए हैं।

सभा के वर्तमान अध्यक्ष और उपाध्यक्ष

राजेन्द्र बाबू के निधन के बाद देश के सुप्रसिद्ध नेता श्री लालबहादुर शास्त्री सभा के अध्यक्ष नियुक्त हुए हैं। अपने बहुमुखी कार्य-कलापों में व्यस्त रहते हुए भी आप, हिन्दी प्रचार की वृद्धि के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। उनका अध्यक्ष-पद ग्रहण करना सभा के उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। डा० बी० रामकृष्ण राव तथा श्री एस० निजलिंगप्पा आज सभा के उपाध्यक्ष हैं। आप दोनों हिन्दी के प्रबल समर्थक हैं। राष्ट्रीय क्षेत्र में आप दोनों की महान सेवाओं को भारतीय जनता नहीं भूल सकती। हिंदी प्रचार सभा के इन कर्णधारों के सफल नेतृत्व से सभा लाभान्वित हो रही है। आप दोनों, वर्षों पहिले ही से दक्षिण के हिंदी प्रचार की प्रगति में सक्रिय भाग लेते आये हैं।

श्री डी० श्रीनिवास अय्यंगार

श्री अय्यंगार जी कुछ वर्षों से सभा की कार्यकारिणी के अध्यक्ष हैं। वर्षों से आप उक्त समिति के एक प्रमुख सदस्य की हैसियत से दक्षिण के हिंदी प्रचार की श्रीवृद्धि में निरंतर सहायता पहुँचाते रहे हैं। श्री अय्यंगार बड़े ही कार्यदक्ष व्यक्ति हैं। सत्याग्रह आंदोलन में भी सक्रिय भाग लेकर जेल जाने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आप चित्तूर (आंध्र) के सुप्रसिद्ध वकील हैं। अपनी मातृभाषा तेलुगु के अतिरिक्त आप अँग्रेजी, हिंदी, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता और वक्ता हैं। हिंदी प्रचार

सभा की आयोजनाओं को कार्यान्वित करने में आप हमेशा दत्तचित्त रहते हैं। उनके सक्षम नेतृत्व में सभा आज विभिन्न दिशाओं में प्रगति कर रही है।

सभा को राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने के संबन्ध में जो विधेयक लोक सभा में पेश हुआ है, उसे स्वीकृत कराने में आपका योगदान महत्व का है।

कार्य कारिणी समिति के अन्य प्रमुख हिंदी-सेवी

सभा की वर्तमान कार्यकारिणी समिति के प्रमुख सदस्यों में श्री वेंकिट स्वामी नायडू (प्रबंध निधिपालक) श्री इंदिरा रामदुरै (कोषाध्यक्षा) डा० आर० महालिंगम (तमिल नाडु), डा० ए० बी० नागेश्वर राव (आंध्र) श्री शील ब्रह्मय्या (आंध्र) श्री ए० वी० कौदी (कर्नाटक) श्री एम० राजेश्वरय्या (कर्नाटक) प्रो० नागप्पा (कर्नाटक) आदि हिंदी के आदर्श सेवक हैं। अपनी दीर्घकालीन सेवा से निवृत्त होने पर भी हिंदी प्रचार सभा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री सत्यनारायण जी पूर्ववत् सभा की कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में अपने अमूल्य परामर्शों से मदद पहुँचा रहे हैं। हिंदी प्रचार सभा को राष्ट्रीय गौरव दिलानेवाला विधेयक तैयार करने एवं उसे पास कराने में श्री अय्यंगार तथा सत्यनारायण जी का प्रयत्न सराहनीय है। श्री के० बालसुब्रह्मण्यम् अय्यर, श्री जगन्नाथदास, स्व० के० श्री निवासन (सुप्रसिद्ध 'हिंदू' के सम्पादक) आदि की सेवाएँ भी हिंदी प्रचार के क्षेत्र में चिरस्मरणीय हैं।

सभा के वर्तमान पदाधिकारी

श्री एस० आर० शास्त्री—श्री शास्त्री जी आज सभा के प्रधान मंत्री हैं। श्री सत्यनारायण जी के कार्य-निवृत्त होने पर शास्त्री ही सबसे अधिक वरिष्ठ कार्यकर्ता के लिहाज से सभा के प्रधान मंत्री नियुक्त किये गये। आपका अनुभव, विविध क्षेत्रों में वर्षों का रहा है। क्या शिक्षण, क्या प्रचार, क्या संगठन क्या प्रशासन—सभी में उनको अनुभवी बड़ा लाभ पहुँचा रहा है सभा की प्रगति में उनकी सेवाएँ अत्यन्त महत्व की रहती हैं।

श्री एस. महालिंगम—श्री महालिंगम सभा के पुराने सुयोग्य प्रचारकों में से हैं। इन दिनों आप साहित्य मंत्री के पद पर कार्य कर रहे हैं। परीक्षा मंत्री, प्रांतीय मंत्री आदि के विभिन्न पदों पर भी आपने सभा की सराहनीय सेवा की है।

श्री एन. वेंकिटेश्वरन—श्री वेंकिटेश्वरन वर्षों तक केरल के प्रमुख कार्यकर्ता व मंत्री रहे। इन दिनों आप परीक्षा मंत्री पद पर नियुक्त हैं। आपकी कार्यदक्षता, योग्यता आदि का विशेष उल्लेख अन्यत्र हुआ है।

श्री एस. चंद्रमौली—आज सभा के शिक्षा-मंत्री एवं नगर-मंत्री के पद पर श्री चन्द्रमौली नियुक्त हैं। आप पहले तमिलनाडु में कार्य करते थे। आपकी विद्वत्ता, संगठन-शक्ति, आदि के सभी लोग कायल हैं।

श्री के. आर. विश्वनाथन—सभा के पुराने सुयोग्य प्रचारकों में श्री विश्वनाथन जी प्रथम श्रेणी के कार्यकर्ता हैं। सभा के विविध कार्य-विभागों में आपने बड़ी दक्षता के

साथ काम किया है। इन दिनों आप सभा के पर्यवेक्षक के पद पर कार्य कर रहे हैं।

श्री एस. देवराजन—अर्थ-मंत्री के पद पर श्री देवराजन इन दिनों काम कर रहे हैं। कार्यालय के सभी विभागों में आपकी वर्षों की सेवाएँ रही हैं। सभी विभागों में समान दक्षता के साथ कार्य करने की आप विशेष योग्यता रखते हैं एवं सभा के एक आदर्श कर्मठ व मौन सेवक हैं।

श्री रा० शारंगपाणी—इन दिनों श्री रा० शारंगपाणी प्रचार-मंत्री तथा 'हिंदी प्रचार समाचार' के प्रधान संपादक के पद पर कार्य कर रहे हैं। पत्रिका-संपादन के क्षेत्र में आप बड़े ही अनुभवी हैं। 'हिंदी प्रचार समाचार' की लोकप्रियता बढ़ाने में आपने अपनी अद्वितीय कार्य-कुशलता का परिचय दिया है। मद्रास नगर के हिंदी प्रचार संबंधी कार्य कलापों में आप वर्षों से ही सक्रिय भाग लेते रहे हैं। तमिलनाडु में भी आपने कुछ वर्ष तक प्रचार कार्य बड़ी सफलता के साथ किया है।

श्री बी० एम० कृष्णस्वामी—सभा के बहुत ही पुराने अनुभवी कार्यकर्ताओं में श्री कृष्णस्वामी भी एक हैं। कर्नाटक तथा तमिलनाडु के प्रान्तीय मंत्री के पद पर आपने कार्य किया है। सभा के कार्यालय के सभी विभागों में भी आपने कार्य किया है। संगठक के पद पर तमिलनाडु में आप बड़ी सफलता के साथ कार्य करते रहे हैं।

श्री ए० वेंकिटाचारी, श्री जी० सुब्रह्मण्यम, श्री चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा क्रमशः तमिलनाडु, कर्नाटक और आन्ध्र की प्रांतीय सभाओं के मंत्री हैं। श्री आंजनेय शर्मा केरल हिंदी प्रचार सभा के विशेष अधिकारी के पद पर नियुक्त हैं। आप चारों सभा के सुयोग्य कार्यकर्ताओं की श्रेणी में आते हैं। सभा के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री भालचंद्र आपटे आज कल सभा की दिल्ली शाखा के प्रांतीय मंत्री हैं और बड़े मनोयोग पूर्वक राजधानी में सभा की प्रतिष्ठा बढ़ाने में दत्तचित्त हैं। आप सबने सभा के अधीन विभिन्न विभागों में, विभिन्न प्रान्तों में प्रशंसनीय कार्य किया है।

सभा के साहित्य, पुस्तक, पत्रिका आदि के विभागों में श्री बालशौरि रेड्डी, श्री नारायणदास, श्री माधवराव, श्री पद्मनाभन, श्री गणपति आदि वर्षों से काम करते आ रहे हैं। वास्तव में उपयुक्त पदाधिकारी तथा अन्य कार्यकर्ता ही सभा की सबसे बड़ी पूँजी हैं।

प्रचारक प्रशिक्षण विद्यालय—

सभा के अधीन इन दिनों चारों प्रांतों में प्रशिक्षण विद्यालय चल रहे हैं। हिंदी अध्यापकों को प्रशिक्षण देने की दिशा में सभा वर्षों पहले से ही आवश्यक व्यवस्था करती आयी है। आज सरकारी प्रशिक्षण विद्यालय कहीं-कहीं खुलने लगे हैं। केन्द्रीय सरकार के अनुदान के बल पर ये विद्यालय चल रहे हैं। अच्छा होता, यदि

पहिले की तरह प्रशिक्षण विद्यालय चलाने का पूरा भार हिंदी प्रचार सभा को ही सौंपा जाता।

प्रमुख अध्यापक—

सभा के प्रशिक्षण विद्यालयों में काम करनेवाले अध्यापक सभा के पुराने अनुभवी तथा शिक्षण-पद्धति के अच्छे ज्ञाता हैं। इस क्षेत्र में पहले कई अध्यापक कार्य कर चुके हैं। इन दिनों श्री टी० के० कृष्णस्वामी (आन्ध्र), श्री टी० पी० वीरराघवन (केरल) श्री पी० नारायण (केरल) श्रीमती शारदादेवी (केरल) श्री नागेश (कर्नाटक) श्री वेंकिटाचारी (वर्तमान प्रान्तीय मंत्री, तमिलनाडु) श्री धर्मराजन (मद्रास) श्री त्रिपाठी (मद्रास) डा० तेजनारायणलाल (हैदराबाद) श्री के० एस० कृष्णमूर्ति आदि इस प्रशिक्षण-क्षेत्र के कुशल अध्यापक हैं। इनका स्थान-परिवर्तन अन्तरप्रादेशिक स्तर पर होता रहता है। हिंदी-प्रशिक्षण के क्षेत्र में इन निस्वार्थ अध्यापकों की सेवाएँ भी विशेष महत्व की रहेंगी।

लोकप्रिय संस्था—

आज दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा दक्षिण की सबसे बड़ी तथा सबसे अधिक लोकप्रिय संस्था है। पूज्य बापू जी उसके संस्थापक हैं। भारत के सैकड़ों महान् नेताओं के नाम व काम उसके साथ जुड़े हुए हैं। आज मद्रास नगर हिंदी प्रचार के क्षेत्रीय विभाजन में एक अलग प्रांत के समान माना गया है। सभा नगर के कार्य के संचालन, संगठन आदि के लिए सुयोग्य कार्यकर्ताओं को समय-समय पर नियुक्त करती रहती है। स्वतंत्र रूप से हिंदी का प्रचार करनेवाली दो संस्थाएँ भी मद्रास नगर में आज विद्यमान है।

हिन्दी विद्यापीठ व किट्टप्पा संगीत व हिन्दी विद्यालय—

स्वतंत्र रूप से हिंदी के प्रचार के लिए उपयुक्त दोनों संस्थाएँ मद्रास नगर की प्रतिष्ठित और लोकप्रिय हैं। हिंदी विद्यापीठ के संस्थापक श्री सुन्दर कृष्णमाचारी मद्रास नगर के हिंदी कार्यकर्ताओं के नेता हैं। वर्षों से वे मद्रास नगर के हिंदी के प्रचार-कार्य में बड़ी लगन के साथ लगे हुए हैं। नगर भर के प्रचारकों के नेता के रूप में आप सबके आदर और प्रेम के पात्र बने हुए हैं। वकालत का अपना पेशा छोड़ कर हिंदी की सेवा में अपने जीवन को अर्पित करके निस्वार्थ भाव से सेवावृत्ति को ही अपना लक्ष्य माननेवाले आपके-से कार्यकर्ता इस क्षेत्र में बिरले ही मिलेंगे। आपके विद्यापीठ से हजारों लोगों ने हिंदी की शिक्षा ग्रहण की है और आज भी ग्रहण कर रहे हैं। हिंदी प्रचार सभा की व्यवस्थापिका समिति, शिक्षा परिषद आदि में सक्रिय भाग लेकर सभा को अपने कार्य-संचालन में श्री सुन्दर कृष्णमाचारी सहायता पहुँचाते रहते हैं। आप

आन्दोलन की प्रगति में आपकी वर्षों की सेवा अत्युत्कृष्ट रही है। खासकर मद्रास नगर की जनता में हिंदी की जड़ जमाने में आपकी सेवाएँ स्मरणीय रहेंगी।

किट्टप्पा संगीत व हिन्दी विद्यालय, मद्रास—

श्री आक्कूर अनंताचार्य ने अपने परम मित्र, संगीतकलानिधि स्व० किट्टप्पा के संस्मरणार्थ सन् १९३३ में उक्त संस्था की स्थापना की।

श्री आक्कूर अनंताचार्य बड़े तीव्र राष्ट्रीयवादी गाँधी भक्त हिंदी व संगीत के अनन्य प्रेमी एवं प्रचारक हैं। सन् १९२३ में 'नील सत्याग्रह' के आप मंत्री रहे। कई बार जेलों में रहने का भी सुयोग आप को प्राप्त हुआ है। अँग्रेजी और हिंदी की कई पुस्तकों का आपने तमिल में अनुवाद किया है। तमिल राष्ट्रीय महाकवि स्व० सुब्रह्मण्य भारती के भी आप बड़े भक्त हैं। श्री भारती के ग्रंथों के प्रचार में आपका योगदान महत्वपूर्ण है। श्री हरिहर शर्मा जी के वर्धा चले जाने पर सन् १८३६ में आपने सुप्रसिद्ध पत्रकार स्व० कल्की के सहयोग से 'भारती संघ' स्थापित किया जिसकी ओर से प्रति वर्ष 'भारती-दिवस' बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा है। सन् १९३३ से 'किट्टप्पा-दिवस' भी मनाया जाता है।

श्री अनंताचार्य जी सदा-सर्वदा हिंदी तथा संगीत के प्रचार में दत्तचित्त रहते हैं। सभा की विभिन्न परीक्षाओं के लिए ये सैकड़ों विद्यार्थी तैयार करते हैं। आप राजाजी के भी भक्त हैं। राजा जी के हिंदी विरोध को देख कर श्री अनंताचार्य ने दुखी होकर पत्र द्वारा राजा जी से इसका स्पष्टीकरण माँगा। राजा जी ने उन्हें उत्तर में सूचित किया था—"मैं दिल से यह चाहता हूँ कि दक्षिण का हर एक बच्चा हिंदी जरूर सीखे व अच्छी तरह से सीखे। मेरा विरोध 'हिन्दी को बलात् राजभाषा' बनाने में ही है।

हिंदी व संगीत के प्रचार के अतिरिक्त श्री अनंताचार्य जी मद्रास से ७० मील दूर पर वालाजाबाद में, एक आश्रम भी चला रहे हैं। आज आप ६० वर्ष के हो गये हैं। फिर भी नवजवान से दीखते हैं। आपकी ६०वीं वर्षगाँठ पर मद्रास के प्रमुख लोगों ने एक बड़ी सभा करके आप का आदर-सम्मान किया। आपकी अमूल्य सेवाओं के उपलक्ष्य में आप को कई उपहार भी दिये गये। मद्रास के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री कामराज (वर्तमान अध्यक्ष, काँग्रेस) ने भी उक्त सभा में उपस्थित रह कर श्री अनंताचार्य के कार्यों की बड़ी प्रशंसा की थी।

श्री अनंताचार्य की प्रिय संस्था को ही हिंदी तथा संगीत के प्रचार का श्रेय आज प्राप्त है।